त्रिलोचन की काव्यदृष्टि

गोवा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग में
पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबंध

M. J. Chheda
External Examiner
27.12.03

GOA UNIVERSITY
LIBRARY
GOA

(2003 - 2004)

शोध-कर्त्री
कु. लता ग. शिरोडकर
हिन्दी प्रवक्ता, श्रीमती पार्वतीबाई चौगुले महाविद्यालय
मड़गांव - गोवा

All corrections suggested by referees have been incorporated in them

****

Guide 27/12/03

27/12/03

निर्देशक
डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र
रीडर, हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय

विभागाध्यक्ष
डॉ. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व'
हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय

891.431
TRI
T-265

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, गोवा - ४०३२०६

DECLARATION

I the undersigned hereby declare that the thesis entitled "TRILOCHAN KI KAVYADRISHTI" 'त्रिलोचन की काव्यदृष्टि' has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this University or any other University.

GOA UNIVERSITY
LIBRARY
GOA

Shirodkar

Date: 27th December 2003
Place : Taleigao Plateau Goa.

Lata Shirodkar
Research Student
Dept. of Hindi

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled "TRILOCHAN KI KAVYADRISHTI" 'त्रिलोचन की काव्यदृष्टि is a record of research work done by Lata Shirodkar (candidate) herself during the period of study under my guidence and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Date : 27th Dec 2003

Research Guide 27/12/03
Dr. Ravindranath Mishra
Reader, Department of Hindi
Goa University

पुरोवाक्

त्रिलोचन मानव जीवन के कुशल गायक हैं, जिनके व्यक्तिगत जीवन की पारदर्शिता उनके काव्य-जगत में सर्वत्र विद्यमान है। त्रिलोचन की कविता हमारे विराट सामाजिक जीवन की बहुल विविधताओं से युक्त है। निराला के बाद त्रिलोचन ही एक ऐसे सशक्त कवि के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें जीवन से जुड़े हुए अनेक चरित्र जीवंत रूप से अपनी स्वाभाविकता में चित्रित हैं। उनकी कविता में जीवन के जन लुप्त नहीं है। भौजी, बुआ, नगई महरा, चम्पा, अवतरिया, चित्रा जांबोरकर आदि व्यक्तित्व, सामान्य रूप से अपनी सामान्यता में हमारे सामने उभरकर आते हैं। त्रिलोचन की कविता बाहर की ओर खुलती है लेकिन इसकी जड़े भीतर है। त्रिलोचन उस जनपद के कवि हैं, जो बहुत घनी आबादीवाला है और जिसमें रोज-मर्रा के जीवन में घटनेवाली विविध घटनाएँ घटित होती रहती हैं। त्रिलोचन के काव्य में लोक-जीवन, संस्कृति के विविध रुप विद्यमान है। लोक-जीवन और संस्कृति का चित्रण करना मानो उनके लिए महापर्व हैं।

लोक जीवन में रचनाकार या कवि अथवा स्रष्टा कहे जाने के लिए दर्शना और वर्णना दोनों का होना आवश्यक है जिसके अंतर्गत रचनाकार की संवेदनात्मक दृष्टि कार्य करती है। दृष्टि निर्माण की प्रक्रिया परिवेशगत खाद से धीरे-धीरे विकसित होती है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी का दृष्टि और सर्जनशीलता के संबंध में अभिमत है, ''सर्जना या सृष्टि के लिए दृष्टि का होना अनिवार्य है। द्रष्टा ही स्रष्टा हो सकता है। यह दृष्टि कई रुपों में

आधार बनती है, - दर्शना या vision (स्फुरणा- प्रतिभान) तो दृष्टि है ही, वह विश्वदृष्टि और जीवन दृष्टि के रुप में भी काव्य की अंतरात्मा सर्जनात्मक अनुभूति के लिए अनिवार्य है।''

भारतीय दृष्टि अतीत, वर्तमान और भविष्य को अविछिन्न मानकर चलती है। वही रचनाकार कालजयी माना जाता है जिसके साहित्य में उक्त तीनों कालों का समावेश होता है। परंतु कतिपय पाश्चात्य विचारक केवल वर्तमान की महत्ता को स्वीकार करते हैं।

प्राय: हम देखते हैं कि व्यक्ति की अपनी विचारशीलता और संवेगों की तीव्रता के अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण होता है। एक ही परिवेश में रहकर एक व्यक्ति जो प्रभाव ग्रहण करता है वहीं दूसरा व्यक्ति अन्य प्रकार की प्रेरणा प्राप्त करता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि दृष्टि के निर्माण में उसी अनुपात में व्यक्ति की अनुभूति और अभिव्यक्ति की तीव्रता भी प्रेरक भूमिका का निर्वाह करती है।

जहाँ तक त्रिलोचन की काव्य दृष्टि का सवाल है इन्हें विशुद्ध रुप से प्रगतिवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके जीवन पर परंपरागत पारिवारिक ग्रामीण संस्कारों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिसे इनकी कविताओं के माध्यम से जाना जा सकता है। इस संदर्भ में उदाहरण द्रष्टव्य है-

काशी मुझे गाँव सी लगती है शहराती
हवा यहाँ कम से कम है, सब आसपास से
घुले मिले रहते हैं, अपना रंग दिखाती
प्रकृति मनुष्यों में है, धरती से अकास से

वस्तुत: त्रिलोचन के काव्य सर्जना की परिधि गांव-गवई, खेत-खलिहानों आदि की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को उजागर करती है। इनकी कविताओं में नयी ताजगी और अजीब तरह का स्वाद है जो कि बिना नाद और संगीत के भी रस प्रदान करती हैं।

हिन्दी साहित्य का अध्ययन और अध्यापन करते हुए मेरे मन में भी शोध-कार्य करने की लालसा उत्पन्न हुई और मैं इस दिशा की ओर अग्रसर हुई। त्रिलोचन की संवेदनात्मक धरातल पर लिखी हुई कविताओं ने मुझे अत्याधिक प्रभावित किया। अतएव अपने निर्देशक से विचार-विमर्श करके मैंने 'त्रिलोचन की काव्यदृष्टि' पर शोध-कार्य करने का मन बना लिया। जीवन के प्रति अदम्य लालसा, आस्था, जिजीविषा, अनुराग से सिक्त त्रिलोचन शास्त्री अपने आप में विरले हैं। फिर भी यह दु:खद पक्ष रहा कि हिन्दी साहित्य जगत में न केवल उनके व्यक्तित्व बल्कि कृतित्व को भी ठीक तरह से परखा नहीं गया। इस शोध-कार्य के अंतर्गत मेरा यही प्रयास रहा है कि उनकी सर्जनशीलता की विवेकबुद्धि से तर्क निपुण होकर न्याय संगत व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनके साहित्य की पुन: प्रतिष्ठापना के हेतु को भी साध्य कर सकूँ।

त्रिलोचन शास्त्री का जीवन बाल्य-काल से ही संघर्षमयी रहा है। विभिन्न आपदाओं और उत्पातों को सहते-सहते उन्होंने अपने जीवन को परिचालित किया है, कई स्थितियों में अनेकानेक अवरोध रहे हैं लेकिन फिर भी उनका जुझारूपन कम नहीं हुआ। कल-कल बहते हुए जल के प्रवाह के समान वे निरंतर जीवन प्रवाह में बहते रहे। आज के आपा-धापी जीवन में जहाँ लोगों में प्रेम, सद्भावना, करूणा, जैसे मानवीय मूल्यों का अभाव देखा जा रहा है, लोग संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं, वहाँ त्रिलोचन मानवीय जीवन-मूल्यों को अपने जीवन का संबल मानते हैं। त्रिलोचन के जीवन के इन्हीं वैचारिक बिंदुओं ने मुझे व्यक्तिगत रुप से बहुत प्रभावित किया। सबसे ज्यादा भयंकर होता है जीते जी मरना और इस तरह के मौत के बाद भी चुपचाप मौन होकर सहते जाना, स्वयं को संतुलित रखना। अतिशयता की सीमा तक बरदाश्त करने की इस स्वभावतगत विशेषता के कारण शंभुनाथ मिश्र ने उन्हें 'बरदाश्त की हद त्रिलोचन' कहकर संबोधित किया है।

त्रिलोचन शास्त्री की रचनाधर्मिता की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे सामान्य लगने के बावजूद असामान्य है। असामान्य का सामान्यीकरण और सामान्य का असामान्यीकरण उतना आसान नहीं है। त्रिलोचन उसे बखूबी जानते हैं। लेकिन उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण उन्हें कई बार परेशानियों का सामना करना पड़ा है, कई बार उपेक्षा सहनी पड़ी, आलोचकों ने मुँह मोड़ लिया फिर भी टस से मस न होते हुए वे अपने काव्य-कर्म में लीन रहें।

वे अन्य कवियों से किस रुप में अलग है, इस संदर्भ में शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं- ''शास्त्री को लोक-जीवन से उत्पन्न स्नेहगंधी मानस मिला है। इसमें लोक-गीत नहीं है, जैसा कि विद्यानिवास मिश्र में, इसमें गाँव के गलीज को ढ़ोने का तुफैल नहीं है, जैसा शैलेश मटियानी में, इसमें विच्छल डगर का रुमान भी नहीं है, जैसा रेणु में है, यहाँ सिर्फ एक देहाती पोखर है, कंकड़ीली जमीन से धँसा हुआ, जिसमें स्वच्छता और ठंडक है, कहीं जलकुंभी और कुईं नजर नहीं आती, कुछ सेवार जरुर है, जिन्हें शास्त्री 'सुनहलें शैवालों' में बदलने की कला नहीं जानते। गँवई गाँव की डगर, धान-पोखर, बातचीत, पुराने लोगों के बेशकीमती अनुभव से प्रसूत उक्तियाँ, घरेलू दु:ख दर्द की अबूझ समझ और खाँटी धरती की कास उजास में फूटते मुहावरों और शब्दों की गमक, उनकी अपनी बेशकीमती धरोहर है।''

'दृष्टि' शब्द कहने में तो काफी संक्षिप्त है, लेकिन उसका आयाम बहुत ही विशाल और व्यापक है। बाह्य और आंतरिक स्थितियों के प्रतिफलन के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति में स्थित मानसिक उहापोह और बाह्य स्थित्यंतर का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इसके द्वारा ही समग्रता में दृष्टि का निर्माण होता है।

महादेवी वर्मा के अनुसार, ''काव्य-दृष्टि समय की खंडश: स्थिति को अपनी सीमा नहीं मानती। वह एक संवेदन से चलकर संवेदन-संसृति के चरम बिंदु तक पहुँच जाती है। नदी तट के एक छोर पर बैठ कर हम यदि उसके जल में हाथ डुबाते हैं, तो वह संपूर्ण नदी का

स्पर्श है, जल के अंश-विशेष का नहीं।

त्रिलोचन अपने सॉनेटो में ''तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुमसे सीखी, मेरी सहज चेतना में तुम रमे हुए हो-'' कहते हुए निराला, गोर्की आदि से प्रभाव ग्रहण करते हुए विषम परिस्थितियों से उत्प्रेरित होकर काव्य-कर्म के लिए अपने दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

जिस त्रिलोचन ने जीवन के भीषण ताप से तापे हुए दिनों की गाथा धरती और दिगन्त तक विस्तृत दृश्य जगत से संबद्ध और शब्द बद्ध किया है उसे कोई या वह स्वयं अपने को मात्र इस या उस जनपद का कवि कहें तो उसे कण में और पिण्ड में ही ब्रह्मांड-दर्शन की दार्शनिक परंपरा को ही जोड़ना पड़ेगा। जैसे पांडेपुर गाँव व्यवस्था की होली को दग्ध होते एक किसान के माध्यम से प्रेमचंद पूरे ग्रामीण भारत की कथा-व्यथा कह देते हैं, उसी तरह त्रिलोचन ने प्रगतिशील कविता में भारत के ग्रामीण जनता का प्रतिनिधित्व किया है।

आम जनता को कविता तब अपनी लगती है जब उसमें उनकी कथा-व्यथा का ब्योरा दिया गया हो। त्रिलोचन अपनी कविताओं को तराशते हैं लेकिन उसका अपना अनगढ़पन बनाए रखते हैं ताकि वह चमकीली, आकर्षक लगने के बहाने फुहड़ न लगे। सामान्य चीजों को सामान्य रुप में प्रकट करना त्रिलोचन की कविता की विशेषता रही है। हर कवि अपने काव्यात्मक चमत्कारों के द्वारा कृति को लाक्षणिक या असामान्य बनाए रखने का प्रयास करता है लेकिन त्रिलोचन इस मोह से ग्रस्त नहीं होते। यह पाठक से सीधा संप्रेषण स्थापित करने की प्रक्रिया है। कवि कहता है-

कभी पूछ कर देखो मुझसे
मैं कहां हूँ
मैं तुम्हारे खेत में तुम्हारे साथ रहता हूँ
मैं तुमसे, तुम्हीं से बात किया करता हूँ
और यह बात मेरी कविता है।

कवि अपने चारों ओर जब दृष्टि ड़ालता है तो उसे नजर आता है कि विपदाओं से घिरा व्यक्ति अपने आप को नष्ट करने के लिए आमादा है, उसमें तो इतना मानसिक बल है कि विरोधी स्थितियों से जुझकर स्वयं को नियंत्रित रखे लेकिन बाह्य समाज में ऐसे अनेकानेक लोग हैं जो धीरज खो चुके हैं। उनमें कविता के द्वारा अपनी निर्भीकता से संबल देने का काम त्रिलोचन करते हैं, वे बड़े स्पष्ट रुप से अपने विचारों को प्रकट करते हैं और कहते है-

चढ़ना गिरना नहीं रुकेगा भय से भेड़े
तो भेड़े किवाड़ कोई भी अपने घर का
हाथ बढ़ाता हूँ आखिर क्यों हो संकोचन
यही हमारे स्वर हैं, स्नेहाधीन-त्रिलोचन।

त्रिलोचन ने सामजिक और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण करते हुए संयम का परिचय दिया है। समस्याओं की तीव्रता, भयावहता को जानते हुए भी खोते हुए सहज कोमल रागात्मक आवेग तथा अपने भारतीय परिवेश से विमुख होने की त्रासदी और उत्पीड़न को वे अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते है, तब उनकी आत्म-सजगता वैयक्तिक न रहकर सामूहिक बन जाती है, उसका सामाजिकीकरण होता है।

डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते है-''त्रिलोचन शास्त्री मूलत: किसान संवेदना के कवि हैं। खुला हुआ पारदर्शी व्यक्तित्व है उनका। कहीं भी बनावट नहीं है। यह उनके व्यक्तित्व का आकर्षक पहलू है। उनके व्यक्तित्व में कोई गाँठ नहीं है, पेंच नहीं है। अवध के किसान का प्रतिनिधित्व करते हैं वे। पर दु:ख कातरता है। दूसरों को साथ लेकर चलते हैं।''

अपनी कविताओं के द्वारा 'अट्टहास कर' का संदेश देनेवाले त्रिलोचन को जीवन में मुक्त विचरण करने का कभी अवसर ही नहीं मिला। जब साथ चाहिए था तब किसी ने सहारा नहीं दिया, लेकिन अपने जीवनानुभवों से ही दृढ होते हुए उन्होंने जाना कि भावनाओं को समझना, समवेदना प्रकट करना कितना महत्वपूर्ण है? इसलिए वे औरों को हाथ देने के लिए आगे बढ़ते हैं। उनकी इस जीवन दृष्टि का उल्लेख करते हुए शिवप्रसाद सिंह लिखते है ''त्रिलोचन ने दुत्कारों, तटस्थताओं, उपेक्षाओं, अपमानों, प्रवंचनाओं में जीना सीखा है। शुरू-शुरू में ये बातें उन्हें तोड़ती रही होंगी, उन्हे वे कभी उदास मुस्कुराहट, कभी कृत्रिम ठहाकों से टालते रहे होंगे, आज ये ही बातें बदली हुई परिस्थितियों में बहुत कुछ बेमानी लगती है। पर इसका एक गहरा अर्थ भी कभी रहा है इसे जानने की बहुत कम कोशिश हुई है। त्रिलोचन लिखते हैं -

मैंने साथ तुम्हारा जब छोड़ा था,
तब मैं हारा-थका नहीं था- लेकिन मेरा
तन भूखा था मन भूखा था तुमने टेरा।
उत्तर मैंने दिया नहीं तुमको घोड़ा था
तेज तुम्हारा तुम्हे ले उड़ा, मैं पैदल था।

त्रिलोचन को शब्दों के प्रति काफी लगाव है। शब्द उनके लिए प्राण है और वे अपनी कविताओं में उसे प्राणवान बनाने का प्रयास करते हैं। त्रिलोचन शास्त्री को यदि शब्द शास्त्री कहा जाए तो वह अत्युक्ति नहीं होगी।

डॉ. कान्तिकुमार जैन लिखते हैं -'' त्रिलोचन जी को कोई शब्द न तो छोटा लगता है न ही निस्सार या मूल्यहीन। शब्द वास्तव में त्रिलोचन जी के लिए उस समाज की जीवित सत्ता है जिसमें वह प्रचलित है। शब्द उनके लिए जन है। जैसे कोई जन उनके लिए न तो हेय है, न तुच्छ था, अपांक्तेय वैसे ही वे शब्द के माध्यम से जन का - जीवित स्पंदित जन का दिक्काल में साक्षात्कार करते हैं, उसके जीवनानुभव बंटाते हैं और सुख दु:ख में उसके साथ हो जाते हैं।''

वे शब्द ही है जो हमें मोहित करते हैं जिसकी भूल-भुलैया में घिरकर कभी-कभी हम विस्मृत हो जाया करते हैं। मगर क्या एक संवेदनशील कवि हृदय का व्यक्ति केवल शब्दों के जंजाल में फँस सकता है? बिलकुल नहीं। कभी-कभी बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें शब्दों के माध्यम से प्रकट नहीं किया जा सकता, महसूस किया जाता है, इस तरह के रचना-विधान के कई खतरे भी हैं लेकिन उसे स्वीकार करते हुए त्रिलोचन रचनाकर्म में निरत है। मानबहादुर सिंह का मानना है - ''त्रिलोचन की अद्वितीयता इसमें है कि वे अपनी संवेदना सम्प्रेषित नहीं करते। अपनी संवेदना के समस्त कारकों का यथार्थपरक छायांकन करते हैं। यह छायांकन भी बहुत ठंडे-ठंडे तटस्थ भाव से ही करते हैं। वे मूलत: वस्तुवादी कवि हैं। वस्तुतंत्र से जो स्वाद वे रचते हैं, हो सकता है उसे हम न पाएँ। इसलिए उनको पढ़ या सुनकर हम झूम नहीं सकते। उन तक पहुँचने के लिए धैर्य की जरूरत है। त्रिलोचन कहीं भी पाठक या श्रोता की अपनी रचना से मदद नहीं करते कि वह उससे कैसा स्वाद या कैसी संवेदना ग्रहण करे।''

शब्दों की दुनिया में विचरण करने के लिए मनुष्य में रागात्मक अन्विति का होना अत्यंत आवश्यक है। मानव के जीवन के साथ जुड़ा हुआ एक रागात्मक तत्व है प्रेम। यह एक कोमल संवेदना है जो आदमी को रीझाती है, संबल प्रदान करती है जिससे किसी को विरक्ति नहीं हो सकती। त्रिलोचन के काव्य में प्रेम निरुपण के अंतर्गत दाम्पत्य प्रेम से जुड़े हुए कई अवसर दिखायी देते हैं। वे अपनी सहधर्मिणी के साथ काफी घनिष्ट रुप से जुड़े हैं। इस अर्धांगिनी ने बखूबी अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया इसलिए बैल की तरह रात-दिन काम करते हुए आरर डाल नौकरी की उलझनों में भी नागार्जुन की 'सिंदूर तिलकित भाल' की तरह उन्हें अपनी सहधर्मिणी की याद आती है क्योंकि 'मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्यार तुम्हारा' - पत्नी के प्रति उनके मन में आदर भाव हैं।

मेरी दुर्बलता को हर कर
नयी शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कार्य क्षेत्र में बढूँ संभल कर
तब से मैं अविरत बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा।

त्रिलोचन की काव्य चेतना जितनी सरल प्रतीत होती है, उतनी ही वह गहन है। डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते है - ''त्रिलोचन की कविताएँ जहाँ सहज है वहाँ संश्लिष्ट भी है, उनमें सादगी भी है तो अर्थ छवियों की जटिलताएँ भी है। अगर हम मानदण्डों पर जिड़ (द्रण) रहेंगे तो मूल्यांकन के अपर्याप्त हो सकते हैं। कभी-कभी रचनाशीलता आलोचना से बड़ी हो जाती है। रचनाशीलता कभी बने बनाये साँचे में नहीं होती। हमें विवेकपूर्वक रचनाशीलता के तेवर को ध्यान में रखकर मूल्यांकन करना होगा।''

तत्कालीन समाज के दिग्गज आलोचकों ने त्रिलोचन के काव्य को उपेक्षा की नजरों से देखा। इसलिए उन्होंने 'प्रगतिवादी कवियों की नयी लिस्ट निकली है' शीर्षक से एक कविता लिखी। उनके काव्य को हाशिए पर रखनेवाले लोगों ने या तो सॉनेट या शिल्पगत प्रयोग की बात की या सरलता-सपाटता पर जोर दिया। परंतु यह भी विचारणीय है कि अपने समग्र काव्य के द्वारा त्रिलोचन ने काव्य क्षेत्र को जो वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान की वह अतुलनीय है। प्रारंभिक दौर में उनके काव्य को ठीक तरह से जाना, समझा, परखा और पहचाना नहीं गया परंतु उसकी परवाह न करते हुए भी उन्होंने अपने ढंग से काव्य कर्म को आगे बढाया। कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व में कहीं भी बनावटीपन नजर नहीं आता। यही वह बिंदु है जहाँ त्रिलोचन अन्य कवियों से अलग जान पड़ते हैं। आज की जीवन प्रणाली में जहाँ इतनी विक्षिप्तता भरी पड़ी है, वहाँ त्रिलोचन कही भी किसी भी प्रकार की उत्कंठा के बिना जीवन यापन को परिचालित करते हुए दिखायी देते हैं साथ ही तटस्थ रूप से निर्भीक होकर भविष्य के बारे में विभिन्न संभावनाओं से निरपेक्ष रहकर काव्य-सर्जना में अनवरत उदयत होते नजर आते हैं। उनके काव्य में वस्तु ही रुप और रुप ही वस्तु को संयोजित करके गतिशील बनाता है। यही वह चरण है जहाँ काव्य निखरता है, आवश्यकता है कि हम उस निखार को एक सच्चे पाठक के रुप में महसूस करें। त्रिलोचन विभिन्न काव्यरूपों में सॉनेट के एक सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। त्रिलोचन और सॉनेट एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं जैसा कि मैंने पहले संकेत किया है कि वे सहजता और सरलता के कवि है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी सुगम हैं।

त्रिलोचन की काव्यानुभूति और भाषिक संरचना को मैंने विभिन्न-अध्यायों में विस्तार से विवेचित एवं विश्लेषित किया है। शोध-कार्य को सुविधा की दृष्टि से सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

रचनाकार की काव्य दृष्टि को समझने के लिए उसके प्रारंभिक जीवनानुभवों को जानना आवश्यक हो जाता है। अतएव प्रथम अध्याय 'त्रिलोचन का जीवन-वृत्त एवं सर्जन' के अंतर्गत मैंने त्रिलोचन का जीवन-वृत्त, स्वभावगत संस्कार, अध्ययन- अध्यापन, पत्रकारिता, काव्य-संस्कार एवं प्रेरणा आदि का विवेचन प्रस्तुत किया है।

शोध के महत्वपूर्ण बिदुओं की तलाश रचना के माध्यम से की जाती है अतएव मैंने द्वितीय अध्याय में त्रिलोचन के रचना-संसार पर एक विहंगम दृष्टि ड़ाली है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है 'कविता का चौथा एवं पाँचवा दशक और त्रिलोचन'। इसके अंतर्गत कविता के चौथे और पाँचवे दशक की राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और तार-सप्तक जैसे ऐतिहासिक प्रसंगों की महत्ता को रेखांकित किया गया है।

'त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि' चौथे अध्याय में मार्क्सवादी सौंदर्य-शास्त्र एवं प्रगतिवाद की सैद्धांतिक चर्चा की गयी है। त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि का विवेचन एवं विश्लेषण विभिन्न प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के अंतर्गत उनकी कविताओं के माध्यम से किया गया है।

पाँचवे अध्याय में त्रिलोचन की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि को समझने के लिए समाज, संस्कृति और साहित्य के स्वरुप और अन्त: सबंधों की चर्चा की गयी है। तत्पश्चात उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि की परख कविताओं के द्वारा की गयी है।

'त्रिलोचन की प्रेम संबंधी दृष्टि' छठे अध्याय में सर्वप्रथम प्रेम के स्वरुप की चर्चा की गयी है। इसके पश्चात् उनकी कविताओं में प्रेम संबंधी दृष्टि की विवेचना की गयी है।

काव्यानुभूति अभिव्यक्ति के बिना अधूरी होती है। अतएव सातवें अध्याय में त्रिलोचन की शिल्प संबंधी दृष्टि एवं भाषिक संरचना को विभिन्न दृष्टियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

प्रस्तुत शोध के अंत में त्रिलोचन के काव्य की उपलब्धियों और सीमाओं का विवेचन और विश्लेषण किया गया है।

शोध कार्य के इस दुर्गम पथ पर मुझे डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र से बहुत संबल मिला। मैं इनके आत्मीय स्वभाव एवं सहयोग के बल पर ही इस कार्य को अंजाम दे सकी। शोध निर्देशक के रुप में प्रत्येक अध्याय का संशोधन, परिमार्जन और परिवर्धन इन्होंने बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से किया। मेरी मूक शब्दावली ही इनके प्रति कृतज्ञता के भाव को संजोए हुए है।

श्रीमती पार्वतीबाई चौगुले महाविद्यालय में अध्यापन क्षेत्र से जुड़े रहने के कारण ही शोध-कार्य को गंभीरतापूर्वक कर पायी अन्यथा यह संभव न होता। जिनके कारण मेरी अपनी कोई अस्मिता है उन प्राचार्य श्री. व्ही. आर. शिरगुरकरजी के प्रति मैं किन शब्दों में धन्यवाद ज्ञापित करूँ? कुछ ऋण ऐसे होते हैं जिनसे मुक्त होना संभव नहीं होता।

इसी तरह भाषा एवं साहित्य संकाय के भूतपूर्व अधिष्ठाता प्रो. अशोक जोशी, वर्तमान अधिष्ठाता प्रो. गोमिश, हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. बालकृष्ण शर्मा 'रोहिताश्व', डॉ इशरत खान, श्रीमती वृषाली मांद्रेकर, डॉ. रवीन्द्र कात्यायन आदि के द्वारा समय-समय पर मिले स्नेह व सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

डॉ. मंजुला देसाई, डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे आदि गुरुजनों के प्रति

भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ जिनके द्वारा विद्यार्थी जीवन में प्राप्त मार्ग-दर्शन का इस शोध कार्य में उपयोग कर सकी। अंग्रेजी किताबो के संबंध में अनेक जानकारिया देने के साथ मार्गदर्शन देने हेतु चौगुले महाविद्यालय की अंग्रेजी की अध्यापिका श्रीमती राजश्री देसाई की आभारी हूँ। अनेक आपदाओ में जब कभी हारी थकी हूँ तब अत्याधिक रूप से मानसिक संबल प्रदान करने के कारण मैं प्राध्यापिका श्रीमती कविता बोरकर के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। चौगुले महाद्यिालय में रहते यह मेरी दो आधारशिला जिसे मैं कभी विस्मृत नही कर सकती। इसके अतिरिक्त शासकीय महाविद्यालय, सांखलीम में हिन्दी विभागाध्यक्षा के रुप में कार्यरत श्रीमती डॉ. शुभदा जोशी एवं चौगुले महाविद्यालय में इतिहास विषय की विभागाध्यक्षा श्रीमती फिलोमिना अँथनी के द्वारा समय-समय पर प्राप्त प्रेरणा के कारण भी उनके प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। समय समय पर मदद करने के कारण मैं मेरी सहेली डॉ. रमिता गुरव तथा बहन वसुधा (ताई) के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

चौगुले महाविद्यालय के हिन्दी विभाग प्रमुख डॉ. ओमप्रकाश त्रिपाठी, सेवा निवृत वरिष्ठ हिन्दी अध्यापक डॉ. आदित्यप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. सी. एस. तिवारी के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ। इस शोध कार्य में पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. पी. बी. कुन्नूर तथा उनके सहयोगियों की भी मैं आभारी हूँ। विभिन्न औपचारिक दस्तावेजों के संबंध में जानकारी देने के साथ-साथ उसका निर्वाह करने के संबंध में अत्याधिक रुप से मदद करने के कारण मैं विभाग की कर्मचारी श्रीमती प्रार्थना नाईक के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही टंकण क्रिया सम्पन्न करने के लिए श्रीमती गौरी एवं श्री. मनमोहन केलकर को धन्यवाद देती हूँ।

मैं माता-पिता के आशीर्वाद से ही यह कठिन कार्य पूर्ण कर सकी जिन्हें मेरा शत् शत् नमन्।

त्रिलोचन की काव्यदृष्टि

अनुक्रम

अध्याय — पुरोवाक्

1. त्रिलोचन का जीवन-वृत्त एवं सर्जन 1-27
   - 1.1 प्रारंभिक जीवन।
   - 1.2. स्वभावगत संस्कार।
   - 1.3 अध्ययन एवं अध्यापन।
   - 1.4 काव्य - संस्कार एवं प्रेरणा।
   - 1.5 पत्रकारिता।

2. त्रिलोचन का रचना संसार: विहंगम दृष्टि 28-103

   (2.1) धरती -1945 (2.2) गुलाब और बुलबुल-1956 (2.3) दिगन्त-1957 (2.4) ताप के ताए हुए दिन-1980 (2.5) शब्द-1980 (2.6) उस जनपद का कवि हूँ-1981 (2.7) अरघान -1983 (2.8) तुम्हें सौंपता हूँ - 1985 (2.9) फूल नाम है एक-1986 (2.10) अनकहनी भी कुछ कहनी है - 1986 (2.11) सबका अपना आकाश-1987 (2.12) चैती-1989 (2.13)अमोला-1990 (2.14) देशकाल-1986 (2.15) मेरा घर (2002)

3. कविता का चौथा एवं पाँचवा दशक और त्रिलोचन 104-153
   - 3.1 राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य।
   - 3.2 राजनीतिक परिदृश्य।
   - 3.3 साहित्यिक परिदृश्य।
   - 3.4 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना।
   - 3.5 साहित्य की परिवर्तित दृष्टि और त्रिलोचन का काव्य।

4 त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि 154-190
   - 4.1 मार्क्सवादी विचारधारा एवं सौंदर्य- शास्त्र।
   - 4.2 प्रगतिवादी विचारधारा।
   - 4.3 वस्तु और रुप का अन्त:संबंध।
   - 4.4 त्रिलोचन की काव्यलोकाभिमुखता।

5. त्रिलोचन की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि 191-247

5.1 समाज साहित्य एवं संस्कृति - स्वरुपगत विवेचन।

5.2 साहित्य और समाज।

5.3 त्रिलोचन की सामाजिक दृष्टि।

5.4 त्रिलोचन की सांस्कृतिक दृष्टि।

6. त्रिलोचन की प्रेम संबंधी दृष्टि 248-286

6.1 प्रेम का स्वरुपगत विवेचन।

6.2 त्रिलोचन के काव्य में प्रकृति प्रेम।

6.3 त्रिलोचन के काव्य में वैयक्तिक प्रेम।

6.4 त्रिलोचन के काव्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रेम।

7. त्रिलोचन की शिल्प संबंधी दृष्टि 287-340

7.1 शिल्प की अवधारणा एवं स्वरुप।

7.2 त्रिलोचन की काव्य भाषा।

7.3 त्रिलोचन के काव्य के विविध रुप।

7.4 त्रिलोचन की काव्य शैली।

उपलब्धियां एवं सीमाएं। 341-346

****

प्रथम अध्याय
त्रिलोचन जीवन वृत्त एवं सर्जन

रचनाकार की रचना प्रक्रिया में उसका वैयक्तिक एवं परिवेशगत जीवन अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है। रचना को हम उससे अलग करके नहीं देख सकते क्योंकि उसमें उसके जीवनानुभव गहरी संवेदना के साथ जुड़े होते हैं। यह जुड़ाव ही रचनाकार में जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण का निर्माण करता है जो कि समय के साथ-साथ परिवर्तित भी होता रहता है। इस संदर्भ में कुछ कहने के पूर्व त्रिलोचन के जीवन परिचय को जान लेना अधिक उचित होगा।

1.1 प्रारंभिक जीवन

त्रिलोचन का जन्म अधिक भाद्रपद-शुक्ल तृतीया 20 अगस्त 1917 को चिरानीपट्‌टी सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनकी माँ मूलतः ग्रामीण परिवेश की थी। वे अपनी माँ की पाँचवी संतान थे जिनकी तीन बहनें और तीन भाई थे। दो बहनें उनसे बड़ी और एक कनिष्ठ थी परंतु कुछ समय के उपरांत तीनों बहनों का स्वर्गवास

हो गया। त्रिलोचन शास्त्री के पिता का नाम जगरदेव सिंह था। लोग उनको 'वैरागी बाबू' के नाम से बुलाते थे। क्योंकि उनके दाढ़ी-बाल काफी बड़े-बड़े थे। वे राम के बड़े भक्त और शरीर से काफी हट्टे-कट्टे थे। अपने पिता के बाह्य व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए त्रिलोचन ने लिखा है-

हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर वह पिता तुम्हारा,
एक चुनौती था मनुष्य की उँचाई के लिए।[1]

वास्तव में त्रिलोचन शास्त्री ठाकुर घराने के हैं जिनके पूर्वज प्राचीन काल में किसी लड़ाई में पराजित होकर सुल्तानपुर जिले के चिरानीपट्टी गाँव में आए और इस भूभाग पर विजय प्राप्त करके वहीं रहने लगे।

त्रिलोचन शास्त्री के पिता काफी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे, इसलिए उन्होंने बाल्यावस्था में ही अपने बेटे को किसी स्वामीजी की सेवा में लगा दिया। वे उनके साथ आसाम, पंजाब आदि जगहों पर कई सालों तक घुमते रहे। फिर कुछ काल के उपरांत वे वापस अपने गाँव आए। त्रिलोचन की माँ मूल रूप से देहाती महिला थी, उनका जीवन काफी कष्टमय था। संघर्ष ही उनकी पूंजी थी जिसके कारण स्वभाव एवं व्यवहार में भी कट्टरपन आ गया था। वे शारीरिक शक्ति को विशेष महत्व देती थी इसलिए अपने पुत्र को खाना ठीक तरह से न खाने पर डाँट भी देती थी। वह त्रिलोचन को बहुत रोटियाँ खिलाती थी और न खाने पर दंड के रूप में पेड़ पर उल्टा टांग देने की सजा सुनाती थी। शायद यहीं कारण रहा हो कि इस प्रकार के संस्कारों के कारण ही शारीरिक बल, दंड पर वे ज्यादा जोर देते रहे। उन्हें कभी सर्दी-जुकाम, खाँसी हुई हो ऐसा नहीं सुना गया।

त्रिलोचन का विवाह परंपरानुसार बाल्यकाल में ही हो गया था। उनकी पत्नी का नाम जयमूर्ति था, जोकि उनसे उम्र में पाँच-छ वर्ष बड़ी थी। उनकी पत्नी सरल स्वभाव की ग्रामीण महिला थी। त्रिलोचन के मन में अपनी पत्नी के प्रति बहुत सम्मान था। उनके दाम्पत्य जीवन के संबंध में शमशेरजी कहते हैं-

''भई, वह घबराते किसी से नहीं, सिवाय सच्ची बात अपनी शास्त्राणीजी के। और दरअसल वही उनको ठीक ठीक समझती भी हैं।''[2]

त्रिलोचन अपनी पत्नी को प्रेरणा-स्त्रोत मानते हैं, इसलिए वे कहते हैं-

मुझे जगत जीवन का प्रेमी,
बना रहा है प्यार तुम्हारा।[3]

जयमूर्तिजी अपने पति के काव्य-कर्म से असंतुष्ट रहती थी। फिर भी त्रिलोचन उन्हें किसी न किसी तरह से मना लेते थे। काव्य-कर्म के संबंध में जयमूर्तिजी के क्रोध के बारे में कहते हुए शमशेरजी लिखते हैं-

''त्रिलोचन के दूसरे पुत्र अमित के बचपन की बात है। एक दिन त्रिलोचन जी घर में बैठकर कविता या ऐसा कुछ लिख रहे थे। अमित पत्रिकाओं के ढेर से एक पत्रिका लेना चाहता था और खींच लेने की कोशिश कर रहा था। त्रिलोचनजी ने उसको डाँटा, मना लिया। अमित अप्रसन्न हुआ और दादा से बदला लेना चाहा, उसको मालूम था कि त्रिलोचनजी के कविता लिखने से माँ चिढ़ती थी। अमित ने एकदम माँ से जो रसोईघर में थी, पुकारकर कहा, 'माँ, दादा पढ़त नहीं, कविता लिखत हैं।' त्रिलोचन पानी-पानी हो गए।''[4]

प्राचीन काल में ठाकुर घरानों में हुक्का पीने का प्रचलन अधिक था जिसे कुछ लोग अपने स्वाभिमान से भी जोड़ते थे। क्षत्रिय कुल की होने के कारण जयमूर्ति भी इस लत की शिकार हो गई थी, यहीं कारण है कि उन्हें बिदाई में हुक्का और तंबाकू भी दिया गया था। आगे जाकर हुक्का पीना तो छूट गया लेकिन वे बीड़ी-सिगरेट पीने लगी। त्रिलोचन के बडे बेटे का नाम जयप्रकाश है। काम की तलाश में और अपनी घुमक्कड़ी के कारण शास्त्रीजी कई सालों तक अपने परिवार से अलग रहें। 1943 के आस-पास काशी में 'हंस' पत्रिका के साथ जुडने के उपरांत वे पत्नी को काशी ले आए। उनका दूसरा बेटा अमित 1953 के आस-पास इलाहाबाद में पैदा हुआ। त्रिलोचन अपने पारिवारिक जीवन में पूरी तरह से संतुष्ट रहें। जबकि उनमें और उनकी पत्नी में किसी-किसी बात को लेकर विरोध भी था। उनकी पत्नी ने हमेशा अपने पति को कहानी लेखन, पत्रकारिता के लिए प्रोत्साहन दिया। लेकिन कविता-लेखन की ओर देखने का दृष्टिकोण संकुचित होने के कारण त्रिलोचन को पत्नी के क्रोध को सहन करना पड़ता था। उनकी पत्नी का मानना था कि कविता करना और लिखना समय की बरबादी है। कभी-कभी त्रिलोचन भी अपनी पत्नी से अनपढ़ होने के कारण चिढ़ जाते थे। लेकिन साथ ही उन्हें यह भी पता था कि भले ही वह अनपढ़ क्यों न हो लेकिन वह उनके लिए सुयोग्य है। आर्थिक अभाव और तकलीफों के बावजूद उनका जीवन सुखी था। हर गृहिणी की तरह जयमूर्तिजी की भी अपने जीवन में कुछ अभिलाषाएँ थी लेकिन त्रिलोचन अपने अर्थाभाव के कारण उन अभिलाषाओं को पूरा नहीं कर पाए। अत: त्रिलोचन अपनी कविता के माध्यम से डाँवा-डोल हो रहे ग्राहस्थ्य जीवन को चित्रित करते हैं-

> विदा किया तब कहा कि यह लाना वह लाना,
> ग्वैंड आया और हाथ दोनों है खाली,
> सजी खूब थी हाट, मगर मुश्किल था पाना
> पैसों बिना।[5]

राजू एम.फिलीप त्रिलोचन और उनकी पत्नी के दृढ संबंधों के बारे में लिखते हैं-

''पत्नी को त्रिलोचन कितना मानते थे, इस बात को समझने के लिए 7 अप्रैल 1953 का एक संदर्भ पर्याप्त होगा। अपनी दैनंदिनी में उन्होंने लिखा हैं, विष्णुचंद्र शर्मा से तय पाया था कि मैं 7 तक सबेरे उनके यहाँ पहुँच जाऊँ वहीं भोजन करूँ और जब सुधाकर पांड्ये आ जाएँ तो उनके साथ दर्जी के यहाँ जाऊँ। पत्नी को पसंद न था कि मैं इतनी जल्दी यहाँ जाऊँ और वहाँ खाना खाऊँ। उनके रोकने से मैं 12 तक भवन ही रहा। 'नवगीत' से लेख और कहानियाँ देखता रहा। खा-पीकर 12 तक चला।''[6]

संबंधों का निर्वाह करते समय पुरूषत्व-अहंकार की अपेक्षा त्रिलोचन में सामंजस्य अधिक रहा।

1988 में जयमूर्तिजी का देहांत हो गया। 60 साल के वैवाहिक जीवन के बाद पत्नी के गुजर जाने के कारण त्रिलोचनजी के हृदय को अत्याधिक आघात पहुँचा।

त्रिलोचन की पद्मा सचदेव से हुई बातचीत में पत्नी की मृत्यु का स्मरण होते ही त्रिलोचन बताने लगते हैं-

''उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। ग्लोज, ऑक्सीजन दिया जाता रहा। उन्हें जाने का पता चल गया था। एक दिन कहने लगीं मुझे छाती में दर्द हो रहा है। मुझे उँचा उठाओ। मैंने उन्हें बच्चे की तरह गोद में उठा लिया। देखते ही देखते खेल खत्म हो गया।''[7]

त्रिलोचन का मानना है कि उनके जीवन पर निम्नलिखित शेर बहुत अच्छी तरह से लागू हो जाता है :-

मेरी जिंदगी एक मुसलसल सफर है
जो मंजिल पै पहुँचा तो मंजिल बढ़ा दी।[8]

1·2 स्वभावगत संस्कार
(मानवीय पहलू)

ग्रामीण परिवेश में रचने-बसने के कारण त्रिलोचन के खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा और आचरण में बचपन से ही एक प्रकार की सादगी विद्यमान है जोकि आज भी दिखलाई देती है। ढीला-ढाला लंबा कुरता और पैजामा, लंबी सफेद दाढ़ी उनके छोटे कद और स्वस्थ शरीर पर जंचती है।

चीर भरा पाजामा
लट-लटकर गलने से
छेदोवाला कुर्ता, रूखे बाल उपेक्षित
दाढी-मूँछ , सफाई, कुछ भी नहीं...।[9]

वेश-भूषा के साथ-साथ उनका खान-पान भी साधारण ढंग का है। सामान्य गृहस्थ होने के कारण वे खान-पान में काफी सजग रहते हैं। भोजन के समय अन्न को बर्बाद करना या छोड़ना उन्हें पसंद नहीं। भोजन के संबंध में उनकी कुछ विशेष आदतें इस प्रकार की है कि वे साहित्य जगत में मशहूर हैं। इनके भोजन करने का ढंग विचित्र है, इस संबंध में काशीनाथ सिंह ने कहा है-

''सबसे पहले वे पूरी रोटियाँ खाते हैं और दाल पीकर फिर चटनी खा लेते हैं। इस प्रकार से एक-एक करके सारे व्यंजनों को खत्म करते हैं। वे हमेशा उबला हुआ पानी पीते हैं । उनका स्वभाव है कि या तो वे घड़ा भर पानी पीते हैं या कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वे दिन-भर बिलकुल ही पानी नहीं पीते।''[10]

शास्त्रीजी में अनगिनत विशेषताएँ हैं। पहले पहल वे खुलते नहीं है, लेकिन जान-पहचान हो जाने के बाद वे किंतु-परंतु को बीच में नहीं आने देते। रेणु 'अपने-अपने त्रिलोचन' लेख में लिखते हैं कि वे पक्के देहाती है, साथ ही इसे स्पष्ट करते हुए कहते है कि बुफे से कभी उनका पेट नहीं भरा। त्रिलोचन को साफ चमचमाते ग्लास में पानी पीना अच्छा लगता है। वे कम से कम तीन ग्लास और अधिक से अधिक छः ग्लास पानी पीते हैं। शरीर बल पर ज्यादा जोर देनेवाले त्रिलोचन दाँतों की सफाई को लेकर ज्यादा जागरूक रहते हैं। सडक पर वे इतनी तीव्र गति से चलते हैं मानो कोई सैनिक मोर्चे पर युद्ध करने के लिए जा रहा हो। उनको पान खाने का शौक है। यह लत उन्हें बनारस में लगी थी जोकि आज तक विद्यमान है। राजेंद्र आहुति का कथन है- ''त्रिलोचन कहीं भी पान खाते समय बनारस को जरुर याद करते हैं।''[11]

त्रिलोचन एक ओर जहाँ खुश-मिजाज, हँसमुख लगते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने संकोची स्वभाव के कारण अपने जीवन की समस्याओं के बारे में औरों से बात करते समय हिचकिचाते भी हैं। इस संबंध में वे स्वयं लिखते हैं -

अपने संकोच को कहूँ तो कहूँ भी क्या,
तुमने पूछा भी हाल मुझसे बताया न गया।[12]

त्रिलोचन अपने मूल्यों, सिद्धांतों के प्रति काफी निष्ठावान रहे हैं, दुनियादारी के बंधनों में जकड़कर अपने व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थी की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन में सस्ते समझौते नहीं किए। उनका कहना है-

"उँची कुर्सी मिलने के लिए जो शर्ते पूरी करनी चाहिए, उन्हें मैं पूरी नहीं कर पाया। जाहिर है कि मुझे जमीन पर ही बैठना और सोना पड़ा। ऐसी हालत में जमीन पर ही चलने-फिरनेवाले लोग अपने जान पड़े। उनके प्रति मेरे मन में जो अपनाव आया, उसी से मेरी कविता बनती है।"(13)

त्रिलोचन शास्त्री स्वभाव से संकोची तो थे ही साथ-साथ कुछ हद तक शर्मीले भी थे। इसी कारणवश उनकी भौजी ने उनका नाम दुलहिन रख दिया था। वे लिखते हैं-

मैं छोटा था।
झेंपू था। मिलने-जुलने में सिकुड़ा-सिकुड़ा
रहता था। समान वयवालों से मोटा था,
पर फुर्ती थी। पीछा करने पर उड़ा-उड़ा
यहाँ-वहाँ फिरता था। कभी पकड़ में आता नहीं।(14)

अपने इस स्वभाव के कारण वे नितांत व्यक्तिगत अनुभूतियों को व्यक्त नहीं करते। परंतु साहित्य के अध्येता का यह दायित्व है कि जो कुछ भी अनकहा है, उसे अनुभूत करें। इस दृष्टि से त्रिलोचन के विचारों को, उनकी भावनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से उनकी कविताओं के माध्यम से जाना जा सकता है। ऐसे त्रिलोचन अपने जीवन के दु:खों को तो निरंतर रुप से सहते रहे हैं परंतु यदि उन्हें कोई दु:खी व्यक्ति दिखायी दिया तो वे उस व्यक्ति के दु:ख से द्रवित हो जाते हैं। इसलिए वे स्वयं कहते हैं-

खूब होता जो मेरा दर्द देख पाते वे
क्या करू मुझ से तमाशा यह
दिखाया न गया।(15)

अभावग्रस्त जीवन के बावजूद उनके मन में जिजीविषा, प्रत्याशा है, जो उन्हें निरंतर रूप से संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करती है। इसलिए अभावों का भी वे सहर्ष स्वागत करते हैं-

आभारी हूँ मैं पथ के आघातों का,
मिट्टी जिनसे वज्र हुई उन उत्पातों का।(16)

जीवन उन्हें जिस रुप में मिला, उसे वे उसी रुप में सहर्ष स्वीकार भी करते हैं-

राह चलते देखता हूँ हो गया पुरा हिसाब
खो चुका मैं अपना खोना और पाना पा चुका(17)

त्रिलोचन इस मत से सहमत हैं कि मिट्टी का तन तो मिट्टी में मिल जाता है लेकिन अपने जीवन काल के मीठे बोल शेष रह जाते हैं। इसलिए त्रिलोचन

मनुष्य की वाणी को ज्यादा महत्व देते हैं। उनके अनुसार, जिसके पास मीठे बोल हैं, वह संसार का सबसे धनवान इंसान है।

इधर शांति की प्यास जी में जगी है अभी
देखते है समर कैसे कैसे ।(18)

त्रिलोचन के पिता का व्यक्तित्व इसी प्रकार का था। उनके पिता स्वार्थी और लोलुप नहीं थे, वे किसी को धोखा देना नहीं जानते थे। पिता का यह गुण बेटे में भी है। त्रिलोचन का मानना है कि भले ही जीवन कठिनाईयों से भरा क्यों न हो, परंतु व्यक्ति को निरंतर रुप से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस प्रयत्न के बल पर कभी न कभी वह अपने गंतव्य को प्राप्त कर सकता है।

शास्त्रीजी के बारे में कहा जाता है कि प्राय: उन्हें क्रोध नहीं आता। लेकिन उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करने के उपरांत यह ज्ञात होता है कि उनके संबंध में किसी निष्कर्ष तक पहुँचना मुश्किल है क्योंकि उनके व्यक्तित्व में विविधता है।

इस संबंध में एक प्रसंग द्रष्टव्य है-

''एक बार उनके यहाँ एक ज्योतिषी आए। शास्त्रीजी को देखने के बाद उन्होंने कहा था- आप तो बड़े बहादुर और शक्तिवान पुरुष है । आज से 14 वर्ष पहले अपने गांव में अकेले लाठी लेकर अनेक लोगों का सामना किया था। शास्त्रीजी ने हँसते हुए कहा- यह तो पुरानी बातें हैं। आगे का कुछ बताइए।''(19)

अकसर आर्थिक अभावों को झेलते-झेलते व्यक्ति अर्थ के महत्व को जानकर स्वार्थी बन जाता है, व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जाता है लेकिन त्रिलोचन इस मामलें में मानो अपवाद है। न वे दुनियादार थे, न ही व्यावहारिकता की तथाकथित कसौटी पर खरे उतरने वाले। इसलिए पैसों को जमा करके रखना, पूँजी को बटोरना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। गाँव आनेपर वापसी के लिए उनके पास पैसे नहीं रहते थे। जब पत्नी से पैसे मांगते तो पत्नी कहती कि लोग बाहर से घर भेजते हैं, तुम्हें घर से बाहर ले जाते शर्म नहीं आती? माँ के प्रति आत्मीयता होने के बावजूद अर्थाभाव के कारण वे उनकी आँखों का इलाज नहीं करा पाए। इन वजहों से उद्भुत तकलीफों को त्रिलोचन अंदर ही अंदर बरदाश्त कर लेते थे लेकिन उसे व्यक्त नहीं करते थे। किसी बारात में बेटे को नहीं ले जाते थे कारण यह बताते थे कि गर्मी के कारण उसे तकलीफ होगी लेकिन वास्तविक कारण यह था कि उसके पास जूते नहीं थे। वे काफी दूर पैदल चलकर ट्यूशन पढाते थे, रुपए न होने के कारण माथे पर बक्सा लिए बेटे को पीठ पर लादकर 14 मील का रास्ता चलकर तय करते थे, ट्यूशन

पढाकर गुजारा करते रहे, अखबार में अस्थायी रुप से नौकरी करते हुए कभी चने खाकर तो कभी केवल पानी पीकर या पानी में चीनी घोलकर रोटी खाते थे लेकिन फिर भी खाना मिला तो बहुत खा लिया और यदि नहीं मिला तो कोई फरक नहीं पड़ता इस प्रकार का वैरागी बाबू का व्यक्तित्व था इनका। जीवन की त्रासद स्थितियों को चित्रित करते हुए त्रिलोचन लिखते हैं-

वह भी क्या जिन्दगी है,
वही दिन वही सवेरा
वही रात तेली के
बैल सरीखा फेरा।(20)

साहित्यिक चर्चा शुरू होने के बाद त्रिलोचन को खाने-पीने का खयाल ही नहीं रहता था। उषा सिंह उनसे जुड़ी हुई घटनाओं के बारे में बताती है कि नागार्जुन खाने-पीने के मामले में पूछताछ करते हैं, लेकिन त्रिलोचन नहीं, उन्होंने कभी भोजन आदि के बारे में जिज्ञासा प्रकट नहीं की।

उनमें संतो जैसी विरक्ति थी, यश की भूख नहीं, लिप्सा नहीं। शुरू से लेकर बुढापें तक उनका वही स्वभाव रहा है, उनमें वही सरलता रही है।

साथ ही उनके संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि यदि उन्हें गुस्सा आता है तो वे पलभर में शांत हो जाते हैं। गुस्सा आने पर कई प्रकार के संकल्पों के बारे में सोचते हैं लेकिन कर नहीं पाते। नामवर सिंह द्वारा 'मिलन यामिनी' की प्रति न मिलने पर नाराज होकर उन्होंने निश्चय किया था कि कभी 'मिलन यामिनी' माँगकर नहीं पढेंगे। लेकिन अगले दिन 14 सितंबर त्रिलोचन अपने जन्मदिन के अवसर पर नामवर सिंह के घर पहुँचकर उनसे ही दो आने लेकर गुड़ खरीदकर उसके साथ रोटियाँ खायी।

त्रिलोचन का जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोन काफी आशावादी रहा है शायद इसी वजह से उन्होंने जीवन की हर स्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित किया है। इस सामंजस्य के लिए जिस सहनशीलता की आवश्यकता होती है, वह उनके पास पर्याप्त मात्रा में है। उनकी सहनशीलता का वर्णन करते हुए विश्वनाथ मुखर्जी ने एक घटना का उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है- ''इनके पड़ोस में एक सज्जन नए किराएदार आए। उन दिनों शास्त्रीजी 'जनवार्ता' दैनिक में रात की शिप्ट में काम करते थे और आधी रात को घर लौटते थे। एक रात को आए तो पड़ोसी के कुत्ते ने उन्हें डाकू समझा। जब-जब आप भीतर जाने का प्रयत्न करते तब-तब इन्हें खदेड़ देता। जाड़े की रात थी। बेचारे रातभर सड़कपर टहलते रहे। सवेरे जब पड़ोसी से

शिकायत की तो वह अपने कुत्ते को पकड़ लाया और बताया कि यह उठाईगीर नहीं, अपने पड़ोसी हैं।'' (21)

श्रीमतीजी ने पूछा - रात कहां रहे?

शास्त्रीजी ने कहा-

बिस्तर है न चारपाई
रात तुमने कहाँ बिताई।(22)

वे अपने में ही रमे हुए, अपने ही भरोसे जीनेवाले एक स्वायत्त व्यक्ति थे। सामान्य गृहस्थ जीवन जीनेवाले त्रिलोचन का व्यक्तित्व काफी असामान्य रहा। सामान्य तौर पर जिसकी हम अपेक्षा नहीं करते, वैसी बातें क्रियात्मक स्तर पर कर दिखाना त्रिलोचन की आदतों में समाविष्ट है। व्यक्तिगत जीवन में समाज की थोथी-रीति-रिवाजों को आँखें-मूंदकर स्वीकार करना उन्हें पसंद नहीं था। अतः लोग क्या कहेंगे, इस प्रकार की चिंता से वे चिंतित नहीं होते। इस संबंध में काशीनाथ सिंह का कथन है-''आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हिंदू विश्व-विद्यालय से लौट रहे थे। चौराहे पर उन्होंने रिक्शा छोड़ा और छाता लगाए और धोती खुँटियाए घर के लिए बाँस फाटकवाली रोड़ पर बढ़े। देखा, फुटपाथ पर अधभीगा त्रिलोचन खड़ा है। 'मात्र कुर्ता' आचार्य ने पूछा।

त्रिलोचन ने काँख में दबाए कपड़े की ओर इशारा किया, ''नहीं, पाजामा भी है। छींटे-कीचड़ पड़ रहे थे।''(23)

इसी प्रकार के अन्य प्रसंग का उल्लेख करते हुए वे आगे कहते हैं- ''वह साइकिल से गोदौलिया जा रहा है कि देखता है, नकेल पकड़े एक आदमी उँट को चौराहा पार करा रहा है। उसके मन में कौतुक सूझता है- क्यों न ऊँट के पेट के नीचे से साइकिल चलाते हुए पार निकल जाए। और वह सचमुच लोगों के रोकते-रोकते घुस जाता है उँट के नीचे। कुछ खास नहीं होता इसके बाद। सिर्फ कपड़े फटते हैं और एक हाथ टूटता है। वह दूसरे हाथ से साइकिल थामे लहूलुहान तीन मील चलकर जाता है, डाक्टर के पास- डाक्टर, प्लास्टर-फ्लास्टर नहीं चलेगा यहाँ, बस जरासा यह हाथ सीधा कर दो।''(24)

त्रिलोचन के जीवन संस्कार और रुचियाँ इस प्रकार की भी हैं कि जिनमें पूर्णता और अभाव का अद्भुत सामंजस्य है। भोजन मिल गया तो 40 से 100 तक रोटियाँ खा गए यानी कि पूरी रसोई ही खाया करते थे और न मिला तो पानी पीकर ही सो जाते थे। इस प्रकार के स्वभाव एवं रुचियों का जिक्र काशीनाथ सिंह ने खूब किया है। काशीनाथ सिंह का कहना है- ''त्रिलोचन खाता था और डटकर खाता था- खेत में काम करनेवाले किसान की तरह।'' (25)

त्रिलोचन के संदर्भ में प्रकाश मनु कहते हैं- ''किसी किसी आदमी को आप जानकर भी नहीं जान पाते। हर बार कुछ न कुछ बचा रहता है, हर बार कुछ न कुछ नया जानने को मिलता है। त्रिलोचन ऐसे ही आदमी है।''(26)

तिरस्कार, उपेक्षा, पीड़ा, संत्रास को सहते-सहते यह व्यक्ति मनुष्य के स्तर पर काफी उँचा उठ गया। शिवप्रसाद सिंह कहते हैं- 'समझ हर एक राज को मगर फरेब खाए जा'- यह शास्त्री के व्यक्तित्व का मूलमंत्र है। उन्हें गाँव का खाँटी किसान मानना ज्यादा मौजू लगता है।(27) इस अभावपूर्ण जीवन में उनके पास केवल एक ही धोती कुरता था। इसलिए वे रात के वक्त नहाते थे, कपड़े धोकर पुनः सुबह उसी कुरते को पहनते थे। उनके घर में भी किसी प्रकार की साज-सज्जा दिखायी नहीं देती। वे जमीन पर बिस्तर डालकर सोते थे। विपन्नताओं में जीवन व्यतीत करनेवाले त्रिलोचन को भविष्य की कोई चिंता नहीं।

प्रकाश मनु त्रिलोचन के व्यक्तित्व के और एक रुप को प्रकाश में लाते हैं। वे लिखते हैं-

''कुछ रोज बाद हरिपाल त्यागी से भेंट हुई तो उन्होंने बताया कि त्रिलोचन तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय चले गए, जहाँ उन्हें एक निश्चित अवधि के लिए 'फेलोशिप' दी गयी थी। मुझे ताज्जुब हुआ कि जब हम लोग मिले थे,तब त्रिलोचन ने इसका हल्का सा जिक्र भी नहीं किया था, जबकि उनके जाने का कार्यक्रम तो तब भी तय रहा होगा।''(28)

प्रायः देखा जाता है कि उत्पीडन के कारण व्यक्ति काफी अंतर्मुखी हो जाता है। यह बात त्रिलोचन पर भी लागू होती है। इसलिए वे कहते हैं-

आज मैं अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता
ओखी धार दिन की
अकेले बहा नहीं जाता।(29)

इन एकाकी क्षणों में कई बार व्यक्ति समाज से कट जाता है या अपनी अनुभूतियों को प्रकट करना या बाँटना नहीं चाहता। बेकारी एवं हताशा से भरी जिंदगी जीनेवाले त्रिलोचन को अकेलेपन ने बहुत दुःख-दर्द दिया। मजबूर होकर उन्होंने कहीं तीस तो कहीं पचास रुपए महीनें पर नौकरी की। लेकिन किसी के सामने लाचार होकर गिड़गिड़ाए नहीं। काशीनाथ सिंह 'दंतकथाओं में त्रिलोचन' में कहते हैं- ''इस नगर में शायद ही कोई हो जिससे त्रिलोचन ने कहा कि-

- इन दिनों बडी तंगी में दिन कट रहे हैं।

- हो सकें तो कोई काम-धंदा दिलाओ।
- बीवी को होली पर साड़ी चाहिए, कोई बंदोबस्त करो।
- बेटा मनमानी कर रहा है मेरी नहीं सुनता।
- मेरा कुर्ता चिथड़ा हो गया है, पाजामा तार-तार हो गया है।''[30]

संत्रास, पीड़ा के बावजूद उनका व्यक्तित्व मनमौजी है। उनके मन में किसी के प्रति कटुता की भावना नहीं है। यदि उन्हें कोई प्रेम, स्नेह और अपनत्व दें तो वे सबकुछ उलीचकर दे देते हैं, मगर जिनके साथ मन नहीं मिलता, उनसे तो वे दूर रहना ही पसंद करते हैं।

डॉ. कान्तिकुमार जैन कहते है, ''जिन बातों को उन्हें करना नहीं होता है अथवा जो उन्हें पसंद नहीं आते, उनके बारे में पूछने पर वे चर्चा नहीं करते।''[31]

काशीनाथ सिंह का मानना है कि उन्हें नींद में चलने की आदत थी, रात के दो बजे नदी के घाट पर नहाकर, कपड़े धोकर वे वापिस घर आते थे, कई समय तक स्वयं उन्हें ही इस बीमारी की जानकारी नहीं थी।

विश्वनाथ मुखर्जी ने उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है- ''लेकिन इस मुस्कराते हुए चेहरे के भीतर कितनी पीड़ा है, कोई नहीं जानता है। जब हँसते हैं तब लगता हैं कि जैसे कोई कंकाल दर्द से कराह रहा है। दधीचि की इन हड्डियों ने कितनी मुसीबतें झेली है। अचानक एक दिन आए और कहा- अब तुम्हारे पास आ गया हूँ। पूछने पर उन्होंने कहा-सास बहू में किचकिच होती रही, इसलिए चला आया।

लेकिन यह बात गलत थी। वेतन कम था, मकान किराए की कौन कहे, रिक्शे के पैसे दे नहीं पाते थे। नित्य 5-6 मील पैदल कार्यालय आते थे। पुत्र ने कड़वी बात कह दी। अभाव, दरिद्रता को जीवन का श्रृंगार बनानेवाली की आत्मा इस पीड़ा को सहन नहीं कर सकी। चुपचाप पत्नी और छोटे पुत्र को लेकर चले आए। शास्त्रीजी टूट सकते हैं। पर लचक नहीं सकते।''[32]

इसके साथ ही प्रेमशंकर भी लिखते है - ''किस अमृत घट से इसने घूँट पी लिया है कि संसार का जहर उस पर चढ़ता ही नहीं।''[33]

प्रारंभिक दौर में अभावमय जीवन झेलने के कारण उनके जीवन में कभी सुख-सुविधाएँ रही नहीं, पीड़ा, तकलीफें ही मानों उनका जीवन रहा है लेकिन शहर में आकर आधुनिक जीवन प्रणाली के अनुसार उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। जब वे मुक्तिबोध पीठ का कार्य संभालने के लिए गए तो उन्हें खाने-पीने की तकलीफ न हो इसलिए डॉ. क्रान्तिकुमार जैन ने उन्हें अपने घर से टिफिन कैरीयर भेजा लेकिन वे दोनों दम्पत्ति रात के समय भूखे ही सोये, कुछ नहीं खाया, क्योंकि

उन्हें टिफिन कैरीयर खोलना नहीं आता था।

डॉ. कान्तिकुमार जैन कहते हैं- ''दिल्ली में रहते हुए भी त्रिलोचनजी महानगरीय तो क्या नगरीय भी नहीं हो पाये।''(34)

साहित्य में वर्ग-संघर्ष का चित्रण करनेवाले त्रिलोचन को कोई भी आसानी के साथ बेवकूफ बना सकता है। उन्हें किसी ने बताया कि पहले कार्यकाल में मुक्तिबोध पीठ का कार्य सुचारू ढंग से नहीं चल रहा था तो छात्रों के समकक्ष हुए भाषण में उन्होंने यह वक्तव्य किया कि विश्व-विद्यालय का हिन्दी-विभाग निष्क्रिय हो गया है। डॉ. क्रान्तिकुमार जैन के द्‌वारा वास्तविकता के संबंध में पता चलने पर उन्हें काफी दु:ख हुआ। लेकिन अपने व्यक्तित्व की सरलता एवं भोलेपन के कारण फौरन वे किसी पर भी विश्वास कर लेते थे।

त्रिलोचन की कविताओं में प्राप्त प्रेम भावना के संबंध में कहा जाता है कि उनकी यह भावना ग्राहस्थ्य जीवन से जुड़ी है। लेकिन काशीनाथ सिंह अपने लेख में त्रिलोचन की युवती से जुड़ी घटना को व्याख्यायित करते हैं। एक सभ्रान्त आभिजात्य महिला जब युवती थी तब दोपहर के समय एक युवक डेढ़-दो घंटे सुनसान सन्नाटे में ताड़ के पेड़ के नीचे खड़े रहकर उन्हें देखा करता था, न वह महिला खिड़की से युवक को ठीक तरह से देख पाती न वह युवक। आगे जाकर उन्हें पता चला कि वे युवक त्रिलोचन थे। अंतत: हर व्यक्ति के हृदय में दिल रहता है और वह धड़कता तो है।

त्रिलोचन के बारे में एक किंवदन्ती यह भी है कि किसी समय वे लाहोर में रिक्शा चलाया करते थे। एक दिन उनके रिक्शे पर संस्कृत के पंडित डॉ. सूर्यकांत जो काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे- बैठ गए। उनके हाथ में संस्कृत की एक पुस्तक थी और वे बैठे-बैठे कोई श्लोक बोल रहे थे। अंत में डॉ. सूर्यकांत के अगले चरण को त्रिलोचन ने पूरा किया तो पंडितजी आश्चर्यचकित हो गए।

उनके बारे में यह भी कहा जाता है कि मंगल पांडे के भीतर त्रिलोचन ने ही राष्ट्रीय चेतना भर दी। अगर वे चाहते तो इस किंवदन्ती को पुष्ट कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे कहते हैं-''उनके गाँव में मेरी ननिहाल जरूर थी। छुट्टियों में जाता भी था। उनके साथ गुल्ली-डंडा भी खेलता था। वे मेरे अच्छे मित्र बन गए थे लेकिन जिन दिनों वे फौज में भर्ती हो गए उन्हीं दिनों मैं 'सुख-सागर' वाले मुंशी सदा सुखलाल के बुलावे पर आगरा चला गया था।''(35)

शहतूत खाकर गुजारा करनेवाले, बनारस में गंगा तैरकर पार पानेवाले

तनखाह का सारा पैसा किताबों पर खर्च करनेवाले, बहुत ज्यादा भोजन खानेवाले त्रिलोचन वाकई में ''किंवदन्ती पुरुष'' हैं।

अपने ही जगत में लीन त्रिलोचन के सपने भी काफी उँचे हैं। वे चाहते हैं कि उनका अपना आकाश हो लेकिन उनके पैर हमेशा धरती पर रहते हैं। धरती विशेषत: ग्रामीण धरती की जड़ों से बंधा हुआ व्यक्ति भला धरती के प्रति अपने ऋण को कैसे भूल सकता है?

अध्ययनशील वृत्ति होने के कारण त्रिलोचन अपने काम में हमेशा लीन रहे हैं। उनके पूरे व्यक्तित्व में एक साहित्यकार की झाँकी दिखायी देती है। उन्हें अगर कोई धैर्यवान श्रोता मिल जाए तो लगातार रुप से वे साहित्य के बारे में बात करते हैं, फिर तो उन्हें समय का ध्यान नहीं रहता। भाषा विज्ञान की अच्छी जानकारी होने के कारण उनकी बातचीत में शब्दों की उत्पत्ति, उसकी अर्थवत्ता आदि का उल्लेख अवश्य मिलता है। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' उन्हें पूरी तरह से कंठस्थ है। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ होने के कारण वे घंटो इसपर चर्चा करते हैं। इन चर्चाओं में उन्हें घर की याद भी नहीं आती। मगर घट पहुँचकर उन्हें पत्नी को देखकर याद आता है कि कल रात से घर में खाना नहीं पका होगा। वे चौबीस घंटों के बाद घर लौट रहे हैं और गेहूँ का कनस्तर आटा-चक्की की दुकान पर छोड़ आए थे, अभी तक वही पड़ा होगा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों की सीमारेखा को लांघकर जीनेवाले लोगों का जीवन समाज की धरोहर होता है। शिवकुमार मिश्र लिखते है - ''जिस जमीन से त्रिलोचन शास्त्री जुड़े हुए हैं, उस जमीन के आदमी के सुख-दुख, आशा-निराशा, सफलता-असफलता, लोक-जीवन से उसके गहरे लगाव को वे व्यक्त करते हैं।''(36)

उनकी जीवन शक्ति दुर्धर्ष है। भौतिकी के नियमों को लांधकर उनका जीवन विकसित हुआ नजर आता है। वे रोटी न मिलने पर पेड़ की छाल खा सकते हैं, कपड़े के अभाव में लंगोट पहनकर काशी में घूम सकते है, बेटे को अंग्रेजी में एम.ए. करता हुआ देखकर खुद एम.ए की परीक्षा देने के बारे में सोच सकते हैं और बीच में पढाई छोड़ भी सकते हैं। क्योंकि अंग्रेजी साहित्य का विपुल ज्ञान होनेवाले इस इंसान को डिग्रियों की आवश्यकता नहीं कारण वे स्वयं एम.ए. के विद्यार्थियों को मार्ग-दर्शन करते रहे हैं।

उनका जीवन मानो एक मिथक है। काशीनाथ सिंह होली के अवसर की अपनी यादों को उजागर करते हुए कहते है कि वे कपड़े खराब न हो जाए इसलिए 'कुर्ता-पाजामा' उतारकर लंगोट में ही वे विजय करने के लिए निकले। घर के लोगों

ने जब उन्हें आश्वस्त किया कि और रंग नहीं ड़ाला जाएगा, तब कहीं जाकर उन्होंने कपड़े पहने।

''दिखायी पड़नेवाला त्रिलोचन बहुत कुछ 'शास्त्र बद्ध' है और 'मुक्त छंद' की तरह, जबकि सुनाई पड़नेवाला त्रिलोचन 'शास्त्र-विरुद्ध' और 'छन्द-मुक्त' । सच कहिये तो सुना हुआ त्रिलोचन कहीं ज्यादा काव्यात्मक, ज्यादा उल्लासपूर्ण और ज्यादा प्रेरक है।''(37)

बचपन में वे सशस्त्र क्रांतिकारियों के संपर्क में आ गए थे। चंद्रशेखर आजाद को वे मोटे भाई कहा करते थे। एक बार गठरी में बांधकर बीस हजार रुपए रेल से सफर करके वे पैसे उन्होंने क्रांतिकारियों के पास पहुँचाए थे। उनके अय्यर नाम के एक परिचित व्यक्ति थे जो उन्हें कम्यूनिस्ट साहित्य और प्रतिबंधित साहित्य पढने के लिए प्रेरित किया करते थे। यहीं पर से उनपर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा।

शिवमंगल सिंह सुमन का मत है कि उन्हें तंत्र साधना का गहरा ज्ञान था। वे बताते है कि बनारस में एक मोहल्ला था बंगाली टोला, वहाँ बंगाली महिला से उन्हें प्रेम हो गया। एक बार उसने ताना दिया तो नाराज होकर वे शहद की शीशी पी गए, जब हालत खराब हो गयी तो उसे पचाने के लिए वे दंड-बैठक करने लगे।

अपने स्वाभिमान के कारण कई अवसरों पर समझौता न करने के कारण त्रिलोचन अक्खड़ लगे, कई बार निरर्थक जिदों को सहते रहने के कारण शायद वे अलोकप्रिय हुए होंगे।

बने-बनाए रास्ते पर न चलकर अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुरूप निर्णय लेना त्रिलोचन की विशेषता है। इसलिए अपने उभरते समय में जब अन्य रचनाकार गीत-लेखन में मशगुल थे वहाँ त्रिलोचन उस लीक से हटकर गज़ल और सॉनेट लेखन की ओर मुड़े। जिस तरह से किसान उबड़-खाबड़ जमीन में मेहनत करके उसे उपजाऊ बनाकर अनाज उगाता है, उसी तरह त्रिलोचन ने सॉनेट जैसे विजातीय फार्म को एक नया स्थानीय रुपाकार दिया।

त्रिलोचन के स्वभाव में शालीनता है। वे स्वयं जान-बूझकर अपना बडप्पन नहीं जतलाते। किसी कार्यक्रम की अध्यक्षता के समय दाढीदार त्रिलोचन की जगह सफाचट चेहरेवाले त्रिलोचन को न पहचानने के कारण प्रकाश मनु धोखे में आ गए थे। त्रिलोचन ने इस अविश्वसनीयता को भाँप कर भी कुछ नहीं कहा, चुपचाप कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

त्रिलोचन के व्यक्तित्व में सादगी है, किसी भी प्रकार का घमंड नहीं है। दुकानदार, ठेलेवाले के साथ भी वे आत्मीय भाव से बात करते हैं। वे निर्मल हँसी

हँसते हैं।

उनमें वाकपटुता है, वे जवाब-तलब करने में माहिर है। उन्हें शब्दों का गलत इस्तेमाल करना पसंद नहीं है। कुछ हद तक वे आज के अध्यापकों से रूष्ट है। वे कहते हैं - ''हमारे हिन्दी अध्यापक साहित्य तो जानते हैं भाषा नहीं जानते और बिना भाषा के ज्ञान के कोई साहित्य का मर्म कैसे समझ या समझा सकता है?''(38)

सुलतान महंमद का कहना है कि वे स्नेही और मधुर स्वभाव के हैं। कुछ लोग किताबें भेजने पर प्राप्ति सूचना का पत्र नहीं भेजते लेकिन उनमें कृतज्ञता का भाव है कि उनके जैसे हाशिए पर पड़े व्यक्ति के प्रति त्रिलोचन सम्मान का भाव रखते हुए पत्राचार करते हैं।

उनके व्यक्तित्व में पारदर्शिता है। डॉ.कान्तिकुमार जैन उनके व्यक्तित्व के बारे में चर्चा करते हुए उनके भोलेपन की काफी प्रशंसा करते हैं। एक बार माखनलाल चतुर्वेदी शताब्दी के उद्घाटन सत्र के लिए अध्यक्ष के रुप में उन्हें बुलाया गया था। उद्घाटना 3 बजे अपराह्न था 2.45 को उनके लिए आनेवाली थी लेकिन वे खुद टहलते-टहलते पान खाकर वहाँ समय पर पहुँच गये। अपनी स्वाभाविकता में जीवन जीना छोटी-छोटी बातों में सुख मानना, सरल जीवन प्रणाली, कहीं भी थोथा दिखावा नहीं- यह है उनका व्यक्तित्व।

कडी मिट्टी में काम करके मजबूत हुए त्रिलोचन को सुख-सुविधामयी जीवन के प्रति किसी भी प्रकार का आकर्षण नहीं है। काशीनाथ सिंह इसे पुष्ट करते हुए कहते है कि 'आयड़ियल एक्सप्रेस' नाम के साप्ताहिक के वे 'सलाहकार संपादक' थे। उनके लिए वातानुकुलित कमरा था, सारी सुविधाएँ मिल रही थी लेकिन यह सब उनके व्यक्तित्व से मेल नहीं खा रहा था सो वे वहाँ की नौकरी छोड़कर चले गए।

त्रिलोचन में किसी भी प्रकार का अहंकार नहीं था। पांडेय नर्मदेश्वर सहाय 'पलदार त्रिलोचन' में उनसे जुड़ी यादों का स्मरण करते हुए कहते हैं-

''उनके घर में कई चावल के बोरे रखे गये थे बाहर रहने के कारण शायद वे वर्षा के कारण भीग जाते लेकिन त्रिलोचन मेहमान थे फिर वे बोरे उठाकर अंदर रख दिए और कहा - ''भैया, मेघ मँडरा रहे थे। चावल का बोरा भीग जाता। मैंने उठाकर अन्दर कर दिया, तो कौन-सा अपराध किया। अरे, ये तो हल्के जान पड़े। दो-दो मन के बोरे उठा कर फेंक देता हूँ और फिर आज अपनी ताकत की आजमाइश भी तो करनी थी। इसमें रंज होने की कौनसी बात है?''(39)

कई बार त्रिलोचन के मित्रजनों के लिए उनके व्यक्तित्व की थाह लगाना मुश्किल लगता है। क्योंकि कई बार वे किसी भी बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं देते।

कहकर न आना और फिर बिना कहे चले जाना, जिन्होंने उनके साथ काफी बुरा बरताव किया है उसीसे बड़ी आत्मीयता से पेश आना, किसी व्यक्ति की बीमारी में बिना किसी प्रारंभिक आयोजन के ही कुरते-पाजामे में चले जाना और चार-पाँच दिनों के बाद लौट आना, अपने मित्र विष्णु की पत्नी को पहुँचाने के लिए स्वयं आना लेकिन स्टेशन पर विष्णु को न देखकर गाड़ी से न उतरते ही वापस लौटना, शंभुनाथ मिश्र की बीमारी में हाल-चाल पूछने के लिए सात मील पैदल चलकर आना फिर भी साइकिल टूट गयी है इसलिए पैदल आना पड़ता है यह न कहना, कई बार मन में ठान लेने के बाद पान खाना छोड़ देना और दुबारा शुरु करना, आदि कई ऐसे अवसर हैं जहाँ पर त्रिलोचन आम व्यक्ति से हटकर कुछ करते हैं।

शंभुनाथ मिश्र कहते है कि कई बार वे परस्पर विरोधी बाते कहते हैं और टोकने पर 'सो तो है' कहकर चुप हो जाते हैं।

विश्वनाथ त्रिपाठी त्रिलोचन में दारूण अभाव में रहकर भी अपराजेय बने रहने का भाव देखते हैं। प्रो. नामवर सिंह 'निपट निवैयक्तिकता में भी गहरी वैयक्तिकता' कहकर उन्हें अन्य प्रगतिशील कवियों के साथ रखते हुए भी गहरे भेद को पहचानते है तो नागार्जुन उन्हें 'किंवदान्ति पुरुष' कहकर संबोधित करते हैं। काशीनाथ सिंह कहते हैं कि जीवित रहने के लिए त्रिलोचन का कलेजा चाहिए। फणीश्वरनाथ रेणु त्रिलोचन को 'फूलनेवाला कैक्टस' कहकर संबोधित करते हैं।

त्रिलोचन में किसान जीवन की विशेषता विद्यमान है। आत्मीयता, कर्मवाद, आर्थिक प्रलोभनों के प्रति विरक्ति, नियति को मौन रुप से स्वीकार करना, अपने मानस को उर्वर बनाने का निरंतर प्रयास आदि गुणों से उनका जीवन आप्लावित है।

इसप्रकार हम देखते है कि त्रिलोचन का जीवन, परिवेश, रुचियाँ, स्वभाव एवं संस्कार विभिन्नताएँ लिए हुए है जिनमें मधुरता के स्थान पर तीखापन अधिक है। इन्हीं तिक्त जीवन के अनुभवों ने मांज-मांजकर उन्हें एक रचनाकार की दृष्टि प्रदान की। स्वभावतः हरफनमौजा का जीवन जीनेवाले त्रिलोचन में सादगी, व्यवहार कुशलता, संवेदनशीलता आदि गुण कूट-कूटकर भरे हैं।

इस मस्तमौजी त्रिलोचन के बारे में काशीनाथ सिंह ने कहा है-

''एक समय ऐसा भी आया जब त्रिलोचन का बड़ा बेटा युनिवर्सिटी में प्रोफेसर लेकिन त्रिलोचन बोरे में कोयले की जगह अपने स्वाभिमान को साइकल के कैरियर में बाँधे सड़क पर।''[40]

त्रिलोचन के संपूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि डालते समय भगवतीचरण वर्मा की इन पंक्तियों का स्मरण होता है-

हम दीवानों की क्या हस्ती है,
आज यहाँ कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।[41]

1·3 अध्ययन एवं अध्यापन

ग्राम्य परिवेश में पैदा होने के कारण त्रिलोचन की शिक्षा गाँव से ही शुरू हुई। उस समय आज की तरह पढ़ाई-लिखाई का माहौल नहीं था, इसलिए बहुत कम बच्चें स्कूल में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। इसका कारण था आर्थिक संकट और आवागमन की असुविधा। इस प्रकार की परिस्थितियों में भी वासुदेव के पिता अपने पुत्र को पढ़ाना चाहते थे। उनकी माँ इस बात से बहुत चिढ़ती थी कि यह पढ़-लिखकर क्या करेगा। इस तरह की सोच का कारण था उनकी अपनी ग्रामीण संस्कृति लेकिन इसी माहौल में पली उनकी दादी काफी प्रगतिशील विचारधारा की थी जो कि त्रिलोचन को पढ़ाना चाहती थी। अपनी प्रारंभिक शिक्षा के विषय में वे स्वयं लिखते हैं-

''एक बार किताब लेने के वास्ते बुआ से पैसे माँग रहा था। पैसे अपने पास न होने के कारण वह उसी समय न दे सकी और अगले दिन के लिए कह रही थी- तब तक माँ आयी और उसने कहा : रोज-रोज कहती हूँ, पढ-लिखकर क्या होगा, पढ़ना अब बंद करो इसका, घर काम करें।''[42]

अपनी कविता में त्रिलोचन इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं-

बुआ ने कहा- दुलहिन इस बच्चे को
मैंने श्रद्धा से, प्रेम से, निष्ठा से
विद्या को दान कर दिया है,
जान बूझकर दान कैसे फेर लूँ,
ऐसा कभी नहीं हुआ-
विद्या माता ही अब इसको निरखे-परखे
रक्षा और पालन-पोषण करें।[43]

आर्थिक संकट एवं पारिवारिक विरोध के कारण किताब-कापी की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। अपने मित्र की पूरी की पूरी किताब वे हाथ से लिख डालते थे क्योंकि किताब खरीदने के लिए उन्हें पैसे नहीं मिलते थे। गाँव में चौथी दर्जा पास करने के बाद दोस्तपुर के जूनियर हाईस्कूल में उनका दाखिला किया गया। दोस्तपुर

उनके गाँव से आठ मील दूर होने के कारण त्रिलोचन ने अपने रहने का इंतजाम वहीं पर कर दिया। स्वयं अपने हाथ से खाना बनाकर खाते थे और साथ ही पूरा काम करते थे।

त्रिलोचन कुशाग्र बुद्धि के थे। यही कारण था कि वे बचपन में ही वासुदेव से त्रिलोचन बन गए। इस संबंध में वे स्वयं लिखते हैं - " जब मैं पाच वर्ष का था तो मेरे गुरूजी श्री देवदत्त ने मुझे संस्कृत का एक सूत्र याद करने के लिए कहाँ। मैंने दुसरे दिन उन्हें सुना दिया और यह भी बताया यह सूत्र नहीं है, ये तो अक्षर के उलट-पुलट का खेल है। मेरी बात सुनकर गुरूजी आश्चर्य में पड गए, पूछा-तुम्हें किसी ने बताया क्या? मैंने कहा - ऐसा कुछ भी नहीं है, मैंने जो समझा वह बतला रहा हूँ। गुरूजी ने कहा - मैं जीवन भर सूत्र पढ़ाता रहा और इस सूत्र को समझ नहीं पाया। एक बात याद रखो वासुदेव तुम विलक्षण बुद्धि के हो, आज से तुम्हारा नाम त्रिलोचन हुआ। तुम त्रिलोचन के नाम से जाने जाओगे। उन्होंने निर्देश दिया त्रिलोचन के साथ सिंह मत जोड़ना कभी।"(44)

त्रिलोचन के पिता घर पर प्रायः 'रामचरितमानस' आदि का पाठ घर पर करते रहते थे जिसका प्रभाव त्रिलोचन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। उन्होंने घर पर तथा कालांतर में भ्रमण करते हुए फारसी, उर्दू, मराठी, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। निरंतर अन्वेषण करने की प्रवृत्ति के कारण वे हमेशा भाषा के प्रति सजग रहे। भाषा में शब्दों की उत्पत्ति, उसका ठीक रुप से समायोजन आदि के संदर्भों में वे काफी आग्रही रहे। उन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान तो था ही, साथ ही उन्होंने विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन किया है।

अपनी प्रारंभिक शिक्षा दोस्तपुर में समाप्त करने के उपरांत त्रिलोचन शास्त्री संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने के लिए 1930 में वाराणसी गये। वहाँ पर उन्होंने वैदिक साहित्य एवं संस्कृत के क्लासिकल साहित्य का अध्ययन किया तथा मध्यमा की परीक्षा उत्तीर्ण की। तद्उपरांत वे पंजाब गए और वहाँ पर उन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की।

वे उर्दू अध्ययन के क्षेत्र में माजिद हसन खाँ के काफी ऋणी रहे हैं क्योंकि भाषा की शुद्धता का संस्कार उन्होंने माजिद हसन खाँ से ग्रहण किया । खड़ी-बोली कविता से उनका परिचय पहले-पहल "विशाल भारती" के माध्यम से हुआ। वे श्रीधर पाठक के लोकतत्व से काफी हद तक प्रभावित रहे हैं। इसके अतिरिक्त अल्प परिचित कवि "कौशलेन्द्र-प्रतापसिंह" जो उस काल की पत्रिकाओं में काव्य-लेखन करते थे, जिनकी कविताएँ त्रिलोचन को अच्छी लगती थी। त्रिलोचन का निराला से कविता

के स्तर पर परिचय उनकी 'अधिवास' शीर्षक कविता के द्वारा हुआ जो 1929 में ''माधुरी'' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। त्रिलोचन मूलत: गोस्वामी तुलसीदास और निराला से काफी प्रभावित थे। उनकी निराला से काफी घनिष्टता थी। एक बार निराला को किसी ने जूते भेंट के रुप में दिए तो उन्होंने त्रिलोचन को उसे अलमारी में रखने के लिए कहा।

शास्त्री की उपाधि के साथ-साथ त्रिलोचन ने काशी से बी.ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण की और इसके बाद अंग्रेजी में एम.ए. प्रथम वर्ष करने के पश्चात् कई बार द्वितीय वर्ष की तैयारी करके भी परीक्षा में नहीं बैठे। इसलिए उनकी एम.ए. की शिक्षा अधूरी ही रह गई। इस संबंध में विश्वनाथ मुखर्जी का वक्तव्य इस प्रकार है-

''आपका सुपुत्र जब मैट्रिक में था, तभी से आप प्रति वर्ष एम.ए. की परीक्षा में बैठने लगे। पर, हर बार एक पेपर देने के बाद वापस चले आते और कहते- 'क्या पेपर हल करूँ? ऐसे ऐसे सवालों के उत्तर तो मैं एक प्लेट पकौड़ी और एक कप चाय पर देता हूँ। अगर एम.ए. का स्टैण्डर्ड यही है, तो मैं एम.ए. वालों का लकड़दादा हूँ।' नतीजा यह हुआ कि, आप एम.ए. होने से रह गए और आपके प्रवचनों से लाभ उठा कर न जाने कितने लड़के एम.ए, पी.एच.डी. हो गए।''**(45)**

वे चलते फिरते इनसायक्लोपीडिया थे। किसी शब्द के तह तक जाना, गंभीर अध्ययनशीलता उनमे विद्यमान थी। उनका बहुत सारा काव्य प्रकाशित नहीं हुआ लेकिन उनके बारे में यह कहा जाता है कि वे बस मुसलाधार रूप से लिखते ही रहते है।

विभिन्न भाषाओं को जानने की ललक उनमे थी। एक बार रास्ते पर चलते-चलते उन्हें दक्षिण की किसी भाषा का पट्टलेख दिखायी दिया, वे उसका निरीक्षण-परीक्षण करते रहे और ऐसा करते हुए उन्होंने काफी समय बरबाद किया, उतने समय में वे कई लेख पढ सकते थे। पूछने पर त्रिलोचन ने केवल इतना ही कहा कि अमुक भाषा का लेख लगता है।

प्रकृति के साथ एक रागात्मक संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। उन्हें चित्रकला का ज्ञान था, साथ ही पेड, फूल, पत्ते, वनस्पतियों का ज्ञान, ग्रामीण कहावतें, लोकजीवन, लोक-संस्कृति की पहचान, लोक-कथा से लेकर कालिदास, भवभूति, वाल्मिकी के बारे में भी बात करने की प्रभुता उनमें विद्यमान थी। छंद उपनिषद, महाभारत के किसी भी प्रसंग पर वे घंटों तक बातें कर सकते हैं। भाषा पर अत्याधिक रुप से प्रभुता होने के कारण उनके पास कुछ न कुछ सीखने के लिए

मिलता है। बुद्धि की तीक्ष्णता, कुशाग्रता, अध्ययन की अधिकता उनमें विद्यमान है।

फक्कड़ स्वभाव के कारण त्रिलोचन ने अपने जीवन में अध्ययन को तो महत्व दिया परंतु डिग्रियों के पीछे कभी नहीं भागे। आर्थिक संकट ने उन्हें कुछ करने पर मजबूर भी किया और इस प्रकार से वे अध्यापन कार्य में जुट गए। वे 1952 से 1953 तक गणेशराय इंटर कॉलेज जौनपुर में अंग्रेजी के प्रवक्ता के रुप में कार्य करने लगे। मात्र एक वर्ष तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात पत्रकारिता से जुड़ गए। इस बीच वे अतिथि आचार्य के रुप में कहीं-कहीं पढ़ाने जाते थे। त्रिलोचन शास्त्री 11 नवम्बर 11992 से 31 मई 1992 तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रुप में कार्य कर रहे थे।

कुछ काल तक वे मुक्तिबोध पीठ, सागर, मध्यप्रदेश में रहे। सागर के साथ उनके मन में आत्मीयता, लगाव है क्योंकि जीवन के कुछ बेहतरीन लह्में उन्होंने यहीं गुजारे हैं।

इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि त्रिलोचन ने विपरीत परिस्थितियों में अपने अध्ययन और अध्यापन क्षुधा को तृप्त करने का प्रयास किया।

१·५ काव्य संस्कार एवं प्रेरणा

त्रिलोचन को काव्य संस्कार और उसकी प्रेरणा अपने परिवार और गाँव में प्राप्त हुई। बाबा तुलसी का 'रामचरितमानस' का उत्तर प्रदेश में लगभग घर-घर में पाठ किया जाता है। यह परंपरा आज के भौतिक युग में भी विद्यमान है। उस समय तो बहुत होता था क्योंकि लोग धर्म-कर्म में अधिक विश्वास रखते थे। लोग प्रातः एवं सायंकाल में अकसर मानस और गीता का पाठ करते थे। भक्तिकालीन अन्य कवियों में कबीर, सूर, मीरा के भजन भी खूब गाए जाते थे।

त्रिलोचन के पिता रामानुरागी थे। उन्हें 'रामचरितमानस' एवं 'विनयपत्रिका' से काफी लगाव था जिसके कारण उन्हें कुछ पंक्तियाँ कंठाग्र थी। त्रिलोचन की दादी माँ मीरा और कबीर के भजन आदि गाती रहती थी। बाल्यकाल में त्रिलोचनपर इसप्रकार के ग्राम्य संस्कार का विशेष प्रभाव था। इसीसे उन्हें काव्यप्रेरणा भी मिली। इसप्रकार का वातावरण उन्हें आगे चलकर साहित्य जगत में भी प्राप्त हुआ। यहाँ थोड़ी सी चर्चा घर और गाँव की कर लेनी ठीक होगी। उनके गाँव में हरिजन भी 'रामचरितमानस' का पारायण करवाते थे। त्रिलोचन इन हरिजनों के संपर्क में भी रहे है। उन्होंने इन हरिजनों को पढ़ाया भी है। छंदों में भी उन्होंने गति प्राप्त की थी। बाल्यकाल में ही

ईश्वरीप्रसाद कृत 'भारतवर्ष का इतिहास' को उन्होंने दोहा-चौपाइयों में लिखा था।

उनके गाँव में वसंत पंचमी से होली तक चौताल गाये जाते थे। हर चौताल के बाद उलारा गाया जाता था। इस परिवेश का प्रभाव त्रिलोचन पर दिखायी देता है। यही कारण है कि उनके काव्य में लयात्मकता पायी जाती है। उनपर आजमगढ़ के द्विजदेनी नामक लोककवि का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त उनके गाँव में एक प्रभुदयाल लाल नामक व्यक्ति थे, जो चौताल लिखते थे, त्रिलोचन उनसे भी प्रभावित रहे। साथ ही 'सोरठी बृजभार' नामक पुस्तक ने भी उन्हें काफी आकर्षित किया। अपने ग्रामीण जीवन में ही उन्होंने धरनीदास के 'घाँटो' का भी श्रवण किया जो छोटी जातियों के बीच गाये जाते थे।

त्रिलोचन के ननिहाल में एक सज्जन थे। उन्होंने त्रिलोचन को काव्यरचना के लिए दो समस्याएँ दी, जिनपर त्रिलोचन ने सात कवित्त लिखे। पहले पहल उन्होंने उर्दू भाषा में लिखा लेकिन वह लेख उर्दू रिसालों में न छपने के कारण हिन्दी रिसालों में भेजा। जब मनीऑर्डर के द्वारा उन्हें पारिश्रमिक भेजा गया तब उन्हें पता चला कि लिखनेपर पैसे भी मिलते है।

उन्होंने पर्शियन और अरबी भाषा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के फारसी-अरबी के विभागाध्यक्ष मुंशी महेश प्रसाद मौलवी आलिम-फाजिल से सीखी जिसका उपयोग वे कविता में कर पाये। उन्हें भोजपुरी गीत कंठस्थ थे। गुदौलिया, मिर्जापुर और बनारस की 'कजरी-कहरवा' की स्पर्धा में वे वहाँ रहते ही थे।

अपने काव्य कर्म के प्रति वे काफी एकनिष्ठ थे। किसी सेठ के यहाँ पोता पैदा होने पर कविता पढनेवाले को 501 रू. का पुरस्कार मिलनेवाला था लेकिन त्रिलोचन ने उस समय पुरस्कार लेने से मना किया क्योंकि उनके अनुसार वे भाट नहीं थे।

कुवरपाल सिंह के अनुसार, ''त्रिलोचन के पास वह कला है कि किसी भी साहित्यकार पर चर्चा करते समय वह ऐसी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते है कि आप सुनते ही रहें। जी करता है कि त्रिलोचन जी बोलते रहे और आप सुनते रहें जैसा कोई पुराना किस्सा-गो कहानी के बीच में टोकना पसंद नहीं करता उसी तरह त्रिलोचन की बातें सुनते समय टोकिए मत और बीचमें प्रश्न मत उठाइये।''[46]

कविता और साहित्य के प्रति त्रिलोचन में काफी गहरी संवेदना है। किसी की शादी में उन्होंने महादेवी वर्मा की दीपशिखा की पुस्तक भेंट के रुप में दी तो उनकी काफी उपेक्षा हुई तब से उन्होंने तय किया कि किसी के विवाह में वे किताब नहीं देंगे। हिन्दी भाषी लोगों में ही साहित्य के प्रति यह विराग देखकर उन्हें कष्ट होता है।

त्रिलोचन का कवि जीवन बडे ही शालीन तरीके से आत्मविस्तार पाता है। कवि का अनुभव देखिए-

मैं फिर अपने को देखूंगा, फिर जो उतरज इधर
उधर की इन की उन की संचित की है फेंक
फाँक दूँगा। (47)

सन 1927-28 के समय में जब उनकी आयु दस वर्ष की थी, उन्होंने 'वसंत' विषय पर कविता लिखी। किसी व्यक्ति ने त्रिलोचन की कविता किसी काव्य सम्मेलन में अपनी कविता के नाम से पढ़ी और उसे एक सौ रुपये का पुरस्कार मिल गया। बाद में उस व्यक्ति ने पुरस्कार में से पचास रुपये निकालकर त्रिलोचन को दे दिए। इसप्रकार अन्य लोगों ने भी उनकी कविताएँ अपने नाम से पढ़ ली थी। जब इन कविताओं की प्रशंसा की गयी तो इसके द्‌वारा त्रिलोचन में काव्य-निर्मिति की प्रेरणा भी प्रबल होती गयी।

उन्होंने अपनी पहली कविता अठारह वर्ष की आयु में दोस्तपुर, सुलतानपुर में सुनायी। वे प्रकृति संबंधी कथा सूत्र को लेकर चलते-फिरते कविताएँ बनाते थे। तेइस वर्ष की उम्र तक वे सुलतानपुर, फैजाबाद, जौनपुर में आशु कवि के रुप में लोकप्रिय थे। वे 5-6 वर्ष तक आशु कविता लिखते रहे। परंतु बाद में आगे जाकर उन्होंने इसे छोड़ दिया। क्योंकि इसमें उन्हें कुछ दोष नजर आया। त्रिलोचन कहते है, "मुझे लगा कि कोई अच्छा कवि आशु कवि नहीं होता, आशु कविता तमाशा है। मैं जिस सम्मेलन में जाता था, लोग आशु कविता सुनाने के लिए कहते थे। मैं अपनी अन्य कविताएँ सुना नहीं पाता था।"(48)

उन्होंने 1941 के करीब गोरखपुर में नयी तेवर की कविताएँ सुनायी। सन 42 के आंदोलन में उत्तर प्रदेश और बिहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले डॉ. स्वामीनाथ सिंह ने उनकी कविताओं की प्रशंसा की। परंतु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि त्रिलोचन की कविताएँ अच्छी है, परंतु आज इन कविताओं को समझने के लिए जिस प्रकार के श्रोतागण की आवश्यकता है, वह नहीं है। बीस-पच्चीस वर्षों के उपरांत यह कविताएँ समझी जाएँगी। कालांतर में यह बात सच भी साबित हुई। त्रिलोचन वर्षों तक उपेक्षित ही रहे। आगे जाकर "ताप के ताए हुए दिन" काव्यसंग्रह के लिए साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला और उन्हें काफी लोकप्रियता मिली।

त्रिलोचन के अनुसार "कविता तो सायास नहीं बल्कि अनायास ही चलते-फिरते बन जाती है।"(49)

अत: कह सकते है कि जीवन में प्राप्त विभिन्न परिवेशगत उतार-चढाव

के कारण शनैः शनैः उनके जीवन दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ साथ ही विकास भी होता रहा और उनकी एक अलग काव्यदृष्टि विकसित हुई।

१.८ संपादन एवं पत्रकारिता

जैसा कि मैंने पहले ही लिखा है कि मात्र एक वर्ष तक त्रिलोचन ने अध्यापन का कार्य किया। काशी में रहकर उन्होंने काम की तलाश की परंतु उन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी। धीरे-धीरे उनके पास जो पैसे थे, वे भी खत्म हो गए। कुछ समय तक तो उन्हें चने खाकर ही अपना गुजारा करना पड़ा। अत: कालांतर में जीविका प्राप्ति के लिए वे पत्रकारिता से जुड़ गए। इस क्षेत्र में वे पहले गुजराती और बाद में उर्दू पत्रकारिता से संलग्न रहे। लाहौर से निकलनेवाली 'मिलाप' उर्दू दैनिक में भी उन्होंने कुछ काल तक काम किया। इसके बाद वे पुन: हिंदी पत्रकारिता के साथ जुड़ गए और आगरा से प्रकाशित होनेवाले हिंदी साप्ताहिक ''आगरा-प्रभाकर'' में कार्यरत रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने इलाहाबाद बाल साहित्य की पत्रिका 'बानर' का संपादन कार्य को भी संभाल लिया। ''बानर'' पत्रिका का संपादन करते समय उनके जीवन में एक घटना घटी जो कि उनके संघर्षमय जीवन को प्रकट करती है। इसका उल्लेख उन्होंने पद्मा सचदेव से अपने एक साक्षात्कार के दौरान किया है- ''संपादक की अनुपस्थिति में मैंने 'बानर' के तीन अंक अपनी इच्छा से निकाले। अपनी मर्जी का मैटर दिया तो संपादक लौटकर खफा हुए। उन्होंने कहा आज ही अपना हिसाब ले लेना। फिर उन्हें उसी समय हंसा मेहता का पत्र मिला। उसने लिखा था बानर के ये तीन अंक अद्‌भूत हैं। अब त्रिपाठीजी चौंके । उन्होंने मुझे कहा आप रुक जाइए, जो हुआ उसे भूल जाइए। मैंने उनसे कहा मेरे खेत हैं, मैं वहाँ खेती करूँगा। हिसाब देना हो तो दीजिएगा, नहीं तो जाता हूँ। उन्होंने 15 रु. महिने के हिसाब से पैसा दिया तो गाँव आ गया। एक महिना ईख की खेती में पानी दिया, गोडना किया फिर बनारस जाकर 'कहानी पत्रिका में काम शुरू किया। श्रीपतराय को पता था कि मैं 'वानर' में 15 रुपए महीने पर काम करता रहा हूँ। उन्होंने भी 15 रुपए ही दिए।'(50)

'एक नया काव्य शास्त्र त्रिलोचन के लिए' में नामवर सिंह लिखते है- ''चिरानी पट्टी त्रिलोचन की जन्मभूमि है तो रंगभूमि और कर्मभूमि काशी है। काशी त्रिलोचन के लिए वैसी ही थी जैसे गांधीजी के लिए भारत का गाँव।''(51)

उन्होंने प्रेमचंद की 'हंस' पत्रिका के लिए भी काम किया है। 30 रू. महीने

के वेतन पर काम किया। खाने पीने के लिए कुछ नहीं था इसलिए प्रेमचंद ने 5 रू. अग्रिम राशि के रूप में दे दिए। एक बार 'हंस' का विशेषांक निकालना था और लेख नहीं आये थे तो प्रेमचंद काफी चिंतित थे। उन्होंने प्रेमचंद से पूछा कि क्या उन्होंने विषयों को निर्धारित किया है क्या? प्रेमचंद के द्वारा विषय सूची प्राप्त होने के बाद भिन्न-भिन्न विषय शैली में स्वयं त्रिलोचन ने लेख लिखकर प्रकाशित किए। जब प्रेमचंद को वास्तविकता के बारे में पता चला तो वे अवाक रह गए। बाद में सम्पादकीय विभाग में इनकी नियुक्ति हो गयी।

1941 में वे बनारस से मुरादाबाद चले गए, वहाँ 'प्रदीप' मासिका में 1943 तक वे 'हंस' पत्रिका के संपादक मंडल से जुड़े रहे और तदुपरांत 1946 से 1950 तक 'चित्रलेखा' पत्रिका एवं 'बृहद हिंदी कोश' में सहायक संपादक के रुप में कार्य करने लगे। इसके बाद उन्होंने 1950 में बनारस से निकलनेवाले 'समाज' साप्ताहिक में संपादक की भूमिका का निर्वाह किया। इसी बीच एक वर्ष तक उन्होंने अध्यापन का कार्य किया। 1953 से 1954 तक वे हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में 'हिंदी अंग्रेजी मानक कोश' के कार्य में जुट गए। उन्होंने 1954 से 1959 तक 'हिंदी शब्दासागर' का पुर्नसंशोधन किया। 1959 में वे राष्ट्रीय प्रेस, रांची में मैनेजर के पद पर रहे। उन्होंने 1960 से 1967 तक 'हिंदी शब्द सागर' का पुन: परिवर्धन किया। इसके अतिरिक्त त्रिलोचन ने ''संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर'', ''लघुत्तर हिंदी शब्द सागर'' आदि का भी संपादन किया। इसी दरम्यान वे 'नागरी प्रचारिणी सभा' से भी संलग्न हो गए और 1967 से 1970 तक विदेशी छात्रों को भारतीय भाषा-संस्कृत, हिंदी, उर्दू से अवगत कराने के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय से जुड़ गए। इसके अलावा त्रिलोचन ने 1975 से 1978 तक 'जनवार्ता' दैनिक में सहायक संपादक के रुप में कार्य करते समय संपादकीय लेखों के माध्यम से अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। इसी दौरान उन्होंने 'हिंदी ग्रंथ अकादमी' भोपाल में भाषा संपादक के पद को भी सुशोभित किया। 1978 में वे 'द्वै-भाषा उर्दू कोश' में कार्यरत रहे। 1984 में उन्हें ''मुक्तिबोध सृजन पीठ'' सागर विश्वविद्यालय में आचार्य का पद प्राप्त हुआ।

आजीविका की तलाश में त्रिलोचन की यायापरी प्रवृत्ति का विकास हुआ। उन्होंने कई मुस्लिम देशों का भ्रमण किया, मक्का-मदीना गए, जहाज का खलासी बनकर जपान की यात्रा करने की घटना सर्वविदित है। साहित्य और पत्रकारिता से जुड़ने के कारण उनकी परिवेशगत जीवनदृष्टि में काफी बदलाव आया और यथार्थवादी दृष्टि का विकास भी हुआ। त्रिलोचन ने सामाजिक यथार्थ को अपनी निजी अनुभूतियों में उतारकर उस समाज को साहित्य के माध्यम से प्रकट किया। यायावरी प्रवृत्ति और साहित्य के प्रति लगाव होने के कारण उनकी संवेदनात्मक अनुभूति का विकास होता

गया।

सम्मान एवं पुरस्कार

पुरस्कार

1. 1981 - साहित्य अकादमी पुरस्कार
   (कृती ताप के ताए हुए दिन)
2. 1983-84 - उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा सम्मान पुरस्कार
   (''दिगन्त'' तथा ''गुलाब और बुलबुल'' कृतियों पर)

सम्मान

1. 9 फरवरी 1990 हिंदी कविता के लिए मध्य प्रदेश का 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान'
2. 1989-90 - हिंदी अकादमी, दिल्ली का शलाका सम्मान
   (मार्च 1992 में प्रदत्त)

o-o-o-o-o

संदर्भ सूची - प्रथम अध्याय

1. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 15
2. सापेक्ष, राजू एम. फिलिप(जन्म, आनुवंशिकता और बचपन- त्रिलोचन शास्त्री) पृ. 751
3. धरती, पृ. 11
4. सापेक्ष, राजू एम. फिलिप(जन्म, आनुवंशिकता और बचपन- त्रिलोचन शास्त्री) ,७५५
5. उस जनपद का कवि हूँ, ३२
6. सापेक्ष, राजू एम. फिलिप(जन्म, आनुवंशिकता और बचपन- त्रिलोचन शास्त्री) , ७५५
7. वही, त्रिलोचन की पद्मा सचदेव से बातचीत, पृ. 479
8. वही, पृ. 479
9. उस जनपद का कवि हूँ , ५२
10. याद हो कि न याद हो (दंतकथाओं में त्रिलोचन) , ५८
11. सापेक्ष, प्लेटफार्म तीन पर खडा है त्रिलोचन, पृ. 300
12. गुलाब और बुलबुल पृ. 22
13. सापेक्ष - त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, ५६७
14. दिगन्त, पृ. 29
15. गुलाब और बुलबुल पृ.23
16. अनकहनी भी कुछ कहनी है, ३१
17. गुलाब और बुलबुल, पृ.62
18. वही, पृ. 94
19. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, १२७
20. दिगन्त, पृ. 21
21. सापेक्ष, १२९
22. गुलाब और बुलबुल, २५
23. दंतकथाओं में त्रिलोचन, काशीनाथ सिंह, १२९
24. वही
25. वही
26. सापेक्ष, वह रंगमंच, नाटक और एक तिलस्म, प्रकाश मनु , २३
27. सापेक्ष - पौधा निर्वाक खड़ा है, शिवप्रसाद सिंह , ५५३
28. सापेक्ष, वह रंगमंच, नाटक और एक तिलस्म, प्रकाश मनु , २५

29. धरती, आज मैं अकेला हूँ, त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.49
30. दंतकथाओं में त्रिलोचन, काशीनाथ सिंह, ६४
31. सापेक्ष, त्रिलोचनः हरदम अलाव के पास, डॉ. कान्तिकुमार जैन, ३४
32. सापेक्ष, ६४
33. वही
34. सापेक्ष, त्रिलोचनः हरदम अलाव के पास, डॉ. कान्तिकुमार जैन, ३४
35. सापेक्ष, ५१
36. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, २३४
37. सापेक्ष, बनारस को चाहिए एक अदद त्रिलोचन काशीनाथ सिंह से संजय राय की बातचीत, पृ. 127
38. सापेक्ष, ३४
39. सापेक्ष, पलदार त्रिलोचन, नर्मदेश्वर सहाय, ५३९
40. दंतकथाओं में त्रिलोचन, काशीनाथ सिंह, ६९
41. हिन्दी साहित्य का इतिहास, जयकिशन खंडेलवाल, २३६
42. सापेक्ष, ६२
43. वही
44. वही
45. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, ६४
46. सापेक्ष, परिसंवाद, कुंवरपाल सिंह, ६२
47. त्रिलोचन संचयिता, संपादक-ध्रुव शुक्ल, पृ. 178
48. सापेक्ष, ५६७
49. वही
50. सापेक्ष, त्रिलोचन की पद्मा सचदेव से बातचीत, ५६७
51. एक नया काव्यशास्त्र त्रिलोचन के लिए, नामवर सिंह, जुलाई-सितम्बर 1987 (आलोचना)

o-o-o-o-o

द्वितीय अध्याय

त्रिलोचन का रचना संसार: एक विहंगम दृष्टि

रचना और रचनाकार का बड़ा गहरा संबंध होता है। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। सर्जन की प्रक्रिया में क्रमश: रचनाकार के व्यक्तित्व का परिमार्जन होता है जिसे कि उसकी रचना से गुजरते हुए जाना जा सकता है। साहित्य सर्जना विशेष व्यक्तित्व के द्वारा ही सम्भव होती है। महादेवी वर्मा का मंतव्य है कि "इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। जिस प्रकार जगत अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है । जब तक वे इस मूल मार्मिक रूपों में नहीं लाए जाते तब तक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पडती।"(1)

त्रिलोचन मूलत: कवि है। प्राध्यापक, पत्रकार, संपादक, कोश निर्माता, डायरी लेखन और कथाकार आदि इनके व्यक्तित्व के विविध रुप हैं। चूँकि हमारे शोध का विषय त्रिलोचन की काव्यदृष्टि है, अतएव मैं यहाँ इनकी कृतियों पर एक विहंगम

दृष्टि डालना उचित समझती हूँ। इनकी कविताओं का गहन विश्लेषण शोध के अन्य अध्यायों में विभिन्न संदर्भों के अंतर्गत किया जाएगा। प्रकाशन के कालक्रमानुसार 'धरती' इनका पहला काव्यसंग्रह है। जमीनी कवि के रूप में इनकी एक खास पहचान इसी संग्रह से बनी।

1. 'धरती' (1945)

'धरती' काव्य-संग्रह का प्रकाशन उस दौर में हुआ जब आजादी का आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। त्रिलोचन जीवन संघर्षों से जुझते हुए जीवन एवं साहित्य में स्थायित्व की तलाश में निरत थे। इस संग्रह में कवि जीवन के प्रांरभिक दस वर्षों की चुनी हुई रचनाएं संकलित हैं, जिसमें तत्कालीन जीवनानुभवों एवं संघर्षों को कवि ने बड़ी सहजता से अभिव्यक्ति दी है। इसमें कही भी बड़बोलापन नहीं है। विषम परिस्थितियों में वह स्वयं एवं दूसरों को भी आगे बढ़ने का संदेश देता है।

सूनापन हो
या निर्जन हो
पथ पुकारता है
गत स्वप्न हो
पथिक
चरण ध्वनि से
दो उत्तर पथ पर
चलते रहो निरंतर [2]

त्रिलोचन की ये कविताएं छायावादी दौर के अंतिम चरण और प्रगतिवादी दौर के प्रारम्भिक चरण में लिखी गई हैं। इनमें कहीं भी वायवीयता नहीं हैं बल्कि ये यथार्थ जीवन के खुरदरी जमीन से जुड़ी हैं। मुक्तिबोध 'धरती' संग्रह के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए कहते हैं ''धरती पढ़ जाने पर मालूम होता है कि उसके संघर्ष भाग को निकाल देने पर जो भी काव्य बचता है वह लगड़ा है। इस संघर्ष की वास्तविकता उसके मन में इतनी गहरी गई है कि वह न प्रलयवादी रोमैण्टिक स्वप्नों में डूबता है और न किसी समझौते की भावना से परिचालित हो आदर्शवादी तलैया को अपना समुद्र समझता है। वह संघर्ष इतना यथार्थ है कि उसमें सफलता के लिए धीर-गंभीर व्यक्तित्व की आवश्यकता है।''[3]

'धरती' की कविता संघर्ष की कविता है। कवि तटस्थ रुप से संघर्षरत रहता है। यह संघर्ष उसे तनावग्रस्त और कुंठित नहीं करता वरन् निर्माण की ओर

अग्रसर करता है। उसका संघर्ष सकारात्मक हैं। इसलिए वह स्वस्थ भी है। अंधकार में ही वह प्रकाश की कामना करता है। कवि का मानना है कि संघर्ष के द्वारा ही कविता में गतिशीलता आती है। परिणामस्वरूप सुख की अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

खिला यह दिन का कमल
सुन्दर सहस्त्र दल
अंधकार कारा सें दृग छूटे
दृश्य-देश विचरण को खुल टूटे (4)

'धरती' की कविताएं मूल रुप से मनुष्य के अभाव एवं संघर्ष को व्यक्त करती हैं, लेकिन इसके साथ-साथ प्रकृति के नाना-क्रिया कलापो का चित्रांकन भी करती हैं। राजकुमार सैनी लिखते हैं - ''त्रिलोचन की काव्य-कला अपनी सादगी और पारदर्शिता में असाधारण और अद्वितीय है। यहाँ फार्म (form) फ्रेम (frame) की तरह तस्वीर को अर्थात कन्टेंट (content) को चमका देता है, स्वयं नहीं चमकाता।(5) जैसे -

हंस के समान दिन उड़कर चला गया ।
अभी उड़ कर चला गया।
दिवस की ज्योति हुई सरसों के फूल सी (6)

उन्होंने प्रकृति चित्रण में गूढ़ उपमानों की अपेक्षा सीधे-सरल ढंग से प्रकृति का चित्रण किया है। कहीं-कहीं प्राकृतिक परिवेश का चित्रण मात्र प्रकृति के लिए ही है तो कहीं मानवीय जीवन की गाथा को दर्शाने के लिए। अर्थात प्रकृति चित्रण में कलात्मकता तो है लेकिन इसमें वे बहुत ज्यादा आग्रही नजर नहीं आते बल्कि काफी संयत लगते हैं।

प्रातःकाल का चित्रण देखिए-
बढ़ रही क्षण क्षण शिखाएँ
दमकते अब पेड़-पल्लव
उठ पड़ा देखे विहग-रव
गड सोते जाग
बादलों में लग गयी है आग दिन की। (7)

त्रिलोचन ने जहाँ जीवन-अभिप्राय को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति-चित्रण किया है, वह भी काफी सटीक लगता है। 'धरती' संग्रह की 'धूप' कविता में जीवनधर्मिता नजर आती है।

धूप सुन्दर

धूप में
जग-रूप सुन्दर
सहज सुन्दर [8]

मुक्तिबोध ने उनके काव्य में प्राप्त प्रकृति-चित्रण के बारे में लिखा है- '' प्रकृति उसके मन में एक बाह्य वास्तविकता के रुप में है, मन की इमेज के रुप में नहीं। वह उस वास्तविकता के चित्रात्मक रुप पर मुग्ध है, परन्तु उसका अन्तर्मुख चित्रात्मक अंकन नहीं करता। उसे देखकर अपने मन में उमड़े भावों को प्रधानता देता है।''[9]

अत: हम कह सकते हैं कि प्रकृति चित्रण के द्‌वारा कवि कहीं अपने मन के अवसाद को व्यक्त करता है तो कहीं उसमें सिक्त होकर अपनी रिक्तता को भूल भी जाता है, इस तरह से प्रकृति त्रिलोचन की कविता में एक उपादान बनकर आयी हैं।

त्रिलोचन धरती पर बसनेवाले लोगों की सामाजिक विचारधारा से भी परिचित हैं, इसलिए उन्हें अनुभूति होती है कि व्यक्ति की व्यक्ति के साथ संवेदना आवश्यक है जिसके कारण एकत्रित रुप से हम समस्याओं के साथ जूझ सकते हैं। अत: इसी भाव के कारण उनकी रचनाओं को हम युगानुरुप कह सकते हैं। कवि अपने मन में संजोए हुए सपनों को साकार करना चाहता है, जन-समुदाय के साथ मिलकर उस एकत्रित शक्ति से समस्याओं का सामना करना चाहता है, इस तरह से वह समाज-जीवन का प्रतीक बनना चाहता है। त्रिलोचन जानते हैं कि व्यक्तिगत स्तर पर हर व्यक्ति को समस्याओं के साथ जूझना पड़ता है, ऐसे में वह हताश और निराश हो जाता है, सामाजिक जीवन से कटाव महसूस करने लगता है। फिर भी उनके यहाँ जीवन का आश्वासन है। इसका बहुत बढ़िया ढंग से चित्रण त्रिलोचन की कविता में प्राप्त होता है। कवि लिखता है -

आज मैं अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता
रहा नहीं जाता।
जीवन मिला है यह
रतन मिला है यह
धूल में
कि
फूल में

मिला है
तो
मिला है यह
मोल-तोल इसका
अकेले कहा नहीं जाता। (10)

त्रिलोचन के काव्य में यह विराग, एकाकी भाव बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। धरती काव्य मानो संघर्ष का ही विपर्यास है। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में लिखा है -

धरती पढ़ जाने पर मालूम होता है कि उसके संघर्ष भाग को निकाल देने पर जो भी काव्य बचता है वह हलका है, जिस प्रकार से हृदय और मस्तिष्क दोनों ही शरीर की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उसी प्रकार से त्रिलोचन के काव्य में संघर्ष और लोकधर्मिता महत्वपूर्ण है। उसे काटकर त्रिलोचन की कविता बन ही नहीं सकती।(11)

कवि का मानना है कि संघर्षरत जीवन में मानवीयता को तिलांजलि देना किसी भी स्तर पर ठीक नहीं होगा। यह मूल्य ही है जो व्यक्ति को जानवर से अलगाते हैं। अत: कवि सोल्लास होकर जीवन गान गाता है और इसलिए कह उठता है-

जिनका कदम कदम जीवन की जय-यात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।(12)

प्रस्तुत संग्रह में कवि ने भाषा परिष्करण की अपेक्षा सरल भाषा को ही जीवित रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पात्र अपनी स्वाभाविक भाषा में वार्तलाप करते हैं और इसी वजह से काव्य में जीवंतता तो आ ही जाती है, साथ ही कथ्य सटीक और समर्पक लगता है। 'चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती' शीर्षक कविता की चम्पा यह नहीं जानती कि शब्दों के द्वारा तरह-तरह के स्वर कैसे निकलते हैं? उसकी रचना कैसे की जाती है? वह केवल इतना जानती है कि उसका बालम नौकरी के लिए कलकत्ता नहीं जाएगा क्योंकि उसके स्वभाव की सरलता मजबूरियों को नहीं जानती और इसलिए कहती है:-

''तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी।
कलकत्ता में कभी न जाने दुँगी।''(13)

'धरती' कविता में प्राप्त संक्षिप्तता के कारण रसात्मकता, काव्य-सौंदर्य झलकता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

चाहता हूँ जय,
पराजय की कल्पना से
होता है भय।
चाहता हूँ जय
मुझे अभी रूप चाहिए
अभी रंग नही चाहिए।(14)

'धरती' संग्रह त्रिलोचन की प्रथम कृति होने के बावजूद काफी प्रौढ़ रचना है। इसकी समीक्षा करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है- मैं यह नहीं कहता कि धरती की कविताएँ त्रिलोचन के डाल के पूर्णतया परिपक्व फल है। लेकिन यह जरुर कहता हूँ कि वह कविताएँ है और तब थी और अब भी है। इन कविताओं में त्रिलोचन के काव्य के वे सब गुण मिलते हैं जो क्रमश: विकसित हुए हैं और आगे की कविताओं में अपना पूर्णस्व पा सके हैं। इसलिए 'धरती' का महत्व है - आज भी है और आगे भी रहेगा।'धरती' के बगैर त्रिलोचन के सॉनेटों और गजलों को परखा नहीं जा सकता।(15)

2. गुलाब और बुलबुल (1956)

त्रिलोचन की काव्य-यात्रा का यह दूसरा पड़ाव है। 1956 में प्रकाशित इस संग्रह के प्रथम भाग में 101 रुबाइयाँ और गजलें हैं और दूसरे भाग में कतिपय चतुष्पदियाँ है। त्रिलोचन जब रचनाकार्य में निरत थे तब उस समय अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में उर्दू भाषा का माहौल अच्छा था। कवि सम्मेलनों में भी ग़ज़ल और शायरी खूब कही जाती थी। पहले तो इसका संबंध रुमानी भावों से था लेकिन काव्यक्षेत्र में उसके स्वभाव में बदलाव आया। त्रिलोचन द्वारा लिखित 'गुलाब और बुलबुल' काव्य-संग्रह की विशेषता यह है कि उन्होंने भले ही गजल के इस शिल्प को उर्दू साहित्य से लिया है लेकिन इसका कलेवर विशुद्ध भारतीय है।

नरेन्द्र वशिष्ट 'गुलाब और बुलबुल के संदर्भ में लिखते है- ''गजलगोई में त्रिलोचन का उद्देश्य था हिन्दी की व्यंजनागत विदग्धता और लोच को प्रमाणित करना।''(16)

हमें देखना यह है कि इन ग़ज़लों के संग्रह में ग़ज़ल के किन तत्वों का समायोजन किया गया है? परंतु इसके पूर्व ज्ञात करना होगा कि ग़ज़ल का अर्थ क्या है? डॉ.जे.पी. गंगवार 'हिन्दी कविता में ग़ज़ल-संवेदना और शिल्प' पुस्तक में ग़ज़ल को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं - ''ग़ज़ल वह रुपसा है जिसकी देह-यष्टि ही गठीली

और आकर्षक नहीं होती अपितु उसके हृदय में भी भावात्मक मिठास का एक अजस्त्र स्त्रोत प्रवाहित होता रहता है।''(17) अत: हम कह सकते हैं कि ग़ज़लों में आंतरिक अनुभूति और बाह्य अभिव्यक्ति की प्रणाली में सुंदर समायोजन एवं समन्वय होता रहता है। गजलों को प्रभावात्मक बनाने के लिए संक्षिप्तता, मौलिकता,स्पष्टता, सरलता, उत्तुंग-कल्पना, कथ्य-वैविध्य आदि तत्वों की आवश्यकता होती है।

त्रिलोचन के काव्य की यह विशेषता रही है कि उन्होंने प्राय: (संक्षेप में) सॉनेटों के माध्यम से गागर में सागर भरने की कोशिश की है। वही कार्य उन्होंने 'गुलाब और बुलबुल' में ग़ज़लों के माध्यम से किया है। 'भटकता हूँ दर-दर' में उन्होंने लिखा है -

'य' जीवन भी क्या है, कभी कुछ कभी कुछ
कहा मैं ने कितना, नहीं है मगर है,(18)

इसके साथ ही दूसरे गज़ल शीर्षक 'बिस्तरा है न चारपाई हैं' में कवि ने अपने मौलिक विचारों को बड़ी ही सरलता और स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति दी है।

कवि कहता है -

आदमी जी रहा है मरने को,
सब के उपर यही सचाई है।(19)

त्रिलोचन ने प्रस्तुत संग्रह में उत्तुंग कल्पना का उपयोग भी किया है। वास्तव में रचनाकार उत्तुंग कल्पना के द्वारा ही रचना को मर्मस्पर्शी बनाने का प्रयास करता है। कल्पना में जितनी अत्युच्च सीमा में उत्तुंगता होगी, उतनी ही वह रचना अत्युच्च श्रेणी की होगी। त्रिलोचन शास्त्री कहते हैं -

''एक जमाना था जब शायर ग़ज़लों की इजात मुशायरों और दरबारों में नारी-श्रृंगारिकता का वर्णन करने के लिए करते थे। लेकिन कालांतर में आधुनिक काल के कवियों ने ग़ज़ल के इस रुप-विधा का उपयोग सामाजिक यथार्थवाद को चित्रित करने के लिए किया। इन कवियों ने समाज की वास्तविक स्थिति का रेखांकन तो किया ही है, साथ ही जीवन के अन्य पहलुओं को भी स्पर्श किया है।''(20)

'गुलाब और बुलबुल' में समाज का वास्तविक चित्र उकेरते हुए उसमें वैविध्य आए इसका खयाल कवि को है। कवि ने प्रेम की प्रवाहमयता में उसकी विदग्धता, व्याकुलता, जीवन का मर्म, समाज की कटुता, इस कटुता से पीड़ित त्रस्त व्यक्ति के प्रति सहानुभूति आदि को व्यक्त किया है।

'आप से पत्र जो इधर आया' गज़ल में प्रेम का बहाव देखिए -

दुखी दुःख ही सुनायगा अपना,
दर्द छूने से जो उभर आया
हम जो हँसते हैं मानिएगा सच
आप के संग का असर आया [21]

जीवन के दुःख, हताशा, निराशा, पीड़ा, टीस, परेशानियाँ, दर्द, मूक-मौन प्रेम से भरे क्षणों को व्यक्त करने का एक बड़ा ही सुंदर माध्यम है गज़ल। त्रिलोचन अपने दुःखद अनुभूतियों को 'दुःख में भी परिचित मुखों को' इस गजल में व्यक्त करते हुए कहते हैं -

आजकल क्या कुछ इधर मेरे हृदय को हो गया,
चुप ही चुप है, अब उसे रोना है क्या गाना है क्या?[22]

कवि स्वाभिमान से भरे हुए जीवन का गायक है। वह अपने जीवन के दुःखों को किसी अन्यतम व्यक्ति के सामने व्यक्त करना नहीं चाहता। उसे लगता है कि उसके मौन हृदय की भाषा उसके आत्मीय जन स्वयं समझने का प्रयास करें। त्रिलोचन कहते हैं -

खूब होता जो मेरा दर्द देख पाते वे,
क्या करुँ मुझ से तमाशा यें दिखाया न गया-[23]

कवि को हर तरफ दिखाई देता है कि हर व्यक्ति अपने ही ग़म में डूबा हुआ है। मगर साथ ही कवि को इस बात का भी ध्यान है कि जीवन में सुख-दुःख का क्रम तो निरंतर रूप से चलता रहता है। कहीं अगर बुलबुल का गान है, गुलाब खिलता है, तो कहीं कोई व्यक्ति आर्त-नाद करता हुआ पाया जाता है। लेकिन कहीं न कहीं कवि का अंतर्मन आशावादी है, इसलिए वह प्रतीक्षा करता है कि दुःख, दंभ, ईर्षा, युद्धलिप्सा में जीनेवाले लोगों का विनाश होगा और समाज में मानवता की भावना का उदय होगा, लोगों में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना जागृत होगी हर व्यक्ति के मन में मित्रत्व-अपनत्व की भावना बढ़ जाएगी। कवि 'द्वार देख आओ तो' इस गजल में कहता है-

मेघ छट जायँगे आता है अरूण आए भी,
यह त्रिलोचन प्रतीक्षित मुहूर्त आया है।[24]

जीवन के कालिमा से भरे हुए मेघों को दूर करने के लिए प्रयास करने की प्रेरणा देते हुए कवि कहता है-

कालिमा आज और ज्यादा है,
अभी चिंता कर इसे धोने की।[25]

त्रिलोचन ने गज़लों के माध्यम से समाज में भरी कटुता का वास्तविक

चित्र प्रस्तुत किया है। कवि को लगता है कि जो व्यक्ति ईमानदारी, सच्चाई के रास्तों पर चलता है उसे ठोकरें खानी पड़ती है और जिसके पास पैसों का बल है, वह बड़ी शान की जिंदगी जीता है। कवि 'सोच कर के खाम होता है' में कहता है-

काम उसका नहीं अटकता है
जिस की अंटी में दाम होता है।(26)

त्रिलोचन ने उच्चवर्ग का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कवि व्यंग्य करते हुए कहता है कि सेठ-साहूकारों को चिंता लगी रहती है कि कैसे दुनिया का सारा माल हड़प सकें। हमारे समाज की व्यवस्था ही ऐसी है जहाँ गरीब व्यक्ति को रोटी, कपड़ा, मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए श्रम करना पड़ता है, वहाँ उच्चवर्ग का व्यक्ति विलासमय जीवन को व्यतीत करता है। आर्थिक अभाव, बिगड़े हुए दिन, जीवन के त्रासद क्षणों को केवल अकेले ही सहना पड़ता है, उन एकाकी क्षणों में कोई भी साथ नहीं देता। सामान्य व्यक्ति की त्रासदी यह है कि वह सबकुछ चुपचाप खुली आँखों से देखें और सहें। 'कोई जहर पिलाए जाए' गजल में उपरोक्त बातों को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है-

फटकार सहे, मार सहे, जो पड़े सहे
दुर्दिन से असंतोष दुखी क्यों किया करे
स्वामी को सीख कौन दे आखिर वह स्वामी है
सेवक का काम सेवा है समझा दिया करे-(27)

कवि को लगता है कि यह हमारे समाज का यथार्थ है कि यहाँ हर व्यक्ति अपने स्वार्थ की आपाधापी में लगा हुआ है। हर कोई अपने लाभ के बारे में सोचता है। हर एक व्यक्ति दूसरों के पैरों को खींचकर आगे बढ़ना चाहता है। आज हम मूल्य हनन की स्थिति से गुजर रहे हैं, इसे त्रिलोचन ने 'चलने को हम भी चलते हैं' इस गजल में स्पष्ट किया है और कहा है-

चलने को हम भी चलते हैं औरों से कम नहीं
अफ़सोस है तो बस यही सच्चे कदम नहीं।(28)

ऐसे माहौल में व्यक्ति एकाकीपन महसूस करता है। 'इन आँसुओं को बार-बार कोई क्या करे' इस ग़ज़ल में कवि ने आधारहीन व्यक्ति का चित्रण किया है। मगर कवि को आशा भी है कि ऐसा व्यक्ति जो जीवनरुपी समुद्र के संघर्षों में डूब रहा है, उसे शायद कोई किनारा मिल जाए।

केवल जीवन की यथार्थ स्थितियों का वर्णन करके कवि रूकता नहीं है बल्कि समाज में बसे लोगों को जीवन के मर्म के बारे में भी बताता है। कवि का मानना है कि सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रकाश-अंधेरा यही जीवन का क्रम है।

जीवन में कभी स्थिरता नहीं होती। साथ ही कवि को यह भी अवगत है कि जिसने जीवन में दुःखों को सहा है, वह औरों के दुःखों को बेहतर ढंग से समझ सकता हैं। आग के ताप को महसूस करने पर ही उसकी दाहकता का अंदाजा होता है, झंझावातों से घिरा हुआ व्यक्ति ही उसकी भयंकर स्थितिको समझ सकता है। इसलिए कवि लोगों से कहता है-

मनुज मिट मिट के बनता है कभी बन बन के तनता है
सचाई देख पाओगे जो वज्राघात में आओ।(29)

'रुका कब किसी दिन पवन चल रहा है' में संदेश देते हुए कवि कहता है कि मनुष्य को संकटों का ड़टकर मुकाबला करना चाहिए। जीवन में विपरीत स्थितियाँ तो आती ही रहती है लेकिन मनुष्य का कर्तव्य है कि वह हार न मानते हुए निरंतर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो।

डरें तो डरें संकटों से कहाँ तक
भले इस समय व्यर्थ कर बल रहा है।(30)

हमारे समाज का यह दुखद पहलू है कि जीवन सभी के लिए सुखकर नहीं है। दुःखी व्यक्ति के प्रति कवि के मन में सद्भावना और शुभाकांक्षा है। लेकिन कवि को पता है कि केवल इसी से काम नहीं चलता। इसलिए कवि 'अपनी मंजिल' में कहता है-

'यत्न कर यत्न, यों पूजा पै बैठ जाने से,
संकट आए हैं, नहीं इस से टला है कोई।(31)

त्रिलोचन ने भी अपने जीवन में कठिन रास्ते को ही अपनाया था। इस कठोर डगर पर चलते हुए उन्हें बहुत कुछ जानने का अवसर प्राप्त हुआ। उनका अपना मानना है कि व्यक्ति में एकाग्रता और महत्त्वाकांक्षा हो तो असाध्य कार्य को भी साध्य किया जा सकता है, इसी दृढ़ संकल्प के द्वारा त्रासद क्षणों को खत्म किया जा सकता है। ऐसे रास्तों पर चलते समय हमेशा अच्छे अनुभव मिले- सफलता अर्जित हो, यह आवश्यक नहीं है, कभी-कभी व्यक्ति को विष-पान भी करना पड़ता है। लेकिन कवि को विश्वास है कि जीवन-संघर्ष व्यक्ति के अंतस को और अधिक मजबूत करता है। इन्हीं विचारों को कवि ने 'सर्वमय होने से' इस गजल में व्यक्त किया है। कवि कहता है-

सिंधु को तैर कर जो आया है
उस के आगे कोई नदी क्या है?(32)

'गुलाब और बुलबुल' की भाषा का विश्लेषण करते हुए कह सकते

हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लें उर्दू में नहीं, हिन्दी में लिखी गयी है। इसलिए उनकी ग़ज़लों में उर्दू का उर्दूत्व नहीं बल्कि हिन्दी का हिन्दीत्व दिखायी देता है। 'कलेजे का दु:ख' का उदाहरण देखिए-

नहीं गाँठ जिस के हृदय की खुली,
व क्या प्रेम धारा में बह जाएगा।(33)

यहाँ वे लिखते समय हृदय के लिए दिल या प्रेम के लिए इश्क जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करते। साथ ही यह कहना गलत होगा कि वे केवल शुद्ध साहित्यिक हिन्दी का उपयोग अपने इस मजबए (संग्रह) में करते हैं। कहीं-कहीं उर्दू के शब्दों का प्रयोग मिलता है लेकिन फिर भी उनके गजलों का अंदाज-ए-बयान शायरी जैसा नहीं है।

मजहर इमाम का कथन है- ''त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लें बहुत उँची न सही, लेकिन एक खास मेयार को जरुर बरकरार रखती हैं। हो सकता है उर्दूवालों को इन ग़ज़लों में कोई ताजगी और नयापन न महसूस हो, लेकिन हिन्दी को उर्दू ग़ज़ल की नरमी, लताफत और नफासत का थोड़ा बहुत एहसास दिलाने में त्रिलोचन शास्त्री जरुर कामयाब रहे हैं।''(34)

प्रस्तुत गजल-संग्रह के नामकरण 'गुलाब और बुलबुल' में कवि ने प्रतीकात्मक शैली का उपयोग किया है। इसमें कवि ने काफिया(ध्वनि समानान्तता) और रदीफ (पद समानतन्तता) का उपयोग किया है। 'हाथ और पाँव जिसका चलता है' 'दिन जो आलस अकाज का ही है' में काफिया और रदीफ का प्रयोग प्राप्त होता है। मगर बहुत सारे आलोचक ऐसे है जिन्होंने त्रिलोचन के गजल के रुप-विधा की आलोचना की है।

अंत में मैं डॉ.पे.जी.गंगवार के वक्तव्य के माध्यम से अपनी बात समाप्त करती हूँ। उनका कथन है - ''त्रिलोचन के शेरों को देखकर लगता है कि जैसे मानो उन्होंने भाषायी विपयन के द्वारा गद्य के सीधे-सीधे वाक्यों को पद्यात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया हो। इतना सब कुछ होते हुए भी हिन्दी ग़ज़ल के उत्थान में उन्होंने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है उसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता।''(35)

3. 'दिगन्त' (1957)

'दिगन्त' काव्य-संग्रह में 57 सॉनेट हैं। यह काव्य संग्रह कवि शमशेर को समर्पित है। नामकरण के अनुसार कवि ने दिग-दिगन्त के विषयों का चुनाव किया है जिसमें सामजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, धार्मिक, प्रेम एवं प्रशस्तिमूलक,

व्यंग्यात्मक, आत्म-वेदनात्मक, चित्रात्मक, संगीतात्मक, प्राकृतिक आदि परिदृश्यों को कवि ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं।

कवि ने प्रस्तुत संग्रह में बदलती हुई सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए व्यक्तिवादी मनोवृत्ति को दर्शाया है। आधुनिकीकरण के कारण व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के बारे में ही सोचता है, उसकी पूर्ति के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है; झूठ, अन्याय, अत्याचार आदि का सहारा लेता है। साँस-साँस में घृणा और द्वेष की भावना भरी पड़ी है; सच्चाई के रास्ते पर चलनेवाले को मूर्ख कहा जाता है, सफलता ही सार्थकता बन गयी है। इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि 'दिनों की फेरी' में कहता है कि आजकल अच्छाई बुराई के घर पानी भरती है। कवि को इस बात का दु:ख है कि हर व्यक्ति झूठ का मुखौटा पहनकर जीता है, वास्तविक करूणा किसी के भीतर पैदा नहीं होती। सामाजिक यथार्थ का चित्रण 'गाओ' इस सॉनेट में देखिए -

देख रहा हूँ व्यक्ति-समाज-राष्ट्र की घातें
एक दूसरे पर कठोरतर, थोथी बातें
संधि-शांति की विजयी है दल दंभ त्वेष का (36)

'लाश' सॉनेट में कवि विंध्यपाद में देखी हुई लाश और उस घटना का वर्णन करते हुए सोच में पड़ जाता है कि समाज में यह सब क्यों हो रहा है? उस व्यक्ति का इस प्रकार से दारुण अंत क्यों हो गया? इन्हीं बीभत्स स्थितियों के कारण कवि ग्रामीण जीवन की संस्कृति की ओर देखता है। क्योंकि कहीं न कहीं रागात्मक जीवनानुभूतियों की हमें आवश्यकता है। 'भौजी' सॉनेट में कवि ने ग्रामत्व को अबाधित रखने का प्रयास किया है। ग्रामीण जीवन में भौजी का स्थान, उसके साथ खेली जानेवाली होली के द्वारा कवि बिगडी हुई स्थितियों में भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता की रक्षा करने की बात करता है।

कवि की रचनात्मकता का परिचय भाषा की लहरें, अपराजेय, कस्मै देवाय आदि सॉनेटों में प्राप्त होता है। कवि के अनुसार रचनाकार (साहित्यकार) भाषा के शस्त्र से असंभव को भी संभव कर सकता है। अत: कवि कहता है -

भाषा की अंगुलि से मानव हृदय रो गया
कवि मानव का, जगा गया नूतन अभिलाषा
भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है-(37)

कवि अपने कविकर्म के प्रति सजग है। कलम के शस्त्र का उपयोग

त्रिलोचन कल्मष को धोने, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए करते हैं। कवि उनके लिए लिखता है जो अपने जीवन में संघर्षरत है, सफलता पाने के लिए जो पगडंडी के रास्ते का इस्तेमाल नहीं करते। कवि नए युग के उद्गाता को अभिवादन करता है। त्रिलोचन को पूरा विश्वास है -

भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय।(38)

कवि की सर्जनशीलता का और एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कवि बड़े ही स्वाभाविक ढंग से व्यक्तिगत अनुभूतियों को प्रकट करता है जिसका कविता के माध्यम से सामाजिकीकरण होता है।

शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं - ''हजारों बार घरगृहस्थी के जुए ने उनके कंधे मचमचाए, हजारों बार त्रिलोचन इससे छूटकर भागने-भागने को हुए, किन्तु कभी उनके भीतर का बँधुआ छुट्टे पर हावी रहा तो कभी छुट्टा बँधुए पर। दोनों में अकसर एकान्त में 'रमरमी' होती रहती है।''(39)

कवि 'दिगन्त' संग्रह के 'छुट्टा-बँधुआ' सॉनेट में कहता है -

छुट्टा-बंधुआ दोनों जीवन में हारे हैं
साक्षी दिन का रवि है तो निशि के तारे है।(40)

त्रिलोचन ने अपने व्यक्तिगत जीवन में केवल तकलीफें झेली हैं, कठिन परिस्थितियों का सामना किया है। कभी-कभी व्यक्ति चौराहों पर खड़ा रहता है जहाँ से उसे केवल लंबे-लंबे मार्ग दिखाई देते हैं मगर अपने गंतव्य की ओर ले जाने वाली मंजिल दिखाई नहीं देती। इसलिए त्रिलोचन इन विपद स्थितियों में घिरकर स्वयं को 'पथ का रजकण' कहते हैं। कवि ने स्वयं दुःख झेला है। इसलिए दुःखी व्यक्ति के दर्द को वह पहचान लेता है। ऐसे में तुरंत ही उसका मन द्रवित हो जाता है। कवि को लगता है कि दूसरों की परेशानियों को दूर करने के लिए उसके पास धन तो नहीं है लेकिन वह ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति तो रख सकता है। वह 'विचार' इस सॉनेट में अपने इन्हीं विचारों को प्रकट करते हुए कहता है -

सचमुच, सचमुच, मेरे पास नहीं है पैसा,
वह पैसा जिससे दुनिया-धन्धा होता है
तो क्या, दिल तो है, ऐसा दिल जिसमें दिल का
ठीक ठीक प्रतिबिंब उतर आता है, जैसा
दर्पण में जब तब होता है, क्यों रोता है?
पैसेवाला रह जाता है केवल छिलका-(41)

अभावमय जीवन के कारण कहीं-कहीं पर कवि खीझ उठता है, तेली

के बैल सरीखे जीवन से नफरत भी करता है। मगर उसी हताशा में डूबे रहना त्रिलोचन को स्वीकार नहीं है। प्रयोगवादी कवि जहाँ घोर व्यक्तिवादी विचारधारा में जकड़े हुए थे, वही त्रिलोचन 54 में जीवन को पूरी जीवंतता के साथ जीने के पक्ष में है। अपनी बातों को पुष्टि देने के लिए कवि कहता है कि जब सूरज आकाश में उदित होता है तब वह एकाकी रहता है लेकिन अपने प्रकाश से सारी पृथ्वी को नवीन प्राण देकर चला जाता है। जीवन की वास्तविक खोज करते हुए कवि 'जीवन-सागर' में कहता है -

मैं अपने एकाकीपन से उब गया था,
उब गया था, उब गया था, आखिर भागा,
अगले क्षण जीवन-सागर में डूब गया था-(42)

'दिगन्त' काव्यसंग्रह में व्यंग्यात्मकता का पुट भी पाया जाता है। डॉ. भगवान सिंह, 'त्रिलोचन : एक कवि एक प्रश्नचिह्न' में कहते हैं - ''त्रिलोचन की सबसे अनूठी चीज है, उनका व्यंग्य। यह गहरी पीड़ा से उठनेवाला व्यंग्य है जो कहीं तो कबीर का तेवर लेकर उभरता है और कहीं गालिब का। त्रिलोचन के प्रिय कवि हैं भी तो कबीर, तुलसी, गालिब और निराला। यह व्यंग्य अपने आप पर चोट करता हुआ शुरू होता है, पर वह जो आत्मदैन्य से नहीं आत्मविश्वास से पैदा होता है और जो हजार अभावों के बीच भी आदमी को सँभाले रहता है और आगे बढ़ने का साहस देता है। (43)

त्रिलोचन के 'रोटी', 'जगदीशजी का कुत्ता', 'आया है वह तिलमिलानेवाला' आदि सॉनेटों में व्यंग्यात्मकता की ध्वनि पायी जाती है। समाज की कटु स्थितियों पर व्यंग्य करते हुए भी कवि अट्टहास करने के लिए कहता है -

अट्टहास कर, अट्टहास कर, अट्टहास में
मन को गड़नेवाले दर्द डूब जाते हैं-(44)

प्रस्तुत संग्रह में त्रिलोचन शास्त्री की प्रेमसंबंधी दृष्टि में अनेक घरेलु लह्में प्राप्त होते हैं, उनका प्रेम बहुत ही सात्विक है। प्रेम मे भावों की उत्कटता है, उच्छृंखलता नहीं। कवि के अनुसार प्रेम एक सहज कोमल अनुभूति है जो बिन बुलाए ही मन में घर कर बैठती है जिसके कारण रोम-रोम में स्पंदन पैदा हो जाता है। परंतु कवि की यह अनुभूति नितांत वैयक्तिक है। वह कहीं भी भावों का प्रदर्शन करने के हक में नहीं है।प्रिया का निवास कवि की अन्तःश्चेतना में रहता है। अतः कवि 'तुम्हें चाहता हूँ ' में कहता है -

पहलेवाले
प्रेमी अभिनय-कुशल अवश्य हुआ करते
कवियों की रचनाओं में सैंकडों हवाले
तुम्हें मिले होंगे, वे सब जीते-मरते
स्वेच्छापूर्वक उन लोगों का निपट-निराला
कौशल मेरे पास कहाँ? हूँ ममतावाला (45)

कवि के मन में समस्त संसार के प्रति अनुराग है। वह 'बिल्ली के बच्चे' के प्रति भी प्रेम की भावना रखता है। क्योंकि कवि का मानना है कि 'प्यार करो तो प्यार करो, क्या आगा-पीछा' कारण यह है कि प्यार करने से उसमें और बढ़ोतरी होती है।

प्रेम की रागात्मकता से भाव-विभोर होनेवाला कवि भला वियोग की दाहकता से कैसे वंचित रह सकता है? अत: कवि को जब अपनी प्रिया का वियोग सहना पड़ता है तब कविता के माध्यम से वह अपने एकाकीपन को प्रकट करते हुए किसी समय व्यतीत किए हुए सुखद क्षणों का स्मरण करता है। 'वह अंजोरिया रात' का उदा. द्रष्टव्य है-

वह नदी है, वही रात है, किन्तु अकेला
अब मैं ही हूँ, पहले की सुधियों से खेला (46)

'दिगन्त' में कवि ने प्रकृति चित्रण के अंतर्गत वर्षा ऋतु के कारण संपूर्ण प्राकृतिक वातावरण में जो परिवर्तन दिखाई देता है, उसका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इंद्रधनूष का दिखाई देना, मोर- मोरनियों का नृत्य, मजूरिनों का प्रफुल्लित होना सभी ओर फैली हरियाली आदि के कारण कविता पढ़ते-पढ़ते बिना वर्षा ऋतु के भी मन भीग जाता है। भादों की रात का वर्णन करते समय छक्-छक्, सर्-सर् आदि शब्द-प्रयोगों के द्वारा मानस पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। 'मेहंदी और चाँदनी' सॉनेट में कवि ने प्राकृतिक परिदृश्यों को सटीक शब्द प्रयोगों के द्वारा जीवंतता लाने का प्रयास किया है। कवि का अनुभव देखिए -

वर्षा-सीकर-भरी हवा, मेहंदी की मँह मँह
जी करता है, मैं अंजलि भर भर पी जाऊँ
जैसे फूल सुँघनी गाती है वैसे गाऊँ (47)

प्रस्तुत संग्रह में कवि ने कुछ व्यक्ति चित्र भी खींचे है। उन व्यक्ति चित्रों के अंतर्गत तुलसी, कबीर, गालिब, माओं आदि के व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। इसमें कवि ने उपर्युक्त रचनाकारों की साहित्यिक विशेषताओं को व्यंजित करते हुए

अपने जीवन पर पड़े उनके प्रभाव को परिलक्षित किया है। तुलसीदास के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कवि 'तुलसी बाबा' में कहता है -

तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी
मेरी सजग चेतना में तुम रमें हुए हो
कह सकते थे तुम सब कड़वी, मीठी, तीखी
प्रखर काल की धारा पर तुम जमे हुए हो (48)

रचनाकार शब्द, अर्थ, कल्पना, भाव, शैली आदि विभिन्न रंगों के द्‌वारा एक चित्र बनाता है और समाज को उद्‌वेलित करने का प्रयास करता है। कवि त्रिलोचन 'चित्र' इस सॉनेट में स्वयं को चित्रकार के रुप में संबोधित करते हुए कहते हैं-

मैं जीवन का चित्रकार हूँ चित्र बनाता
घूम रहा हूँ, मन ही मन कल्याण मनाता (49)

'दिगन्त' में कवि ने आम बोल-चाल की सरल भाषा का उपयोग किया है। हरिनारायण व्यास के अनुसार, ''कवि ने अपनी भाषा में भावों को ढाला है, भावों को भाषा पर हावी नहीं होने दिया। बोलचाल के शब्दों में उँची किस्म की कविता लिखना टेढी खीर है लेकिन त्रिलोचन शास्त्री को इसमें पूरी सफलता मिली है।'' (50)

दिगन्त के कुछ सॉनेटों में संगीतात्मकता पायी जाती है। 'नया वर्ष' का उदाहरण द्रष्टव्य है -

नया वर्ष आया है, माथे पर होली की
भस्म लगाये, अंगों में बहार रंगों की
छाई है, अमराई में नूतन ढंगों की (51)

'प्राणों का गान' में कवि ने कपोत के बिंब को लेकर अपनी रागात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत संग्रह का मूल्यांकन करने के बाद यह ज्ञात होता है कि मलयज द्‌वारा 'दिगन्त' संग्रह पर किया गया कथन अक्षरश: सार्थक है। मलयज लिखते है - ''त्रिलोचन इसी औसत भारतीय आदमी के चितेरे हैं। वे मानव अनुभूतियों की विशिष्टता के नहीं, मानव अनुभूतियों की मार्मिकता के कवि हैं। वे अनुभूति की जटिलता को नहीं, उसकी संपन्नता को पकड़ते और अपनी कला में साधते हैं। वे मानव मर्म के किसी नये स्तर का उद्‌घाटन नहीं करते, वरन जीवन-जगत की आपा-धापी में जो सहज-मानव सत्य आँख की ओट हो गये हैं, उन्हें एक नयी और विश्वसनीय पहचान के साथ हमारे सामने लातें हैं।'' (52)

4. ताप के ताए हुए दिन (1980)

त्रिलोचन का तृतीय काव्य संग्रह 'ताप के ताए हुए दिन' 1980 में संभावना प्रकाशन (हापुड़) से प्रकाशित हुआ जिसमें संकलित कविता ओं का संग्रह राजेश जोशी ने विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से किया। प्रस्तुत काव्यसंग्रह का नाम 'ताप के ताए हुए दिन' भी उन्हीं के द्वारा सुझाया गया। इसमें छोटी कविताएं , सॉनेट एवं लंबी कविताओं को क्रमशः स्थान दिया गया है। छोटी कविताओं एवं सॉनेटों में एक ओर जहाँ प्रकृति चित्रण है तो वहीं दूसरी ओर प्रकारांतर से सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। इस संकलन के अंत में ''मैं तुम'', ''नगई महरा'' ''चित्रा जांबोरकर'', ''छोटू'' आदि लंबी कविताओं का समावेश किया गया है जिसमें 'नगई महरा' कविता को काफी ख्याति मिली।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि त्रिलोचन प्रकृति के प्रेमी हैं। वे प्रकृति के अनेकानेक रंगों को उकेरते हुए उसे जीवन से जोड़ने का प्रयास करते हैं। कहीं-कहीं वे प्रकृति की दयालुता और परोपकारिता का गुण देखकर लुब्ध हो जाते हैं और कहते हैं कि

मनुष्य ने सुना और आखिर उसे बाँध लिया,
बाँधकर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है। (53)

कवि ने ऋतुओं के परिवर्तित रुप का चित्रण करते हुए किसान की मन:स्थितियों का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया है कि प्रकृति किस तरह हमारे लिए उपयोगी है। 'कोई हरियाली फिर' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

जीवन जड़ के ऊपर छा गया
जहाँ रंग न था रंग आ गया
बरसती धरती ने
साज सजे धानी (54)

वर्षा के विविध रुपों का बड़ा ही मनोहारी वर्णन 'बरसाती रात' इस कविता में किया गया है जिसमें बूँदों का टपकना, पानी की कल-कल की ध्वनि आदि बातें सम्मिलित हैं। कवि केदारनाथ अग्रवाल के अनुसार ''उनकी कविता एक शांत गंभीर मैदानी नदी की तरह है, जिसमें उद्वेलन हमेशा कहीं बहुत गहरे होता है। सतह

की खामोशी से पाठक कई बार धोखा खा जाता है।''(55)

प्रकृति का चित्रण करनेवाले कवि के लिए यह आवश्यक होता है कि वह प्राकृतिक संवेगों को आत्मसात करें अन्यथा वह कविता मर्मस्पर्शी नहीं बन पाती। त्रिलोचन की कविताओं की विशेषता यह है कि प्रकृति उनकी कविताओं में सायास नहीं बल्कि अनायास आती है और वह भी अपनी स्वाभाविकता में। वे अपनी कतिपय कविताओं में प्रकृति का ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं कि अमूर्त भी मूर्त हो उठता है।त्रिलोचन लिखते हैं -

पवन
शाम बीतने पर
बँसवारी में
छिपकर आता है
रुक-रुककर
बाँसुरी बजाता है। (56)

कवि इन सुखद अनुभूतियों को संजोकर उसी में लीन होना चाहता है। जीवन में उसकी कोई उच्चाकांक्षा नहीं है, केवल इतनी सी अभिलाषा है कि उसका दिन सहज ढले। शांति से आम के पेड़ के तले घास पर बैठे, मन चाही बातें करे, सारी चिंताएँ लुप्त हो जाए, जीवन में एक नयी आभा-उल्लास हो। कवि अपने स्व में ही केंद्रित न रहकर सबके हित की कामना करता है।

इन छोटी-छोटी कविताओं में कोरा प्रकृति वर्णन नहीं है बल्कि इसमें मानव जीवन की रागात्मक मनोवृत्तियाँ एवं सामाजिक यथार्थवाद को भी अभिव्यक्त किया गया है।

त्रिलोचन ने प्रस्तुत काव्यसंग्रह के सॉनेटों के माध्यम से सत्ताधारी वर्ग, पूँजीपति वर्ग की शोषण की प्रवृत्ति का प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रण किया है। त्रिलोचन बताते हैं कि किसान जीवन के प्रति आस्थावान रहता है कि उर्वर धरती पर परिश्रम करने के बाद उसे उसके मेहनत का उचित फल मिलेगा लेकिन यह विश्वास बटाई में खंड-खंड हो जाता है। उच्चवर्ग-जमींदार किसानों का 'अधिया' के नाम पर शोषण करते हैं। किसान परंपरा के रुप में जमींदार के शोषण को चुपचाप सह लेता है। परंतु कवि का मानना है कि काठ की हाँडी दुबारा नहीं चढ़ाई जाती। भात का पसावन (माँडी) उसकी चमक बढ़ाता है, माँडी के उबलने पर हाँडी का काठ दिखाई नहीं देता लेकिन कपड़े से माँडी के चले जाने के बाद हाँडी का वास्तविक रुप दिखायी देता है। उसी प्रकार किसान को भी जमींदार का वास्तविक रुप दिखायी देता है। लेकिन

दुर्भाग्य तो यह है कि शोषण करनेवालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

त्रिलोचन सॉनेटों के माध्यम से यह भी स्पष्ट करते है कि आज केवल शोषण की प्रक्रिया में अंतर आ गया है लेकिन शोषण करने की प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पहले गाँवों में जमींदार किसानों का शोषण करते थे और आज शहरों में मालिक मजदूरों का तथा भ्रष्ट नेता समाज में लोगों का शोषण कर रहे हैं। 'गधे की मौत' इस कविता में कवि ने पूँजीपति वर्ग का व्यंग्यात्मक रुप से चित्रण किया है जिसमें वह अपने गधे की मौत से दु:खी होता है। लेकिन इस दु:ख में गधे के प्रति ममता का भाव नहीं है। उसे दु:ख इस बात का है कि नया गधा आने पर पुन: उसे सिखाना पड़ेगा। कवि इस कविता में शोषित मानव को गधे के रुप में चित्रित करता है। शोषण की यह प्रक्रिया आज भी विद्यमान है जिसमें मानवीय मूल्य नाम की कोई चीज नहीं होती।

आजादी के बाद लोगों ने सोचा था कि अब पुन: रामराज्य आ जाएगा। रोटी, कपड़ा, मकान आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाएगी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद हमें मोहभंग की स्थिति से गुजरना पड़ा। ऋण के बोझ के तले खेतिहर किसान कालांतर में भूमिहीन बन गया। अत: उसे अपने उदर-भरण के लिए शहरों का आश्रय लेना पड़ा। अपने परिवार बच्चों से दूर गरीब किसान मजदूर बन गया। 'आरर डाल' कविता के माध्यम से परदेसी मजदूर की त्रासदी का जो विदारक चित्र प्रस्तुत किया है वह त्रिलोचन की कविता की विशेषता है। त्रिलोचन कहते है-

इस उस पर मन दौड़ाना फिर उठ कर रोटी
करना, कभी नमक से कभी साग से खाना,
आरर डाल नौकरी है, यह बिल्कुल खोटी
है, इसका कुछ ठीक नहीं है आना आना।(57)

किसान हताशा की स्थिति में निरूपाय होकर शहर में चला जाता है लेकिन संवेदनात्मक रुप से वह गाँव से जुड़ा रहता है जिसे त्रिलोचन ने 'घर वापसी' कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। रेल से सफर करते हुए कवि के मन में अपने ग्रामीण परिवेश की झलकें आँखों के सामने आने लगती है। गाँव की मिट्टी, बाग, हरियाले खेत आदि के सुखद स्पर्श को वह अनुभव करता है, उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। वह स्मृतियाँ ही है जिसके कारण वह अपने कटु अनुभवों को भूला बैठता है, वह इन सुखद स्मृतियों में ही खोना चाहता है।

प्राकृतिक उपादानों से अपने मन को सराबोर करनेवाले कवि त्रिलोचन को इस बात का दु:ख है कि उनकी कृतियों को उनके समकालीन साहित्यकारों ने

समझने की कोशिश नहीं की। कवि ने बड़ी ही ईमानदारी के साथ कोशिश की कि साहित्य के द्वारा समाज में परिवर्तन लाया जाए, ऐसे साहित्य की सर्जना करे जिसमें सभी रच-बस जाए, इसलिए कवि 'अपना हो घर' कविता में कहता है-

महल खड़ा करने की इच्छा है शब्दों का
जिसमें सब रह सकें रम सकें लेकिन साँचा
ईंट बनाने का मिला नहीं है, शब्दों का
समय लग गया, केवल काम चलाऊ ढाँचा
किसी तरह तैयार किया है। (58)

त्रिलोचन की लंबी कविताएँ

प्रस्तुत काव्य संग्रह की त्रिलोचन की पहली लंबी कविता है 'मैं तुम'। इस कविता के माध्यम से कवि कहता है कि आज का पाठक साहित्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को नहीं निभाता। वह अपने जीवन और उससे जुड़ी विपदाओं को मध्य में रखकर जीवन को विश्लेषित करने के साथ उसे परिचालित करने के माध्यमों को तलाशता है और उसी में अपना पूरा जीवन व्यतीत करता है। वह समाज के प्रति अपने दायित्व को स्वीकार नहीं करता। लेकिन कवि भी एक सामान्य व्यक्ति है तथा उसे भी अपने जीवन में सांसारिकता को निभाहना पड़ता है, फिर भी वह अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करता है।

इस तुम में एक तुम वह है जो मजदूरी-मेहनत करता है जिसके कारण समाज का विकास होता है। इसलिए त्रिलोचन कहते हैं-

और यह भी जानता हूँ-मानव की सभ्यता,
तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रुप पाती है।(59)

इस तुम में एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने वैयक्तिक स्वार्थों को प्राप्त करने के लिए सिद्धातों का मात्र उपयोग करते हैं।

प्रस्तुत काव्यसंग्रह में अन्य लंबी कविताओं का भी समायोजन किया गया है जिनमें बहुचर्चित कविता है 'नगई महरा' । इस कविता के संबंध में केदारनाथ सिंह कहते है-''बाह्यत: इस कविता के मंच पर कुछ भी नाटकीय या महत्वपूर्ण घटित होता हुआ नहीं दिखायी पड़ता। पर सीधे सपाट शब्दों के पीछे एक समूची दुनिया है जहाँ बिना किसी घोषणा के चुपचाप एक पूरा युद्ध लड़ा जा रहा है-बहुत कुछ होरी के जीवन युद्ध की तरह। त्रिलोचन की कविता में भाषा के विविध धरातल

मिलते हैं, पर ''नगई महरा''की जमीन पर आते ही जैसे उनकी भाषा अपने घर में आ जाती है। फिर भाषा का सारा बाह्य रचाव-यहाँ तक कि शब्दों का मुखर संगीत आवेग और तनाव भी अपने आप खत्म हो जाता है।''(60)

नगई महरा अपने संपूर्ण व्यक्तित्व में धार्मिक है, आंतरिक शुचिता उसमें है लेकिन शादी के द्वारा बिरादरी का नियम तोड़ने के कारण उसे पंचों को खुश करना पड़ता है। पूरी कविता सरल शब्दों में सांकेतिक रूप से ग्रामीण जीवन की रूढ़ियों को प्रकट करती है।

''चित्रा जांबोरकर'' एवं ''छोटू'' कविता के द्वारा कवि ने बाल जीवन की निष्कलंकता को रेखांकित किया है।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि प्रस्तुत काव्यसंग्रह को पढ़ लेने के उपरांत पाठक कहीं ताप के कारण पैदा हुए उमस से व्याकुल होता है, तो कहीं ताप के कारण मन में व्यंजित शीतलता के स्वप्न से भावविभोर हो जाता है।

5. शब्द (1980)

मनुष्य शब्दों में जीता है। शब्द उसके लिए प्राणवायु के समान हैं। जीवन में शब्दों की आवश्यकता को दर्शाता हुआ यह काव्य-संग्रह 1962 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें कुल मिलाकर 117 सॉनेट अपनी बहुवर्णी विशेषताओं के साथ संकलित हैं। त्रिलोचन के शब्दों में जीवन का स्पंदन है। अत: कवि कहता है -

''शब्दों में भी हाड मांस है, जीवन धर कर
वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र संभाले
स्फुट, अस्फुट दो धाराओं में प्रवाहमान हैं
रात और दिन - द्यावापृथिवी में विचरण कर
झलकाते हैं दुनिया के सब खेल निराले'' (61)

वास्तव में मानव ने आचार और विचार के आदान-प्रदान के लिए कुछ चिह्न बनाए, तदुपरांत यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों का निर्माण किया। शब्दों के द्वारा व्यक्ति भावानुसार अपने अभिप्रेत अर्थ को अभिव्यंजित करता है, केवल आवश्यकता होती है संप्रेषण की। त्रिलोचन कविता में शब्दों के द्वारा पाठकों के साथ सीधा संपर्क स्थापित करना चाहते हैं, इसलिए जाने हुए शब्दों का चुनाव करते हैं और अपनी भावनाओं को प्रकट करते हुए कहते भी हैं कि

''जाने हुए शब्द भी मैं प्राय: चुनता हूँ

अपने अंतर्गत अर्थों में अभिप्रेत ध्वनि
वर्ण-तरंगों में लहराती है, कानों की
संवेदना विदित है मुख को पर सुनता हूँ
असंबद्ध उत्तर, कैसी हो गयी है अवनि
क्या भाषा को चाह नहीं है संध्यानों की '' (62)

त्रिलोचन के शब्दों की विशेषता बताते हुए जीवन यदु लिखते हैं -

'कवि त्रिलोचन के लिए शब्द साध्य तो है लेकिन उसका कारण है- शब्द-शब्द में व्यंजित जीवन की तलाश में कवि भटका करता है।' उसकी यह आकुलता समझ भी नहीं समझ सकी। तात्पर्य यह कि शब्द साध्य होकर भी अंततः मनुष्य जीवन को तलाशने, उसकी सही-सही पड़ताल करने और उसे प्रकाश में लाने का साधन है।

त्रिलोचन शब्दों को असहाय नहीं मानते। शब्दों के ओज से हारे-थके व्यक्ति को एक नया बल प्राप्त होता है और वह विकासगामी होता है। परंतु शब्दों द्‌वारा समुचित फलप्राप्ति के लिए कवि को वस्तु और रुप में तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है, इस तथ्य को जानते हुए त्रिलोचन लिखते हैं-

शब्दों के द्‌वारा जीवित अर्थो की धारा
मैंने आज बहा दी है जिसके दो तट हैं
एक भाव का एक रुप का निकट निकट हैं
चाहे दूर दूर दिखते हो जो भी हारा -
थका यहाँ पहुँचेगा वह तन मन में न्यारा
तेज ओज पाएगा, (63)

रचनाकार की सृजनात्मक प्रक्रिया में रचनाकर्मी बाह्य जगत के परिवेश से प्रभावित होता है, उसकी अन्तःश्चेतना किसी विशेष क्षणों में मन को उद्‌वेलित करती है और फिर रचना के रुप में उसका प्रकटीकरण होता है। सार्थक प्रसारण के लिए निश्चित रुप से रचनाकार को (कवि को) भाषा के स्तर पर एक रचनात्मक संघर्ष करना पड़ता है। अपने इस संघर्ष के बारे में कवि कहता है -

शब्दों में उन अर्थो में कैसे लाऊँ
जो आमों की टहनी टहनी में फल बनकर
झूल रहे हैं जंगल में देखा है तन-कर
सिंह किस तरह चलता है किस विधि से पाऊँ (64)

फिर भी त्रिलोचन भाषा के प्रयोग में सफल रहे हैं। परमानंद श्रीवास्तव

'शब्दों में जीवन' इस लेख में लिखते हैं - ''त्रिलोचन ने शब्द की सत्ता की अनोखी पहचान का प्रमाण देते हुए उसमें जो जीवन भरा है वह एक अलग ढंग की चीज है। शब्दों में जीवन भरने के लिए शब्दों में ही नहीं,जीवन में भी धँसने-पैठने की जरुरत होती है। त्रिलोचन के लिए शब्द का अर्थ है जीवन से घनिष्ठ साक्षात्कार''(65)

शब्दों के द्वारा जीवन रुपी लहरों में विचरण करनेवाले कवि को ज्ञात है कि जीवन दु:ख-पीड़ा से भरा पड़ा है। लेकिन कवि लोगों के मन में जीवन जीने की एक नयी आस्था पैदा करना चाहता है। हर मनुष्य की ओर अपनत्व की भावना से देखते हुए उनमें नवीन विश्वास का स्फुरण भरना चाहता है ताकि द्वेष और कुत्सित भावना से भरे समाज में व्यक्ति जीवन के प्रवाह में आगे बढ़ पाए। 'दु:खागार है जगत' में संदेश देते हुए कवि कहता है -

दु:खागार है जगत, फिर भी सुख सपनों का
अंजन आँजे हुए आँख में जो चलते हैं
अपने पथ पर वे सहास मुख यदि पलते हैं
मधुर कल्पना के पलने पर तो अपनों का
अपनापन इसका कारण है। (66)

कवि को प्रतीत होता है कि व्यक्ति कभी-कभी विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करने का साहस खो बैठता है। उसे अपने चारों ओर घोर निराशामय-अंधकारमय वातावरण के अलावा कुछ भी दिखायी नहीं देता। ऐसे लोगों के प्रति कवि के मन में सहानुभूति है, अतएव वह कहता है -

दु:ख से दबे हुए मानव, आ आ, मैं ले लूँ
तेरा सब दु:ख, तू हल्का होकर सिर ताने
आसमान में, इस दुनिया को अपनी माने। (67)

कवि दु:खी व्यक्ति के दु:खों को अपनाकर ही चुप नहीं बैठता वरन् उसे आश्वस्त भी करता है कि भले ही जीवन में दु:ख, अभाव, अवसाद क्यों न हो, लेकिन कभी न कभी वे दुर्दिन अवश्य ही समाप्त हो जाएंगे, जीवन प्रकाशमय होगा, 'कभी न कभी लहर के उपर कमल खिलेगा'।

जीवन की यथार्थ स्थिति से अवगत हो जाने के बाद कवि की दृढ़ मान्यता रही है कि निरंतर संघर्षो के बावजूद व्यक्ति को गतिशील रहना है। इसलिए कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन में जब कभी कोई कठिन प्रसंग आया, तब तब उस चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया है। कवि कहता है

बहती लहरों को ही मैंने प्यार किया है

फिर भी, क्या जाने क्यों, शायद नादानी हो
यह हिसाबियों के हिसाब से, मैंने अपना
बहती लहरों पर ही वार दिया है। (68)

कवि की दृष्टि में कर्मशील होकर निरंतर आगे बढ़ते रहने में ही पुरूषार्थ है। कवि को लगता है कि जहाँ-जहाँ पथ है, वहाँ-वहाँ पथिक तो आएंगे ही, साथ ही पैरों का विचरण भी रूकनेवाला नहीं है - पर्वत,घाटी, नदी, सिंधू, कांतार मौन साक्षी है गति के क्योंकि गति के द्वारा ही व्यक्ति विकासशील होता है, लेकिन विकास के लिए परिवर्तन आवश्यक है। परिवर्तन को अनिवार्य माननेवाला कवि अपने विचारों में बहुत ही प्रगतिशील है। इसी प्रगतिशीलता के कारण त्रिलोचन हवाई उड़ान भरने के बजाए जीवन की वास्तविकता का चित्रण अपनी कविता में करते हुए कहते हैं -

कभी-कभी लगता है कोई अर्थ नहीं है
इस जीवन का, यदि कुछ है तो मार-काट हैं,
हत्या और आत्महत्या है, लूटपाट है,
बलात्कार है, जग में कौन अनर्थ नहीं है,(69)

त्रिलोचन ने अभावमय जीवन की पीड़ा को झेला है, कवि ने अपने इर्द-गिर्द गरीबी से भरे हुए उस जीवन को देखा है जिस घर में एक भी खिड़की न हो जिसमें से हवा-रोशनी आ सकें। कवि ने महसूस किया है कि ऐसी स्थितियों में व्यक्ति को अकेले चुपचाप सबकुछ सहना पड़ता है, सहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहता, जबकि इन्हीं स्थितियों में किसी मजबूत सहारे की जरूरत होती है। इसलिए कवि जब जीर्ण-शीर्ण लोगों को देखता है तो उसका संवेदनशील मन मदद के लिए आगे बढ़ता हुआ गीत गाता है कि

अनजाने और अपरिचित चेहरे अपने जैसे जीते
जीर्ण-शीर्ण मिलते हैं, मैं उनका कर थामे
देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने।(70)

कवि की दृष्टि केवल व्यक्ति और उसके जीवन संघर्ष तक ही सीमित नहीं है बल्कि पूरे समाज में स्थित व्यापक-बृहद समस्या-सांप्रदायिकता की ओर भी उठती है। कवि को लगता है कि हम बिना किसी कारण के ही आपस में लड़ते रहते हैं, वैसे देखा जाए तो मानव-मानव में कोई अंतर नहीं है, हर संप्रदाय के इंसान को रोटी के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है, पेट की भूख एक समान ही रहती है, तो फिर हम क्यों लडे? कवि कहता है -

अच्छा भाई, दाढ़ी चोटी
जो जो चाहो रख लो. गर्म गर्म वह रोटी
जो मुँह में जीवन बनती है, भई रहा क्या
अंतर उस में, इस अभेद को नहीं सहा क्या तुम ने (71)

जैसा कि प्रारंभ में कहा कि कवि प्राप्त परिवेश से प्रभावित होता रहता है, उसी के अनुरुप उसकी मानसिकता बन जाती है, अत: उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ कविता में यत्र-तत्र दिखायी देती है। कभी-कभी व्यक्ति औरों के सामने खुल नहीं पाता, लेकिन कविता एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्‌वारा कवि अपने मन के भीतर के सूने तंतुओ को अप्रत्यक्षरुप से खोल देता है और मन परत दर परत खुलता जाता है। कवि अपने एकाकी क्षणों को पाठकों के साथ बाँटता हुआ कहता है -

उड़नेवाले पक्षी को तो डाल मिल गई
हरे भरे फल वाले तरू की मुझे क्या मिला -
पृथ्वी पर चलता हूँ तो आकाश से गिला
करता हूँ थक जाने पर(72)

कठोर क्षणों में ही व्यक्ति की अग्नि परीक्षा होती है, आँच में तपकर अग्नि की दाहकता का ड़र कम होने लगता है। इन कटु क्षणों में व्यक्ति स्मृतियों के सहारे जी लेता है, लेकिन कभी-कभी स्मृतियाँ भी व्यक्ति को किसी किनारे पर छोड़कर चली जाती है। ऐसे में स्थिति और भी दुभर हो जाती है तब कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं जिनके मन में अनुकंपा रहती नही, बस अपनेपन का ज्ञापन करते हैं, भावों और अभावोंका मापन करते रहते हैं। ऐसे में कवि को जीवन हारा हुआ, एकाकी, अवसन्न लगता है। साथ-साथ कवि को इस बात का भी ज्ञान है कि जीत-हार का अभिनय तो दिन-रात रहेगा। चारों ओर दु:ख देखने के पश्चात कवि कहता है -

जो भी जाने
अनजाने हैं उन सब को जी कर तपना है,
आह सभी की साँसों में है, मेरे लेखे
सुखी कहीं होंगे तो होंगे अनपहचाने(73)

त्रिलोचन के 'शब्द' की और एक विशेषता है - प्रकृति चित्रण। प्रकृति को जीवन के साथ जोड़कर देखने की निराली कला उन्हें ज्ञात है। उनके बारे में जीवन यदु लिखते है - ''अगर यह कहा जाये कि त्रिलोचन शब्द रुपी रंगों के माध्यम से लोक-जीवन की पेंटिंग करते हैं, तो अत्युक्ति नहीं है। उनकी दृष्टि के दायरे में लोक-मानव अपने कर्म के साथ उपस्थित तो है ही, - गाय, बकरी, कुत्ते, अमराई, जीव

आदि भी जीवन-जगत में लोक-रंग भरते हैं।''(74)

संध्या, बादलों का छाना, उनके कारण आसमान के रंगों का बदलना, खगों का कूजन, स्लेटी बादल, पेड़ों की पत्तियों की सरसराहट, सूरज का प्रकाश, नन्हीं दूब, संध्या के बीतने के बाद आती हुई रात, वर्षा का मौसम, धूप के कारण नवीन उर्जा का संचार, सभी ओर फैली हुई हरियाली, मंजरियों की गंध, पक्षियों का उड़कर अपने नीडों की ओर प्रस्थान करना, अपने परिमल को फैलाने के लिए व्याकुल हुए आमड़े के बौर, दोपहर में कपोती का कूजन आदि का सार्थक-सजीव चित्रण 'शब्द' में प्राप्त होता है। 'कृष्ण वर्ण मेघों से' इस कविता में कवि ने प्राकृतिक उपादानों के द्वारा जीवन को, रचनाकार के रचनात्मक बंध को व्याख्यायित किया है। कवि कहता है कि मेघों के कारण उषा की किरणें नही दिख पायी, संध्या भी आई और चली गयी, जी उफनने का कारण अंतर्निहित प्यार है, आश्रय काया है, क्योंकि-

''काया है आधार जगत के संबंधो का
संबंधो का प्रेरक मन है।''(75)

प्रकृति चित्रण में भी कवि सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है जिसके कारण कविता सुनने के बाद गुनगुनाने को जी चाहता है, एक उदाहरण दृष्टव्य है-

पीछे हरियाली है, हरियाली में पीले
पीले फूलों वाली सरसों सजी सजाई
लहराती है, मधुर गंध से बसी बसाई
हवा सरसराती है-(76)

त्रिलोचन के प्रस्तुत काव्यसंग्रह में विशेषत: प्रकृति चित्रण में 'चित्रात्मकता पायी जाती है। 'उड़ते है पारावत' का उदाहरण देखिए -

भरा उजाला छलके
जैसे दिक्-छोरों से कलश गगन का ढलके-
घन ये घूँघट-से लगते हैं किसी भली के -(77)

'शब्द' काव्यसंग्रह में कहीं-कहीं कवि ने तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है तो कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। विशेषत: 'कुछ आँखों से' एवम् 'श्रावण धारासार' इन सॉनेटों में संस्कृतबहुल शब्दों की संख्या अधिक है।

निष्कर्षात्मक रुप से यही कहेंगे कि त्रिलोचन के शब्दरुपी अक्षरब्रह्म को ज्ञात करने के लिए त्रिलोचन की काव्यदृष्टि को आत्मगत करना आवश्यक है, तभी वह मूल्यांकन सकारात्मक हो पाएगा। स्वप्निल श्रीवास्तव ने त्रिलोचन के शब्दों

की समर्पकता को व्यंजित करते हुए लिखा है, ''त्रिलोचन के शब्दों का उचित सटीक प्रयोग और भाषा का गठाव विष्णुचंद्र शर्मा के इस कथन की याद दिलाता है कि त्रिलोचन की भाषा सक्रिय शब्दों का समाज है।''(78)

6. उस जनपद का कवि हूँ

त्रिलोचन द्वारा लिखित 'उस जनपद का कवि हूँ' यह 1981 में प्रकाशित काव्यसंग्रह है । प्रस्तुत संग्रह में उनके106 सॉनेटों का संकलन किया गया है। शीर्षक के अनुसार काव्य संग्रह में सामान्य जनपद का जीवन है जो अपनी सामान्यता में जीवन जीने का प्रयास करता है। आम आदमी को घर गृहस्थी की चक्की में पीसना पड़ता है फिर साहित्यकार-विचारक की छवि पीछे रह जाती है। वह रह जाता है मात्र एक गृहस्थ जिसे अनेक रिश्ते-नातों का निर्वाह करना पड़ता है, आटा-बेसन का भाव जानना पड़ता है और विवश होकर जीना पड़ता है। क्योंकि शिक्षा-विवेकबुद्धि ने यह समझाया है कि चापलूसी मत करो, निष्ठावान रहो लेकिन व्यावहारिक दुनियादारी के बंधनों में जकड़ने के बाद इस दुनिया की रीति कुछ और ही करने के लिए कहती है और सामने आता है एक हताश, मजबूर इंसान। यही आपबीती कवि जगबीती के रूप में व्याख्यायित करते हुए प्रस्तुत-संग्रह में अभिव्यक्त करता है। सुधीश पचौरी के अनुसार, ''कवि को सब कुछ अपने समाज में सुनाई दिखायी पड़ता है। यह एक सघन समाज है जिसमें प्रकृति प्रेम, पीड़ा, अकाल, बादल, गृहस्थ, पेड़, नीम, बिलौरा, नदी, पपीहा, कवि, कविता, भाषा, संघर्ष सब कुछ है और वह इकहरा नहीं है। त्रिलोचन का यह जनपद उसकी भाषा के स्थानीय भोजपुरी स्पर्शों से बनता है, वह कौए के 'रखे' में भी बनता है और पुरानी क्लासिकी भाषा के सामासिक पदों से भी बनता है जिसमें रोने-धोने, हाहाकार करने की गुंजाइश नहीं बनती, जिसमें पीड़ाओं का कथन ऐसा है जैसे चलते चलते सड़क पर कोई ग्रामीण दूसरे से आप बीती आसानी से बिना नाटकीयता के कह डालता है भरोसा करके।''

इस बातचीत में कवि जीवन की कटु वास्तविकता की ओर ईंगित करते हुए कहता है-

ऐसे भी है मनुष्य जन्मे
दुनिया में, जिनको दुर्लभ है कानी कौड़ी
प्यार उन्हें भी मिलता है, सुख का कोलाहल

उन्हें नहीं सुन पड़ता है, विपत्ति ही दौड़ी
दौड़ी उन्हें भेंटती है, करती है विह्वल(79)

कवि में विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर रुप से आगे बढने की अभिलाषा विद्यमान है। परेशानियों का डटकर सामना करने की केवल जिजीविषा ही नहीं बल्कि उत्कंठा भी है इसलिए कवि कहता है कि वह साँसों के द्रुतगामी रथ पर रुकनेवाला नहीं है, संघर्षरत जीवन जीते समय प्रारंभ में मशीन पर बैठकर दिन भर काम करने के बाद बासे पर आकर आराम करने पर पता चलता है कि इस तरह की जोड़-बाकी में तो जिंदगी निकल रही है, हाथ से तो बहुत कुछ छूट रहा है, फिर भी इससे दूर हटने का कोई रास्ता नहीं है, इस तरह के जीवन को ढोने के लिए व्यक्ति अभिशप्त है।

अकसर लोगों में यह प्रत्याशा रहती है कि उनका जीवन विलासमय हो, कभी तो दु:ख के बादल हटे लेकिन कवि पीड़ा में भी अट्टाहास करता है, स्वयं को विलास का प्रेमी नहीं मानता बल्कि धूल और मिट्टी उसके रक्त कण में समाए हुए है।

सुधीश पचौरी 'सापेक्ष' में लिखते है- ''उस जनपद का कवि हूँ' के अनेक सॉनेट उस किसान का परिचय देते हैं जो स्वयं ही 'जनपद' है। 'धरती' का किसान उतना स्थानीय नहीं था। जनपद का किसान स्थानीय है। धरती का किसान राष्ट्रीय था, यहाँ नितांत जनपदीय है।'' (80)

यह वह जनपद है जिसमें अभी तक आस्था और विश्वास है। वह भौतिक जीवन में उन्नत्ति के लिए ओछेपन पर उतारू नहीं होता, घटिया समझौते नहीं करता। कवि का अनुभव देखिए-

इस ऊबड़खाबड़ दुनिया से मैं समझौता
नहीं कर सका हूँ, यह मेरी कमजोरी है
समझौता कर पाता तो कुछ न कुछ अगौत।
ही कर लेता, पर स्वभाव की जो डोरी हैं
उस में ऐंठन पड़ी हुई है, जान जाय तो
जाय, यह नहीं जाने वाली है, किसी तरह(81)

कवि का यह स्वाभिमान उसे 'हठवादी नहीं बनाता, उसे एक कोमल हृदय मिला है जिसमें मानव मात्र के प्रति प्रेम भरा हुआ है। कवि मानव मात्र के प्रति सहृदयता दर्शाते हुए कहता है-

अगर हृदय में धड़कन है तो यह निश्चित है,

कभी किसी की आहट पा कर धड़क उठेगा।[82]

किसी के कराहने की आवाज सुनकर कवि को स्वयं तकलीफ होती है, वह जानता है कि व्यक्ति को जीवन-मरण के चक्र से गुजरना पड़ता है, यह नियति है जिसे टाला नहीं जा सकता लेकिन संवेदनशील कवि ऐसे अवसरों पर करुण हो उठता है, और कहता है-

प्राणहीन वह तन जब दूर फेंक कर आया,
एकाकी को रुद्धशरीर बिलखते पाया।[83]

आज के समाज में हमें यह त्रासद दृश्य दिखायी देता है कि किसी बुढिया की दारूण मृत्यु के बाद गीध, कौए भी उसे खाने के लिए नहीं आते। अत: चमार उसे कुए में फेंक देते हैं। त्रिलोचन यह दिखाते हैं कि गरीब-असहाय की जीते जी उपेक्षा तो होती ही है लेकिन मरने के बाद भी वह उपेक्षित ही रहता है। प्रेमचंद 'कफन' और 'सद्‌गति' कहानी में जिस बीभत्स वास्तविकता का उहापोह करते है त्रिलोचन उससे एक कदम और आगे बढ़ते है। गोपालशरण तिवारी त्रिलोचन के संदर्भ में कहते हुए केदारनाथ सिंह के वक्तव्य को उद्‌धृत करते हुए लिखते है -''इनके मूल्य कहीं बाहर नहीं, इन्हीं के भीतर है। जैसे लोहे की धार लोहे के भीतर होती है।''[84]

जीवन में जब परेशानियाँ आती है तो कभी-कभी धैर्यवान व्यक्ति भी धीरज खो बैठता है। सोना हमें दिखने में काफी अच्छा लगता है लेकिन वह स्वयं इतना मृदु होता है कि उसे भी लचना पड़ता है। हम भी समाज में देखते है जो लोग अच्छे होते है उन्हें प्राय: ही भुगतना पड़ता है; विपरीत परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। मगर जों दोहरे व्यक्तित्ववाले लोग होते हैं उन्हें कभी दु:खी होना नहीं पड़ता। वे निर्लिप्त भाव से दंद-फंद करते हुए आराम से जीवन यापित करते हैं, यही आज कल के समाज का सत्य है। कवि कहता है-

धन दौलत पर सभी दौड़ते हैं पर किस के
जी में दुखिया पर ममता है, देखा, खिसके।[85]

कवि का यह अनुभव है कि हर समय अच्छे-बुरे लोग रहते ही हैं। हमें चाहिए कि सकारात्मक रुप से अच्छों की अच्छाई देखे और क्रियाशील बने। उनके अनुसार समाज में जो हमें धार्मिक पाखंड दिखायी देता है, वह ठीक नहीं है। मंदिरों में बैठकर श्रीमद्‌भागवत पुराण का पाठ करने में क्रियात्मकता नहीं है, यह तो परंपरा का अंधानुकरण है। मात्र बाह्याडंबर करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है। कवि कहता है-

कोई भूखा हो तो उस को ला कर रोटी
दो, मत लंबी चौडी बात बनाओ इस की
उस की सारे जग की-(86)

त्रिलोचन अपने व्यक्तिगत जीवन में निराला की विचारधारा से अत्याधिक रुप से प्रभावित रहे हैं। उनका यह उपर्युक्त सॉनेट पढने के बाद निराला के 'दान' कविता का स्मरण हो उठता है।

झोली से पुए निकाल दिए
बढते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिरकर,
जिस ओर रहा था भिक्षु इतर।(87)

त्रिलोचन भी अपनी कविताओं के माध्यम से झूठ, छल, छद्म, दंभ, द्वेष, घृणा से भरी हुई जिंदगी का काला पर्दा हटाना चाहते है और वे आडंबरविहीन समाज की कल्पना करते हैं। लेकिन कवि जानता है कि केवल काल्पनिक विश्व की स्वप्नमयी दृष्टि से परिवर्तन नहीं हुआ करते, इसके लिए क्रियात्मक स्तर पर कुछ करना पड़ता है। कवि सारे अवरोधों को दूर करने के लिए स्वाभिमान के साथ आगे बढना चाहता है-संघर्ष और विरोध के द्वारा वह सत्ता-व्यवस्था को परिवर्तित करना चाहता है। कवि कहता है-

बाहर सारा विश्व खुला है, वह अगवानी
करने को तैयार खड़ा है पर यह कारा
तुम को रोक रही हैं, क्या तुम रुक जाओगे.
नहीं करोगे उँची क्या गरदन अभिमानी
बाँधोगे गंगोत्री में गंगा की धारा
क्या इन दीवारों के आगे झुक जाओगे(88)

यह दीवारें है पूँजीवादी संस्कृति की। लेकिन कवि उन्हें आगाह करता है कि आप हमें अपने हाल पर छोड़ दीजिए। भवानी प्रसाद मिश्र पूँजीवाद की भर्त्सना करते हुए 'जाहिल मेरे बाने' कविता में कहते है-

जाहिल मेरे बाने
धोती कुरता जोर से लिपटाये हूँ याने।(89)

जब भौतिक जीवन में, सत्ता- व्यवस्था में बहुत ज्यादा उथल-पुथल हो जाती है तब हमें विमुक्त रूप से विचरण करने के लिए प्रेरित करनेवाला तत्व है प्रेम। अत: त्रिलोचन सामाजिक विद्रुपताओं की बात करते-करते मन

के कोमल अनुराग को भी स्पंदित करते हुए हमें झंकृत कर देते हैं। यह प्रेम भी गृहस्थ जीवन से जुड़ा हुआ है। वह अत्याधिक रोमानी या वायवीय नहीं हो जाता। प्रेम में सामीप्य तो मन का रहता है, जिससे हम बहुत ज्यादा प्रेम करते है उसके प्रति शुभकामना ही व्यक्त की जाती है- चाहे वह व्यक्ति कहीं भी हो। जहाँ आसक्ति है, अपनत्व है, वहाँ एक मन दूसरे मन को भली-भाँति जान लेता है। कवि को ज्ञात है कि नौकरी के सिलसिले में घर से दूर रहते हुए पत्नी से मिल पाना तो स्वप्नवत है। लेकिन प्रत्यक्ष रुप से न सही लेकिन स्वप्न योग की संभावना नजर आती है। जिस तरह चाँद भी कभी-कभी व्योम में चुपके-चुपके आ जाता है, उत्तरंग होकर विह्वल समुद्र गाता है उसी तरह से प्रिया से भी मिलन होने की संभावना कवि को भाव-विभोर कर देती है। हृदय सिंधु की गहराई को थाह देनेवाली प्रिया के संदर्भ में कवि कहता है-

चंचल मन हो गया अचंचल पास तुम्हारे
ज्यों दीपक निष्कंप सहज आरती उतारे।(90)

कवि दूरी के कारण होनेवाले पत्नी के विरह को जानता है इसलिए जब वह पत्नी के पास रहता है तो पूरी तरह से उसके संग रहना चाहता है। पता नहीं फिर न जाने एक साथ रहना हो या न हो। कवि को लगता है कि पत्नी का नैकट्य प्राप्त होने के बाद मानो कोयल और पपीहें के स्वर उसके उर में गूँज उठेंगे। फिर अपने चारों ओर के वातावरण में आनंद ही आनंद नजर आता है। कई बार कवि अपनी प्रेमानुभूति को प्रकट करने के लिए प्रकृति का सहारा लेता है। जैसे-

घिर आए बादल वसंत में याद तुम्हारी
आई. आपा भूला. खोज भरी आँखों में
तुम्हें पकड़ना चाहा. थी मन की लाचारी-(91)

कवि ने प्रस्तुत काव्य-संग्रह में ग्रामीण जीवन की संस्कृति को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। तेज दोपहर में भूखा-प्यासा व्यक्ति जब गाँव की ओर लौटता है तो उसका स्वागत भरे-पूरे मन से करनेवाली ग्रामीण स्त्री कवि के लिए यादगार है।

शिरीष का फूल, ओस का टपकना, पेड़ों की झुरमुट, बँसवारी में उदित होनेवाला सूरज, बबूल के फूल, बादलों का बरसना, गेहूँ जौ के साथ सरसों की रंगीनी खिलखिलाते हुए मटर, पुरवैया, नीम की मादक माया- यह सब देखकर कवि को लगता है कि ऐसी प्राकृतिक सुंदरता देखनी हो तो गाँवों

की ओर ही लौटना पड़ेगा, शहरों में यह आभा नजर नहीं आएगी। त्रिलोचन लिखते है-

यह खेती की
शोभा है, समृद्धी है, गमलों की ऐयाशी
नहीं है, अलग है यह बिलकुल उस रेती की
लहरों से जो खा ले पैरों की नक्काशी-(92)

त्रिलोचन प्रकृति को निखारना जितना बखूबी जानते हैं उसमें रच-बस जाने के लिए भी उतने ही लालायित हैं। प्रकृति का जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए त्रिलोचन महसूस करते हैं कि ग्रामीण जीवन का जो जनपद है उसके लिए प्रकृति मानो जीवन है, वह वहीं से रस सींचता है। कवि कहता है-

बैठ धूप में हरी मटर की घुँघनी खाना,
जाड़े का आनंद यही है रस गन्ने का
ताजा ताजा पीना, कोल्हाडों में जाना,
इन उन बातों से मन बहलाना-(93)

अत: निष्कर्षात्मिक रूप से कह सकते है कि 'उस जनपद का कवि हूँ' काव्य संग्रह में अपने रचनाकाल (1950 से 1954 तक) में स्थित सामाजिक जीवन को उसकी वास्तविकता में प्रकट किया है। यह वह समय था जब मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हुई थी लेकिन हम पूरी तरह से निराशावादी नहीं हुए थे कि घोर वैयक्तिकता की भावना में डूब जाते। अत: समयानुकूल मानव जीवन की हताशा, पीड़ा के साथ कुछ उत्फुल्ल लह्मों को भी गुंफित करने का प्रयास किया गया है। कवि बडे विश्वास और आस्था के साथ गांधीजी का स्मरण करता है और कहता है।

बापू, तुम होते तो कितना अच्छा होता
बिना तुम्हारे सूना सूना सा लगता है।(94)

यह सद्‌भावना ही त्रिलोचन के काव्यत्व का महत्वपूर्ण पहलू है जो हमें बांधकर रख सकता है, रखेगा।

7. **अरघान** (1984)

'अरघान' त्रिलोचन द्‌वारा लिखित सातवा काव्यसंग्रह है जिसमें 1957 से लेकर अब तक लिखी हुई कविताओं का संकलन है। 'अरघान' का अर्थ है गहरी,

सान्द्र गंध, फूलों का सुगंधित कोलाहल। नामानुरुप प्रस्तुत काव्य-संग्रह में हमें ग्रामीण जीवन के, प्राकृतिक परिवेश के अनेक मधुर-कोमल क्षणों के दर्शन होते हैं, साथ ही यदि हमें लोक-जीवन, लोक-संस्कृति से अवगत होना हो, तो 'अरघान' से होकर गुजरना पड़ेगा। 'गाय करती है घमोनी' शीर्षक कविता में दोपहर का समय है, गाँव के लोग सुबह खेत में जी तोड़ मेहनत करके दोपहर के समय खाना खा कर सुस्ता रहे है और गाय घमोनी करती है। कविता के द्वारा पूरा चित्र आँखों के सामने उभरकर आता है, गाँव में जाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। कवि कहता है -

आँख मूँदे पेट पर सिर टेक
गाय करती है घमौनी बँधी जड़ से
पेड़ की छाया खडी दीवार पर है।(95)

त्रिलोचन ने 'परदेसी के नाम पत्र' कविता 1957 में लिखी थी। कविता की रचना लोक-गीतों की शैली पर हुई है। अकसर देहात में स्त्री अपने पति का नाम लेकर नहीं पुकारती, साथ ही बहुत कुछ मुक्त रुप से कहने में संकोच करती है। ऐसी मानसिकता के कारण ग्रामीण लोगों का पत्र लिखने का अपना पुराना ढंग है। प्रस्तुत कविता में एक पत्नी अपने परदेसी पति को पत्र लिख रही है -

'सोसती सिरी सर्व उपमा जोग बाबू
रामदास को'(96)

पूरे पत्र में तीन समाचार दिए गए है - (1) अमोला बड़ा हो गया है, ऐसा ही रहा तो फल अच्छे आएंगे (2) बढ़िया कोराती है, देखो कब ब्याती है (3) मन्नू बाबा की भैंस ब्याई है।

और अंत में लिखती है - थोड़ा लिखना समझना बहुत। कविता में फलों और गर्भवती स्त्री की आसन्न पीड़ा की बात की है लेकिन वह तो समाचार था नही। इसके द्वारा वह किसी और ही बात की ओर संकेत करना चाहती है।

त्रिलोचन ने 'अरघान' में ग्रामीण परिवेश को चित्रित करते हुए प्रकृति का मनोहारी अंकन किया है। प्रकृति उनकी कविता में रच-बस गयी है जो उनमें एक नया स्पंदन पैदा करती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

धूमाच्छादित हैं वृक्ष वे
टटहनी टहनी डाली डाली थाम के
धुआँ और उपर चढता है।(97)

'अरघान' की कोमल अनुभूतियों में मानव मात्र के लिए भी अनुराग है। 'सब्जीवाली बुढ़िया' कविता में सहज मानव प्रेम, अनुराग, मानवीय रागात्मकता से सिक्त कवि मन के दर्शन होते है। कवि सब्जी वाली बुढिया की दयनीय अवस्था

को देखकर उसका सारा बचा-खुचा सामान खरीद लेता है, कवि के मन में उसके प्रति करुणा है। लेकिन वह यह नहीं सोचता कि कल क्या होगा? कल भी दुबारा वह सामान बेचने आएगी, तब वह क्या मदत कर पाएगा? जब कि उसकी स्वयं की स्थिति अच्छी नहीं है। लेकिन वह कवि के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। वह यथा संभव हर किसी की मदद करना चाहता है। कवि के मन में दूसरों के प्रति, चिंता और सहज अनुकंपा है जो आजकल लोगों में नहीं दिखायी देती। लेकिन कवि तो सजग है अत: कहता है -

बुढ़िया की बातें जो कानों में पड़ी,
उसको अनसुना कर नहीं पाया मैं।[98]

त्रिलोचन के काव्य में जिस पीड़ा और संवेदना को चित्रित किया गया है वह मात्र व्यक्तिगत नहीं है। वह सामाजिक भावना से उत्क्रांत है और वे उसमें पूरी तरह से समा जाते हैं। 'स्व' की सीमित परिधि से बाहर निकलकर 'पर' में विलीन होने के सार तक वे आकंठ उसमें डूबे - उतराए हुए हैं। अत: कवि कहता है:-

और । जब भी पीड़ा
बढ़ जाती है। बेहिसाब
तब। जाने अनजाने लोगों में
जाता हूँ। उनका हो जाता हूँ
हँसता, हँसाता।[99]

भारत के गाँव में जहाँ सहजता, सरलता, जीवंतता प्राकृतिकता बसती है, वहीं पर कुछ नकारात्मक पहलू है जो उस परिवेश को नारकीय बनाता है। वह है धार्मिक रूढ़ियाँ एवं बाह्याडंबर। त्रिलोचन ने 'महाकुंभ' के सॉनेट में इस क्रूर पाशविक स्थिति का रेखांकन किया है। कवि को लगता है कि बुराई के बीच ही अच्छाई पनपती है और बुरे लोगों के बीच ही अच्छे लोगों का महत्व समझ में आता है। उसी के अनुरूप पाप-पुण्य की प्रक्रिया ने ही धर्म को पनपने का अवसर दिया लेकिन साथ-साथ धर्मांधता भी बलवती हो गयी। कवि कहता है:-

धर्म न होता तो वह दुनिया कैसे होती
पुण्य न होता तो वह प्रवृत्ति क्या ऐसी होती।[100]

गाँवों में प्रकृति की, पावस के कारण आयी मिट्टी के सौंधी-सौंधी महक 'अरघान' है साथ ही जब 'महाकुभं' के मेले में पुण्य पाने की होड़ में हजारों यात्री कुचले जाते हैं। मौत का तांडव होता है, तब यह बदबू भयंकर, बीभत्स लगती है। कवि कहता है:-

लाशों पर चढ़कर मानव आत है,

लाशों की प्रदर्शनी लग गई
ट्रक में भर-भर आज गंधं शव का आया है,
नाश अचल था [101]

दु:खद पक्ष यह है कि हमारी सारी व्यवस्था, पुलिस यंत्रणा, सत्ताधारी वर्ग अपने ही स्वार्थ में डूबे हुए हैं। इस मौत के तांडव को रोकने की दृष्टि से कोई प्रयास नहीं किया जाता, मरने वाले मरते हैं और हँसनेवाले खिल-खिलाकर तमाशा देखकर हँसते हैं। कवि आगे लिखता है:-

लाशों की चर्चा थी अथवा सन्नाटा था,
राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही।[102]

कवि कहता है यह महामरण प्रभुता के मद का विध्वंसक कोप सोल्लास संपन्न हुआ। ऐसे में त्रिलोचन प्रश्न करते है कि कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी?

महाकुभं के मरण पर कविता लिखते हुए कवि बहुत ही तटस्थ होकर परिस्थिति का विदारक चित्र प्रस्तुत करता है। कवि जानता है कि स्थितियाँ तो दिन ब दिन बद से बदतर होती जा रही है, कोई इसे रोकनेवाला-थामनेवाला नजर नहीं आ रहा। मगर कवि शब्दों के बाण से जनता में जागृति लाना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि धनुष्य बाण से अब कोई काम नहीं बन पाएगा। अत: कहता है:-

धनुष्य बाण लेकर
क्या करूंगा
रख्को
रख्को इनको
नाटक में
वेशधारियों के काम आएंगे
जीवन इन खेलों से
आगे बढ़ आया है।[103]

त्रिलोचन के काव्य की यथार्थ भावभूमि की प्रशंसा करते हुए अरुण कमल ने लिखा है - ''उनकी कविता तेल-कुण्ड में पड़ती मछली की परछाई नहीं, स्वयं मछली को देखती है।''[104]

8. तुम्हें सोंपता हूँ (1985)

'तुम्हें सौंपता हूँ' त्रिलोचन की कविताओं का आठवां संकलन है जिसमें 1935 से लेकर 1983 तक की 79 कविताओं को संकलित किया गया है। संकलन

दिनेश शर्मा ने किया है और कालानुसार व्यवस्थित ढंग से कविताओं को क्रमबद्ध करने का कार्य जगत शंखधर ने किया है। इसमें प्रत्येक कविता के साथ प्रकाशन की तिथि और उन पत्र-पत्रिकाओं का नाम दिया है जिसमें वह प्रकाशित हुई थी। लंबे काल-विशेष से जुड़ी कविताओं का संकलन होने के कारण त्रिलोचन की भावधारा में समयानुकूल आए परिवर्तन को इस संग्रह के माध्यम से देखा और परखा जा सकता है।

प्रारंभिक दौर में त्रिलोचन की कविताओं में वस्तुतः छायावादी काल-विशेष की वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति पायी जाती है। फिर भी छायावाद की वैयक्तिक चेतना की गहनशीलता की अतिशयता का उनमें अभाव है, क्योंकि वे तो किसी वाद-विशेष में बंधकर रहनेवाले रचनाकारों में नहीं है। जहाँ जीवन का कोई रागात्मक पक्ष नजर आता है, वे गा उठते हैं। इतना अंतर होने के बावजूद निराला से प्रभावित त्रिलोचन की प्रस्तुत कविता में निराला की छंद-विधान की झलक दिखायी देती है। उदाहरण द्रष्टव्य है -

नयन की रसधार
सुरभि के संस्पर्श में
कहती पुकार-पुकार
मैं नदी, तुम कूल-तरु
निर्मूल दूर-विचार
भेद नव होना असंभव
जब तुम्हीं आधार
कर लो धार का उद्धार।(105)

उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों में सामान्य जीवन की मनोव्यथा है इसलिए इसमें 'रोमैंटिसिज्म' नहीं आ पाता। कवि वैयक्तिक धरातल पर सामान्य जन की भांति आत्म-विश्लेषण करना चाहता है और इसे बडी शिद्दत के साथ महसूस करते हुए कहता है -

किन्तु मेरे अन्तरनिवासी ने मुझसे कहा -
लिखाकर -
तेरा आत्म-विश्लेषण क्या जाने कभी तुझे
एक साथ सत्य शिव सुन्दर को दिखा जाये
अब मैं लिखा करता हूँ
अपने अन्तर की अनुभूति बिना रंगे-चुने

कागजपर बस उतार देता हूँ।(106)

त्रिलोचन द्‌वारा लिखित प्रस्तुत संकलन में अधिकांश कविताओं में कथात्मक विस्तार अधिक है, चित्रण की अपेक्षा वर्णन की प्रधानता हैं। लेकिन यह त्रिलोचन ही कर सकते हे जो पूरे काव्य में घटना का कथात्मक प्रवाह अबाधित रखते हुए अंत में मार्मिक भावोद्‌घाटन करते हें।

अब मैं लिखा करता हूँ
अपने अंतर की अनुभूति बिना रंगे चुने
कागज पर बस उतार देता हूँ। (107)

'तुम्हें सौंपता हूँ' काव्य-संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें चित्रित कई चरित्र त्रिलोचन के व्यक्तिगत जीवन से जुड़े रहे हैं, वे काल्पनिक नहीं है। गोविंद आज तुम नहीं हो, रैन-बसेरा (परमानंद श्रीवास्तव पर), रामचंद्र दुबे, आत्मीय गगन (साही जी के लिए), अपने स्वर, अपने गान (दिनेश शर्मा को संबोधित) बिना मिले लौटने की राह में (कवि विजेन्द्र पर) इन कविताओं में कवि ने व्यक्तिगत जीवन में मिले लोगों से जुड़े अनुभवों को कविता के माध्यम से मूर्त रुप दिया है। 'रैन बसेरा' का उदाहरण द्रष्टव्य है -

परमानंद ऊपर गए।
दरवाजा हाथ से दबाते ही खुल गया।
अंदर गए देखा भाला होगा
सिर जरा बाहर निकालकर
परमानंद ने कहा गुरूजी
यहाँ कोई नहीं है
अब मैं सो रहूँगा नमस्कार
अब मैं अपने घर या कमरे को
उन्मुख था।
कमरा एक और रहनेवाले तीन
पत्नी, बच्चा और मैं
चौथे की गुंजाइश यहाँ नहीं।
मेरी अनकही चिन्ता
मेरी बिथा बना की।(108)

कविताओं के माध्यम से विभिन्न चरित्रों के उद्‌घाटित कर त्रिलोचन ने अभाव, पीड़ा, संत्रास, बेबसी का ही चित्रण किया है।

घटनाएँ बडी सामान्य है, दैनंदिन जीवन के क्षण है लेकिन कवि जिस कथात्मक ढंग से उसे प्रस्तुत करता है, तो कहीं भी बोरीयत महसूस नहीं होती और सहज ही रुप से हम विषय की गंभीरता को भी जान लेते है बिना किसी मानसिक दबाव के कविता मन पर प्रभाव छोड़ जाती हैं और कविता का लक्ष्य सिद्ध हो जाता है।

सामान्य जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर उसे कविता का विषय बनाना कवि त्रिलोचन की विशेषता रही है।

''माली के छोकरे, माली के छोकरे,
फूल मुझे ला दे बेले के।''(109)

धरती के कवि त्रिलोचन सामान्य जीवन का चित्रण करनेवाले रचनाकार होने के कारण आम जनता के कवि है। इसलिए उनकी कविता आम जनता पाठक को अपील करती है। त्रिलोचन साहित्यिक धारणाओं और वाद-विशेष की लीक से हटकर ग्रामीण अनुभूतियों को बडी सहजता के साथ 'गाय' कविता में प्रस्तुत करते हैं। शहर के व्यक्ति के लिए तो 'गाय' का कोई खास आकर्षण नहीं रहता लेकिन ग्रामीण व्यक्ति के जीवन में गाय का महत्त्व अनन्य साधारण है। त्रिलोचन मानो अपनी कविताओं के द्वारा गँवई गंध को पकड़ते है और उस सुगंध को चारों ओर उंडेलकर लोगों को मानो उससे सराबोर कर देना चाहते हैं। इस संदर्भ में उदाहरण द्रष्टव्य है-

गाय जुगाली करती हो चाहे खड़ी खड़ी
या लेटी अधलेटी अपने खूँटे पर हो
या चरने के लिए खुली होकर बाहर हो
खोज खोज कर घास पर रही हो जरा बड़ी

X X X X X

यह संबंध मुझे चुपके से जो देता है
वह संभाल लेता हूँ मन में, निजी मान कर। (110)

''त्रिलोचन की अधिकांश कविता ऐसी ही है जैसे खुद से या किसी दोस्त से बातें कर रहे हो। यहाँ वह जनता से बातें करते हैं, बिलकुल लोक कविता के स्तर पर आकर।''

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में चार काव्य-रुपक लिए गए हैं जिसे उन्होंने दूसरे महायुद्ध के नरसंहार की पृष्ठभूमि में लिखा था। वे इस प्रकार है - वे घर आ रहे है, फ्रांस, भूखे भेड़िए, शैतान और इंसान। 1944 में त्रिलोचन ने 'फ्रांस' शीर्षक कविता लिखकर फ्रांस की प्रशंसा करते हुए वीरता, ओजस्विता के भावों को प्रकट

किया हैं।

कवि लिखता है -

पराधीन क्या रह सकता है। रूसो को उपजानेवाला?
जग को जीवन-ज्योति दिखाकर। सत्यासत्य बतानेवाला?
जनता की ताकत को जिसने। दुनिया में पहले पहचाना।
सर्वोपरि जनता को माना। असली ताकत को पहचाना।
रह न सका हथियार उठा कर। देखे वह फिर खड़ा हो गया।
फ्रांस गिराया कभी किसी दिन। धूल झाड़कर खड़ा हो गया।(111)

प्रगतिगामी कवि त्रिलोचन सामाजिक विकास और परिवर्तन तथा राष्ट्रोन्मेष के लिए सतत प्रयत्नशील है, वह अच्छे एवं सुखद परिवर्तन की कामना करता है और नए विश्व के निर्माण के लिए कहता है -

नए विश्व की रचना हमको ही करनी है
इस पुराने विश्व के पुराने पाप
जीवन के पुण्य खाये जा रहे हैं।
जीवन का त्रास हटे, ऐसी जुगत करनी है।(112)

त्रिलोचन की अभिलाषा है कि क्रांति के द्‌वारा संघर्षमयी स्थितियों का सामना करके शोषण मुक्त, वर्ग-विहीन समाज की रचना करनी होगी तभी समाजवाद आ सकता है। इसके लिए नितांत आवश्यक है संघर्ष करना। त्रिलोचन की कविताओं में हिन्दू जाति की संघर्षशील चेतना को देखा जा सकता हैं ।

त्रिलोचन ने प्रस्तुत संग्रह में प्रेम के विविध पक्ष-प्रथम परिचय, मिलन, विरह, स्मृति, समर्पण, त्याग, छटपटाहट, आदि को उद्‌घाटित किंया है। प्रेम से जुड़े हुए यह सारे संवेग काफी स्वाभाविक से लगते हैं क्योंकि त्रिलोचन उसे वायवीय नहीं बनाते। 'परिचय की गांठ' कविता में प्रथम परिचय का उदाहरण देखिए -

यों ही कुछ मुसकाकर तुमने,
परिचय की वह गाँठ लगा दी,
था पथ पर मैं भूला-भूला,
फूल उपेक्षित कोई फूला,
जाने कौन लहर थी उस दिन,
तुमने अपनी याद जगा दी।(113)

अपनी सहधर्मचारिणी के प्रति व्यक्त प्रेम भावना में गहराई, आत्मीयता, लगाव दिखायी देता है। कवि कहता है -

सौरभ से दसो दिशाएँ भरी हुई है मेरा जी विह्वल हैं
मैं किससे क्या कहू।(114)

'तुम्हें सौपता हूँ' संग्रह में त्रिलोचन ने प्रकृति का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है। प्रकृति का चित्रण नितांत प्राकृतिक उपादान को चित्रित करने के लिए नहीं है बल्कि कवि ने प्रकृति को मानवीय जीवन के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। 'अगर चांद मर जाता' का उदाहरण द्रष्टव्य है -

अगर चाँद मर जाता। झर जाते तारे सब।
क्या करते कवि गण तब?। खोजते सौंदर्य नया?
देखते क्या दुनिया को? रहते क्या रहते हैं।
जैसे मनुष्य सब? क्या करते कवि गण तब?(115)

साथ ही कवि कहता है -

कौन राग छाती में लगता है अकुलाने
इंद्रधनुष्य सी लहराती है पत्ती पत्ती (116)

'तुम्हें सौंपता हुँ' काव्य संग्रह में गीत, गजल, छोटे-बड़े आकार के मुक्त छंद, छंदबद्ध कविताएं, काव्य-रुपक प्राप्त होते हैं। उन्होंने कुछ छोटी कविताएँ लिखी है। उनकी विशेषताओं के संदर्भ में 'सापेक्ष' में लिखा गया है -

''इन कविताओं के प्रभाव ऐसे बनते हैं जैसे जीवन के महायुद्ध से त्रिलोचन कुछ निकाल लाएं हैं। वे वृद्ध, अनुभवी, महुआरे की तरह हमारी हथेलियों में अत्यंत जीवनोपयोगी वस्तुएं रखते हुए अनुभूत होते हैं। ये बहुत बडे अनुभवों की छोटी कविताएं है।''(117)

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि 'तुम्हें सौपता हूँ' काव्य संग्रह के द्वारा पुन: कविता के रुप में त्रिलोचन ने हमें जीवन के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं से अवगत कराया है, काव्य-संग्रह पढ़ते समय यह निरंतर महसूस होता है कि त्रिलोचन अपने सर्जनात्मक क्षणों में मानवीयता के प्रति स्थित अपनी प्रतिबद्धता को खंडित नहीं होने देते। 'तुम्हें सौंपता हूँ' काव्य संग्रह की प्रशंसा करते हुए शमशेरजी लिखते है -

''त्रिलोचन में सृजन की अछूती, अतुलनीय शक्ति है। 'तुम्हे सौंपता हूँ' की कविताओं को पढ़ने से स्पष्ट है कि त्रिलोचन कष्ट और पीड़ा सहती जनता की मनोस्थितियों को अपनी कविता में प्रकट करते हैं। वे जीवन के भेदों तक पहुँचने की चेष्टा करनेवाले कवि है। अपने अनुभवों को त्रिलोचन समय की तात्कालिक घटनाओं से त्वरित व्यवहार नहीं करते।''(118)

9.'फूल नाम है एक' (1985)

'फूल नाम है एक' में त्रिलोचन की 1953 से लेकर 1977 तक की लिखी हुइ कविताओं को संकलित किया गया है। इसमें शीर्षक के लिए कविता की प्रथम पंक्ति के वाक्य का उपयोग किया गया है। त्रिलोचन की कविताओं में जीवन कूट-कूट कर भरा हुआ है, जीवन से विमुख होकर उनकी कविताओं को देखा-परखा नहीं जा सकता, वह मूढता ही कहलाएगी। आवश्यकता है शब्द के परेवाले अर्थों को जानने की। क्योंकि उनकी शब्द-साधना को जीवन-साधन के साथ जोड़कर देखना अवश्यंभावी है। 'फूल नाम है एक' संग्रह में जीवन-संघर्ष, उससे उत्पन्न हुई हताशा, उस हताशा में भी जीवन के प्रति आस्थावान होने का संदेश, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति आदि विविध तत्व दिखायी देते हैं। अतः जीवन के विभिन्न तत्वों से जुड़ी त्रिलोचन की कविताओं के लिए दिया गया यह शीर्षक सार्थक लगता है। कवि कहता है -

फूल नाम है एक वनस्पतियों की स्थिति का
और नाम का सूत्र समीप खींच लाता है
ज्ञान नाम को छोड़ नहीं सकता है। स्मृति का
रेखांकन है चित्र, नाम के गुण गाता है
जीवन का विस्तार, कहाँ बन्दी है मिति का
देश काल में प्राण घूम-फिर कर जाता है।(119)

''त्रिलोचन की समझ उन सबकी आँखे खोल देनेवाली है, जो बंधी लीक पर चलने के अभ्यस्त हैं। कवि के लिए कुछ भी अवध्य नहीं। ससीम को समेटे असीम की थाह पाने की कला को त्रिलोचन का कवि-कर्म कह सकते हैं। इसमें खिले फूल जीवन की मंजिल का पता देते है। उनमें गंध और रुप-दान की अद्‌भुत क्षमता हैं। सब कुछ देकर भी मौन ये फूल त्रिलोचन को प्रिय है। वस्तुतः खिले हुए फूल में यह कवि आत्म-बिंब ढूँढता है।''(120)

फुल जो खिलते है, विकसित होते हैं और मुरझाते भी है साथ ही आगे जाकर किसी अन्य को भी तो विकसित होना है, पुनः उभरकर आना है - इस वास्तविकता से अवगत होने के कारण कवि संघर्ष का, आस्था का गायक है। क्योंकि विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर आगे बढ़ते रहना ही जीवन है। त्रिलोचन के काव्यकर्म की विशेषता यह है कि अधिकतर कविगण संघर्षमय स्थितियों का वर्णन करते ही रह गए, उस स्थिति में व्यक्ति की अवस्था कैसी होती है? वह क्या महसूस करता है? काँटो को निकालते समय भी उसे किन

परेशानियों का सामना करना पड़ता है- इसे त्रिलोचन महसूस करते हैं। कहना आसान होता है लेकिन करना उतना ही मुश्किल- यह सब समझने की ताकत त्रिलोचन में है क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुत कुछ झेला है, सहा है। इसलिए कवि सभी संघर्षशील व्यक्ति के प्रति सहानुभूतिशील है और कहता है -

जीवन के जंगल में बिल्कुल नंगे दिल से
चलनेवाले, ठहर जरा आगे फिर जान,
तेरे डगमग पैरों से मैंने पहचाना
तुझको काँटे लगे हुए हैं। दुख तो तिल से
ताड़ जल्द हो जाते हैं बलकी झिलमिल से
कब तक अन्धकार काटेगा, फिर समझना
भी तुझको क्या झूठमूठ की बात बनाना,
निष्कंटक हो भर दे दुनियाँ को खिलखिल से!(121)

त्रिलोचन स्वाभिमानी है और इसलिए कभी औरों के सामने घुटने नहीं टेकते और न ही किसी से किसी भी प्रकार की अपेक्षा करते हैं। आज के आधुनिक जीवन में जहाँ हर कोई स्वार्थ की आपा-धापी में लगा हुआ है, ऐसे में त्रिलोचन की कविता काफी प्रेरित करती है। कम से कम कुछ लोग ऐसे भी है जो बड़ी ही ईमानदारी के साथ जीवन व्यतीत करते है, दूसरों का संबल नहीं खोजते। कवि कहता है-

नहीं चाहिये नहीं चाहिये मुझे सहारा,
मेरे हाथों में पैरों में इतना बल है
स्वयं खोज लूँगा किस-किस डाली में फल है,
उसे बाँट दूंगा जो नंगा भूखा हारा
दुर्बल दिखायी देगा (122)

कवि के मन में मानो जीवन के प्रति आस्था रग-रग में समायी हुई है। उसके अनुसार जीवन तो क्षणिक है, वर्षा का जल जितनी देर तक पात पर ठहरता है उतना क्षणिक है जीवन, तो फिर गले-हारे क्यो? यदि हम चाहे तो निराश न होते हुए जीवन को बेहतर बना सकते हैं लेकिन हममें वह प्रत्याशा-जिजीविषा होनी चाहिए। कवि के अनुसार इसके लिए चाहिए-

अपने अपने घर से निकलो, आओ आओ आओ आओ
यह धरती छातीपर लेगी महाकाश तुमको चूमेगा,

अपने पथ पर गति से झूमो साथ और मंडल झूमेगा।
अपने अपने कंठ मिलाओ गाओ गाओ गाओ गाओ।
तनका मनका धनका उत्तम लाओ लाओ लाओ लाओ।(123)

कवि की यह आस्थामय चेतना वाकई में प्रशंसनीय है। कई बार धोखा खाने, थकने, हारने, निराश होने के बावजूद उसे विश्वास है कि इसी नारकीय दुनिया में स्वर्ग भी है। अर्थात पाशविक प्रवृत्ति से भरे समाज में मानव भी बसते है जिनमें मानवीयता है। कवि की गहरी आस्था और अटूट विश्वास देखिए -

मानवता की जय होगी - धोखेपर धोखा
खा खाकर भी यह विश्वास नहीं टूटा है।(124)

संघर्ष, आस्था का चित्रण करते समय त्रिलोचन पथ, मंजिल, फूल, काँटे आदि शब्दावलियों का प्रयोग करते हैं, वह निश्चित रुप से प्रतीकात्मकता की अपेक्षा भौतिक श्रम से अधिक संबद्ध है। जैसे

इस रास्ते से नही, उधर, उस रास्ते हो लें।
उधर मेंड़ उँची है और खेत में पानी नीचे है।(125)

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कवि ने पूँजीपति वर्ग के शोषण करने की प्रवृत्ति पर भी प्रहार किया है। वैज्ञानिक प्रणाली हम पर हावी हुई है। कवि की दृष्टि से प्रगति करना तो ठीक है लेकिन कवि को दिखायी देता है - आज तुम्हारे तप का बल पाकर हत्यारे समुदायों की हत्या कर देते हैं। यदि हम इसकी कारण मीमांसा करें तो दिखायी देता है कि पूँजीपतियों के हाथों में विज्ञान का एकाधिकार है। अपने एकाधिकार को बनाए रखने के लिए वे संसार के किसानों और मजदूरों का श्रमफल लेते हैं। कवि कहता है -

हाथ कहाँ है, वंचक हाथों के चक्के में
बंधक है, बँधुए कहलाते है।(126)

त्रिलोचन प्रगतिशील विचारधारा से प्रेरित होने के कारण सदैव श्रमिक और खेतिहर वर्ग के प्रति सहानुभूति दर्शाते हैं और कहते हैं -

हाथों के दिन आयेंगे। कब आयेंगे
यह तो कोई नहीं बताता। करनेवाले
जहाँ कहीं देखा है अब तक ड़रनेवाले
मिलते हैं। सुख की रोटी वे कब खायेंगे
सुख से सोयेंगे।(127)

साहित्यिक गतिविधियों से जुड़े कवि त्रिलोचन काव्य-कर्म में आ

रहे परिवर्तन को बताए बिना कैसे रह सकते है? त्रिलोचन की दृष्टि से वस्तु और रुप में तादात्म्य स्थापित करना बहुत ही आवश्यक है। कवि अनुभव और अभिव्यक्ति में सामंजस्य स्थापित न कर पानेवाले कवियों पर व्यंग्य करते हुए लिखता है -

हो तुम भी घोचूँ ही। भाषा, छंद भाव के
पीछे जान खपाते हो। लद गया जमाना
इन का। छोड़ो भी। आओ, अब से मनमाना
लिखा करो। गद्य ही ठीक है। अब कटाव के
ढब बदले हैं बोल चढे हैं भाव ताव के
लिखो, लिखो, कुछ, बहुत सरल है कवि कहलाना।(128)

इन्हीं बदलती हुई स्थितियों के कारण ही त्रिलोचन को नागार्जुन का स्मरण होता है जिन्होंने हिन्दी साहित्य में अपना अमर स्थान बनाया। 'फूल नाम है एक' में कविता संख्या 52 से 56 तक नागार्जुन का परिचय और शब्द चित्र है।

चाहे त्रिलोचन यह लिखे -

नागार्जुन काया दुबली, आकार मझोला,
आंखे धंसी हुई धनभौंहे, चौड़ा माथा,
तीखी दृष्टि, बड़ा सिर, इसमें ऐसा क्या था
जिससे यह जन असामान्य है।

अथवा त्रिलोचन यह कहे कि

त्रिलोचन का स्वर प्रबुद्ध जनता का स्वर है
नये पुराने कवियों की प्रतिभा कल्याणी
कवि के मुख से बोली है।(129)

हमें पता चलता हैं कि त्रिलोचन आंतरिक रुप से नागार्जुन के साथ जुड़े हुए है, यह निकटता मानसिक हैं, उसमें हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों के प्रति श्रद्धा है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि-सुलभ रागात्मक भावों की भी अभिव्यक्ति हुई है। सांसारीक आपदाओं से आक्रांत होकर कवि को एक यायावर का जीवन जीना पड़ा लेकिन पत्नी का संबल उन्हें हमेशा उर्जा देता रहा। कवि कहता है-

मुझको तो मुस्कान तुम्हारी जिला रही है।
जहाँ कहीं भी और जब कहीं भी जाता हूँ,

वहीं स्निग्ध मुस्कान आँख आगे पाता हूँ,
मर्त्य लोक में श्रांत देखकर पिला रही है
मुझे सुधा का सार (130)

'फूल नाम है एक' काव्य-संग्रह में कवि ने सॉनेट लिखे है। कवि ने मुख्य रुप से २४ मात्रा के रोला छंद को लिया है। कहीं-कहीं छंद के मध्य के पंक्तियों में वाक्य पूरा हुआ है तो कहीं-कहीं पंक्तियों के अंत के साथ भी विराम मिलता है। रामविलास शर्मा का कहना है -

"त्रिलोचन के लिए सॉनेट ऐसा कुर्ता है जो हर मौसम में पहना जा सकता है। हर विषय के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है। यति का स्थान ऐसे बदलते है मानो मुक्त छंद लिख रहे हो।"(131)

अत: कह सकते है कि त्रिलोचन ने अन्य काव्य-संग्रहों के समान इस संग्रह में भी भाषागत प्रयोग करने के साथ-साथ भावगत स्तर पर भी विषय वैविध्य को रेखांकित किया है।

10. अनकहनी भी कुछ कहनी है (1985)

जीवन में न जाने कितने ऐसे प्रसंग होते हैं जो कि अनकहे रह जाते हैं। रचनाकार उन अनकहे प्रसंगों को किसी न किसी रुप में व्यक्त करता है। सन 1950-51 के बीच की स्थितियों का आकलन कवि ने व्यक्तिगत आत्मानुभूति के द्वारा किया है जिसे 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' काव्य-संग्रह के माध्यम से 96 चतुष्पदियों में व्यक्त किया है। इसका प्रकाशन 1985 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ। इस संग्रह को पढ़ने के पश्चात ज्ञात होता है कि कई बार जीवन की मूकता भी बिना कुछ कहे बहुत कुछ कह देती है।

त्रिलोचन का पूरा जीवन अभावों में गुजरा है, इसलिए उन्हें अपने आप को प्रस्थापित करने के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ा। उन्हें लगता है कि यदि जीवन में बुरी स्थितियाँ न आती तो शायद उनका जीवन कुछ और ही होता।

आह, मुझे उपयुक्त काल ही
मिला नहीं अन्यथा और कुछ जीवन होता
मृत जन, तुम से जो अब होता है तब होता-(132)

कवि को इस बात को लेकर भी दु:ख है कि ऐसे अभावों से ग्रस्त व्यक्ति यदि काव्य कर्म करने लगे और उसे ही आजीविका का प्रमुख साधन मान ले तो जीवन और भी दुभर हो जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति 'क्या वह भी साहित्यकार है' कविता में हुई है।

क्या वह भी साहित्यकार है, जिसकी माता
भूखों नहीं मरे पत्नी यदि जैसे तैसे
साथ रहे तो सहे दंड जीवन का-(133)

त्रिलोचन ने निश्चय ही गरीबी और जहालत से भरी जिंदगी को ढोया है, लेकिन निराश होकर कभी दूसरों के आगे घुटने नहीं टेके। इस संघर्षमय जीवन ने उनके अनुभवों को विविधता प्रदान की लेकिन साथ ही कवि इस बात से भी अवगत हो गया कि आधुनिक जीवन प्रणाली में सफलता ही सार्थकता बन गयी है। त्रिलोचन के उपर्युक्त विचार 'क्या करता हूँ' कविता में व्यक्त हुए है-

दुनिया अपने पथ पर चलती है जो चलते है
उस के अनुसार सफलता पा जाते हैं
आदर्शोपासक मनमारे पछताते है।(134)

जीवन संबंधी वैयक्तिक अनुभूतियों के साथ-साथ रचनाकार ने काव्य कर्म की वर्तमान स्थिति एवं पाठकों की मानसिकता का बड़ा यथार्थ चित्रण किया है। साथ ही स्वयं को आधुनिक माननेवाले परंतु अवसरवाद से घिरे कवियों पर व्यंग भी किया है। त्रिलोचन के अनुसार सच्चे कवि का दायित्व है कि वह स्वयं अपनी आलोचना को सहने के लिए तैयार हो। साथ ही कवि की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि काव्य अनुभूतियों से गुंफित-स्वयंस्फूर्त होना चाहिए न कि केवल कोशीय शब्दों का समूह। इसलिए नए कवि को दिशा-निर्देश करते हुए त्रिलोचन इसे स्वीकार करते है कि

हृदय-हृदय में स्पंदित होनेवाला।
काव्य अमर है, सुकवि बीज-स्वर बोने वाला। (135)

त्रिलोचन साहित्य एवं साहित्यकार के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कवि साहित्य के माध्यम से मानव की आत्मा को नया रूपाकार देता है। 'कवि तो मानव-आत्मा का' कविता का उदाहरण प्रस्तुत है-

कवि तो मानव-आत्मा का शिल्पी होता है,
मानव-आत्मा विपुल बंधनों में जो जकड़ी
रहती है जिस तरह से बुढ़ापे की लकड़ी
के बल पर कोई बुढ़ा तन को ढोता है-(136)

त्रिलोचन की समाज और काव्य-लेखन के प्रति प्रतिबद्धता उनकी

कविताओं के माध्यम से झलकती है। इसलिए उन्हें इस बात का दु:ख है कि आज न अच्छे कवि रहे हैं और न ही अच्छे पाठक, श्रोता गण। त्रिलोचन का मानना है कि आज का कवि (अधिकांशत:) बिकाऊ है, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में जकड़कर वह अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं करता। ऐसे कविगण सेठ-साहूकारों की चापलूसी करते हैं। कवि काव्य सर्जना के सकारात्मक पहलुओं पर भी इंगित करता है लेकिन उसे ज्ञात है कि जब रचनाकार अभिप्रेत अर्थ को अभिव्यंजित करता है तो कोई भी उसे ग्रहण करने की इच्छा नहीं रखता। 'कहना मुझे बहुत कुछ है' इस कविता का उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है। वे जो कुछ कहना चाहते है उसे सुननेवाले मनोनुकूल श्रोता-पाठक उन्हें नहीं मिले इसलिए उन्हें पीड़ा का अनुभव होता है और ऐसे में वे कह उठते हैं -

कहना मुझे बहुत कुछ है, पर सुननेवाला
कहाँ खोजने जाऊँ मैं, इतनी तत्परता
मुझ में है भी नहीं और मैं कहनेवाला
भी वैसा हूँ नहीं-(137)

संभवत: कवि समाज के प्रति अपने दायित्व को लेकर सजग होने के कारण पैसों के पीछे भागना नहीं चाहता। समाज में स्थित लोगों की विपदाओं का चित्रण करते हुए कवि ने भारत के सच्चे नागरिक के कर्तव्य को निभाया है। वह सहृदय होकर आम जनता के जीवन के दु:खों को बाँटना चाहता है। 'धन की उतनी नहीं' इस कविता के माध्यम से त्रिलोचन कहते हैं -

धन की उतनी नहीं मुझे जन की परवा है
जितनी जो मुझसे खुल कर मन से मिलता है
मै उसका वशवर्ती हूँ इससे खिलता है
मेरे प्राणों का शतदल।-(138)

कवि का मानना है कि यदि मानवता के महान गुणों की समाज को लोगों ने त्याग दिया तो उनके मन को कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। अत: हर व्यक्ति का दायित्व है कि वह पद भ्रष्ट हुए लोगों को रास्ता दिखाए। इस संदर्भ में 'व्यथा हुई है मुझे' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

दुनिया है, जब जिससे जैसा हो
किए चलो बस, अपनी दिशा न चूको जग में
मनुष्य सब के उपर है, चाहे जिस मग में -(139)

त्रिलोचन ने स्वयं अपने जीवन में विभिन्न तरह के आघात सहे हैं।

इसलिए कवि जानता है कि जब आगे बढ़ने के सभी रास्ते बंद हो जाते हैं तो एक तिनके का सहारा भी मन को मजबूत कर देता है। इसलिए कवि औरों से कहता है कि (ऐसे) थके-हारे, निराश व्यक्ति को सहानुभूति देना बहुत आवश्यक है ताकि वे आगे जाकर जीवन की विपदाओं का सामना कर सके। विपरीत परिस्थितियों की आग में जलकर ही त्रिलोचन का ह्रदय सोना बन गया है। अत: उनके मन में मानवता की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। ' मेरी सो बढ़कर है तेरी आवश्यकता' में कवि कहता है-

मेरी से बढ़कर है तेरी आवश्यकता
कहा और अपने हाथों से अंतिम प्याला
बढ़ा दिया घायल के मुहँ की ओर उजाला
चेहरे पर मानवता का आया।(140)

समाज में स्थित समस्याओं के बारे में गहन विचार करते हुए कवि को प्रतीत होता है कि भारत देश की जनता ने भूख, अकाल, महामारी, चोरी, रिश्वतखोरी, हत्याएँ, डाके, बलात्कार आदि विपदाओं का सामना किया है और आज भी कर रही है। लेकिन जीवन के प्रति आस्थावान कवि इन हताश करनेवाली स्थितियों में भी दया की भीख नहीं चाहता। वह तो संघर्षो में ही नए रास्तों को तलाशता है। परंतु प्राय: देखा जाता है कि जब व्यक्ति के जीवन में दु:ख के काले बादल छा जाते हैं, तो वह भयाक्रांत हो जाता है, अन्यमनस्कता की स्थिति में अपने जीवन को बस ढोने लगता है। लेकिन कवि को इस प्रकार का पलायनवादी जीवन स्वीकार नहीं है। इसलिए कवि 'यह दुनिया है' कविता में सलाह देता है -

अगर चाहते हो तुम जीना,
धक्के मारो इसी भीड़ पर,
इससे ड़रना जीवन को विनष्ट करना है।-(141)

त्रिलोचन कहते हैं कि व्यक्ति को कभी-कभी इस संघर्षरत जीवन में कठोर परिस्थितियों के झझांवात में घिरना पड़ता है तो कभी-कभी स्वार्थी लोलुप व्यक्तियों द्वारा शोषित होना पड़ता है। ऐसे में व्यक्ति के अंतर्मन को गहरी चोट पहुँचती है लेकिन व्यक्ति को अपने गंतव्य तक पहुँचने की कोशिश लगातार करनी चाहिए। अंततः चोट खाकर गिरा हुआ व्यक्ति जब दुबारा उठ खड़ा होता है तो वह अनुभव-संपन्न मनुष्य और मजबूती के साथ संघर्ष कर सकता है। इसलिए त्रिलोचन 'पाठक नया नहीं हूँ' में कहते हैं -

आज लड़े, कल हारे, बैठे

जोड़ों में बल हुआ, उठें, फिर रण में पैठे।(142)

त्रिलोचन संघर्षरत व्यक्ति को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि जीवन के संकटों से व्यक्ति को भयभीत न होकर डटकर मुकाबला करना चाहिए। 'बाधाओं के सन्मुख' कविता के द्वारा कवि लोगों को प्रेरित करते हुए कहता है कि

बाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना,

तुम मनुष्य हो, मनुष्यता का यह बाना है,

करते ही जाएँगे उस को जो ठाना है,

अंतिम क्षण तक।(143)

त्रिलोचन को विश्वास है कि जीवन गतिशील और परिवर्तनशील है। अतः यदि इन दुःखद स्थितियों को परिवर्तित करते हुए जीवन को विकास के पथ पर लाना है तो स्वयं प्रयास करना आवश्यक है, औरों की ओर लालायित दृष्टि से देखने से काम नहीं चलेगा। 'चिंता छोड़ो' कविता में कवि के इन्हीं विचारों को अभिव्यक्ति मिली है। त्रिलोचन कहते हैं -

अपने ही कर बल का करो भरोसा, झूठी

आशाओं से छलो न अपने को,(144)

इस काव्य संकलन में कवि एक ओर जहाँ थकित, म्लान व्यक्ति को दिशा-निर्देश करता है, वहीं दूसरी ओर सत्ता-व्यवस्था की भर्त्सना भी करता है। आजादी के पूर्व अंग्रेजों ने भारत देश की जनता का शोषण किया लेकिन आजादी के पश्चात् भारत के कुछ देशभक्त गद्दार हो गए। इन हालातों को देखकर कवि उत्तेजित होकर 'कहा जियावन ने' कविता में कहता है -

सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के लिए

मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को

जिसको नेता लूट रहे हैं, कह कर, ताको

मत, हम तो हैं ही।(145)

त्रिलोचन भ्रष्ट नेताओं के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करने के लिए 'सभा पागलों ने की' कविता में उन्हें घाघ कहते हैं।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि ने धार्मिक बाह्याडंबर, परंपरागत रुढ़िगत विचारधाराओं का विरोध किया है। भारत देश आजाद अवश्य हो गया, लेकिन धर्मगत रुढ़िवाद का अंत नहीं हुआ, इस बात को लेकर त्रिलोचन बहुत ही चिंतित

हो जाते हैं। 'वह मेरा भाई है' कविता में कवि की धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि दिखायी देती है। जैसे -

हिंदू मुसलमान ईसाई अब ये सारे
नाम मिटेंगे, सब मनुष्य होंगे तुम हारे।(146)

विज्ञान ने बहुत ही ज्यादा प्रगति की है लेकिन पुरानी मान्यताओं में विश्वास करनेवाला हमारे भारत देश का जन समुदाय आज भी रुढ़ परंपराओं को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। 'टर्र टर्र कर काशी-कूप निवासी' कविता का व्यंग्य देखिए :-

छोड़ नहीं सकते परंपरा
का अंचल हम रेल, विमान, तार, ऐटम बम
विश्वासों को किसी तरह से कुछ भी कम
नहीं कर सकेंगे।(147)

हिमालय के उच्च शिखर, गंगा की पवित्रता हमारी धार्मिक भावना के साथ जुड़े रहे। लेकिन कवि व्यंग्य करते हुए कहता है कि आज ऐसे धार्मिक स्थलों में भले-बुरे, गुंडे-सज्जन सभी किस्म के लोग रहते हैं। कवि ने 'काशीपुरी पवित्र है' कविता में धार्मिक सडाँध पर तीखा मार्मिक व्यंग्य किया है, कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है -

काशीपुरी पवित्र है इसीलिए यहाँ पर
दुनिया की गंदगी इकट्ठा मिल जाती है,
और छोर से लोग छोड़ने पाप जहाँ पर
पहुँचे, काशी दशा वहाँ की दिखलाती है।(148)

प्रस्तुत काव्य संग्रह में त्रिलोचन ने जीवन के अनेकानेक गंभीर मुद्दों को उठाने के साथ ही प्रेम की कोमल रागात्मक अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है। सर्जनात्मक क्षणों में काव्य शैली के अंतर्गत सॉनेटों के लिए लोकप्रिय त्रिलोचन प्राय: सॉनेट के शास्त्रीय ढाँचे को नहीं अपनाते, साथ ही कभी-कभी आवश्यकतानुसार सॉनेटों में रोला छंद का प्रयोग नहीं करते। लेकिन प्रस्तुत काव्य संग्रह की अधिकांश रचनाओं में उन्होंने रोला छंद का प्रयोग किया है।

डॉ. हरदयाल ने उपर्युक्त काव्य-संग्रह की समीक्षा करते हुए कहा है - ''गहरी और तीव्र अनुभूति, सोचने के लिए पाठक को विवश करनेवाली विचारशीलता का इन चतुर्दशपदियों में अभाव है। यह अभाव वहाँ भी दिखायी देता है जहाँ कवि ने अपने मानसिक ऊहापोह की चर्चा की है। फिर भी भाग्यवाद का विरोध, संघर्ष की पक्षधरता,परिवर्तन और गति को अनिवार्य मानना, मनुष्य

को मनुष्य के रुप में सम्मान देने की बात कहना, परंपरावादियों को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाना इत्यादि के द्वारा कवि की स्वस्थ एवं प्रगतिशील दृष्टि सामने आती है। यही दृष्टिकोण त्रिलोचन की चतुर्दशपदियों को महत्वपूर्ण बनाती है।''(149)

11. सबका अपना आकाश (1987)

'सबका अपना आकाश' काव्यसंग्रह 1987 में राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली-पटना के द्वारा प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत संग्रह में 1948 से 1968 के बीच की गयी कुछ रचनाओं का संकलन है जिसमें कुल 52 कविताएं संग्रहीत हैं।

'सबका अपना आकाश' का आकाश बहुत ही विशाल है जिसमें मनुष्य की रागात्मकता, जीवन का मर्म, प्रकृति के विविध रंग, प्रेम की तरलता, राष्ट्रीयता एवं समसामायिक संदर्भ आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इसमें कवि सामान्य जन को पूरी जीवंतता के साथ जीवन जीने का संदेश देता है। जीवन में व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण वह कभी-कभी हताश और निराश हो जाता है। त्रिलोचन ने स्वयं निजी जीवन के संघर्षो को खूब झेला है, फिर भी वे कभी भी पीछे नहीं हटे। कवि स्वयं आशावादी होने के कारण इस प्रकार की हताशा को स्वीकार नहीं करता। अत: कवि औरों को संदेश देते हुए 'नव जीवन के सिंह द्वार पर' कविता में कहता है -

नई चेतना के रथ पर आरुढ़
नई शक्ति से भरे हुए सानंद
अपने पथ को पार करो स्वच्छंद
बाधाओं की ओर न आँख उठाओ-(150)

त्रिलोचन के अनुसार जीवन तो नश्वर है लेकिन व्यक्ति का धर्म है कि अपने कर्मो को करते जाए, इसलिए कवि कहता है -

अभी चला क्या, बहुत बहुत आगे चलना है,
गति जीवन है यति उस की क्षति।(151)

इस प्रकार के गतिशील जीवन को अपनाने के लिए कवि स्वयं लोगों को प्रेरित करता है। क्योंकि कभी-कभी व्यक्ति विरोधी परिस्थितियों में विपरीत कार्य करने लगता है, उसकी अंत: प्रज्ञा उसे विचलित कर देती है। ऐसे लोगों को कवि स्नेह देना चाहता है और कहता है कि

तुम तिमिर रंजित नयन से देख क्या पाए,
प्राण का अवलंब लो, विश्वास मुझ से लो।(152)

काव्य धरातल पर त्रिलोचन निराला से काफी प्रभावित हैं इसलिए उनके काव्य सौंदर्य के कतिपय पक्ष इनकी रचनाओं में मिलते हैं। प्रकृति के विषय में निराला को बादलों का कवि कहा जाता है। त्रिलोचन ने भी वर्षा ऋतु का बड़ा मनोहारी चित्रण किया है। 'बादल घिर आए' इस कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

दादुर, मोर, पपीहे बोले
धरती ने सोंधे स्वर खोले
मौन, समीर तरंगित हो ले
यह दिन फिर आए।

इस प्रकार त्रिलोचन ने प्रकृति वर्णन के अंतर्गत शरद ऋतु, भोर का दृश्य, झरना, पारिजात, आकाश में उड़नेवाले कपोत आदि का प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। कहीं-कहीं कवि ने प्राकृतिक उपादानों का उदाहरण देते हुए जीवन के रोमानी भावों को भी व्याख्यायित किया है। ''स्निग्ध श्याम घन की छाया है'' इस कविता में त्रिलोचन कहते हैं -

स्निग्ध श्याम घन की छाया है
ग्रीष्म-पन्थ पर याद तुम्हारी
वृक्षहीन यह निर्जन यात्रा
भूमि मूक उत्ताप भरी है-(154)

इसमें प्रेमसंबंधी कविताएँ भी प्राप्त होती है। त्रिलोचन की प्रेम संबंधी कविताओं में प्रेम की जो तरलता प्राप्त होती है, वह किसी अन्य को संबोधित की गयी है, इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अत: उनकी प्रेम संबंधी कविताओं के केंद्र में उनकी सहधर्मिणी है जिनके स्नेहवर्णन में दाम्पत्य जीवन का अनुराग सहज रुप में व्यक्त हुआ है। 'न जाने हुई बात क्या' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है -

मुझे अब बहुत पूछने तुम लगी हो,
उधर नींद थी इन दिनों तुम जगी हो,
यह बात होगी
अगर कुछ न हो तो कहूँ और क्या
परिचय पुराना अब नया है-(155)

प्रस्तुत काव्यसंग्रह में राष्ट्रीयता का स्वर भी प्राप्त होता है जिसके द्वारा कवि 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को ही अभिव्यक्त करता है। ''जोत नई उकसाओ'' कविता में त्रिलोचन की लोगमंगल की भावना व्यक्त हुई है जिसमें वे आपस की कटुता को दूर कर गले मिलने की बात करते हैं।

देश देश को स्वतंत्रता मिल जाए
देश देश को प्राणशक्ति मिल जाए
देश देश में मनुष्यता खिल जाए
नई मशाल जलाओ हर्ष मनाओ-(156)

एक तरह से कहें तो प्रसाद की वह पंक्ति याद आती है जिसमें वे भारतीय जनता को जागृत करते हुए उर्जस्वित जनता को आर्य संतान कहकर संबोधित करते हैं।

त्रिलोचन प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े रहे हैं, अत: उनकी कविताओं में क्रांति की ललकार पायी जाती है। 'आ रही है दूर की' इस कविता में वे कहते हैं -

दूर की अट्टालिकाएँ लड़खड़ा कर लो गई सो
किंतु जो आई धमक उस के यहाँ के कंप देखो
मुँह अंधेरे दौड़ते है कुछ इधर को कुछ उधर को
दौड़ यह केवल बढ़ाएगी अधिक उत्ताप
क्रांति क्या जाने विजय-(157)

इस संकलन का समग्र मूल्यांकन करने के बाद ज्ञात होता है कि त्रिलोचन की भाषा की पकड़ जबरदस्त है। वे शब्दों के शिल्पी रहे हैं और अपने शिल्प की रचना काफी सजगता के साथ करते हैं जिसके कारण अप्रस्तुत विधान मन में भली भाँति अंकित हो जाता है। प्रस्तुत संग्रह में भी त्रिलोचन की भाषा संबंधी यह विशेषता दिखायी देती है। वे अपनी कविताओं में वर्णों का प्रयोग इस प्रकार से करते हैं कि कविता की अपनी समग्रता में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं आ पाता। ''मैं तुम्हारा'' इस कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है -

मैं तुम्हारा
बन गया तो
फिर न हारा
आँख तक कर
फिर थक कर

डाल का फल
गिरा पक कर [158]

कवि त्रिलोचन ने इस काव्यसंग्रह में कहीं-कहीं देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन तद्भव शब्दों के प्रयोग के द्वारा कवि की रचनाधर्मिता की स्वाभाविकता के ही दर्शन होते हैं। ''आँसू बाँधे है मैंने'' इस कविता में त्रिलोचन कहते हैं -

आँसू बाँधे मैंने गठरिया में
अपने भी हैं और पराए भी हैं ये
उपराए हैं तो तराए भी हैं ये
आप आ गये हैं बराए भी हैं ये
साधे है मैंने कन कन डगरिया में-[159]

अत: हम कह सकते हैं कि त्रिलोचन के इस आकाश का रंग चितकबरा है क्योंकि, उनकी कविताएँ कमोबेश रुप से जीवन के हर रंग को स्पर्श करने का प्रयास करती है ताकि कोई भी व्यक्ति उससे अनछुआ न रहे। अत: वह सबका अपना आकाश है।

प्रस्तुत काव्यसंग्रह का मूल्यांकन करते हुए डा. उषा भटनागर कहती है, ''कुल मिलाकर यह संकलन त्रिलोचन जैसे स्थापित कवि की काव्य श्रृंखला में एक और कड़ी जोड़ता है। हिंदी कविता के क्षेत्र में आज की कविता जिस तरह से अबूझ और अगेय हो गई है, छंदों के बंधनो को तोड़ने के साथ गद्य की ओर उन्मुख हुई है वहीं त्रिलोचन की कविता में आज भी ताजगी है, छंद है, अलंकार है, सार्थक बिंब है और कविता की गेयता है। उन्हें पढ़कर बार-बार पढ़ने का मन करता है। यही उनकी कविता की सार्थकता है। उनके इस संकलन की अभूतपूर्व सफलता है।''[160]

12. चैती (1987)

'चैती' काव्य-संग्रह 1987 में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ जिसमें 1954 से 1964 तक की लिखी हुई 34 कविताओं को संकलित किया गया है। प्रस्तुत संग्रह अन्य काव्य-संग्रहों की अपेक्षा अलग है। क्योंकि इसमें बीच-बीच में चार पंक्तियों की कविताएँ भी प्राप्त होती है। इस संकलन के शीर्षक 'चैती' पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि यह नामानुसार एक

गान है जिसमें कवि जीवन के कठोर पक्षों पर दृष्टिपात करता है, तो कहीं कोमल भाव पैदा करनेवाले प्रकृति की ओर भाव-विभोर दृष्टि से देखता है, तो कहीं जीवन-मूल्यों एवं सामाजिक दायित्वों की बात करता है, तो कहीं एकाकी क्षणों में मन की रागात्मक अनुभूतियों को आभ्यंतरित करने का प्रयास भी करता है। 'चैती' का संवेदनशील कवि कहीं भी वायवीय बातें नहीं करता। वह इस ठोस धरती पर कदम रखकर उसे उसकी वास्तविकता में स्वीकार करता है।

त्रिलोचन आधुनिक युग के रचनाकार होने के बावजूद तथाकथित आधुनिकता के साँचे में बंधकर नहीं रहते। उनकी कविता जीवन के हर आयामों को स्पर्श करती है। कवि के लिए कविता जीवन से असंपृक्त हो ही नहीं सकती। उनकी कविता तो लोक-जीवन, लोक -संस्कृति के साथ जुड़ी रहती है, जिसके दर्शन प्रस्तुत संग्रह में भी होते हैं। 'चैती' काव्य-संग्रह के द्वारा त्रिलोचन की विशेषताओं को रेखंकित करते हुए स्वप्निल श्रीवास्तव लिखते हैं -

''त्रिलोचन त्रिलोचन है और कुछ हो नहीं सकते। उनकी कविताओं में संवाद स्थापित करने की अद्भुत क्षमता है। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए लगातार यह अनुभव होगा कि कोई व्यक्ति गाँव की चौपाल से किसी को कुछ कह रहा है। जीवन-स्पर्श कविता में इतना सहज-स्वाभाविक है कि सीधे-सादे अनुभव को काव्यात्मक अलंकरण की जरुरत होती ही नहीं।''(161)

इस संदर्भ में 'पवन शान्त नहीं है' का उदाहरण द्रष्टव्य है -

आओ जरा देर और घूमें फिरे
पवन आज उद्धत है
वृक्ष-लता-तृण-वीरुध नाचते हैं
चौपाल कुलेल करते हैं
और चिड़ियाँ बोलती हैं
आओ श्यामा थोड़ा और घूमें फिरें।(162)

प्रकृति चित्रण के द्वारा ग्राम्य जीवन की अनेकानेक झाँकियों को प्रस्तुत करने का प्रयास त्रिलोचन की विशेषता रही है जो 'चैती' में भी दिखायी देती है। वे प्रकृति-चित्रण में सटीक भाषा का प्रयोग करते है जिसके कारण कविता का प्रभाव बरकरार रहता है और पूरा चित्र आँखों के सामने आ जाता है, साथ ही वह कविता गेय बन जाती है। 'झापस' कविता का उदाहरण प्रस्तुत है -

वर्षा
फुहार, कभी झीसी, कभी झिर्री, कभी रिमझिम

और कभी झर झर झर झर
बिजली चमकती है
चिर्री गिरती है
पेड़ पालो सभी काँपते हैं।(163)

रजनीगंधा की टहनियाँ भी कवि के मन में एक कसक पैदा करती है, अगहन की धूप कवि को एक नयी उर्जा प्रदान करती है, वसंत के आगमन से कवि प्रफुल्लित तो हो ही जाता है साथ ही अभ्यागत की अभ्यर्थना करने के लिए लालायित भी हो उठता है, ऐसे में कवि अपनी भावनाओं को शब्दबद्ध करते हुए कहता है -

नव वसंत खिला जब भाग्य सा
भुवन में तब जीवन आ गया
गगन ने उस को अपनाव से
अतुल गौरव से, अपना किया।(164)

प्रकृति के अनेकानेक उपादान कवि के जीवन को स्फुरित करते हैं। प्रकाश जल से सिक्त होकर कवि सुरीली सारंगी बजाकर जीवन को रागात्मक बनाने के साथ-साथ जीवन में जीवंतता लाना चाहता है, अत: कहता है -

सुरीली सारंगी अतुल रस-धारा उगल के
कहीं खोई जो थी, बढ़कर उठाया लहर में
बजाते ही पाया, बज कर यही तार सब को
बहा ले जाएँगे, भनक पड जाए तनिक तो-(165)

'चैती' संकलन में त्रिलोचन ने व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों के द्वारा समष्टिगत तत्वों को पाठकों के समकक्ष रखने का प्रयास किया है। कवि का व्यक्तिगत जीवन नितांत वैयक्तिक नहीं होता बल्कि वह रचना-प्रक्रिया के द्वारा मन की अकुलाहट को व्यक्त करते हुए सामाजिक चिंतन को भी मुखरित करता है। रचनाकार में बसे व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि सोचने लगता है कि रायल्टी के थोड़े से पैसे के लिए भी कितनी तकलीफें उठानी पड़ती है? कवि को इस बात की प्रतीति होती है कि प्रतिभा, भरसक प्रयास आदि के बावजूद उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई, वह उपेक्षित ही रहा। रचनाकार अपने समकालीन कवियों की गुटबाजी की प्रवृत्ति से त्रस्त है। कवि अपनी कविताओं को उपेक्षित महसूस करते हुए उसकी परवाह नहीं करता अपितु वह उस पर गर्व करता है कि मैं अपने हृदय की बात बोल-चाल की भाषा में ही व्यक्त करता

हूँ। इस संदर्भ में वह अपनी लोकप्रियता की कतई परवाह नहीं करता। इसलिए बहुत ही विनम्र होकर कवि 'मैं कृतज्ञ हूँ' में कहता है -

मेरी कविताओं के सपने सब मेरे हैं
मुझे तो प्रसन्नता है
यदि मेरे सपनों को कोई भी नहीं कहता
मेरे हैं।(166)

जिस व्यक्ति ने अभावों को देखा है, वह उसकी पीड़ा को बेहतर ढंग से जान पाता है - भले ही वह अभाव किसी भी स्तर का क्यों न हो। मध्यमवर्गीय अभावग्रस्त जीवन की विसंगतियों को त्रिलोचन ने 'नन्हें' नामक कविता में बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। उपर-उपर से बहुत ही साधारण लगनेवाली कविता अपनी अतल गहराई में बहुत ही मर्मस्पर्शी है, वह अन्त:श्चेतना में पैठ जाती है। हवाई जहाज के लिए जिद करनेवाले नन्हें के बारे में बताते हुए त्रिलोचन भाषा को कहीं भी अलंकृत न करते हुए अभावमय सामान्य जीवन की विपदाओं की बात सरलतापूर्वक करते हैं -

कैसे समझाए कोई बच्चे को
वह क्या जाने हवाई जहाज
उसका बाप भी
बस देखा करता है और
उसे पाने का
स्वप्न तक नहीं देखा उसने
किसी दिन-(167)

त्रिलोचन ने विवर्ण, विकल, उद्विग्न , विक्षुब्ध जनता के दु:खों को भी वाणी दी है। शमशेर बहादुर सिंह के जन्मदिन के अवसर पर शुभकामना देते समय भी कवि उस समय की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को देखकर आक्रांत हो उठता है। 'कवि शमशेर से' का रचनाकाल 3-1-1963 का अर्थात भारत-चीन के आक्रमण का है। अत: कवि शमशेर को जन्म दिन की बधाई देने के साथ-साथ सम-सामायिक जीवन संदर्भो को भी चित्रित करता है और इस स्थिति को दूर करने के लिए सृजनशील रचनाकारों को संगठित होने के लिए सचेत भी करता है। कवि कहता है -

काव्यों का अनुगान भावमय हो, पाथेय हो, तेज हो
सोतों का चुपचाप हाथ पकड़े लाए उन्हें क्षेत्र में,

द्रष्टा हो तुम, मौन गान मन के देते रहे हो यहाँ
प्राणाकार अभिन्न भाव भर के फूलो फलो वृक्ष से।(168)

कवि ने नए-पुराने के बीच के द्वंद्व का रेखांकन 'ऐसा ही था' कविता में किया है। पुराने रुढ़ परंपरागत विचारों को स्वीकार करने के लिए कवि तैयार नहीं है। इसलिए कवि कहता है -

आज जो तुम्हारी बातें है
बातें जो पीढ़ियों की कालावधि लाँघ कर
मेरे पास आई हैं
इनका पहनावा अब पुराना पड़ गया है।(169)

निश्चित रुप से प्राचीन रुढ़ बातों का विनाश तो होना ही है लेकिन आधुनिक युग के अनुसार जो नवीन मूल्य स्थापित होंगे, उसमें भी दया, क्षमा, शांति, करूणा रहेगी। संकीर्ण विचारों का नाश होने के पश्चात लोगों में नयी चेतना उत्पन्न होगी, लघुता खत्म होकर जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण व्यापक और विशाल हो जाएगा, अत: कवि 'क्षण की खिड़की' में कहता है -

जीवन
चाहे क्षण की खिड़की पर आ जाय
पर
वह क्षण के घेरे में घिरा नहीं
जैसे
खिड़की के घेरे में आया आकाश-(170)

कवि को लगता है कि जब समाज के भाव-जगत और सांसारिक-व्यावहारिक जीवन में शुचिता आ जाएगी, रुढ़ियों का विनाश होगा तब समाज निश्चित रुप से विकासशील होगा। इसलिए कवि मार्ग बताता है कि केवल अच्छे विचारों से ही काम नहीं चलेगा बल्कि आचरण में भी शुचिता लानी होगी। वरना देखा जाता है कि लोग अच्छे विचारों का मुखौटा पहनकर जीते हैं लेकिन उनके आचारों में भिन्नता होती है। ऐसे लोगों पर व्यंग्य करने के साथ ही अच्छाई को रुपायित करते हुए कवि कहता है -

अच्छे विचारों से
अच्छाई नहीं आती
अच्छे आचार ही
अच्छाई लाते हैं।(171)

'चैती' के गुंजन में 'सारनाथ' को भूलना संभव नहीं है। डॉ.

गोरेलाल चंदेल ने 'सारनाथ' कविता के संदर्भ में लिखा है -

''सारनाथ कविता में त्रिलोचन विराग के भीतर राग, पलायन के भीतर स्थापन, अलगाव के भीतर लगाव, विरक्ति के भीतर अनुरक्ति और पतझड़ के भीतर बहार की संभावनाओं की कविता है। कवि इन संभावनाओं की तलाश के लिए सारनाथ के बौद्ध विहार और उसके आस-पास की प्रकृति का सहारा लेता है।''(172)

त्रिलोचन की इस संग्रह में संकलित 'सारनाथ' कविता अन्य कविताओं की अपेक्षा लंबी है जिसमें कवि ने प्रकृति के द्वारा मानवीय उद्वेलन को उद्भुत किया है। कर्मठ विरक्त भिक्षुकों की भर्त्सना करते हुए त्रिलोचन सारनाथ का वर्णन करते हुए कहते हैं -

अब तो यह सारनाथ नागरिकां, नागरिकाओं
का विहार-स्थल है, सुंदर विहार है, तथागत अब तो
तुम प्रसन्न हो? देखो जरा, इतने इतने लोग यहाँ
आते हैं तुम्हारे लिए।(173)

इस प्रकार हम देखते है कि 'चैती' काव्य-संग्रह की समस्त कविताएं विभिन्न भावबोधों को लेकर रची गयी है जिनमें कहीं कवि के व्यक्तिगत जीवन के अभाव है तो कहीं राष्ट्र एवं समाज की पीड़ा है। इस संग्रह में मूलतः शीर्षक के अनुसार गाँव के गँवईपन को अधिकांश रुप में उजागर किया गया है। संग्रह की भाषा एकदम गाँवो की बोल-चाल की भाषा है जिसमें देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण काव्य संग्रह की अपनी एक विशिष्ट पहचान है जो कि कहीं न कहीं दूसरे काव्य-संग्रहो से निश्चित रुप से भिन्न है।

13. 'अमोला' (1990)

'अमोला' संग्रह का प्रकाशन 1990 में हुआ। त्रिलोचन के अन्य काव्य संग्रहों की अपेक्षा भाषागत दृष्टि से 'अमोला' निश्चित रुप से हटकर है। आधुनिक परिवेश में ठेठ अवधी भाषा में पाठकों के साथ रागात्मकता स्थापित करना उतना आसान नहीं है। परंतु 'अमोला' के द्वारा त्रिलोचन ने वह कर दिखाया है। महानगरीय परिवेश में ट्रेक्टरों से भूमि को तहस-नहस करके विज्ञान के अद्यतन आविष्कारों के द्वारा मानव ने एक विशाल बृहतकाय कांक्रीट का जंगल खड़ा किया। इसमें ग्रामीण जीवन की महक, पुरवइया के झोंके, महकते हुए ग्राम, लहलहाते खेत, जी तोड़ मेहनत करनेवाले किसान आँगन में चारपाईयों

पर सूखते अमावट पर भनभनाते हाड़ा, घूरे पर कुसलियों का ढेर, सावन आते -आते लहलहानेवाले लाले पत्तियोंवाले अमोले, शाम के समय हौले-हौले लौटते चरवाहे, अगल-बगल के खेतों में मुँह मारनेवाले पशु- आदि कहीं मानो गुम हो गए। 'अमोला' के द्‌वारा कवि हमारे सामने दुबारा एक चित्र खड़ा करना चाहता है जिसे देखने की इच्छा सालो-साल पूरी नहीं हो पाती।

त्रिलोचन को यह ज्ञात है कि आधुनिक परिवेश में स्वार्थ की आपा-धापी में हर व्यक्ति भाग रहा है। सुख-सुविधाओं के पीछे भागनेवाले लोगों में अपनत्व की भावना नहीं रही जिसे ग्रामीण भाषा में हम आपसदारी कहते हैं। ऐसे में भोले-भाले लोगों की हँसी, खेसकड़ी, नोंक-झोंक भरी आत्मीयता, क्षणिक मन-मुटाव और फिर एक होनेवाला भाव कवि को रीझाता है (विपरीत वातावरण में) इस तरह रोजी रोटी के लिए धक्के खाते हुए महानगर की फ्लॅट की व्यवस्था में ग्रामीण परिवेश की वह सौंधी-सौंधी महक कवि को पुराने दिनों की यादों में ले जाती है।

'अमोला' की धरती कटघरा चिरानीपट्टी की है। सावन की साँझ में आकाश मटमैला हो रहा है, चरवाहे हौले-हौले लौट रहे हैं, पशु अपने मुकाम पर लौटते हुए भी अगल-बगल के खेतों में मुँह मार रहे हैं, लोग बाजार हाट से लौटते हुए किसी तरह अपने घरों में वापिस लौट रहे हैं, खपरैलों से चुल्हे का धुआँ निकल रहा है, इस अंधियारे में घूरे पर अमोला लहरा रहा है, इन अमोलों का उखाड़कर उनकी कुसुली को किवाड़ या पक्की दीवाल से रगड़ कर सीटी बनती है और इस लोकधुन को सुनते ही बनता है - यह परिवेश भला कांक्रीट के जंगल में कैसे मिल सकता है? इसके लिए तो अमोला की अवधी भाषा से होकर गुजरना पड़ेगा।

गाँव में मनाया जानेवाला फागुन भी निश्चित रुप से शहर से भिन्न है। गाँजे की चिलम जलती है, भाँग में धतूरे के बीज पीस दिए जाते हैं, जय बम भोले की, जय कलकत्ते की काली, बोल कबीरा सर्र आदि से सारा वातावरण आंदोलित हो उठता है। त्रिलोचन लिखते हैं -

> बेल पत्त ल्यड्ड पीयर फूल धतूर
> महादेव न चाहइं ढेर फतुर।
> पहिरइँ बलछाला अउ रहैं मसान
> महादेव क जानइ जे नगिचान।(174)

'अमोला' में जाड़े के दिनों का भी वर्णन प्राप्त होता है। शहर की

भाग दौड़ की जिंदगी में हम ऋतुओं के परिवर्तन को अपनी सुविधानुसार ही देखते हैं। मगर उसके आस्वादन से सिक्त ग्रामीण मन ही अमोला की विशेषता है। जाड़े के दिनों में साँझ होते ही अलाव जल उठते हैं, भूने हुए आलुओं को खाने के लिए बच्चे लालायित हो उठते हैं, गंजी के लिए छीना -झपटी शुरु होती है, कोल्हार से पकते गुड़ का गमका हवा में तैरने लगता है। भला कहिए यह सब हम शहरों में अनुभव कर सकते है? इसलिए कवि जाड़े की ठंडक में गरमाहट को महसूस करते हुए कहता है -

किकुरी मारे जाड़ा थाम्हा जाइ
जऊले नस-नस खून चलइ गरमाइ।
जेकर तपता कबहूँ बरा धंधोर
अब केऊ चितवत नाहीं तेकरी और।(175)

ग्रामीण वातावरण की प्राकृतिक सुदंरता सभी ओर से व्यक्ति को प्रसन्न करती है लेकिन वहीं दूसरी ओर जमीदारों का सर्वहारा वर्ग पर किया जानेवाला शोषण उसका कुरूप रुप सामने रखता है। हम तो जानते है कि वह भारत देश का किसान ही है जो विभिन्न घात-प्रतिघातों को सहते हुए भी अपनी धरती माँ को फलित-फुलित करने का सपना संजोए हुए रखता है। वह जाड़े के दिनो में, गरमी-बरसात में भी जी तोड़ मेहनत करके अपने खेतों की निगरानी करता है। आजकल भले ही खेती करने के अत्याधुनिक साधन उपलब्ध हो तो भी गाँव का चतुर किसान सचेत रहता है कि न तो खेत का कोई कोना, न पानी बेकार जाए और न डाभी को तहस-नहस किया जाए। ग्रामीण स्त्रियाँ भी इसमें पीछे नहीं रहती। कवि लिखता है -

फूटे गलाश मुनइ भूनत जाइ
खेतवाई में नारी निरखत जाइ-(176)

आजादी के बाद जमींदारी उन्मूलन कानून तो जारी किया गया लेकिन ग्रामीण जनता उस सुविधा से वंचित रही । क्योंकि इसके द्वारा भी जमींदारो ने अपनी सुविधानुसार फायदा देखते हुए पैसे बटोरे लेकिन किसानों को कुछ न मिल सका। अंततः किसान खेतिहर से मजदूर बन गया। गाँव में रहकर खटिया बनानेवाला मजदूर 50-50 पैसे के लिए चिरौरी करने के लिए विवश है। यह है आज के ग्रामीण वातावरण की बेबसी, दरिद्र रेषा से भी निम्न-स्तर का जीवन जीने के लिए अभिशप्त यह ग्रामीण जनता। उनके जीवन की समस्याओं के बारे में सोचने के लिए किसी के पास न तो उतना समय है न

तो आवश्यकता, इसलिए वह जी रहा है एक कीड़े मकौड़े की जिंदगी। कवि लिखता है -

चिंता अपने चितए जरि बरि जाइ
अनचितए परफुलित रहइ अधिकाइ
फूले पइसि किरओना जएँ दिरआन
बढ़ि बिआसि छेंकानि रुप रोगिआन।
सहसन बाधा सहसन रोग बिआधि
कैस भइ जिनगी बाढ़इ एससि उपाधि।(177)

आज का सुज्ञ पाठक जिसे समकालीन या आधुनिक कविता कहता है, उस श्रेणी में ' अमोला' बैठ नहीं सकता, बहुत पीछे रह जाता है। वह आज के समाज की त्रासदी, विडंबना, विसंगति, असंगति को रेखांकित तो नहीं करता। वैसे देखा जाए तो भारत देश की अधिकांश जनता गाँवों में बसती है, तो ऐसे में हम उनकी समस्याओं को कैसे अनदेखा कर सकते है? अतः मेरी दृष्टि से 'अमोला' निश्चित रुप से समकालीन है। हमें वाकई में गाँवों की ओर दुबारा वापस लौटने की आवश्यकता निश्चित रुप से है। इस संदर्भ में मान बहादुर सिंह लिखते है -

''रेल और जहाज की कविता हमें किस मंजिल पर ले जा रही है उसे ले जाने पर त्रिलोचन अपनी कटघरा चिरानी पट्टी लिए पैदल ही भटक रहा है। यह 'अमोला' काफी हाउस के गमले में जरुर मुरझा जायेगा। पूरे देश में यही अमोला सिर पर धूप धरे चला जा रहा है - आकाश की तरफ अपने उर्वर घूरे पर गहरे जड़े फैलाता हुआ।''(178)

ग्रामीण जीवन की सुंदरता एवं समस्याओं के साथ-साथ प्रस्तुत संग्रह में कवि ने ग्रामीण व्यक्ति के सादगीपूर्ण सरल जीवन को भी रेखांकित किया है। शहरी लोगों की तरह मुखौटाधारी बने रहना इस ग्रामवासी को नहीं भाता। निश्चित रुप से इसका मतलब यह नहीं है कि गाँव का आदमी द्वेष, ईर्षा, कपट, घृणा आदि भावों को नहीं जानता, जानता तो है लेकिन यह बुरे मनोविकार लंबे समय तक उसके मन में बने नहीं रहते। वह तो निरंतर रुप से गंगा की पवित्रता को अपने मन के अतल गहराइयों में संयोजित करते हुए जीवन-यापन करता है। गाँव में प्रायः हमें यह गुहार सुनाई पड़ती है - उधर थून लगाओ, पटका थामो. सीढी पर चढ़ जाओ, जोर लगाओ भइया। कवि 'अमोला' में कहता है-

निरछल रहि के करइ जवन कुछ होइ
मझलि मिले तत्कालइ डारइ धोइ।
× × ×
कतहुँ अड़गड़े जऊँ संकट समुहाइ
ओकाँ चीन्हइ जइसे गाइ दुहाइ।
के एस मन राखइ जेस भाई बाप
एहि सोचे के बइठि सहइ संताप।(179)

संग्रह का मूल्यांकन करने के उपरांत लगता है कि ग्रामीण जीवन की मनोहारिता, लोक-जीवन, लोक-संस्कृति, अवसाद, पीड़ा, थकान, जिजीविषा, उत्कटता, उत्पीड़न आदि को हम 'अमोला' में देख सकते हैं। यदि पढ़ते समय भाव पकड़ में आ जाए तो भाषागत कठिनाई उतनी ज्यादा महसूस नहीं होती 'अमोला' का छंद बरवै 19 मात्राओं का है जिसमें यति के नियम का पालन नहीं किया गया है।

'अमोला' की काव्यगत विशेषताओं पर लिखते हुए मान बहादुर सिंह का मंतव्य है -

" जिस लोक-जीवन के घाघ और भंडरी ने, आते-जाते मौसमों को साथ बाँचा था उसी लोक-जीवन की महागाथा है 'अमोला'। यह इस जीवन के लिए ऐसा नीति-शास्त्र है जिसे कवि ने भोगकर अपने अनुभव से रचा है। यह नीतिशास्त्र किसी अलौकिकता को पाने के लिए नहीं है बल्कि इस जीवन को जीने लायक बनाने के लिए है। जनजीवन सेजुड़ी सूक्तियों का यह भंड़ार अपने में ऐसे अनछुए-अनूठे बिम्बों को भरे है कि चकित रह जाना पड़ता है। किसी भी पंक्ति में अँगुली पकड़ कर जीवन के आपसी रिश्तों के व्यवहार और व्यापार के तह तक पहुँचा जा सकता है।"(180)

१५. देश काल (1986)

त्रिलोचन द्वारा रचित 'देश-काल' कहानी संग्रह 1986 में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। मूलत: कवि होते हुए वे कभी-कभी कहानियाँ भी लिखते रहते थे। अभी तक 'देशकाल' कहानी संग्रह में प्रकाशित उनकी कुल 20 कहानियाँ मिलती हैं जिसका अनुक्रम जगत शंखधर तथा संकलन दिनेश शर्मा द्वारा किया गया है। इसमें लेखक ने भारतीय संस्कृति एवं लोक

मानसिकता को ठेठ शब्दों में व्यक्त किया है।

'देश-काल' की कहानियाँ नदी की धारा के समान कल-कल होकर बहती है जो ग्रामीण मिट्टी की खुशबू लिए हुए है। कभी-कभी इस नदी के जल का स्वाद काफी मीठा लगता है, तो कभी-कभी उसमें कसैलापन आ जाता हैं अर्थात उनकी कहानियों के पात्र कभी समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को निभाते हैं, मानवीय संवेगों को दर्शाते है तो कभी अमानवीयता, कपट-लंपटता, स्वार्थ, पलायनवाद का दर्शन कराते हैं। त्रिलोचन की कहानियों में जीवन के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का आ जाना स्वाभाविक है क्योंकि समाज में भी विभिन्न तरह के लोग रहते हैं जिसमें कुछ लोग चारित्रिक दृढ़ता को दिखाते हैं तो कुछ लोग चरित्रहीन होते हैं। त्रिलोचन ने भी इन मिश्रित प्रवृत्तियों का चित्रण कभी ग्रामीण तो कभी शहरी परिवेश के द्वारा किया है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में लेखक ने ग्रामीण जीवन की समग्रता एवं अभावग्रस्तता आदि दोनों पहलुओं का वर्णन किया है। 'देशकाल' शीर्षक कहानी में जांति-पांति की कट्टरता का वर्णन दिखायी देता है जिसका उल्लेख लेखक ने परसाद बाबा के वक्तव्य के द्वारा किया है, वे कहते है- ''काऊ कहथ्थै भगतवा ? ब्रहमने ठकुरे अउ अहिरे चमारे मँ कौनउ भेदइ नाइ बा? सब बरोबरि होइ जाए।''(181)

लेखक ने समाज में व्याप्त जांति-पांति की संकीर्ण भावना और कट्टरता को बताते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि समय के साथ-साथ लोगों की मानसिकता में किस प्रकार बदलाव आया है। त्रिलोचन की कहानी का पात्र सिउपाल कहता है- ''साहेब त सबका मनई बनइ दिहे रहेन। इ मेड़-डाँढ़ त हम तूँ डारि लिहे रहे। अब मेड़ डाँढ़ न रहे। कुलि एक होये।''(182)

'नदी के किनारे' कहानी में भी त्रिलोचन ने सुरियारी गाँव के मल्लाहों के चित्रण के द्वारा गाँवों में स्थित प्राकृतिक जीवन और प्रकारांतर से मानवीय जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। ग्रामीण प्राकृतिक परिवेश के बारे में त्रिलोचन लिखते हैं-

''यह गाँव आम, महुए, नीम, कटहल, पीपल, आछी, बरगद, सिंघोरे, बबूल, रेवा, और चिलबिल की छाया में कब से था, इसे कोई नहीं जानता। बारहों मास सुरियारी एकरस रहता। उसके घर जैसे के तैसे रहते।''(183)

'देश-काल' कहानी संग्रह में सत्ताधारी वर्ग का चित्रण भी पाया जाता है। भारत देश में आजादी के पूर्व एवं तुरंत बाद जितने भी दल बनें वे जनता के उत्कर्ष के लिए बने। लेकिन कालांतर में विभिन्न राजनीतिक दल अपने

मार्ग से भटक गए और सत्ताधारी वर्ग की चापलूसी करने लगे। वास्तव में स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थित विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं का समावेश सत्ताधारी वर्ग में किया जा सकता है क्योंकि उनके द्‌वारा भी सामान्य जनता का शोषण हो रहा है। अत: लेखक व्यंग्यात्मक रुप से कहता है कि स्वयंसेवक कहलानेवाले लोगों का ध्यान गरीब, दीन-निर्बल भारतवासियों की ओर नहीं जाता। अपनी दलील लेकर बीच में आ जानेवाले लोगों से इन स्वयंसेवकों की व्यवस्था में व्यवधान पड़ जाता है। 'बाल बच्चे' कहानी के माध्यम से भी लेखक व्यंग्य करता है कि प्रारंभ में तो राजाके सैनिकों के द्‌वारा किसान को मार दिया जाता है लेकिन आगे जाकर राजा अपनी दया दिखाता हुआ कहता है- ''इनका पालन करो। ये राष्ट्र के बच्चे हैं। संकट के समय राष्ट्र इनसे काम लेगा।'' अर्थात हर तरफ से सत्ताधारी वर्ग का स्वार्थ ही दिखायी देता है।(184)

त्रिलोचन व्यक्तिगत जीवन में संकटों को झेलते हुए भी अन्याय, अत्याचार का विरोध करते रहे और इसी वजह से वे अधिकारी वर्ग के समक्ष झुके नहीं। उनमें आत्म-सम्मान की भावना कूट-कूटकर भरी थी। वही बात'महाप्रयाण' कहानी के द्‌वारा प्रकट होती है। वास्तव में इस कहानी का पात्र 'वासुदेव' स्वयं लेखक है जो कहता है ''निर्धन और असहाय मर क्यों नहीं जाते माँ? क्यों वे दूसरों की दया की दुहाई करते हैं ? किस लोभ से वे जीना चाहते है? वे अभागे क्यों दूसरों के दान से अपना जीवन लंबा करके अपमान भोग रहे हैं? कह देना माँ उनसे कि मेरा वासुदेव कह गया है कि तुम लोग आग में जल जाओं, पानी में डूब जाओ, पहाड़ से गिरकर मर जाओ,परंतु आदमी होकर आदमी का दिया हुआ अपमान सुख से मत सहो। और यह कि जीने की चाह न मिटे तो काल बनकर जीओ।'' (185)

लेखक ने 'सोलह आने', 'संबंध' आदि कहानियों के द्‌वारा संवेदनशील व्यक्तियों के जीवन का वर्णन किया है जिसके द्‌वारा कहानीकार ने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि आधुनिक समाज में देवल, वसंत जैसे व्यक्तियों को समाज के द्‌वारा बुरा व्यवहार मिलता है । मानवीय मन की रागात्मकता, संवेदनशीलता का परिचय वसंत के माध्यम से होता है। चित्रों के द्‌वारा जीवन के तथ्यों के बारे में चिंतन करनेवाला वसंत समाज की दृष्टि से मूढ़ है। लेकिन वह इस बात के लिए लालायित है कि लोग उसके अंतर्मन को समझे, मानवीयता की दृष्टि से ही वह औरों के दु:खों से द्रवित हो जाता है और इसी कारणवश गरीब स्त्री और उसके लड़के की देखभाल करने लगता है लेकिन समाज उसे बुरी निगाहों से देखता है। वसंत अपने जीवन से ही उब जाता है।

यह सबसे बड़ा व्यंग्य है कि बौद्धिकता को प्रधानता देनेवाला समाज वसंत जैसे भावनाप्रधान व्यक्तियों की पीड़ा को समझ नहीं पाता या समझना नहीं चाहता।

'चिंता' एवम् ' उपलब्धि' कहानियों में नारी की दुरवस्था का चित्रण किया गया है।'चिंता' कहानी के द्वारा लेखक ने अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। 'उपलब्धि' कहानी अपनी सांकेतिकता में बडी ही प्रभावोत्पादक हैं। सिवहरख सुकुल एवं रामनाथ सिंह के द्वारा पति के मौत के बाद अकेलेपन के संत्रास से पीड़ित पंडाइन की बेबसी का फायदा उठाया जाता है। लेखक ने प्रस्तुत कथा संग्रह के माध्यम से केवल नारी की असहायता का ही वर्णन नहीं किया है, वरन् जोखन, झूरी आदि पात्रों के माध्यम से गरीबी , अभाव में जीवन-यापन कर रहे लोगों के अत्याचार सहन करने की प्रवृत्ति को भी मुखरित किया है। 'अपनी इज्ज़त आप करों' के झूरीं का मानना है कि गरीबों की कोई इज्ज़त नहीं होती क्योंकि उसके पास धन नहीं होता । पाहुनों का स्वागत करना हो या पड़ोसी का दाह-संस्कार करना हो, गरीब व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता नहीं होती कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन को अच्छा रूपाकार दें । इसलिए झूरी कहता है , ''जो धन से ढके है वे सभी आघातों से बचे रहते हैं। उनकी इज्ज़त है, उनकी पूंछ है। उनको चिंता नहीं करनी कि अपनी इज्ज़त आप करो : दुनिया इज्ज़त करेगी। जो गरीब है, उनसे कहना कि अपनी इज्ज़त आप करो दुनिया इज्ज़त करेगी- उनकी हँसी उड़ाना है।''(186)

'जोखन' कहानी में भी इसी के संकेत प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत कहानी का प्रमुख पात्र भी रूपए कमाने के लिए कलकत्ता चला जाता है और इस बीच जोखन का भाई मुनेस्सर और उसकी पत्नी गाँव से निकल जाते हैं। रोग से ग्रस्त होने और पत्नी के वियोग के दु:ख को सहता हुआ जोखन अपने जीवन को बस एक बोझ समझकर ढोने लगता है।

त्रिलोचन की 'जिऊधन', 'रुपरेखा' आदि कहानियाँ कुछ हद तक रेखाचित्र की विधा के पैटर्न पर चलती है। जैसे जिऊधन की पत्नी का वर्णन करते हुए लेखक कहता है ''जिऊधन की औरत का नाम है बिपता, पुकारते हैं लोग उसे बिपती कहकर। छोटी सी दुबली-पतली औरत है। गोल मुँह। देह पर एक मैला कपड़ा लिपटा रहता। कभी-कभी वस्त्र उजला भी रहता है; उतने ही दिन तक जितने तक कि खरीदने का दिन एक पखवारा नहीं हो जाता। बोलती है कायदे से। आवाज मीठी है जरा। गुस्सा भी उसे आता है लेकिन माथे पर रेखाएँ दो-चार मिनट से ज्यादा नहीं ठहरती। फिर वह हँस पड़ती है।''(187)

प्राचीन काल में वयस्कों द्‌वारा सुनाई जानेवाली कहानियों का स्वरूप 'बंडा सियार', 'ढेला और पत्ता', 'बाल-बच्चे' आदि कहानियों में प्राप्त होता है। 'पहाड की आत्मा' कहानी मात्र कथन लगती है जिसमें कथात्मक गुणों का अभाव है।

वस्तुत: कहानी के उद्‌देश्यों में प्रमुख उद्‌देश्य है कथावस्तु एवं कथोपकथन। कहानी में यदि कथात्मकता एवं कौतुहल का पुट आ जाए तो पढ़ने में रोचकता आ जाती है। लेकिन प्रस्तुत कहानी-संग्रह की कुछ कहानियों में बस वर्णनात्मकता है और कहीं-कहीं शब्द-रचना भी काव्यात्मक लगती है। इसके साथ मैं यह भी कहना चाहूँगी कि इन कहानियों का अभिप्राय उच्च कोटि का होने के कारण अन्य बातें दब सी जाती है और कहानियाँ अपनी सार्थकता को पा लेती है।

१८. 'मेरा घर' (2002)

त्रिलोचन द्‌वारा सद्य: प्रकाशित (2002) 'मेरा घर' काव्य संग्रह अपनी दिवंगत पत्नी जयमूर्तिजी को समर्पित है। उनके इस संग्रह में उन कविताओं का समायोजन किया गया है जो अब तक किसी अन्य काव्य-संग्रह में प्रकाशित नहीं हुई है बल्कि पत्र-पत्रिकाओं के द्‌वारा उसे वाणी मिली है। यह संग्रह इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि बड़े लंबे अंतराल के बाद पुस्तक रुप में उनकी कृति प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन काल भले ही 2002 रहा हो लेकिन रचना-काल 1940 से 2002 तक का रहा है। इसलिए इसमें त्रिलोचन की विभिन्न मनोदशाओं को जाना जा सकता है।

मानवीय अनुराग की भूरी-भूरी प्रशंसा करनेवाले त्रिलोचन यहाँ समाज की कटु वास्तविकता की ओर ईंगित करते हुए उसकी कठोरता को अभिव्यक्त करते हैं। ग्रामीण जीवन से सिक्त कवि मन महानगरीय मुखौटेबाजी की संस्कृति को स्वीकार नहीं कर पाता। मिनरल वाटर, पंखा झलने की आधुनिक संस्कृति से मुक्त होने के कारण त्रिलोचन दुबारा अपने मूल मन:पिण्ड के अनुरूप 'ईख पकने पर' उसके द्‌वारा उद्‌भुत आनंद में सराबोर हो उठते हैं। त्रिलोचन कहते है-

भेलियाँ वन जाने पर
सबको गुड़ दिया गया
फिर कड़ाह को धोकर

जो पनुआ निकला
आए हुए जनों को
पूछकर पिलाया गया-(188)

त्रिलोचन के लिए शायद यह कहना इसलिए जरुरी हो जाता है क्योंकि आज कल की नयी पीढी यह नहीं जानती कि ईख क्या होता है, उसे कैसे काटा जाता है, उसका चुहना क्या होता है और वह ग्रामीण जीवन का त्यौहार कैसे होता है?

आज की बदलती हुयी सामाजिक संरचना की मीमांसा करते हुए त्रिलोचन इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उत्तर खो गया है। अत: वे इस शीर्षक कविता में कहते है-

कहाँ है समाज
अपना राज
कौन उत्तर दे
प्रश्न
केवल प्रश्न
उत्तर खो गया है।(189)

मानवीय मूल्यों को तिलांजली देनेवाले समाज में जब त्रिलोचन जनसेवा के नाम पर भ्रष्टाचार फैलानेवाले स्वार्थी नेता, लखनऊ की सड़कों पर विद्यार्थियों की होनेवाली हत्याओं को देखते हैं, तो अन्यमनस्क से हो जाते हैं। वे तो चाहते थे 'सर्वे भवन्तु सुखिन:।' लेकिन दुबारा सोचने के लिए विवश है कि इस विक्षुब्ध करनेवाली परिस्थितियों में क्या किया जाए? अत: 'मेरा घर' शीर्षक कविता में पुन: आस्थामयी संभावना की ओर बढते हुए कहते हैं-

तारे सब
सहचर हैं मेरे
पेड़ अपनी उँगलियों टहनियों को
हिला हिलाकर मुझे बुलाते हैं-(190)

क्योंकि कवि को प्रतीत होता है कि सारी पृथ्वी मेरा घर है। बौद्धिकता से ग्रस्त समाज को आज आत्मिक उत्कर्ष के लिए संवेदनाओं की आवश्यकता है। स्वार्थ की आपा-धापी में भौतिकता के मध्य कवि यह अंतर्मन से महसूस करता है कि जब तक कविताएँ रहेंगी तब तक सपने भी रहेंगे। उन कविताओं में पीले गुलाबों को देखकर अपनी प्रेमिका को याद किया जा सकता

है (कविता - याद), शिशिर में उमड़ते हुए बौरों को अनुभव किया जा सकता है (कविता- और क्या चाहिए) उसकी साँवली सूरत देखकर भाव-विभोर हो सकते हैं (कविता-साँवली सूरत तुम्हारी) भौहों का इंद्रधनुष्य सिक्त करता है, बचपन की पकड़ा-पकड़ी के खेल में निमग्न होकर (कविता-बाबू) कोमल अनुभूतियों को उजागर किया जा सकता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन के सही मर्म को पहचानें। इतिहास साक्षी है कि हर युग में कोई न कोई आपदा रही है। लोग अपनी-अपनी धुन में चलते हैं। लेकिन जो जीवन के मूल्य को अच्छी तरह से समझता है, उसके लिए मार्ग-क्रमण करना कठीन नहीं रहता। 'अच्छा दिन' में त्रिलोचन कहते हैं-

एक दूसरे का सहयोग समभाव से सबका
सहारा बन सकता है।(191)

जीवन में चाहे शूल हो या फूल हो, व्यक्ति को निरन्तर रुप से आगे बढना होगा।

तरूण अगर उत्स्फुर्तता के साथ आगे बढेंगे तब ही संभव हैं कि हम समाज को बदल सकेंगे। 'गीत' में कवि कहता है-

हर्ष को बाँट दो
खाइयाँ पार दो
और सन्देह को
मूल से काट दो
पाँव की छाप छोड़ो न भूलों भरी।(192)

अशोक वाजपेयी 'मेरा घर' काव्य-संग्रह का मूल्यांकन करते हुए लिखते है - ''इस घर में हुब्बी, पाँचू, टिक्कुल बाबा आदि सब रचे-बसे हैं। त्रिलोचन की कविता साधारण से साधारण चरित्र या घटना या बिम्ब को पूरे जतन से दर्ज करती हैं मानो सब कुछ उनके पास-पड़ोस में है।''(193)

अत: कह सकते है कि प्रस्तुत काव्यसंग्रह में जहाँ एक ओर सरि पर तरि समर्पित राग में प्रकृति प्रेम को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर 'हुब्बी' में हुब्बी का भाग जाना, बाल्यस्मृति में काका की मौत का वातावरण-जीवन के दु:खद पक्ष को उद्घाटित करता है। इसमें जीवन के सुखद एवं दु:खद पक्षों को उजागर करके कवि ने संमिश्र भावों को रेखांकित किया है।

भाषा स्तर पर विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि प्रस्तुत संग्रह में कवि ने गीत, कुंडलिया, अवधि-सॉनेट, अवधि कविताओं के द्वारा विविधता

लाने का प्रयास किया है। 'घर की बोली' उप-शीर्षक के अंतर्गत भाखा क महिमा पाँचू, टिक्कुल बाबा, केकाँ गोहराई, कहेन किहेन जेस तुलसी, सम्हारइ जेतना, सम्हरइ, बोल-बात आदि कविताओं को संयोजित किया है। त्रिलोचन भाषा के महत्व का प्रतिपादन 'भाखा क महिमा' में करते है। किसी विशेष चरित्र को लेकर उसकी चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करते हुए समस्याओं को निरूपित करना त्रिलोचन की विशेषता रही है जो 'टिक्कुल बाबा' में दिखायी देती है।

'नगई महरा' के समान हुक्का पीते हुए टिक्कुल बाबा जब ग्रामीण जीवन में व्याप्त रूढिवादिता की चर्चा करते हैं, तो कविता के लोकप्रिय होने की संभवाना अधिक है। 'कहेन किहेन जेस तुलसी' अवधी भाषा में लिखा गया सॉनेट है जिसमें त्रिलोचन आधुनिक काल की विडंबना को रेखांकित करते हुए कहते है-

> कहेन किहेन जेस तुलसी तेस कैसे अब होये।
> कविता केतना जाने किहेन हैं आगेड करिहैं,
> अपनी अपनी विधि से ई भवसागर तरिहैं-[194]

अन्य काव्य संग्रहों के समान 'मेरा घर' की भाषा सरल है। भाव बडे ही आसानी के साथ सम्प्रेषित होते हैं।

निष्कर्षात्मक रुप से संग्रह का मूल्यांकन करने के बाद पता चलता है कि त्रिलोचन ने इस काव्य संग्रह में समसामायिक जीवन को दर्शाते हुए मूल मानवीय संवेदनाओं को तिरोहित होने नहीं दिया है इसलिए उत्तर आधुनिकता के शोर-शराबे से दूर होकर आज भी ईश्वर में निष्ठा रखते हुए त्रिलोचन कहते हैं-

> प्रभु उन्हें दंड दो
> जो लोग देखते नहीं है
> और कहते हैं देखता हूँ
> वे तुम्हारी ज्योति का
> अपमान किया करते हैं
> प्रभु उन्हें दंड दो-[195]

-o-o-o-

संदर्भ सूची - द्वितीय अध्याय

1. चिंतामणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 141-142
2. धरती, पथ पर चलते रहो निरंतर : प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.28
3. धरती एक समीक्षा : मुक्तिबोध , ५१२
4. धरती , ५१८
5. सापेक्ष, खेतिहर, जिजीविषा के कवि त्रिलोचन : राजकुमार सैनी ,पृ.153
6. धरती : हंस के समान दिन उडकर चला गया पृ.84
7. वही : बादलों में लग गयी है आग दिन की, पृ.79-78
8. वही : धूप सुंदर प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.84
9. धरती : एक समीक्षा, मुक्तिबोध , ५१२
10. धरती : आज मैं अकेला हूँ, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.49-50
11. धरती : एक समीक्षा, मुक्तिबोध , ५१८
12. धरती , ८०१
13. वही
14. धरती : एक समीक्षा, मुक्तिबोध , ८०५
15. सापेक्ष : कविताएँ त्रिलोचन की तब और अब के संदर्भ में, पृ.376
16. शमशेर की कविता : नरेंद्र वसिष्ठ, पृ.58
17. हिन्दी कविता में गजल संवेदना और शिल्प : डॉ. जे. पी. गंगवार
18. गुलाब और बुलबुल, पृ. 131
19. वही, पृ.29
20. हिन्दी कविता में गजल:संवेदना और शिल्प : डॉ. जे.पी. गंगवार , २२
21. गुलाब और बुलबुल, पृ.38
22. वही, पृ.17
23. वही, पृ.23
24. वही, पृ.35
25. वही, पृ.41
26. वही, पृ.63
27. वही, पृ.100
28. वही, पृ.118
29. वही, पृ.53
30. वही, पृ.52
31. वही, पृ.57
32. वही, पृ.106

33. वही (कलेजे का दुःख)
34. सापेक्ष : गुलाब और बुलबुल, मजहर इमाम, पृ.508
35. हिन्दी कविता में गजल संवेदना और शिल्प : डॉ. जे.पी. गंगवार, 25
36. दिगन्त : गाओ पृ.13
37. दिगन्त : भाषा की लहरें, पृ.63
38. वही : अपराजेय पृ.64
39. पौधा निर्भीक खडा है, शिवप्रसाद सिंह, 553
40. दिगन्त : छुट्टा बंधुआ, पृ.26
41. वही : विचार, पृ.35
42. वही : जीवन सागर पृ.59
43. त्रिलोचन एक कवि : एक प्रश्नचिह्न, 129
44. दिगन्त : अट्टाहास कर, पृ.37
45. वही : तुम्हें चाहता हूँ, पृ.14
46. वही : वह अंजोरिया रात, पृ.21
47. वही : मेंहदी और चांदनी, पृ.47
48. वही : तुलसी बाबा पृ.56
49. वही : चित्र, पृ.53
50. एक सुसंबद्ध परंपरा का विकास : हरिनारायण व्यास, 214
51. दिगन्त : नया वर्ष, पृ. 38
52. सापेक्ष : त्रिलोचन की कविता : मलयज पृ. 387
53. ताप के काए हुए दिन : नदी कामधेनु, पृ. 13
54. वही : कोई हरियाली फिर, पृ.35
55. सापेक्ष, केदारनाथ अग्रवाल, 372
56. ताप के ताए हुए दिन, पृथ्वी आकाश, पृ.16
57. वही : आरर डाल, पृ. 54
58. वही : अपना ही घर, पृ.51
59. वही : मैं तुम, पृ.59
60. सापेक्ष, केदारनाथ सिंह, 516
61. शब्द, पृ.32
62. वही पृ.30
63. वही पृ.43
64. वही पृ.41
65. सापेक्ष, परमानंद श्रीवास्तव, 255
66. शब्द, दुखागार है जगत पृ. 13

67. वही,
68. वही पृ.14
69. वही पृ.30
70. वही पृ.35
71. वही
72. वही पृ.40
73. वही
74. सापेक्ष, शब्दों में भी हाड़ मांस है, जीवन यदु
75. शब्द, पृ.29
76. वही, पृ. 23
77. वही पृ.21
78. जीवन के प्रवाह में कविता, जुलाई-सितंबर 87, स्वप्निल श्रीवास्तव, आलोचना
79. उस जनपद का कवि हूँ ,25
80. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक साल उजाला दिपता है,सुधीरा पचौरी, पृ 164
81. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 93
82. वही, पृ. 21
83. वही, पृ. 80
84. सापेक्ष, उन जनपद का कवि हूँ,गोपालशरण तिवारी, पृ 531
85. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 73
86. वही,
87. निराला 'दान'प्रतिनिधि कविताएँ,
88. उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 97
89. जाहिल मेरे बाने: भवानीप्रसाद मिश्र ,27
90. उस जनपद का कवि हूँ, प्रतिनिधि रचनाएँ,32
91. वही, पृ. 62
92. वही
93. वही, पृ.7[illegible]
94. वही
95. सापेक्ष, 523
96. सापेक्ष, 535
97. वही, पृ.541
98. त्रिलोचन के बारे में संकलन : गोविंद प्रसाद, पृ.185
99. सापेक्ष, 550
100. त्रिलोचन के बारे में संकलन : गोविंद प्रसाद, पृ. 186

101. वही, पृ.186
102. वही, पृ.187
103. वही, पृ.187,188
104. सापेक्ष, अरूण कमल पृ.545
105. तुम्हें सौंपता हूँ, संशय, पृ. 15
106. वही, आत्मालोचन, पृ.44
107. वही
108. तुम्हे सौंपता हूँ, रैन बसेरा, पृ.82
109. वही, फूल मुझे ला दे बेले के पृ.37
110. वही, गाथ पृ.5
111. वही, फ्रांस पृ.118
112. वही, यह चिंता वह चिंता, पृ. 41
113. वही, परिचय की गांठ, पृ.86
114. वही
115. वही, अगर चाँद मर जाता, पृ.26
116. वही
117. सापेक्ष
118. सापेक्ष, कठोर साधना के कवि,शमशेर बहादुर सिंह, ३२३
119. फूल नाम है एक, पृ.86
120. वही
121. फूल नाम है एक, पृ.13
122. वही, पृ.41
123. वही, पृ.63
124. वही, पृ.28
125. वही, पृ.103
126. वही, पृ.98
127. वही, पृ.
128. वही, पृ.31
129. वही, पृ.66
130. वही, पृ.85
131. रूपतरंग -रामविलास शर्मा, पृ. २
132. अनकहनी भी कुछ कहनी है, ७।
133. वही : क्या वह भी साहित्यकार है, पृ.33
134. वही : क्या करता हूँ, पृ.21

135. वही
136. वही : कवि तो मानव आत्मा का, पृ.80
137. वही : कहना मुझे बहुत कुछ है, पृ.48
138. वही : धन की उतनी नहीं, पृ.17
139. वही : व्यथा हुई है मुझे, पृ.28
140. वही : मेरी से बढकर है तेरी आवश्यकता, पृ.96
141. वही : यह दुनिया है,।५
142. वही : पाठक नया नहीं हूँ ,२३
143. वही : बाधाओं के सन्मुख, पृ.39
144. वही : चिंता छोडो, पृ.85
145. वही : कहा जियावन ने, पृ.66
146. वही : वह मेरा भाई है, पृ.19
147. वही : टर्र टर्र कर काशी कूप निवासी, पृ.58
148. वही : काशीपुरी पवित्र है, पृ.73
149. प्रकर-अक्तूबर 86 अनकहनी भी कुछ कहनी है, डॉ. हरदयाल
150. सबका अपना आकाश : नव जीवन के सिंह द्वार पर, पृ.10
151. वही : अभी चला क्या, पृ.40
152. वही : स्नेह मरे पास है, पृ.55
153. वही : बादल घिर आए, पृ.9
154. वही : स्निग्ध श्याम घन की छाया है, पृ.49
155. वही : न जाने हुई क्या बात, पृ.61
156. वही : जोत नई उकसाओ, पृ.45
157. वही : आ रही है दूर की, पृ.48
158. वही : मैं तुम्हरा, पृ.67
159. वही : आँसू बाँधे है मैंने, पृ.69
160. सापेक्ष, डॉ. उषा भटनागर
161. जुलाई सितम्बर 87 जीवन के प्रवाह में कविता, स्वप्निल श्रीवास्तव (आलोचना)
162. चैती : पवन शान्त नहीं है, पृ.13
163. वही : झापस, पृ.20
164. वही : वसंत, पृ.34
165. वही : आकांक्षा, पृ.42
166. वही : मैं कृतज्ञ हूँ, पृ.54
167. वही : नन्हें पृ.16
168. वही : कवि शमशेर से, पृ.28

169. वही : ऐसा ही था, पृ.52
170. वही : क्षण की खिडकी, पृ.24
171. वही : अच्छाई, पृ.30
172. सापेक्ष, ८४७
173. चैती : सारनाथ, पृ.48
174. अमोला, पृ.30
175. वही
176. वही, पृ.32
177. वही, पृ.85
178. सापेक्ष, अमोला की धरती, मानबहादुर सिंह, ८८।
179. अमोला, पृ.43
180. सापेक्ष, अमोला की धरती, मानबहादुर सिंह, ८५४
181. देशकाल- देशकाल, शीर्षक कहानी, पृ.90
182. देशकाल- पृ.90
183. वही, पृ.26
184. वही, पृ.128
185. वही, पृ.120
186. वही, पृ.24
187. वही, पृ.77
188. मेरा घर, पृ.51
189. मेरा घर, पृ. 35
190. वही, पृ.14
191. वही , पृ.53
192. वही, पृ.31
193. मेरा घर-मुखपृष्ठ अशोक वाजपेयी
194. मेरा घर, पृ.77
195. वही, पृ.62

***

तृतीय अध्याय

कविता का चौथा एवं पाँचवा दशक और त्रिलोचन

राष्ट्रीय चेतना अपने बहुल आयाम में अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों से प्राय: प्रभावित होती रहती है। वैश्विक स्तर पर परत दर परत होनेवाले परिवर्तनों के कारण स्वरूप प्रकारांतर से विभिन्न राष्ट्रों एवं राज्यों में उसकी प्रतिच्छाया कमोबेश रूप से नजर आती है।

राष्ट्रीय स्तर पर चौथे एवं पाँचवे दशक में हुई महत्वपूर्ण गतिविधियों की ओर दृष्टिक्षेप करने पर ज्ञात होता है कि भारतीय जीवन में ऐतिहासिक रुप से महद घटना है स्वतंत्रता की । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व विभिन्न सक्रिय आंदोलनों के द्वारा आजादी के आंदोलन को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया और इसे सफलता भी प्राप्त हुई। आज की आपा-धापी की जिंदगी में अपने ओजस्वी वक्तव्यों से किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ऐसे में हम देखते है कि स्वतंत्रता के पूर्व गाँव-गाँव में जाकर लोगों को जगाया गया और एकत्रित रूप से लोगों ने अपनी व्यक्तिगत जीवन की सुविधाओं के बारे में न सोचते हुए प्राणाहुति दी। लेकिन 1947 के बाद भारत-पाकिस्तान के बटवारे

के साथ हमें मोहभंग की स्थिति से गुजरना पड़ा, राम-राज्य का सपना एक सपना मात्र बनकर रह गया। वह कभी वास्तव में प्रकट नहीं हुआ क्योंकि आजादी के बाद हमें भाई-भतीजावाद, घोटाले, षडयंत्र, चापलूसी, मूल्य-हनन आदि स्थितियों से गुजरना पड़ा- गुजरना पड़ रहा है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर हुई विभिन्न घटनाओं का उल्लेख आगे विस्तार से किया जाएगा। हमारा चौथे और पाँचवे दशक का राष्ट्रीय परिदृश्य हमारे लिए जितना रोचक रहा है उतना ही वह हतप्रभ करनेवाला भी रहा है।

3.1 राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो सबसे महत्वपूर्ण घटना घटित हुई वह है विश्व-युद्धों की। जर्मनी और इटली राष्ट्रों को लगा कि उनके पास पर्याप्त राष्ट्राधिकार नहीं है। अत: अपनी सीमाओं का फैलाव आवश्यक है। साथ ही उत्पादन की दृष्टि से बाजार उपलब्ध करने की जरुरत को महसूस किया गया। जर्मन, जापान, इटली आदि राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों के निर्माण के लिए भी जूझ रहे थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ के पीछे और एक कारण रहा अल्पसंख्यक लोगों की समस्याएँ। करीब - करीब 30 मिलियन अल्पसंख्यक अपनी स्वयं की भूमि छोड़कर अन्य जगहों में विस्तारित हो गये थे। हंगेरियन, पोल, जर्मन, इटालियन, बल्जेरियन, अल्बेनियन, रशियन, मेकाडोनियल आदि लोग भिन्न-भिन्न जगहों पर निवास कर रहे थे। इस प्रकार का विखंडन युद्ध भूमि के निर्माण के लिए एक ज़लज़ला बन गया। साथ ही आर्थिक विघटन विभिन्न प्रत्यावर्तनों के लिए उत्तरदायी रहा। हर राष्ट्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में लिप्त रहा। सकारात्मक रूप से यह कह सकते हैं कि विश्वयुद्ध के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि कौनसा राष्ट्र किसके पक्ष में है? पक्ष - विपक्ष के इस मुठभेड़ में आम जनता तो पिस गयी। हिंसा का बर्बर दृश्य काफी बीभत्स रहा। 7 मई 1945 में हिटलर ने आत्महत्या की । नेतृत्व के अभाव में जर्मनी ने शरणागति स्वीकार की। जुलाई 1945 में ब्रिटेन, रशिया और अमरीका के प्रतिनिधियों की बर्लिन के निकट पोट्सडम में भेंट हुई और भविष्य के नियोजन पर विचार-विमर्श किया गया। मानवता के इतिहास में कलंकित करनेवाली घटना रही अगस्त 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी में हुए बम विस्फोट की । 2 सितम्बर 1945 में इस क्रूर उत्पात को समाप्त किया गया। घात-प्रतिघात के इस आतंकवादी आक्रमणों से सभी राष्ट्र आक्रांत थे। अत: भविष्य में इस प्रकार की कटुता को उभरने का अवसर न रहे इसलिए प्रतिंबध की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से 10 फरवरी 1947 को पेरिस में शांति प्रस्ताव को पारित किया गया और सभी ने इसमें हस्ताक्षर किए। परंतु जपान ने सितंबर 1951 में सॅनफ्रान्सिस्को में इस पर स्वाक्षरी की। अमरीका और रशिया दो

बलशाली राष्ट्रों के रूप में उभरकर सामने आए। इतिहास साक्षी है कि रशिया में साम्यवाद आने तक अर्थात 1989 तक इन दो राष्ट्रों के बीच शीतयुद्ध चलता रहा। विभिन्न राष्ट्रों का द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक वित्त के स्तर पर काफी नुकसान हुआ। पोर्तुगाल, हॉलंड, बेल्जियम, डेनमार्क, नार्वे, स्पेन आदि राष्ट्रों की अत्याधिक रूप से हानि हुई। इटली आर्थिक विघटन की स्थिति से गुजर रहा था लेकिन 'मार्शल प्लॅन' ने उसे काफी सहारा दिया। युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी का पूर्व जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी के रूप में विभाजन हुआ।

मानवीय जीवन प्रणाली में हो रही उथल-पुथल की देखा-देखी में विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों का उदय हुआ है। विश्व-युद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप 'existentialism'(एक्जिस्टेशियलिजम) नामक दार्शनिक विचारधारा का उदय हुआ। हिन्दी में यही वाद विशेष अस्तित्ववादी विचारधारा के नाम से विख्यात है जिसके प्रणेता फ्रेंच दार्शनिक सात्र है। उनकी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए M. D. David लिखते है - He emphasized the idea that the fundamental fact of life is the existence of man as a free individual. Existentialists do not believe in the benevolence of God. Since man finds himself lonely and in despair, he must involve himself more and more in human affairs. This is a pessimistic view of life. Existentialism has tended to mean in some cases complete individual freedom without any restraint which has led to sexual immorality and excesses, eventually leading to loss of traditional values. (1)

अस्तित्ववादी दर्शन और मनोविज्ञान से जुड़े दार्शनिक फ्रायड, एडलर, युंग आदि के चिंतन से अनुप्राणित भारतीय राष्ट्रीय साहित्यिक स्तर पर भी बदलाव आया। भारत में राष्ट्रीय परिदृश्य में स्वतंत्रता प्राप्ति की ज्वाला प्रज्वलित होती नजर आ रही थी, उसका विस्फोट चारों ओर विस्फारित हो रहा था। वही 1930 से 1950 तक के काल विशेष में हिन्दी साहित्य प्रगतिवाद के उत्थान, पतन और प्रयोगवाद के आरंभ से गुंफित रहा। प्रगतिवाद ने जहाँ निम्नवर्ग को काव्य का विषय बनाया वहाँ प्रयोगवाद ने मध्यवर्ग को केंद्र में रखा। प्रयोग को साध्य और साधन मानकर प्रपद्यवाद की स्थापना बिहार के अनेक कवियों ने की।

सिंहावलोकन करने के बाद ज्ञात होता है कि 1947 अर्थात् आजादी प्राप्त होने के कुछ वर्ष पहले और बाद की परिस्थितियों के दो पाटों के बीच प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता आती है। जहाँ तक 'साहित्य समाज का दपर्ण है' - की उक्ति याद आती है, उसके उनुसार तो आजादी के आंदोलन को तीव्रत्तर करनेवाली कविताओं का निर्माण बहुतायात में होना चाहिए था जबकि हम इस प्रकार की कविता छायावादी

दौर के बाद कुछ समय तक ही प्रेम और मस्ती की छायावादी रचना के साथ-साथ राष्ट्रीय भावभूमि प्रधान विचारधारा माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त की कविताओं में देखते हैं। प्रगतिवाद के अंतर्गत पूँजीवादी सभ्यता के अभ्युत्यान के कारण शोषक और शोषित के रूप में दो वर्गों में विभाजित समाज का चित्रण प्राप्त होता है। अत: कह सकते हैं कि रचनाकार अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की मनोवृत्ति के अनुरूप प्रभाव ग्रहण करते हुए राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय परिदृश्यों से स्फुरित होता रहता है।

3.2 राजनीतिक परिदृश्य

साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण साहित्यिक विचारधारा एवं गतिविधियों में आमूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। त्रिलोचन की काव्य चिंतन धारा तो अबाधित रूप से बहती है। परंतु मोटे तौर पर उद्भव काल के अनुरूप हमने उसे चौथे और पाँचवे दशक के कवि के रूप में समायोजित किया है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि प्राप्त काल में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए परिवर्तन पर दृष्टिक्षेप करें।

लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति का नेतृत्व किया। गांधीजी ने लाहौर में 1929 में कांग्रेस अधिवेशन के लिए पं. जवाहरलाल नेहरू का चुनाव किया। गांधीजी जानते थे कि नेहरू की राजनीति में अति राष्ट्रवादिता है लेकिन उनकी नम्रता और व्यावहारिकता भी सराहनीय थी। अत: महात्मा गांधी ने इस प्रकार निर्णय लिया। उक्त अवसर पर नेहरूजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा वे समाजवादी और प्रजातांत्रिक है, न तो वे सांमतकालीन राजाओं और महाराजाओं की व्यवस्था में विश्वास करते हैं और न ही पूँजीपतियो के रूप में आधुनिक महाराजाओं में।(2)

1930 तक आते-आते कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का नारा लगाया। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विभिन्न अभियानों को जारी करने के संदर्भ में सोचा गया जिसमें सविनय अवज्ञा आंदोलन, सत्याग्रह, अहिंसात्मक प्रयोग आदि को नियुत किया गया। 1 दिसंबर 1929 को आधी रात के समय रावी नदी के तट पर पं. नेहरू ने स्वतंत्रता का झंडा फहराया। 26 जनवरी 1930 को ' स्वतंत्रता दिवस' मनाया गया।

अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए यह नियम बनाया कि अंग्रेजो द्वारा निर्यात किया जानेवाला नमक ही भारतवासी खरीदेंगे। भारत में भी समुद्रतट उपलब्ध थे लेकिन

अंग्रेजों ने भारत में नमक बनाना गैर कानूनी घोषित किया। इसका निषेध करते हुए गांधीजी ने 12 मार्च 1930 को दांडी यात्रा की। साबरमती आश्रम से समुद्र तट तक की दूरी उन्होंने 25 दिन में पूरी की । वे 5 अप्रैल 1930 को 168 यात्रियों के साथ समुद्र तट पर पहुँचे। समुंदर का पानी उबाला गया और उससे 5 ग्राम नमक तैयार करके उसकी नीलामी की गयी। गांधीजी का अगला कदम था दक्षिण गुजरात तट पर धरसाना नामक सरकारी नमक कारखाने पर धावा बोलना लेकिन उन्हें पहले ही 5 मई 1930 को गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी गिरफ्तारी के बाद अब्बार तैयबजी और सरोजनी नायडू ने सत्याग्रही आंदोलन की बागडोर संभाली।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में 'सायमन कमीशन' भी एक महत्वपूर्ण घटना रही। अंग्रेज सरकार ने नवम्बर 1927 में मांटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधारों की जांच पड़ताल करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। सर जान सायमन इसके अध्यक्ष रहे इसलिए इसे सायमन कमीशन कहा जाता है। कमीशन में सात सदस्य थे लेकिन एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। फरवरी 1928 से अप्रैल 1929 तक इस कमीशन ने भारत का दौरा किया और उन्होंने अपना रिपोर्ट 1930 में प्रस्तुत किया। - 2

सायमन कमीशन का ढाँचा इस प्रकार था-

1) प्रांतों में द्वैध शासन समाप्त कर दिया जाए और प्रांतीय प्रशासन का सारा काम विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंप दिया जाए।

2) सिंध और उड़िसा को पृथक प्रान्त बनाने पर विचार किया जाए लेकिन बर्मा को भारत सरकार से तुरंत अलग कर दिया जाए।

3) मतदान का अधिकार बढ़ा दिया जाए और विधान सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी जाए।

4) जहाँ तक केंद्रीय कार्यपालिका का संबंध था, रिपोर्ट के धीरे-धीरे बढ़ने की ध्वनि थी।

5) भविष्य में अखिल भारतीय संघ की स्थापना की जानी है।

6) 1919 के मार्ले-मिंटो सुधार के अनुसार यह सूचित किया था कि 10 वर्षों के बाद सुधारों की जांच कराई जाए।

सायमन कमीशन में भारतीय सदस्य न होने के कारण भारतीयों द्वारा इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। जैसे-जैसे अंग्रेजों का दमन-चक्र तेज होता गया वैसे-वैसे भारतीयों ने आंदोलनों को और तेज किया। इस माहौल को थोड़ा सा शांत करने के लिए लंदन में गोलमेज सभा करने की योजना बनायी गयी। इसमें भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं को आमंत्रित किया गया था। 1930 में गोलमेज परिषद

की पहली सभा संपन्न हुई और 1931 में दूसरी सभा हुई। इस सम्मेलन में साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ गया। इसे देखते हुए गांधीजी ने आमरण अनशन करके 'पूना अैक्ट' के द्वारा हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं में एकता बनाए रखने का प्रयास किया। गोलमेज की तीसरी परिषद 1932 में हुई जिसमें कांग्रेस ने हिस्सा नहीं लिया।

लाहौर अधिवेशन में तय करने के अनुसार सविनय अवज्ञा आंदोलन, पिकेटींग, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि विभिन्न उपक्रमों के कारण अंग्रेजों में ड़र सा समाया हुआ था जिसे वे दमन के द्वारा दबाना चाहते थे। सविनय अवज्ञा आंदोलन के अंतर्गत तीन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ रही। पहली घटना है बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी सूर्यसेन और उनके सहयोगियों द्वारा चटगाँव के शस्त्रागार पर धावा बोलने की। इसमें12 क्रांतिकारी मारे गए लेकिन गांधीजी के अहिंसात्मक कार्यों से मत-भिन्नता होते हुए भी उन्होंने 'गांधी राज आ गया है' का नारा लगाया। दूसरी घटना है- अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में 'खुदाई खिदमतगारों' का संगठन करने की। 23 अप्रैल 1930 को गफ्फार खान को हिरासत में लेने के कारण पेशावर में विद्रोह को दबाने के लिए सेना का प्रयोग किया गया। तीसरी घटना है महाराष्ट्र के सोलापुर में कपड़ा मिलों में हुई हड़ताल की। गांधीजी की 5 मई 1930 को गिरफ्तारी की गयी और महापालिका की इमारतों को आग लगायी गयी।

क्रांति की भावना के अंतर्गत बढ़ते हुए हिंसाचार के कारण गांधीजी काफी दु:खी रहे। आगे जाकर जब सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लिया गया तब पं.नेहरू काफी असंतुष्ट थे और अपने विचारों को उन्होंने 9,10,11 अक्तूबर को 'भारत किधर' (व्हीदर इण्डिया) शीर्षक लेखों में प्रकट किया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक घटना के रूप में 5 मार्च 1931 में गांधी - इर्विन के बीच हुई समझौत की घटना भी महत्वपूर्ण है। इस समझौते में निम्नलिखित शर्तों को स्वीकार किया गया-

1) सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में जो अध्यादेश जारी किए हैं, वे वापस ले लिए जाएंगे।

2) अहिंसक अपराधों के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में जो लोग जेल काट रहे हैं, उन्हें रिहा कर दिया जाएगा।

3) लगान के रूप में जब्त की हुई संपत्ति को लौटा दिया जाएगा।

4) मादक द्रव्यों के व्यवहार को रोकने के लिए ऐसे उपाय काम में न लाए जायेंगे जिनसे कानून की मर्यादा भंग होती है।

5) सरकार नमक प्रशासन संबंधी वर्तमान कानून तोड़ने को क्षमा नहीं

करेगी तथा नमक कानूनों में कोई परिवर्तन नहीं करेगी।

इन शर्तों के बदले में गांधीजी ने कांग्रेस की ओर से कुछ शर्तों को स्वीकार किया। (1) भारत में पुलिस के आचरण पर लगाए गए आरोपों को सार्वजनिक जाँच का आग्रह न किया जाए। (2) सविनय अवज्ञा आंदोलन बंद हो (3) कांग्रेस दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।

1932 में हुए 'पूना समझौता' की घटना भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में दलित नेता डॉ. भीमराव आंबेडकर ने हरिजनों के लिए अलग निर्वाचन का अधिकार मांगा था। जब अंग्रेज सरकार के द्वारा उन्हें यह अधिकार दिया गया तब इसके विरोध में 20 सितंबर 1932 को गांधीजी ने आमरण अनशन शुरू किया। परिणाम के रूप में पं.मदनमोहन मालवीय की प्रेरणा से पहले-पहल बंबई में और बाद में पूना में साम्प्रदायिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने के लिए सम्मेलन का आयोजन किया गया। गांधीजी के अनशन के पाँचवे दिन सम्मेलन में भाग लेनेवाले नेताओं ने सर्वसम्मति से एक योजना स्वीकार की। इसके अनुसार दलित लोगों द्वारा अलग निर्वाचन का अधिकार त्याग देना स्वीकार किया गया। साथ ही यह भी तय किया गया कि इसके बदले में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनों को सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

इस बीच राष्ट्रीय आंदोलन को दबाने के लिए कई अध्यादेश जारी किए गए जिसके तहत 1932 में गांधीजी को जेल में बंद कर दिया गया। इसी बीच कांग्रेस में समाजवादियों का एक दल बन गया जो समाज और सरकार का निर्माण समाजवादी सिद्धांतों पर करना चाहती थी। इसका पहला अधिवेशन 17 मई 1934 में पटना में हुआ।

सायमन कमीशन की रपट को आधार बनाते हुए अंग्रेज सरकार ने 1935 में भारत के लिए नया विधान पास किया जिसके अंतर्गत प्रांतों को स्वतंत्रता दी गयी। सभी प्रांतीय स्तर के मामले मंत्रियों को सौंप दिए गए। यह अंग्रेजों का षडयंत्र था कि उन्होंने कुछ अधिकार गवर्नर को दिए जिस कारणवश वे समयानुकूल प्रांतीय गतिविधियों में हस्तक्षेप कर सकते थे। इस कारणवश कांग्रेस ने अपना निषेध तो व्यक्त किया लेकिन जब इस विधान के अनुसार 1937 में प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं का चुनाव आरंभ हुआ, तब कांग्रेस ने इस चुनाव में हिस्सा लिया। कांग्रेस को उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, मद्रास, बंबई में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ लेकिन आसाम, बंगाल, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांतों में उसे बहुमत प्राप्त नहीं हो पाया। कांग्रेस मंत्रिमंडल बनाना नहीं चाहती थी लेकिन उस समय के वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगों ने जब आश्वासन दिया कि गवर्नर मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेगी, तब कांग्रेस ने मंत्रि-मंडल

बनाया। 28 महीने तक इन कांग्रेसी मंत्रियों ने बड़ी सफलतापूर्वक शासन किया।

1 सितम्बर 1939 में हिटलर की सेनाओं ने पोलैंड में प्रवेश किया और 3 सितम्बर को इग्लैंड के प्रधानमंत्री ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा की। अंग्रेजों के कारण भारत को भी मजबूर होकर इसमें हिस्सा लेना पड़ा। फिर भी हमारे देश के नेता यह जानना चाहते थे कि यह युद्ध किसलिए लड़ा जा रहा है ? अगर यह युद्ध स्वतंत्रता और लोकतंत्र की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है तो भारत को भी निश्चित रुप से आजादी मिलनी चाहिए। लेकिन अंग्रेजों के द्वारा इसका कोई सकारात्मक उत्तर न मिल पाने के कारण कांग्रेसी मंत्रियों ने आठ प्रांतों से इस्तीफा दे दिया। इन कांग्रेस नेताओं ने तय किया कि दुबारा आजादी का आंदोलन तेज किया जाए, जबकि विश्व-युद्ध के संकट काल में गांधीजी अंग्रेजों को परेशान करना नहीं चाहते थे। सो उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ किया जिसके परिणामस्वरूप हजारों सत्याग्रहियों को जेल में डाला गया। कांग्रेस की महासमिति ने अपनी 9-10 अक्तूबर 1939 की बैठक में यह मांग की कि भारत को स्वाधीन राष्ट्र घोषित किया जाए और जहां तक संभव है उसके साथ ऐसा ही बरताव किया जाए। इस बीच निराशाजनक स्थितियों में कांग्रेस और अंग्रेज सरकार के बीच खाई बढ़ती गयी। साथ ही अंग्रेज सरकार के प्रोत्साहन से मुस्लिम लीग के द्वारा विभाजन की मांग बढ़ गयी। वैसे भी इसके पहले से ही धर्म के आधार पर और चुनाव में मतों को लेकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग में मतभेद बढ़ रहे थे। नवंबर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमंडल के त्यागपत्र का मुस्लिम लीग ने स्वागत किया। 22 दिसंबर 1939 को मुसलमानों के लिए 'मुक्ति-दिवस' मनाया गया। मुस्लिम लीग द्वारा यह प्रचार किया गया कि कांग्रेस मुसलमानों के लिए क्रूर है और भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं परंतु एक राष्ट्र है।

फरवरी 1940 में मुस्लिम लीग की एक बैठक में जिन्ना ने कहा - ''ब्रिटिश भारत पर शासन करना चाहता है। गांधी और कांग्रेस मुसलमानों और भारत दोनो पर शासन करना चाहता हैं। हमारा कहना है कि हम यह नहीं चाहते कि गांधी और ब्रिटेन मुसलमानों पर शासन करें। हम स्वतंत्र होना चाहते हैं।''(3)

युद्ध काल में भी सत्याग्रहियों की बढ़ रही क्रियाशीलता को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को अपनी एक योजना के साथ भारत भेजा लेकिन यह योजना सफल नहीं हो पायी। परिस्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई जिसमें 8 अगस्त 1942 को 'भारत छोडो' नामक प्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया गया। 9 अगस्त को हुई गांधीजी की गिरफ्तारी और सत्याग्रहियों को हिरासत में लेने की प्रक्रिया के कारण भारतीय जनता हिल गयी। क्योंकि उन्हें आदेश देने के लिए, पथ-प्रदर्शन के लिए किसी नेता का संबल न रहा।

इसका बुरा परिणाम यह हुआ कि हर कोई अपने-अपने ढंग से विरोध दर्शाने लगा। रेलों की पटरियां उखाड़ी गयी, तार काटे गये, सरकारी दफ्तरों में आग लगायी गयी। इसी समय 'सुभाषचंद्र बोस ने मलाया में अपने देश को स्वतंत्र बनाने के लिए आजाद हिन्द सेना को संगठित किया। जर्मन, इटली और जपान ने आगे जाकर हारकर आत्म-समर्पण कर दिया, इसलिए युद्ध समाप्त हो गया।

क्रिप्स आयोग की असफलता के बाद गांधीजी का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि भारत पर जब तक जपानी आक्रमण का खतरा बना रहेगा, तब तक इग्लैंड का अस्तित्व यहां रहेगा। 16 मई 1942 के एक प्रेस साक्षात्कार में उन्होंने अंग्रजों से अपील की कि वे भारत को या तो भगवान या अराजकता पर छोड़ दे। उनका कहना था- " ब्रिटिश शासन अपने आप में एक अनुशासित अराजकता है। इसके स्थान पर यदि पूर्णरूपेण अशान्ति भी स्थापित हो जाती है, तो भी वह वर्तमान परिस्थितियों से बेहतर है।"(4)

अंग्रजों ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन को खुला विद्रोह माना। इस अवसर पर गांधीजी ने लोगों को 'करो या मरो' का संदेश दिया। उन्होंने कहा- " या तो हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इस कोशिश में मर जायेंगे।"(5)

सरकार ने युद्ध स्तर पर इस आंदोलन को दबाने का प्रयास किया। बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार किया लेकिन फिर भी अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न तरह की सामाजिक, आर्थिक विचारधाराओं को माननेवाले लोगों ने अपने-अपने ढ़ंग से इस आंदोलन को अग्रसर किया। प्रारंभिक दौर में यह आंदोलन शहरों तक ही सीमित रहा लेकिन आगे जाकर इसने व्यापक रूप अपनाया और गाँव के गाँव इस आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए कुद पड़े।

सुभाषचंद्र बोस ने 23 अक्तूबर 1943 में आजद हिन्द की एक अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषणा की और 'चलो दिल्ली' का नारा लगाया। उन्होंने देशवासियों को आवाहन दिया कि वे अंतिम विदेशी को भारत की भूमि से निकालकर ही दम लें। जपानी सेनाओं की मदद से आजाद हिन्द फौज मार्च 1944 में कोहिमा तक पहुँची और वहाँ पर राष्ट्रीय झंडा फहराया। मई 1944 में अंग्रेजी सेनाओं ने फिर से रंगून पर अधिकार कर लिया। सुभाषचंद्र बोस रंगून छोड़कर बैंकाक और सिंगापूर के बाद घूमते-घूमते टोकियो के लिए रवाना हुए। 18 अगस्त 1945 को जहाज दिन में दो बजे के आस-पास फारमोसा के ताईहोकू हवाई अड्डे पर पहुँचा। वहीं पर सुभाषचंद्र ने खाना खाया। वहाँ जैसे ही जहाज यात्रियों को लेकर रवाना हुआ उसमे आग लग गयी और सुभाषचंद्र बोस उसमें बुरी तरह जल गए। आजादी के आंदोलन के लिए यह बहुत बड़ी क्षति थी।

भारत में बढ़ रहे साम्प्रदायिक विद्वेष की रोक-थाम की दृष्टि से मार्च 1944

में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने हिंदू -मूसलमान की एकता की दृष्टि से योजना प्रस्तुत की। बॅ. जिना ने राजाजी योजना को अस्वीकार किया। मुस्लिम लीग ने 'भारत छोड़ो' के आधार पर 'फूट ड़ालो और चले जाओ' का मंत्र दिया। 15 सितंबर 1944 को महात्मा गांधी ने जिन्ना को पत्र में लिखा कि मूझे इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला जिसमें कुछ लोगों ने दूसरा धर्म अपनाकर अपने को अलग राष्ट्र बताया हो। इसपर जिन्ना ने जबाब दिया -"हम यह मानते है कि राष्ट्र की जो भी परिभाषा या कसौटी है, उससे मुसलमान और हिन्दू दो मुख्य राष्ट्र है। हमारा दस करोड़ लोगों का राष्ट्र है और इससे भी बड़ी बात यह है कि हम एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी अलग सभ्यता और संस्कृति है, भाषा और साहित्य है, कला और वास्तु कला है, इतिहास और परंपराएं है।"(6)

युद्ध समाप्ति के बाद इग्लैड की राजनीति में भारी परिवर्तन हुए। वहाँ आम-चुनाव के फलस्वरूप मजदूर दल की सरकार बन गयी जिनके मन में भारतीयों के प्रति सहानुभूति की भावना विद्यमान थी। फलस्वरूप इंग्लैंड के नये प्रधान मंत्री मेजर एटली ने भारत को आजाद करने का निश्चय कर लिया। दिसंबर 1945 में उन्होंने पार्लियामेंट के सदस्यों का एक शिष्ट मंडल भारतीय नेताओं से मिलने के लिए भेजा । इस शिष्ट मंडल ने भारतीय नेताओं से बातचीत की और वापस लौटकर अपना रिपोर्ट पालियामेंट में पेश किया। इसके बाद मेजर इटली ने अपने तीन सदस्यों का एक शिष्ट मंडल (केबिनेट-मिशन) भारत भेजा। इसके अंतर्गत बनायी गयी योजना के दो रूप थे -एक अन्तर्कालीन और दूसरा दीर्घकालीन। कांग्रेस ने केवल दीर्घकालीन योजना को स्वीकार किया। लेकिन मुस्लिम लीग ने उन्हें सरकार बनाने के लिए आमंत्रित न करने के कारण दोनों ही योजनाओं का ठूकरा दिया। साथ ही आंदोलन आरंभ करने की धमकी दी।

जब आम-चुनाव हुए तब यह सिद्ध हो गया कि कांग्रेस ही सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है। उस समय के वाइसराय लार्ड वेवल ने पं. नेहरू को मंत्रि परिषद बनाने के लिए आमंत्रित किया। आगे जाकर मुस्लिम लीग भी उसमें सम्मिलित हो गयी। लेकिन वेवल स्थिति को संभाल नहीं पाए अतएव वे इंग्लैंड चले गए और उनकी जगह पर लार्ड माउण्टबेटन भारत के वाइसराय होकर आए। लार्ड माउण्डबेटन ने भारत की स्थितियों को देखते हुए निष्कर्ष निकाला कि भारत का विभाजन अनिवार्य है। कांग्रेस ने भी इस योजना का स्वीकार किया। अंत में यह निश्चित किया गया कि पश्चिमी पंजाब, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत, सिन्ध तथा पूर्वी बंगाल पाकिस्तान में रहेंगे और शेष भारत का एक अलग संघ होगा।

लार्ड माउण्टबेटन की भारत विभाजन की योजना को कार्यान्वित करने के लिए 4 जुलाई 1947 को ब्रिटीश पालियामेंट में एक बिल प्रस्तुत किया गया जिसे 'भारतीय

स्वतंत्रता बिल' के नाम से पुकारा गया। यह बिल पास हो गया। इस योजना के कार्यान्वियन की तिथि 15 अगस्त 1947 को रखी गयी और अंग्रेजों की गुलामी से भारत देश आजाद हो गया। साथ ही यह भी तय किया गया कि जब तक नया संविधान नहीं बन जाता, तब तक के 1935 विधान के अनुसार शासन चलता रहेगा। आजादी के बाद भारत देश के सामने सबसे बड़ी समस्या संविधान के निर्माण की थी। फलस्वरूप एक संविधान सभा का निर्माण किया गया, जिसने हमारे देश के लिए एक नया संविधान बना दिया जिसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया।

आजाद देश के भविष्य के संदर्भ में अपने अभिमत को व्यक्त करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने लिखा ''I do not know what India will be like or what she will do when she is politically free. But i do know that those of her people who stand for national independence today stand also for the widest inter-nationalism''(7)

15 अगस्त की प्रात:काल की बेला में पं. जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहा-'' आधी रात की इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है, भारत जगकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। एक क्षण ऐसा आता है, जो इतिहास में बहुत ही कम आता है। जब हम पुराने युग से नये युग में कदम रखते है, जब एक युग खत्म होता है और जब एक राष्ट्र की अरसे से दबी आत्मा बोल उठती है । यह बहुत अच्छी बात है कि इस पवित्र क्षण में हम भारत की और उसकी जनता की सेवा और उससे बढ़कर भी मानवता की सेवा करने की सौगंध लेते है।''(8)

प्रात:काल नयी दिल्ली में गवर्नर जनरल की सवारी निकाली। नयी दिल्ली नयी दुल्हन की तरह सजी हुई थी। भीड़ उमड़ पडी थी, अनंत और सीमाहीन उत्साह से लोग भरे-पूरे थे। पंडित नेहरू की जय, लार्ड माउंटबेटन की जय से दिल्ली की दरो-दीवार गूँज उठी थी। एक बार फिर स्वतंत्र भारत की राजधानी के रूप में दिल्ली का भाग्य चमक उठा।

आजादी के बाद हमने जिस रामराज्य का स्वप्न देखा था, वह पूरा नहीं हो सका। आजादी के बाद हिंदू -मुसलमानों के झगड़े बढ़ते गए। भारत पाकिस्तान का बंटवारा देश के लिए एक शाप बन गया। इस संदर्भ में एच. आर. घोसल लिखते है '' Independence brought India face to face with a series of complex problems on the domestic front. One of the most pressing was the question of reorganisation of the India states over which the paramountcy of the British crown had ceased''(9)

विभिन्न लोगों ने विभिन्न ढंग से समस्या को विश्लेषित करने का प्रयास किया लेकिन कोई ठोस उपाय सामने नहीं आ पाया, आज तक हम इस समस्या से जूझ रहे हैं। लेकिन कई लोगों ने, महान विचारकों ने लार्ड माउंटबेटन की नीति को दोषी ठहराया जिसमें 'फूट डालो' की नीति विद्यमान थी। 'मरो और मारो' के कारण भारत में निरंतर रूप से दहशतवाद और आतंकवाद बढ़ता गया और हम स्वतंत्र होने के बावजूद सही अर्थो में स्वतंत्र नहीं हो पाए। मगर अंग्रेजों ने कभी स्वयं को उत्तरदायी नहीं ठहराया।

"History and culture of the India people"- Volume XI में लिखा गया है Some have held Mountbatten responsible for this grim tragedy. According to them it would have not happened had independence not been rushed through at such a desperate rate"[10]

हम विश्व युद्ध की विभीषिका से अवगत थे, आजादी के आंदोलन में कुरबानी दे चुके थे, ऐसे विषाक्त वातावरण में हमने आजादी के बाद कुछ सकारात्मक कार्य भी किए हैं, वैज्ञानिक, औद्योगिकरण के क्षेत्र में उन्नयन का प्रयास करना भारत की प्रधान उपलब्धि रही है। नए भारत के लिए आर्थिक रूप से पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी।

The complex problem of modern times and the influence of the second world war created in India as in the most other countries, an almost unicersal impulse toward a planned reconstruction of the entire pattern of economic life. [11]

3.3 साहित्यिक परिदृश्य

विश्व युद्ध की बीभत्स विभीषिका के परिणाम स्वरूप विदेशी साहित्य में एक नवीन काव्यधारा का निर्माण हुआ। ऑडेन, डे लेविस, स्टेफन स्पेंडर आदि अनेक युवा कवि उभरकर सामने आए जिनमें से कुछ रचनाकार इलियट से अत्याधिक प्रभावित थे तो कुछ प्रतिक्रियावादी थे। इन कवियों ने काव्य निर्माण के लिए नए-नए लय और नवीन भाषा का निर्माण किया। काव्य-वस्तु के अंतर्गत प्रतीकात्मक शैली के साथ-साथ सम-सामायिक जीवन की समस्याओं को भी चित्रित किया गया। राजनीति कविता का विषय बना। वे साम्यवाद के पक्षधर थे। इस संदर्भ में "English Literature of the Twentheth Century" में लिखा गया है-

"They held that at the time it was the duty of poets to take sides

in politics and to use poetry to that end, and in politics they stood on the left, and though themseles mostly University men from profesional middle-class families, they espoused the cause of the 'proletariat'-" (12) अत: इस काल विशेष में कार्ल मार्क्स की विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। स्टेफन स्पेंडर ने काव्य की मूलभूत प्रकृति और राजनीतिक सत्ताधारियों के खतरे को पहचाना। उनके अलावा अपनी भावधारा को तीव्रता के साथ प्रस्फुटित करनेवाले कवियों में ऑडेन का नाम लिया जा सकता है। उनके काव्य में युवा आक्रोश झलकता है। "The Dog Beneath the skin" तथा "The Ascent of F6" ने उन्हें लोकाभिमुख बनाया। 1937 में उनकी काव्य सर्जना के लिए पुरस्कार दिया गया। ऑडेन,इलियट, ओवेन, हॉपकिन्स से अत्याधिक प्रभावित रहे। इलियट से उन्होंने प्रतीकात्मक शैली, चित्रात्मकता की आधुनिक शैली,अनुभूति की स्पष्टता आदि को ग्रहण किया, ओवेन से आंतरिक लयात्मकता, तथा हॉपकिन्स से तालबद्धता को अपनाया। उनका काव्य पाठकों के मन में टीस पैदा कर देता है। जब वे अपने काव्य के माध्यम से अस्वस्थ जगत का चित्रण करते हैं तो वह जगत केवल इंग्लैंड का नहीं बल्कि पूरे विश्व का होता है। वे व्यक्तिगत स्तर पर महसूस करते हैं कि विश्वयुद्ध की त्रासद विभीषिका से हर व्यक्ति टूटा हुआ है। अत: आगे जाकर उनके काव्य में मनोविश्लेषण राजनीति पर हावी हो जाता है। वह मनोविश्लेषण सामाजिक स्तर पर किया गया है, क्योंकि समाज की मानसिकता में आर्थिक विषमता के कारण अनेक प्रकार की तबदिलियाँ पायी गयी। इस संदर्भ में कहा गया है-"It was class-conscious poetry and Karl Marx was behind it. His poetry was dominated by the conception of man in Socity."-(13)

डे लेविस ऑडेन के समकालीन होने के बावजूद निश्चित रूप से ऑडेन से भिन्न है। उनकी कविता में मानवीय पक्ष बहुतायात में पाया जाता है। वे प्रकृति में मानो खो जाते हैं। उनके Transitional Poem, (लघु -कविता संग्रह), From Feathers to Iron, The Magnetic Mountain, A Time to Dance आदि काव्य संग्रह प्राप्त होते हैं। उनके काव्य में एकाकी मन की व्यक्तिगत अनुभूतियों को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। अपनी आंतरिक स्फूर्ति एवं चेतना के प्रति वे काफी आश्वस्त थे। अत: वे आश्वासन देते हैं-

> This is your day : So turn, my comrades turn
> Like infants' cyes like Sunflowers to the light.
> inclied to the metaphysical and technically
> accomplished and it showed again the tendency

of many younger poets to discard Obscurity.(14)

उन्हें प्रकृति और किताबों से अत्याधिक लगाव था। उस युग विशेष में मृत्यु का भय मँडरा रहा था जिसका चित्रण उस काल के अधिकांश कवियों ने किया। इलियट और ऑडेन की तरह सिडने ने भी अपनी कविता में इसका चित्रण किया। उनके संदर्भ में कहा जाता है- "He did indeed express the thoughts and moods of many but with the subtlety of a personal intelligence fighting his own fight and lighting much in nature and particularly in birds to sustain and energise him in his spiritual conflicts."-(15)

इस काल विशेष में पाए जानेवाले कवि एलेन रुक के काव्य में मानवीय समवेदना, औरों के प्रति प्रेम-अनुराग, सौंदर्य के प्रति आसक्ति, आध्यात्मिकता, सात्विकता आदि तत्व पाए जाते हैं। उनके काव्य संग्रह 'The Middle of a war' में युद्‌ध की विभीषिका का चित्रण प्राप्त होता है। वह युग था ही ऐसा जहाँ लोग जीवन की निरर्थकता को महसूस कर रहे थे, अतः निराशावादी स्वर अधिक था। कोई जीजिविषा, आशावाद, आनंद नहीं था। उनके द्वारा लिखित- 'Defending the Harbour' , 'Harbour ferry' आदि रचनाओं में युद्‌ध का चित्रण प्राप्त होता है।

इसके अलावा 'The Sun My Monument' (रचनाकार- Lauvie Lee's), Bombed Happiness, 'Poems of Terence Tiller' (रचनाकार J. F. Hendry's)आदि काव्य संग्रहों में युद्‌ध का वर्णन प्राप्त होता है। पाँचवे दशक के रचनाकार और रचनाओं के संदर्भ में कहा गया है- "So many poets express either personal or impersonal reaction to the tragic, distressing and sordid theme of war. Such reactions were commonly felt, and felt too drearily rather than intensely to produce distinctive and vital poetry."- (16)

इनके अलावा रीचर्ड, डायलन थॉमस आदि रचनाकार सामने उभरकर आए जिनमें से कुछ कवियों ने युद्‌ध के कारण उद्‌भुत निराशाजनक परिस्थिति का चित्रण किया तो कुछ कवियों ने स्थितियों से उभरने का प्रयास किया। रीचर्ड, स्पेंडर जैसे कवियों ने स्थितियों से उभरने का प्रयास किया, व्याप्त परिस्थितियों का आह्‌वान समझकर उसे झेला और जीवन पथ पर अग्रसर होने का संदेसा दिया। कवि कहता है-

To fight without hope is to fight with grace.
The self reconstructed, the false heart repaired (17)

रीचर्ड स्पेंडर की कविता केवल मजदूर और अन्य निम्न वर्ग का ही चित्रण नहीं करती वरन् प्रेम, सौंदर्य, मानवीय मूल्यों को प्रभावशाली ढंग से अंकित करती है।

पाँचवे दशक की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए कहा गया है- "The fifth decade, indeed, ended with the hope of a poetry restored to the fullness of life, renewed in spirit and disciplined again in expression."- (18)

क्योंकि चौथा दशक और पाँचवा दशक दोनों परस्पर संबद्ध रहा। चौथे दशक के युगीन तत्कालीन परिवेश के पदचाप हमें पाँचवे दशक में दिखायी देते हैं जिसके संदर्भ में अगले शीर्षक के अंतर्गत चर्चा होगी ।

प्रस्तुत काल विशेष के अन्य महत्वपूर्ण कवियों में स्पेंडर का नाम लिया जा सकता है। उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण काफी सकारात्मक रहा। 1933 में प्रकाशित 'Poems' में (स्पेंडर की रचना) राजनीतिक परिवेश को चित्रित किया गया है। उनके मतानुसार नए कामरेड निश्चित रूप से समाज को परिवर्तित करेंगे, नए समाज में प्रत्येक मानव के मन में दूसरे मानव के प्रति प्रेम भावना उभरकर सामने आएगी, एक ऐसी जीवन प्रणाली होगी जहाँ भूख का नामो-निशान नहीं होगा और "Man Shall be men" की अवधारणा विकसित होगी। इस युग में प्रस्थापित अन्य कवियों की अपेक्षा स्पेंडर की कम कविताएँ प्रकाशित हुई। 1934 में प्रकाशित 'Vienna' में मजदूर वर्ग एवं ऑस्ट्रीया के तानाशाही से असंतुष्ट जनता का चित्रण प्राप्त होता है। उनके 'The Trial of a judge', 'Two Armies', 'Port Bou' आदि काव्य-संग्रह प्राप्त होते हैं। उनकी काव्य-विशेषताओं के बारे में कहा गया है-

"The poet is he who realises in his art his own being and the being of other lives and nature outside himself. His poems on the spanish civil war had already shown him going deeper than partisanship"- (19)

इन कवियों के अलावा लुईस मॅकनिल, डायलन, थॉमस, जॉर्ज बार्कर, सॅकेवेरेल सीटवेल, क्रिस्टोफर हस्सल आदि रचनाकार है जिन्होंने चौथे दशक के युगीन परिवेश को चित्रित किया।

कविता का पाँचवा दशक

चौथे दशक के समान ही पाँचवे दशक में भी युद्ध की भयावहता से उत्पन्न स्थितियों को चित्रित किया गया है। इस दशक में एडिथ सीटवेल प्रमुख रचनाकार के रूप में उभरकर सामने आयी। उन्होंने युद्ध की त्रासद स्थितियों का चित्रण किया ही है लेकिन उनके काव्य का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनमें आध्यात्मिक उत्स्फुर्तता के भी दर्शन होते हैं। उनकी काव्य विशेषताओं के संदर्भ में कहा गया है-

"For her, poetry had become nothing less than a divine art, divine

because it was religious, and a supreme art because it must not fall short of perfection of craftsmanship."-[20] उनके द्वारा लिखित 'A song of the cold' और 'An old woman and Harvest' काव्य संग्रह काफी लोकप्रिय रहें। 'An old woman and Harvest' में स्वयं को एक वृद्ध महिला के रुप में संबोधित करके उन्होंने जीवन के अभाव, गरीबी, भूख, जहालत से भरी हुई जिंदगी का चित्रण किया है। प्रस्तुत काव्य की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

I am old woman whose heart is like the sun
That has seen too much, looked on too many sorrows
Yet, is not weary of shining, fulfilment and harvest [21]

पाँचवे दशक के रचनाकार सीडने केईज ने 16 वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया और बहुत ही कम अंतराल में उनके काव्य में परिपक्वता दिखायी देने लगी जिसकी आगे जाकर सराहना की गयी। उनकी आयु के 21 वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे कि 1943 में नॉर्थ अफ्रीका में उनकी हत्या की गयी। उनके काव्य की विशेषताओं के संदर्भ में कहा गया है-

His poetry was strong, serious, concentrated, inclined to the metaphysical and technically accomplished and it showed again the tendency of many younger poets to discard obscurity. [22]

हम 20 वीं सदी में देखते हैं कि एडिथ सीटवेल ने साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। आध्यात्मिक विचारधारा से प्रेरित उनकी कविता में आगे जाकर अनेक तनावग्रस्त क्षण मौजूद हुए क्योंकि तनाव तो उस परिवेश की उपज थी। यह कहा जाता है -

"The song of the cold (1945) though containing mainly poems written from 1939 onward, also includes a number of pieces from her early and middle period and shown her progress from the fantastical to the spiritual a progress which, in the light of her poetry as a whole, can be seen as orderly and inevitable."[23]

आधुनिक काल में युद्ध की विभीषिका से त्रस्त होकर मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापना हेतु भी काव्य-रचना की गयी। हमें समाज में तो अच्छे और बुरे दोनों तत्व दिखायी देते हैं। लेकिन बुरे को तो गलित होना है और अच्छे को उभरकर सामने आना है। 'A Dialogue of self and Soul' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

What matter if the ditches are impure

What matter if I live it all once more?
I am content to live it all again
and yet again, it it be Life to pitch
Into the frogspawn of a blind man's ditch [24]

आधुनिक काल का कवि अपने युगीन परिवेश से आक्रांत रहा। चौथे और पाँचवे दशक में कवि के सामने समस्या थी अपने चारों ओर के बीभत्स यथार्थ को चित्रित करने की और उस घृणित वास्तविकता को उभारने के प्रयास की। अत: उसने पुराने मिथ और प्रतीकों के स्थान पर नए मिथक, बिंब, प्रतीकों का इस्तेमाल किया। युद्ध की विभीषिका से गलित मानव की हताशा, निराशा को दर्शाने के लिए कवि ने असंगति, विडंबना आदि को अपनाया। क्योंकि युद्ध की भयावहता को दर्शाने के लिए वही सटीक माध्यम था।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय की अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विन्सटन चर्चिल लिखते है-

"I felt as if I were walking with destiny and that all my past life had been but a preparation for this hour and for this trial. 11 years in the political wilderness had freed me from ordinary party antagonisms. My warming over the last six year had been so numerous, so detailed and were now so terribly Vindlcated that no one could gainsay me although impatient for the morning. I slept soundly and had no need for cheering dreams facts are better than dreams."-[25]

अत: हम कह सकते है कि अंग्रेजी साहित्य में काव्य सर्जना की प्रक्रिया में जो आमूलाग्र परिवर्तन हमें चौथे और पाँचवे दशक में दिखायी देता है, उसके पीछे प्रमुख कारण विश्व-युद्ध की कटु-तिक्त स्थितियाँ रही जिस वजह से साहित्य में एक नया मोड़ आया लेकिन साथ ही यह आशावाद भी रहा कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन होने के उपरांत साहित्यिक अभिरूचि में भी निश्चित रुप से बदलाव होगा।

साहित्यिक परिदृश्य (हिन्दी)

हिन्दी साहित्य में कविता का चौथा दशक प्रगतिवाद के अभ्युदय का युग था। 1936 में लखनऊ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के द्वारा दुबारा साहित्यिक क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ होती हुई नजर आयी।

डॉ.नगेन्द्र ने प्रगतिवाद की कारण-मीमांसा की बात करते हुए लिखा है-

''प्रगतिवाद छायावाद के भस्म से नहीं बल्कि उसके यौवन का गला घोंटकर पैदा हुआ।''(26) प्रारंभ में वे ही रचनाकार जो छायावादी कवि के रुप में विख्यात थे उन्होंने विशेषत: सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने युग की माँग को जानते हुए वायवीय उड़ानों को छोड़कर ठोस धरती से जुड़ी हुई रचनाएँ की। पंत 'ग्राम्या' में लिखते है-

देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से,
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर जीवन पर जन-मन से।(27)

पंत द्वारा प्रकाशित 'गुंजन' (1932), 'युगान्त' (1936), 'युगवाणी' (1939), 'ग्राम्या' (1940), आदि रचनाओं में कवि केवल प्रकृति के चतुर चितेरे की छवि से बाहर निकलकर कठोर सामाजिक जीवन का चित्रण करता है। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की जीवप्रसू चींटी, नारी, दो लड़के, निश्चय, खोज, लेन-देन, झंझा में नीम, ग्राम युवती, ग्रामश्री, वे आँ रहे, धोबियों का नृत्य, भारत माता, वह बुड्ढा, गंगा, चमारों का नाच, संध्या के बाद, पतझर आदि में छायावादी काव्यादर्श को एक नया वास्तववादी काव्यादर्श प्राप्त हुआ। 1938 में 'रूपाभ' के प्रकाशन के द्वारा सुमित्रानंदन पंत ने भारत की गरीब-दरिद्र जनता की ओर ध्यान दिया, वे विश्व-मानव की ओर बढ़े।

अपने संपूर्ण व्यक्तित्व में विद्रोही कवि के रूप में विख्यात सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 1930 में 'परिमल' की भूमिका में लिखा-''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से मुक्त हो जाना।''-(28)

निराला ने 1930 में 'गीतिका' के प्रकाशन के द्वारा व्यक्तिगत अनुभूतियों को सामाजिक जीवन के साथ जोड़ा। 1937 में 'अनामिका' का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। 'सरोज स्मृति', 'तोड़ती पत्थर', 'बनबेला', 'राम की शाक्तिपूजा' तथा 1938 में 'तुलसीदास' के प्रकाशन ने साहित्यिक स्तर पर निराला ने युगांतकारी रचयिता की भूमिका का निर्वाह किया। 'कुकुरमुत्ता' का रचनाकार कवि निराला 'मैंने मैं शैली अपनायी' की बात करते हुए सामाजिक भावना को कतई नहीं भूलता और घोर वैयक्तिक भावभूमि के स्थान पर कटु सामाजिक वास्तविकता-पूँजीवाद के विनाश की कामना करता है। 1943 में प्रकाशित 'अणिमा' द्वारा निराला की कविताओं में विषाद, मोहभंग उभरकर सामने आया है। उसी वर्ष प्रकाशित 'बेला' में कवि की दृष्टि प्रयोगवादी लगती है। निराला द्वारा 1946 में प्रकाशित 'नये पत्ते' में द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंस को चित्रित किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'बादल गरजो', 'तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा' आदि कविताएँ

नयी प्रगतिशील चेतना की सूचना देती है। 'सरोज स्मृति' का कवि घोर पीड़ा में भी सामाजिक खोखली रूढियों, दहेज-प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाता है।

तुमको पीडा में ढूँढा
तुम में ढूँढूंगी पीडा -[29]

कहनेवाली महादेवी वर्मा की कविताओं में युगबोध को ढूँढने का प्रयास किया गया।

वेदना और रहस्यानुभूति के लिए विख्यात महादेवी वर्मा की 'नीहार'(1930), 'रश्मि'(1932), 'नीरजा'(1935), 'सांध्यगीत'(1936), 'दीपाशिखा'(1942) आदि रचनाओं में पीड़ा सर्वत्र विद्यमान है। हालावादी रचनाओं में प्रेम और मस्ती दिखाई देती है।

डुबता मैं किन्तु उतराता,
सदा व्यक्तित्व मेरा,
ही युवक डूबे भले ही
कभी डूबा न यौवन।[30]

छायावाद के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर जयशंकर प्रसाद की सर्व विख्यात रचना 'कामायनी' का प्रकाशन 1935 में हुआ। प्रतीकात्मक ढंग से भावना और बुद्धि के संयोजन के द्वारा आनंदवादी दर्शन की समन्वयात्मक विचारधारा ने हिन्दी साहित्य जगत को अत्याधिक रुप से प्रभावित किया लेकिन जयशंकर प्रसाद के असामायिक निधन के कारण हिन्दी साहित्य की काफी क्षति हुई।

छायावाद और प्रगतिवादी काव्यधारा के बीच में हिन्दी साहित्य में प्रेम और मस्ती का काव्य हालावादी रचना के नाम से जाना जाने लगा,.उसी कालविशेष में साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करनेवाली रचनाओं का भी प्रणयन किया गया। अंग्रेजी के 'न्यूओरोमैंटिक' के नाम पर इन्हें 'नव्य-स्वच्छंदतावादी' कहा जाने लगा। हालावादी रचनाकारों में हरिवंशराय बच्चन का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी 'मधुशाला'(1933), 'मधुबाला'(1936), 'मधुकलश'(1937), 'निशा निमंत्रण'(1938), 'एकांत संगीत'(1939), 'आकुल अन्तर'(1943), 'सतरंगिनी'(1945), में हालावादी प्रवृत्ति नजर आती है। इस संदर्भ में एक उदा. द्रष्टव्य है-

यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला
यह स्वप्न विसर्जित मधु का प्याला
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला

स्वप्नों की दुनिया में फिरता
मैं मधुशाला की मधुबाला-(31)

नरेंद्र शर्मा द्वारा लिखित 'शूलफूल'(1943), 'कर्णफूल'(1936), 'प्रभात फेरी'(1938), 'प्रवासी के गीत'(1939), 'पलाशवन'(1940), 'मिट्टी और फूल'(1942), 'हंसमाला'(1947), 'रक्तचंदन'(1948), 'अग्निशस्य'(1950) में गीतात्मकता की प्रवृत्ति को देखा जा सकता हैं।

इसके अलावा भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नविन', उदयशंकर भट्ट, रामधारी सिंह दिनकर आदि रचनाकार उभरकर सामने आए।

उदयशंकर भट्ट की जीवंतता लानेवाली परिवर्तनगामी दृष्टि देखिए-

जाग उठा हूँ, जाग उठा हूँ
एक बार फिर मरण निगलकर
साँस-साँस में-
धराकाश में, नये प्राण भर।
जाग उठा हूँ, जाग उठा हूँ।(32)

भगवतीचरण वर्मा 'हम दीवानों की क्या हस्ती है' कहते हुए अपने मस्तमौल जीवन में मशगूल है, तो बालकृष्ण शर्मा नविन,

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।'-(33)

का संदेश देते हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'रेणुका'(1935), 'हुंकार'(1935), 'रसवन्ती'(1940), 'द्वंद्वगीत'(1940), 'कुरूक्षेत्र'(1946), 'धूप-छाँह'(1946), 'सामर्धनी'(1947), आदि रचनाओं में क्रांति, प्रकृति, राष्ट्रीय भावना, वर्तमान दयनीय अवस्था, रहस्यात्मक-सुखात्मक-लोकहितात्मक अनुभूतियाँ, युद्ध की बीभत्स विभीषिका आदि को रेखांकित किया है। कवि का अनुभव देखिए

सुलगती नहीं यज्ञ की आग
दिशा धूमिल यजमान अधीर
पुरोधा कवि कोई है यहाँ
देश को दे ज्वाला के तीर?(34)

'कुरुक्षेत्र' के प्रकाशन के बाद हिन्दी साहित्य जगत में इसकी काफी चर्चा रही। कौरवों और पांडवों के युद्ध में यह युधिष्ठिर और भीष्म पितामह का संवाद है। दिनकर ने इसे समसामायिक युग के परिप्रेक्ष्य में ढाला है, युद्ध की विभीषिका से होनेवाले

बुरे परिणामों की ओर इंगित करते हुए शांति स्थापना का संदेश दिया है। दिनकर लिखते है-

आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण भीति से,
भावना मनुष्य की न रोग में रहेगी लिप्त,
संवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तंज न बढेगा किसी मानव का जीत से
स्नेह बलिदान होंगे पाप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति।(35)

जिस प्रकार से विश्वयुद्ध के दौरान लिखनेवाला विख्यात युद्धकवि विल्फ्रेड ओवेन ने लिखा है-

My subject is war and the pity of war
The poetry is in the pity(36)

उसी प्रकार हिन्दी साहित्य में चंद्रकुवर वर्त्वाल हिरोशिमा की बरबादी पर आँसू बहाते है-

हिरोशिमा का शाप
एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जाएगा,
जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिटाया जाएगा,
आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा,
न्यूयार्क में भी एक दिन कोई नहीं रह पाएगा।(37)

द्वितीय महायुद्ध के बाद जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन हुआ। युद्ध से भयाक्रांत होकर मानव सोचने लगा कि युद्ध किसलिए? मानव को मानव के रुप में जीवित रहने का कोई अधिकार है या नही? इन सारे प्रश्नों के तहत एक नवीन दार्शनिक प्रणाली का उदय हुआ जिसे हम अस्तित्ववादी दर्शन से अभिहित करते हैं। विश्वयुद्ध के बाद का व्यक्ति स्वयं को भूला सा, भटका सा, ठगा सा मानने लगा। इसीके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में धीरे-धीरे 'नयी कविता' का उदय हुआ। सरसरी तौर पर नयी कविता का जन्म 1943 के बाद तार सप्तक से मानते हैं लेकिन मूलतः देखा जाए तो पता चलता है कि 1939 में नरोत्तम नागर के संपादन में 'उच्छृंखल' नामक पत्रिका के प्रकाशन से नयी कविता का जन्म हुआ जिसमें अस्वीकार, विच्छेद का स्वर बहुतायात में प्राप्त होता है।

लगभग इसी समय मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियों की रचनाएँ पाठकों के सामने आयी। 1941 में गिरिजाकुमार माथुर का 'मंजीर' अज्ञेय का 'हिय हारिल' प्रकाश में आया, 1942 में एक मनोहर कवि का 'धुएँ के धब्बे' शीर्षक संग्रह प्रकाशित हुआ। साथ-साथ केदारनाथ सिंह कृत 'लैंडस कैप' (1941), प्रभाकर माचवे कृत 'गारे हरवाहे'(1941), जैसी रचनाओं का निर्माण किया गया।

कविता के चौथे और पाँचवे दशक का मूल्यांकन करने के बाद यह ज्ञात होता है कि कथ्य के स्तर पर इन दो दशकों की रचनाओं में काफी वैविध्य रहा। प्रगतिवाद के अंतर्गत मार्क्सवाद को आरोपित नहीं किया गया। हिन्दी के समालोचक शिवदामसिंह चौहान अतीत को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में पुनर्जीवित करने के विचारों को पुष्ट करते हुए कहते हैं- ''मार्क्सवाद एक मशाल है किन्तु एक मात्र नहीं कि केवल उसकी रोशनी में ही देखना परखना चाहिए।''(38)

निष्कर्षात्मक रुप से कह सकते है कि हिन्दी साहित्य का चौथा और पाँचवा दशक छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी तथा प्रकारांतर से नयी कविता के कवियों के एकत्रित प्रयास की फलश्रुति है।

3.4 प्रगतिशील लेखक संघ और अधिवेशन

'प्रगतिशील लेखक संघ' का पहला(प्रथम) अधिवेशन 9 तथा 10 अप्रैल 1936 को लखनऊ में संपन्न हुआ। प्रथम अधिवेशन का घोषणापत्र इस प्रकार है-

''भारतीय समाज में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की जड़े हिलती जा रही हैं, और एक नये समाज का जन्म हो रहा है। भारतीय लेखकों का धर्म है कि वे भारतीय जीवन में पैदा होनेवाली क्रांति को शब्द और रुप दें और राष्ट्र की उन्नत्ति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों। भारतीय साहित्य की विशेषता यह रही है कि वह जीवन की यथार्थताओं से भागता और वह वास्तविकता से मुँह मोड़कर भक्ति और उपासना की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ है कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रुप में भी, अर्थ में भी। आज हमारे साहित्य ने विचार और बुद्धि का एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया है। हमारे इस संघ का उद्देश्य है कि साहित्य और दूसरी कलाओं को अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संपर्क में लाया जाए। उनमें जीवन और वास्तविकता का संचार किया जाय। वे उस उज्ज्वल भविष्य का मार्ग दिखाए जिसके लिए मानवता इस युग में संघर्षशील है।''

हम भारतीय संस्कृति की परंपराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की बड़ी निर्दयता से आलोचना करेंगे। हम इस संघ द्वारा हर उस भावना

को व्यक्त करेंगे जो हमारे देश को एक नये और बेहतर जीवन का मार्ग दिखाये। इस काम में हम अपनी और विदेशों की सभ्यता व संस्कृति से लाभ उठायेंगे। हम चाहते हैं कि भारत का नया साहित्य जीवन की बुनियादी समस्याओं को अपना विषय बनाये। वे हैं हमारी रोटी की, हमारी दरिद्रता की, हमारी सामाजिक अवनीति की और हमारी राजनीतिक पराधीनता की समस्याएँ। वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की प्रवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रुढियों को बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मठ बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।(39)

प्रथम घोषणापत्र में प्रगतिशील लेखक संघ के चार प्रमुख उद्देश्यों को प्रस्तुत किया गया -

1) भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों की संस्थाए संगठित करना और साहित्य छाप कर अपने उद्देश्यों का प्रचार करना।

2) प्रगतिशील लेखकों और अनुवादकों को प्रोत्साहित करना और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाना।

3) प्रगतिशील लेखकों की सहायता करना।

4) स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचार की रक्षा करना।

इस दृष्टि से प्रेमचंद द्वारा विभुषित इस प्रथम संमेलन का महत्व अनन्य साधारण है।

'प्रगतिशील लेखक संघ' का द्वितीय अधिवेशन सन 1938 में आशुतोष मेमोरियल हाल में कलकत्ता में संपन्न हुआ। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण इस अधिवेशन की अध्यक्षता नहीं कर पाए। अतः उनके वक्तव्य को उस अधिवेशन में पढ़ा गया जिसमें सामाजिक यथार्थ स्थिति पर अधिक बल दिया गया था।

'प्रगतिशील लेखक संघ' का तृतीय अधिवेशन दिल्ली में सन 1942 में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन के अवसर पर जो घोषणापत्र प्रस्तुत किया गया, उसमें निम्नलिखित बातें कही गयी-

''हर देश में फैशिज्म की जीत ने सारे प्रगतिशील आंदोलनों और विचारधाराओं को ठेस पहुँचती है सांस्कृतिक आत्माभिव्यक्ति के मूल स्त्रोत को बंद किया गया है, जनता के उत्तराधिकार का मनमाना नृशंस विनाश किया है।''-(40)

'प्रगतिशील लेखक संघ' का चतुर्थ अधिवेशन 1943 में बंबई में हुआ था जिसकी अध्यक्षता श्री डांगे जी ने की। उस समय के घोषणा पत्र में घोषित किया गया

कि इस गंभीर संकट के काल में हिंदुस्तान के प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि वे राष्ट्र के मनोबल को सुदृढ बनाये। इनका फर्ज है कि वे जनता के साहस और संकल्प को मजबूत करें ताकि हमारी आजादी का दिन नजदीक आये, हमारी संस्कृति और सभ्यता सुरक्षित रहें, उसकी उन्नति हो और हम कठिन संकट काल से स्वतंत्र शक्तिशाली और संगठित होकर निकल सकें।

1950 में डॉ. रामविलास शर्मा के निर्देशन में बंबई के भिवंडी इस शहर में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का पाँचवा अधिवेशन संपन्न हुआ।

इसी वर्ष प्रगतिशील लेखक संघ का एक और सम्मेलन हुआ जिसका गठन इलाहाबाद में नागार्जुन की अध्यक्षता में किया गया। इस अवसर पर उन्होंने कहा-''साथियों ऐसे साहित्यकार की हमें रत्ती भर भी परवाह नहीं। हम शासक-शोषित वर्ग के पिछलगुआ जी हुजूर-चाटुकार लेखक नहीं है। हम बिड़ला, टाटा, डालमिया के चाकर नहीं है। हम नेहरू और पटेल की थाप पर थिरकने ठनकने वाले आर्टिस्ट नहीं है। सर्वसाधारण जनता को ही हम अपनी अधिस्वामिनी समझते हैं। हमारी सारी प्रेरणाओं और कल्पनाओं का मूल स्त्रोत यही है।''(41)

दिल्ली में हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के छठे अधिवेशन में संघ को जनमानस तक पहुँचाने एवं उसे और शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया।

कुछ समय के पश्चात(1951 के बाद) डॉ. रामविलास शर्मा को 'नयापथ' के संपादक मंडल से अलग किया गया। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के दिल्ली अधिवेशन में कृष्णचंदर स्थानापन्न हुए। इन्हीं कुछ कारणों से आगे जाकर प्रगतिशील लेखक संघ कमजोर पड़ गया, उसका विघटन हुआ।

'प्रगतिशील लेखक संघ' का बांदा सम्मेलन 1973 में संपन्न हुआ। 1975 में प्रगतिशील लेखक संघ का गया सम्मेलन संपन्न हुआ। इस सम्मेलन की विशेषता यह रही कि इसके क्षेत्र को व्यापक बनाने के लिए अनेक भारतीय भाषाओं के लेखक उपस्थित रहे।

'प्रगतिशील लेखक संघ' का जबलपुर अधिवेशन 1980 में संपन्न हुआ। 1982 में जयपुर एवं गुना में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के इस सम्मेलन ने भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

'प्रगतिशील लेखक संघ' के विभिन्न अधिवेशनों के अतिरिक्त अन्य ऐसी अनेक घटनाएँ है जिन्होंने सामाजिक भावना को जगाने के इस प्रयास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख कर रही हूँ-

1) दिसम्बर 1948 में पार्टी लेखकों की बैठक हुई जिसमें 18 लेखकों ने हिस्सा

लिया। इसमें भाषा समस्या को उठाया गया साथ ही यशपाल अमृतराय, शिवदामसिंह चौहान के लेखन पर रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी।

2) अप्रैल 1949 में भी पार्टी लेखकों की बैठक हुई थी।

3) 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' के साथ-साथ 'अखिल भारतीय हिंदी प्रगतिशील लेखक संघ' के संमेलन भी हुए।

4) संमेलन का पहला अधिवेशन राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में 1947 में संपन्न हुआ।

5) प्रांतीय स्तर पर प्रगतिशील लेखकों के संमेलन एवं संस्थाओं का निर्माण किया गया।

6) उत्तर प्रदेश में प्रगतिशील लेखकों की संस्था बनी जिसके अंतर्गत तीन संमेलन संपन्न हुए।

> 1) पहला संमेलन 1941 में राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में संपन्न हुआ।
>
> 2) दूसरा संमेलन 1950-51 में नरोत्तम नागर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ।
>
> 3) तीसरा संमेलन 1952 में संपन्न हुआ।

7) बंगाल में भी 1937 में प्रगतिशील लेखक संघ की शाखाओं की बैठक हुई।

8) क्षेत्रीय आधार पर भी प्रगतिशील लेखक संघ की निर्मिति हुई।

9) काशी प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष अंबिकाप्रसाद वाजपेयी थे।

10) काशी प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय अधिवेशन 12 फरवरी 1945 में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ।

श्री उमेशचंद्र मिश्र ने प्रगतिवादी आंदोलन का काल-विभाजन किया है और उसे चार चरणों में विभक्त किया है- 1936 से 1942 तक के मध्य का

प्रथम चरण -1936 से 1942 तक

द्वितीय चरण- 1942 से 1947 तक

तृतीय चरण - 1947 से 1949 तक

(प्रगतिवादी आंदोलन के विघटन का काल)

चतुर्थ चरण - सन 1950 के बाद-[42]

1953 के बाद प्रगतिशील लेखक संघ का कोई अधिवेशन नहीं हुआ। उक्त अधिवेशनों के द्वारा साहित्यकारों के विचारों में काफी परिवर्तन आया।

जीवन के प्रति उनकी दृष्टि बदली। आम जनता की पकड साहित्य में मजबूत हुई। दलित जीवन के चित्रण को विविध अर्थों में दर्शाया गया। साहित्य में एक नए वाद का जन्म हुआ जिसे कि प्रगतिवाद के नाम से जाना गया । प्रगतिवाद की अवधारणा को मैंने विभिन्न विद्वानों के मतों के द्वारा अगले शीर्षक के अंतर्गत व्यक्त किया है।

प्रगतिवाद का उद्‌भव : कारण मीमांसा

साहित्य में प्रगतिवाद सामाजिक कल्याण, लोकमंगल की भावना को लेकर अग्रसर हुआ। प्रगतिवादी आंदोलन में प्रगतिशील भावना आधारस्तंभ थी। इस काल-विशेष में साहित्य की सोद्‌देश्यता पर विचार किया गया। सर्वप्रथम इस काल में रचनाकारों ने विचार करना शुरु किया कि साहित्य किसके लिए होना चाहिए? मोहभंग की स्थिति से गुजरने वाले हताश, निराश, मानव के मन में साहित्य और समाज को एक नयी गति प्रदान की। प्रगतिवादी रचनाकारों ने साहित्य को वायवीय कल्पनाओं से निकलकर ठोस धरती पर कदम जमाने का बल प्रदान किया। प्रगतिवादी रचना की उपलब्धि है कि उन्होंने सामान्य व्यक्ति और उसके सामान्य जीवन को अपनी कविता का केंद्र बिंदू मानकर उसके साथ अपनी प्रतिबद्‌धता का निर्वाह किया।

प्रगतिशील साहित्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. संतोष कुमार तिवारी लिखते हैं-

''प्रगतिशील साहित्य की धारणाओं के अनुसार साहित्य में सामाजिक यथार्थ की प्रतिष्ठा, साहित्य और जीवन का अविच्छिन्न संबंध जनवादी और बुद्‌धिवादी दृष्टिकोन, आंचलिक जीवन की झलक अंतरार्ष्ट्रीय भावभूमि, आस्थावादी दृष्टि आदि प्रवृत्तियों का संग्रयन होना चाहिए।''-(43)

वस्तुत: प्रगतिवाद, प्रगतिशीलता में सूक्ष्म अंतर है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना होने के बाद सामाजिक यथार्थवाद, शोषक-शोषित वर्ग का चित्रण करनेवाले 1936 के बाद के काल-विशेष को प्रगतिवाद कहा गया, अर्थात वे कवि प्रगतिगामी थे। परंतु प्रगतिशीलता किसी सीमित दायरे में बंधकर नहीं रह सकती, अत: कह सकते हैं कि प्रगतिवादी कवि प्रगतिशील हो सकता है लेकिन प्रगतिशील कवि प्रगतिवादी हो यह आवश्यक नहीं है। प्रगतिशीलता की व्याख्या देते हुए डॉ.रवि रंजन लिखते है- ''वह सब कुछ, जो हममें समीक्षा की प्रवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रुढ़ियों को बुद्‌धि को कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मठ बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।''(44)

जैसा कि पहले कहा गया है कि प्रगतिवाद का आरंभ प्रगतिशील लेखक संघ और उसके अधिवेशन के द्वारा हुआ और रचनाकारों ने प्रगतिशील दृष्टि को अपनाया। परंतु यह कहना गलत होगा कि एक काल विशेष खत्म हुआ और तुरंत बाद जल्दी से कोई दूसरे काल-विशेष का प्रारंभ हुआ। उसी प्रकार से प्रगतिशीलता एवं प्रगतिवाद के तत्व (हमें) आधुनिक काल की कुछ प्रारंभिक रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद' में ''हिंदी प्रदेश में समाजवादी चेतना का प्रसार'' शीर्षक प्रकरण में विश्लेषण किया है कि भारत में प्रारंभिक चरण में ही समाजवाद के बीज प्राप्त होते हैं।

मई 1970 की सरस्वती में 'हड़ताल' शीर्षक निबंध में लिखा गया है- ''कोई कहते हैं कि इस समय हिंदुस्तान में हड़तालों की बीमारी फैली है, कोई कहते हैं कि हड़तालों का वास्तव संबंध औद्योगिक और आर्थिक विषयों ही से है। जब किसी देश की संपत्ति थोडे से पूँजीवालों के हाथ में आ जाती है और अन्य लोगों को मजदूरी से अपना निर्वाह करना पड़ता है, तब पूँजीवादी अपने व्यापार का सब नफा स्वयं आप ही ले लेते हैं और जिन लोगों के परिश्रम से यह संपत्ति उत्पन्न की जाती है, उनको वे पेट भर खाने को नहीं देते।''-(45)

मैथिलीशरण गुप्तजी के मन में भी मार्क्सवादियों के प्रति सहानुभूति थी। उनके समकालीन माखनलाल चतुर्वेदी की प्रगतिशील दृष्टि पुष्प की अभिलाषा, कैदी और कोकिला कविता में दिखाई देती है। 30 के आसपास रचनाकार पर यह जिम्मेदारी आ गयी थी कि वे जनवादी विचारधारा पर बल दें।

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना होने के पूर्व विदेश में प्रोग्रेसिव लिटरेचर असोसिएशन की स्थापना हो चुकी थी जिसमें प्रोग्रेसिव राइटर असोसिएशन के अधिवेशन की अध्यक्षता पेरिस में ई. एम. फार्स्टर ने की थी। लंदन के इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स असोशिएशन के अध्यक्ष मूल्कराज आनंद थे और सचिव सज्जाद जहीर थे। इन दोनों ने 1936 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कुछ व्यक्तियों से संबंध स्थापित किया। प्रगतिशील लेखक संघ को डॉ. अशरफ, डॉ.महमुद जफर, प्रो.हीरेन मुखर्जी, डॉ.सैयद एजाज हुसैन, प्रो.एहतेशाम हुसैन, बकार अजीम पंत शिवदामसिंह चौहान, नरेश शर्मा आदि लोगों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के उद्देश्यों के बारे में सज्जाद जहीर अपनी पुस्तक 'रोशनाई' में लिखते हैं- ''जब हमने प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन की ओर पग उठाया था तो कुछ बातें विशेष रुप से हमारे सम्मुख थी। पहली तो यह कि प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का रुख देश की जनता और मजदूरों किसानों और

मध्यम वर्ग की ओर होना चाहिए। उनको लूटनेवालों और उनपर अत्याचार करनेवालों का घोर विरोध करना अपनी साहित्यिक रचनाओं से जनता में चेतना, गति, क्रियाशीलता और एकता उत्पन्न करना और उन तमाम अवशेषों और प्रवृत्तियों का विरोध करना जो जड़ता, प्रतिक्रिया निरुत्साह उत्पन्न करती है हमारा मुख्य कर्तव्य है।''-(46)

इस बात पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है कि ऐसे कौनसे कारण थे जिसके फलस्वरूप काव्य-चेतना में परिवर्तन हुआ और मार्क्सवादी विचारधारा के अंतर्गत वर्ग-संघर्ष, सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण करने की एक लहर सी आ गयी। प्रगतिवाद के कारणों की खोज करते हुए शिवकुमार मिश्रजी लिखते है- ''पिछले युग के साहित्य को नवीन युग की भूमिका के अनुरुप न समझने के कारण ही नये प्रकार के साहित्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया और चूँकि यह कार्य संगठित आंदोलन के रुप में सन 1936 से ही 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशन से आरंभ हुआ, अत: सन 1936 को निश्चित रूप से नये युग का प्रारंभकर्ता माना जा सकता है।''-(47)

प्रगतिवाद के उद्‌भव की कारण मीमांसा करने से पहले डॉ. कृष्णलाल शर्मा द्‌वारा व्यक्त किसी युग विशेष के उद्‌भव के संदर्भ में विचार करना आवश्यक होगा। डॉ. कृष्णलाल शर्मा लिखते है- ''यह कहना अत्यंत कठिन है कि काव्य में अमुक चेतना यहाँ समाप्त हो जाती है, और यहाँ से नव्य चेतना आरंभ होती है। इन्हीं कारणों से छायावाद और प्रगतिवाद को बिल्कुल अलग-अलग करके देखना असंभव है। यह कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब हम देखते है कि एक युग के चरम उन्नायक दूसरे युग के उन्नायकों में भी प्रमुख स्थान ग्रहण किये हुए है।''-(48)

अत: यह देखना होगा कि ऐसी कौनसी राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ और घटनाए थी जिन्होंने युग के परिवर्तन की ओर अपने पग आगे बढाए?

1957 की क्रांति का देश की राजनीतिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है जिसके द्‌वारा पहले पहल जनसमुह में एकता की भावना बलवती हो गयी थी। 1876 में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के उद्‌देश्य से आनंद मोहन बोस, द्‌वारिकानाथ गांगोली आदि लोगों ने 'भारतीय संघ' की स्थापना की। 1885 के दिसंबर में बंबई में काँग्रेस की स्थापना करना यह घटना भी महत्वपूर्ण थी। 1914 में प्रथम विश्वयुद्‌ध की भयावहता से भारत देश भी आक्रांत हो चुका। साथ ही 1914 में ही मजदूरों का संगठन बनने लगा था। 1917 में रुसी क्रांति के बाद जारशाही खत्म होकर बोलसेविक शासन (का) आरंभ हुआ, उनके द्‌वारा चलायी गई नयी-नयी योजनाओं से भारत के कृषक भी अत्याधिक प्रभावित हुए। 1918 और 1920 के बीच में श्रमिकों ने हड़तालें की । 1929 तक आते-आते श्रमिकों के इन आंदोलनों से राष्ट्रीय चेतना को भी अधिक बल मिल

गया।

1920 तक आकर ''अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस'' बन गया। 1921 में गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन चलाया गया। 1929 में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और रामवृक्ष बेनीपुरी का संबल हिंदी साहित्य सम्मेलन को प्राप्त हुआ । परंतु विद्यार्थी जी के निधन होने के पश्चात दुबारा साहित्यिक गतिविधियों मानो रुक सी गयी ऐसे परिवेश में रचनाकार के दायित्व के संदर्भ में पंडित जवाहलाल नेहरु लिखते हैं-

''हिंदी लेखकों को यह कोशिश करनी चाहिए कि वे हिंदुस्तान की आम जनता के लिए लिखें और ऐसी भाषा लिखे जिसे लोग समझ सकें। अपने इस वक्तव्य में उन्होंने आगे कहा कि हिंदुस्तान तो मुख्यत: उन किसानों और मजदूरों का देश है जिनका चेहरा खूबसूरत नहीं है, क्योंकि गरीबी खूबसूरत नहीं होती। क्या वह सुंदर स्त्री, जिसका हमने काल्पनिक चित्र खड़ा किया है, नंगे बदन और झुकी कमरवाले खेतों और कारखानों में काम करनेवाले किसानों और मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती है?''-(49)

1931 के कराची अधिवेशन में श्रमिकों और कृषकों के विकास और उनकी समस्याओं पर अधिक जोर दिया गया।

साहित्यिक स्तर पर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना ने प्रगतिशीलता को और अधिक विकासगामी किया। ''हिंदी की प्रगतिशील कविता'' इस पुस्तक में लिखा गया है- ''पहली बार एक लेखक-संगठन का निर्माण वास्तव में इस तथ्य का प्रतीक था कि मजदूर-किसान आंदोलन साहित्य क्षेत्र में उतर रहा था। इसके प्राथमिक चिह्न संगठन के निर्माण से पहले ही दिखाई देने लगे थे और निर्माण के बाद वामपंथी आंदोलन की विचारधारा ने जिसमें मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन और आम समाजवादी चिंतन प्रमुख था इस समय के लेखकों के विशाल बहुमत को प्रभावित किया।''-(50)

ऐसे ही परिवेश में पंतजी ने 'युगांत'से बदलती हुई सामाजिक भावना को 'युगवाणी' के रुप में अभिव्यक्त किया।

1 सितंबर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ। अंग्रेजों के दबाव के कारण भारत को भी इस युद्ध में हिस्सा लेना पड़ा। उस समय पंडित नेहरुजी ने स्पष्ट रुप से कहा कि हम ब्रिटेन और भारत का युद्ध नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि साम्राज्यवाद के विरोध में समाजवाद का युद्ध लड़ रहे है।

1940 में लाहौर में मुस्लिम लीग में जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग का प्रस्ताव सामने रखा।

1942 का आंदोलन आजादी को प्राप्त कराने की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा।

1946 में कैबिनेट मिशन के अंतर्गत कांग्रेस और मुस्लिम लीग को अपने

प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करके अस्थायी सरकार (नेहरु की अध्यक्षता) बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ।

3 जून 1947 को पाकिस्तान की मांग को स्वीकार किया गया।

14 अगस्त 1947 को ब्रिटिश शासन ने भारत को आजाद तो किया लेकिन भारत-पाकिस्तान का बटवारा हुआ।

26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान बनाया गया। 1952 में प्रथम जनप्रतिनिधियों का चुनाव किया गया। 1951 में पंचवार्षिक योजनाओं का गठन किया गया। लेकिन आगे जाकर हम देखते है कि आजादी के बाद हमारा रामराज्य का सपना टूट गया। हमें मोहभंग की स्थिति से गुजरना पड़ा। अमीर लोग अत्याधिक अमीर होते गए और गरीब और अधिक गरीब होते गए। दो युद्धों की विभीषिका ने लोगों को आहत कर दिया था। सफलता और सार्थकता के दो पाटों के बीच धक्के खाते हुए व्यक्ति ने प्राचीन मूल्यों के प्रति अविश्वास प्रकट करना प्रारंभ किया। भविष्य के प्रति अनास्था, नैतिकता का लोप, आर्थिक असंतोष के कारण मानसिक संकीर्णता उत्पन्न हुई।

'छायावादोत्तर हिंदी काव्य' में पांडेजी लिखते हैं-

''देश में बेईमानी, घूसखोरी, चोरबाजारी और इसी प्रकार के अन्य भ्रष्टाचारों का जोर बढ़ गया। साहित्यकार के लिए यह परिस्थिति बडी खतरनाक थी। विकृत आचरणों के बीच नये तथा स्वस्थ नैतिक मूल्यों का निर्माण उसे करना था। समाज के पतन से संपर्क में रहकर और किसी हद तक उससे प्रभावित भी होकर उसे नवीन आदर्श गढने थे। और सच तो यह है कि बिना इन विकृतियों के संघर्ष के उदार मानवतावाद का विकास होना कठिन था।''-(51)

भारत में पूँजीवाद के बढते हुए प्रभाव के कारण शोषण की प्रक्रिया को मिटाने के लिए कार्ल-मार्क्स एवं लेनिन तथा अन्य मार्क्सवादी विचारकों के विचारों का आधार लिया गया। भारत में भी राजनीतिक दल के नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं साहित्यिक प्रतिनिधियों के द्वारा मूल्य एवं अतिरक्ति मूल्य सिद्धांत को विश्लेषित किया गया और वर्ग विहीन समाज रहना पर बल दिया गया। हिंदी के साहित्यकारों ने मार्क्सवाद की दर्शनाश्रित दृष्टि का त्याग कर समाजोन्मुख दृष्टि को अपनाया। इस संदर्भ में पंतजीने लिखा है- ''मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन-पक्ष में नही, उसके वैज्ञानिक (लोकतंत्र के रुप में मूर्त) आदर्शवाद में है जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किंतु उसे वर्ग-क्रांति का रुप देना अनिवार्य नहीं है। वर्ग युद्ध का यह पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य में पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी युग की प्रतिक्रिया के रुप में विकृत और विकीर्ण हो जाएगा।''-(52)

जैसा कि हम देखते है कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुसार साहित्यिक परिवेश में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रगतिवाद के संदर्भ में भी यही बात लागू हो जाती है। परंतु अपनी कतिपय विशेषताओं के बावजूद साहित्य और साहित्यकारों को सामाजिक गतिविधियों एवं विभिन्न प्रकार के आंदोलनों के साथ जोड़ने का कार्य इस युग विशेष में किया गया, इस दृष्टि से प्रगतिवादका महत्व अक्षय है।

प्रगतिवाद के संदर्भ में विभिन्न विचारकों के विचार

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, ''छायावाद के गर्भ से सन 30 के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ उसे ही सन 1935 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई।''-(53)

डॉ. नामवर सिंह प्रगतिवाद के उद्भव और विकास के बारे में बात करते हुए कहते हैं- ''प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमश: जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमश: यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थवाद से आरंभ होकर क्रमश: स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है।''(54)

डॉ.रामविलास शर्मा के अनुसार ''प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है।''(55)

डॉ.शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''प्रगतिवाद ने हमें एक दृष्टि दी है जिसके द्वारा सत्साहित्य की परख की जा सकती है।''(56)

प्रगतिवाद की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए मिश्रजी लिखते है- ''प्रगतिवाद को बाहर से ढोई गई वस्तु नहीं माना जा सकता। मार्क्सवाद समाजवाद से प्रभावित होने के बावजूद भी वह भारतीय मिट्टी की ही उपज है, हिंदी की गौरवशाली और प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा कों प्रारंभ से ही चला आता हुआ क्रम विकास है।''(57)

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते है- ''प्रथम महायुद्ध ने हमें पश्चिमी समाज के हल्के से संपर्क में ला रखा और हम साहित्य तथा अन्य साधनों से पश्चिम की अधिकाधिक जानकारी करने लगे। महायुद्ध की परिस्थितियों ने हमारी जातीयता की कट्टर भावना को बहुत कुछ शिथिल कर दिया और अब हम उस भूमिका पर आ गये जब जातीय और प्रादेशिक सीमाओं से उपर उठकर विश्व की प्रगति को एक निगाह से देख सकें''-(58)

सन 1938 में पंतजी ने रूपाभ का प्रकाशन किया और उसमें युगीन परिस्थितियों के बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा- ''कविता के स्वप्न

भवन को छोड़कर हम इइ खुरदरो पथ पर क्यों उतर आये इस संबंध में दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है। इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उसमें प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये है। श्रद्‌धा अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आंदोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नही पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। और युग जीवन ने उसके चिरसंचित सुखस्वप्नों को जो चुनौती दी है, उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।''-(59)

रांधेय राघव का मानना है कि ''जहाँ प्रगतिशील साहित्य समाज से साहित्य को जोडकर देखता है, अलग नहीं।'' (60)

वहीं पर राहुल सांकृत्यायन का मत है कि ''प्रगतिवाद कोई कल्ट (Cult) या संकीर्ण संप्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रास्ते को खोलना उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता का नहीं, परतंत्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम-रोम में भीज गई है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति बन गई है, वह स्वयं सीमाओं का निर्धारण कर सकता है। उसकी सीमा अगर कोई है, तो यही कि लेखक और कलाकार की कृतियां प्रतिगामी शक्तियों की सहायक न बनें। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं करता। यह तो कला और उच्च साहित्य के निर्माण में बाधक रुढ़ियों को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। यह रुढ़िवादी और कूप-मण्डूकता का विरोधी है।''(61)

डॉ.रवि रंजन के अनुसार, ''प्रगतिवाद यह वादविशेष आधुनिक युग में दिखाई देता है लेकिन प्रगतिशीलता के तत्व हमें हर काल विशेष में दिखाई देते है, क्योंकि साहित्य कभी स्थिर नहीं रहता, वह प्रगतिगामी रहता है, परंतु यहाँ तात्पर्य उस वाद विशेष से है जो प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के द्‌वारा प्रस्फुटित हुआ।''(62)

डॉ. रेखा अवस्थी ने लिखा है- ''स्वाधीनता और सामाजिक क्रांति का जिन मांगो के दबाव में सन 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक स्तर पर लगभग उन्हीं मांगों के ऐतिहासिक कार्यभार की पूर्ति के लिए प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की गई।''(63)

प्रगतिवाद के उद्‌भव के बारे में लिखते हुए डॉ. कृष्णलाल हंस लिखते है- ''मारनेति ने 'भविष्यवाद' नामक एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया। उसने कहा कि संसार अब एक नये रुप में परिवर्तित हो चुका है सामाजिक व्यवस्था-संबंधी मान्यताएँ बदल चुकी है। अत: उसके साहित्य की मान्यताएँ अपरिवर्तित नहीं रखी जा सकती,

उसके मूल्य और मापदंड में भी नवीन दृष्टिकोन आवश्यक है।(64)

डॉ. रमाकांत शर्मा के अनुसार- ''युग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को जाननेवाले एक नवीन समुदाय का साहित्य के बीच आविर्भाव हुआ। जिसने अपने आपको प्रगतिवादी कहा और जिसकी रचना प्रगतिशील कही गई।''(65)

जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते है- ''प्रगतिशील कविता का उदय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान मजदूरों किसानों की संघर्षशील परंपरा के साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद विरोधी संघर्ष के साथ अविछिन्न रुप से जुड़ा हुआ है।''(66)

रामनारायण शुक्ल के अनुसार ''प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कोई हिंदी की ही विशेषता नहीं थी, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में इस धारा का विकास तेजी से हुआ।''(67)

प्रगतिवादी चेतना ने हिंदी साहित्य को ही नहीं प्रभावित किया अपितु अन्य भारतीय साहित्य पर भी इनका प्रभाव पड़ा। चूँकि इसके मूल में मार्क्सवादी चिंतन में सर्वहारा वर्ग के कल्याण एवं समता का भाव था इसलिए युगीन प्रगतिशील विचारकों, साहित्यकारों, चिंतको और आलोचकों ने इसे मुख्य रुप प्रदान किया।

3.5 साहित्य की परिवर्तित दृष्टि और त्रिलोचन का काव्य

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रकार के परिवर्तनों के साथ हिन्दी में साहित्यिक स्तर पर बदलाव की प्रक्रिया दिखायी देती है।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित हिन्दी के साहित्यकारों ने साम्यवादी विचार प्रणाली को बलशाली बनाने का प्रयास किया। पूर्ववर्ती-छायावादी काव्य की 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' के प्रति यह विद्रोही भावना थी। लेकिन जब प्रगतिवाद दलगत राजनीति से आबद्ध हो गया तब पुनः परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। अज्ञेय के संपादकत्व में 1943 में प्रथम तारसप्तक का प्रकाशन हुआ। तार सप्तक के कवियों द्वारा बार-बार 'प्रयोगशील' और 'प्रयोग' शब्द का इस्तेमाल किए जाने के कारण सबसे पहले आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इन रचनाओं को 'प्रयोगवाद' नाम से अभिहित किया। इस मत का खंडन करते हुए अज्ञेय ने लिखा- ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे नहीं है। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना

हमें कवितावादी कहना।''(68)

वास्तव में देखा जाए तो हर कवि अपने युग में नए-नए प्रयोग करता रहता है, उसकी यह प्रयोगधर्मिता रचनाकार को प्रेरित करती है और रचना को उर्वर बनाती है। इन प्रयोगों के द्वारा प्रगतिशील तत्वों को एक नयी भूमि और भूमिका प्रदान करता है।

1940 के बाद बदलते हुए परिवेश के साथ मनोविश्लेषणवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का उन्मेष हुआ। मानवीय प्रकृति की मूलभूत प्रवृत्ति के उन्नयन का प्रश्न उभरकर सामने आया। नई पीढ़ी के सामने न हीं प्रसाद, निराला जैस कवि थे, न ही संघर्षमयी चेतना के द्वारा समस्या का आदर्शवादी हल ढूँढनेवाले प्रेमचंद की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टि। इस दौर का कवि समाज को यथार्थवादी दृष्टि से देखता है। जीवन में अकेलापन, उब, खीझ, निराशा, हताशा, पीड़ा, बेबसी आदि त्रासद स्थितियों से जूझनेवाले व्यक्ति का यथार्थ कवि का यथार्थ बन गया। विश्वयुद्ध की विभीषिका ने लोगों के अस्तित्व का प्रश्न गहरा हो गया। अस्तित्ववादी चिंतकों में सात्र ने अस्तित्व के तीन आयाम प्रस्तुत किए (1)मैं शरीर में हूँ (2)मेरा शरीर दूसरों द्वारा उपयोग में लाया गया तथा ज्ञेय है। (3) मैं स्वयं अपने लिए हूँ, किन्तु दूसरे के द्वारा शरीर के रुप में जाना जाता हूँ।-(69)

मनोविज्ञान के प्रमुख चिंतक फ्रायड, एडलर, ह्युंग आदि विचारकों के विचारों को आत्मसात करते हुए कवियों ने मध्यवर्ग की मनोविश्लेषणवादी मीमांसा पर इंगित किया।

तारसप्तकीय रचनाओं के अंतर्गत स्वयं अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि वे राहों के अन्वेषी है। इन यात्रियों की विचार भिन्नता के कारण इनकी मान्यताओं में मतैक्य नजर नहीं आता, कई स्थानों पर टकराव दृष्टिगोचर होता है।

डॉ. मक्खनलाल शर्मा प्रयोगवादी दृष्टिकोण को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित तत्वों को रेखांकित करते हैं-

(1) नयी राह का अन्वेषण सब का समान उद्देश्य है। (2)प्रयोगशीलता के प्रति ललक (3) कला का केन्द्र व्यक्ति है (4)प्रयोगशीलता की गुण के रुप में स्वीकृति (5) काव्य की सामाजिक महत्व-स्वीकृति (6) अहंवाद तथा बुद्धिवाद काव्य विरोधी है (7)कवि का उद्देश्य - व्यक्ति की इकाई तथा समाज की व्यवस्था के बीच संबंध का स्वर देना और शुभ बनाना (8) विषय से तकनीक अधिक महत्वपूर्ण है (9)मुक्त छंद का प्रयोग (10)ध्वनियों का ध्यान (11)कविता और पाठक के बीच सीधा भाव-विनिमय (12)काव्य के कारण और हेतु नियम बन्धन रहित है (13) बिम्बवाद कविता

नहीं है (14)भाषा में प्रादेशिक शब्दावली का अधिकाधिक स्तुत्य है (15)शब्द की लय का स्थान अर्थ की लय को लेना चाहिए (16)भदेसपन एक अनिवार्यता है। (17)प्रयोग की सार्थकता व्यक्ति साथ को व्यापक सत्य बनाने में है (18)यौन वर्जनाएँ सौंदर्य चेतना पर आरुढ़ होकर काव्य में साकार होती है (19)साधारणीकरण का प्रश्न व्यर्थ है।[70]

प्रो. कीर्तिनाथ कुर्तकोटी लिखते हैं -''बुद्धि और भावना का सामंजस्य ही नयी कविता की आत्मा है मगर इस बात को काव्य की अभिव्यंजना में उतारना मुश्किल काम है। बौद्धिकता जन्मजात न होकर जब शैक्षणिक हो जाती है तब यह बात पूरी की पूरी असंभव है। नयी कविता में जो बौद्धिकता दिखाई पड़ती है वह शुद्ध रुप से शैक्षणिक ही है। आजकल समाचारों के रुप में ज्ञान बहुत सस्ता मिलता है, उसको कविता में भर देने से कविता नयी होगी, मगर कविता नहीं होगी।''[71]

अपनी कुछ न्यूनता और सीमाओं के बावजूद प्रयोगवादी कविता के संदर्भ में कह सकते हैं कि इसमें ह्रासशील मध्यवर्ग की मूल्य परिवर्तन की दृष्टि को यथार्थवादी स्तर पर काफी सफलता के साथ उकेरने का कार्य प्रयोगवादियों ने किया।

प्रयोगवादी कवि का दृष्टिकोण वस्तुवादी है। काव्य में अति संवेदनशील तत्वों को प्रस्फुटित करने के बजाए वह वस्तुओं को बौद्धिक स्तर पर देखता परखता है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों को समष्टि तक पहुँचाने के लिए उसे प्राचीन काव्यशास्त्र-साधारणीकरण के निकष थोथे नजर आते हैं, अपने नए अनुभवों को नए ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए वह नयी भाषा का प्रयोग करके अभिनव हेतु को साध्य करने का प्रयास करता है। इसके द्वारा शब्द के साधारण अर्थ को वह एक प्रकार की विशिष्टता प्रदान करता है।

'कविता और कविता' पुस्तक में प्रयोगवाद को विश्लेषित करते हुए लिखा गया है- ''प्रयोगवाद-ह्रासशील काव्य प्रवृत्ति है, इसमें केवल समाज-द्रोही भावनाओं को छिपाने का उपक्रम है, इसमें घोर अनास्था तथा कुंठा की अभिव्यक्ति है, चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्र-बिंदु है, यह छायावादी कविता के ऱ्हास का विकृत रुप है। सिद्धांत एवं व्यवहार की दृष्टि से यह कविता दुरुह है, इसमें उपचेतन के अनुभव खंडों का यथावत चित्रण है, इसमें रागात्मकता तथा रसात्मकता का अभाव है। इसमें सामाजिक दायित्व की अवहेलना है।''[72]

यह ध्यान देने योग्य है कि प्रयोग इन कवियों के लिए साधन है। अपने पूर्ववर्ती सभी काव्य सिद्धांत, सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि का विरोध करते हुए नए प्रतिमानों को निर्धारित करते हुए इन कवियों ने अपने युग के मानव को केंद्र में रखा। व्यक्ति की नितांत वैयक्तिकता और सामाजिक जीवन के बीच कुंठित व्यक्तिवादी भावना के

बीच स्वर्णबिंदु स्थापित करने का कार्य प्रयोगवादियों ने किया। इनके साधारणीकरण के मानदंड परंपरागत नहीं है। इन कवियों की सबसे महत्वपूर्ण स्थापना थी कि प्रयोगों का कोई वाद नहीं होता। लेकिन हम दखते हैं कि समीक्षकों तथा काव्य जगत में विद्यमान विभिन्न विद्वानों ने तार सप्तकीय रचनाओं को प्रयोगवादी रचना के रुप में ही घोषित किया। इसका खंडन करते हुए अज्ञेय लिखते है- ''प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है। क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह इस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है, अर्थात प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।''(73)

नकेनवाद, प्रपद्यवाद, एक्जिस्टैञ्शियलिज्म, सिम्बोलिज्म, एक्सपैरीमेण्टलिज्म, साइको-एनेलेसिज आदि विभिन्न शब्दावलियों के द्वारा प्रयोगवाद को अभिहित किया गया। 1950 के बाद यह वाद-विशेष 'नयी कविता' में रूपांतरित हुआ। 1960 के बाद 'नयी कविता' में नए-नए आंदोलन हुए जिसके संदर्भ में डॉ.जगदीश गुप्त ने 'किसिम-किसिम की कविता' लेख लिखकर परिवर्तन को दर्शाया।

कामायनी में जहाँ जयशंकर प्रसादने भावना और बुद्धि के सामंजस्य को रेखांकित करते हुए आनंदवादी दर्शन की अभिव्यक्ति की थी, वहाँ स्वातंत्र्योत्तर काल में कविता बौद्धिकता की सीमा में आबद्ध हो गयी। वह बौद्धिकता भी ग्राह्य होती अगर वह बुद्धिवाद के स्तर पर होता लेकिन वह आरोपित और शैक्षिक अधिक लगने लगा- यह प्रयोगवाद और प्रकारांतर से नयी कविता की सीमा रही।

कविता का चौथा और पाँचवा दशक साहित्यिक और राजनीतिक स्तर पर महत्वपूर्ण था ही लेकिन त्रिलोचन की काव्यदृष्टि को जानने के लिए यह देखना आवश्यक हो जाता है कि 'धरती' काव्य-संग्रह के द्वारा काव्य सर्जना का प्रारंभ करनेवाले त्रिलोचन उस धारा में आते हैं या नहीं? यदि आते है तो किस रूप में और नहीं आते हैं तो क्यों नहीं आ पाते? त्रिलोचन का 'धरती' काव्यसंग्रह 1945 में प्रकाशित हुआ। उस समय प्रगतिवादी विचारधारा बलवती थी, युगीन समसामायिक परिवेश का रचनाकार पर प्रभाव रहता है। प्राय: यह कहा जाता है कि प्रारंभिक काल में हुए संस्कारों का प्रभाव व्यक्ति की अन्त:श्चेतना पर अधिक रुप से रहता है। इसलिए त्रिलोचन की काव्यदृष्टि को ज्ञात करने के लिए कविता के चौथे और पाँचवे दशक के परिदृश्य का अध्ययन करना आवश्यक जान पड़ा। मूल्यांकन करते हुए यह ज्ञात हुआ कि रचनाकार की विचारधारा अपनी विशिष्ट स्थितियों में स्वयं-निर्मित होकर बने-बनाए धारा-प्रवाह में विचरित न होते हुए स्वतंत्र रुप से चलती है। निश्चित तौर पर कमोबेश रुप से युगीन

परिवेश परिव्याप्त है लेकिन वह सायास या आरोपित नहीं है बल्कि सहज है। 1945 से लेकर 2002 के दौर में काव्य सृजन के द्वारा अपनी एक अलग पहचान बनानेवाले त्रिलोचन को प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आधुनिकतावाद आदि खेमों में जकड़कर नहीं रखा जा सकता। मानव को मानव के रुप में देखनेवाले, जीवन-संघर्ष, आस्था-विश्वास, जिजीविषा, सामान्य नागरिक के रुप में जीने वाले कवि त्रिलोचन को जानने के लिए मानव के लोचन चाहिए । जीवन सिंह लिखते हैं- "त्रिलोचन की कविता दुनिया की होके दुनिया में रहने की कविता है। उसे दुनिया की परवाह ज्यादा है, दुनियादारों की नहीं।"

अतः त्रिलोचन की काव्यदृष्टि को जन दृष्टि की निगाहों से देखना आवश्यक हो जाता है।

o-o-o-o-o

संदर्भ सूची - तृतीय अध्याय

1. Landmarks in World History, M. S. David, 163
2. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, 88
3. वही, पृ. 104
4. वही, पृ. 106
5. वही, पृ. 106
6. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, मुदगल, 110
7. Discovery of India, P. Nehru, P.420
8. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, 113
9.. An Outline History of the Indian People, H. R. Ghasal, P. 137
10. Struggle for Freedom -Bharatiya Vidya Bhavanr's History & culture of the Indian People, Vol. II, Page 792
11. An Advance History of India, R.C. Majumdar, H. c. Raychaudhuri Kalikinkar Datta, Page 955
12. Ebglish Literature of the Twentieth Century, Page 97
13. वही, पृ. 99
14. वही
15. वही, पृ. 120
16. वही, पृ. 121
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही, पृ. 119
23. वही
24. The Modern Age, Edited by Boris Ford, Page 80
25. Twentieth Century Prose, A. C. Ward, Page 8
26. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, जयकिशन खंडेलवाल, 551

27. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तिया, जयकिशन खंडेलवाल, पृ. 560
28. हिन्दी साहित्य का इतिहास, वासुदेव सिंह, पृ. 332
29. निराला, रचनावली
30. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तिया, जयकिशन खंडेलवाल, 540
31. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, 228
32. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ. 126
33. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तिया, जयकिशन खंडेलवाल, पृ. 562
34. दिनकर काव्य में युगचेतना, डॉ. पुष्पा ठक्कर, पृ. 119
35. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ. 129
36. साहित्यमुखी, रामधारी सिंह, पृ. 147
37. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तिया, जयकिशन खंडेलवाल, पृ. 560
38. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, वासुदेव सिंह, पृ. 457
39. डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, पृ. 36,37
40. प्रगतिवाद, पुनमूल्यांकन रवि रंजन, पृ. 225,226
41 प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, रवि रंजज, पृ. 22,23
42. प्रगतिवादी काव्य, श्री उमेशचंद्र मिश्र
43. छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, डॉ. तिवारी, पृ. 304
44. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, डॉ. रवि रंजज, पृ. 2
45. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, डॉ. रामविलास शर्मा
46. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, डॉ. रवि रंजज, पृ. 18
47. छावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि,
48 आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि, डॉ. कृष्णलाल शर्मा, पृ. 274
49. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप, डॉ. रवि रंजज, पृ. 16
50. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ, संपादक राजीव सक्सेना, भूमिका (IX)
51. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य, पांडे, पृ. 47,48
52. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ, संपादक राजीव सक्सेना, भूमिका, पृ. XViii
53. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 50
54. मिट्टी की ओर दिनकर, पृ. 82
55. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डाँ. नामवर सिंह, पृ. 81
56. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी,
57. नया हिन्दी काव्य, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ. 152

58. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ. 21
59. रूपाभ-भूमिका, सुमित्रानंदन पंत,
60. प्रगतिशील साहित्य के मानदंड, डॉ. रांघेय राघव, ५४
61. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, अनिल कुमार, पृ. 136
62. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रूप डॉ. रवि रंजन, ५
63. प्रगतिवाद और समानंतर साहित्य, डॉ. रेखा अवस्थी, पृ. 12
64 प्रगतिवाद काव्य साहित्य, डॉ. कृष्णलाला हंस, पृ. 16
65 समाजोन्मुख यथार्थवादी काव्य, डॉ. रमाकांत शर्मा, पृ. 43
66. मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता जगदीश्वर चतुवेदी, पृ. 17
67. जनवादी समझ और साहित्य, रामनारायण शुक्ल, पृ. 48
68.. हिन्दी काव्य और प्रयोगावाद, रामकुमार खंडेलवाल, पृ. 3
69. आधुनिक साहित्य विशेषांक, पृ. 172
70. प्रयोगावाद एक दृष्टिकोण, डॉ. मक्खनलाल शर्मा, पृ. 171
71. प्रो. कीर्तिनाथ कुर्तकोटी, नयी कविता: नया आयाम, संपादक विश्वनाथ, पृ. 5
72. कविता और कविता, संपादक इंद्रनाथ मदान, ७४
73. त्रिलोचन की कविता का अर्थ, जीवन सिंह, पृ. 119

o-o-o-o-o

चतुर्थ अध्याय

त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि

आधुनिक जीवन में सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर आमूलचूल परिवर्तन के लिए एक नए दार्शनिक विचारधारा का अविर्भाव हुआ जिसे हम सामाजिक विषमता को दूर करनेवाला वर्ग-विहिन समाज की स्थापना हेतु सर्वहारा के उत्थान को प्रधानता दिलानेवाला दर्शन कहते हैं।

कार्ल मार्क्स की विचारधारा या दार्शनिक प्रणाली को अवगत करने से पूर्व द्वंद्ववाद, भौतिकवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद आदि शब्दावलियों को जानना आवश्यक है।

हिगेल का द्वंद्ववाद और फायर बाख का भौतिकवाद दोनों का समन्वित रुप अर्थात कार्ल मार्क्स का 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' है।

भौतिकवाद वह दार्शनिक प्रणाली है जोकि कल्पना, विचार ज्ञान को मानव चेतना(मस्तिष्क) पर एक ऐसे वास्तविक भौतिक जगत का मानस-प्रतिबिंब चमक मानता है जिसकी सत्ता हमारी चेतना और इच्छा से बिलकुल स्वतंत्र है।

एन्गेल्स के शब्दों में, ''जो चेतना या चेतन को नहीं बल्कि प्रकृति को सारे जड़-चेतन जगत का मूल मानता है, ऐसे वाद को भौतिकवाद कहते हैं।'' (1)

हिगेल के 'प्रत्ययवाद' को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। प्रत्ययवाद अंग्रेजी शब्द "idealism" का अनुवाद है। इसका प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। (1) ideal-ism (विश्व-प्रत्यय) (2) विश्व का मुख्य आधार ideal अर्थात आदर्श एवं मूल्य है। हिगेल के दर्शन में यूनान, यूरोपीय, जर्मन प्रत्ययवादी दार्शनिक विचारधारा का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। उनके प्रत्ययवाद को 'मूर्त एकवाद' की संज्ञा भी दी जाती है।

हिगेल के अनुसार, ''परम सत नित्य, अपरिवर्तनशील, तर्कबुद्धिपरत, जैविक साकल्य है, वह एक परिपूर्ण तर्क संगत व्यवस्था है जो शाश्वत है जिसमें विश्व की सभी वस्तुएं संगत रुप से पायी जाती है।'' (2)

हिगेल ने भाव को पक्ष, अभाव को प्रतिपक्ष और संभवन को संपक्ष कहा है। संपक्ष में पक्ष और प्रतिपक्ष का सामंजस्य रहता है। द्वंद्वात्मक प्रणाली में भेदाभेद का सिद्धांत कार्य करता है।

हिगेल के अनुसार, ''परम चित एक सर्वसमावेशी सामंजस्यपूर्ण जैविक व्यवस्था है जो अमूर्त से मूर्त अथवा अमूर्त से परिपूर्ण व्यवस्था की ओर कालक्रम में व्यक्त होती जाती है।''(3)

'द्वंद्ववाद' या 'द्वंद्वात्मकवाद' अंग्रेजी भाषा के 'डायलेक्टिकल' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। यह शब्द यूनानी 'दियो-लोग' शब्द से आया है जिसका अर्थ है 'द्वि-संवाद'। किसी चीज और उसके विरोधी भाव का विभाजन 'द्वंद्ववाद' का सार है।

कार्ल-मार्क्स का 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' वह दार्शनिक प्रणाली है जो हमें आंतरिक नियमों का ज्ञान कराती है जिसके अनुसार इस भौतिक जगत का विकास संभव है, जिसके कारण विचारों में परिवर्तन होता है।

"Just as Darvin discoverd a law of evaluation in organic nature, so Marxs discover a law of evaluation in human society so that mankind must first of all eat and drink, have shelter and Clothing before it can pursue politics, Science, religion, art etc." (4)

कार्ल-मार्क्स की दार्शनिक विचारधारा को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तत्वों से नियमित करते हुए निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **चरम सत्ता-पदार्थ (भू-तत्व)**- मार्क्स के अनुसार जगत के मूल में भू तत्व है। आत्मा या ब्रह्म का हमारे लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत भौतिक पदार्थ जैसे मिट्टी, पत्थर आदि को हम प्रत्यक्ष देखते हैं और अनुभव करतें है। अतः

वे ही हमारे लिए अंतिम सत्य है। भौतिकवादियों के अनुसार, प्रत्यय का पदार्थ के बाहर कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। अतः प्रत्यय क्रियाशील नहीं है। यदि प्रत्यय क्रियाशील नहीं तो मानव मस्तिष्क सक्रिय न होकर बाह्य अनुभवों का संचित कोश है। मनुष्य चाहे तो भी अपने संचित अनुभवों का प्रयोग करके भी प्रकृति और पदार्थ की रुपरेखाओं में परिवर्तन नहीं कर सकता। मानव मस्तिष्क हर क्षण पदार्थ की कठोरता में जकड़ा हुआ है। परंतु द्वंद्वात्मक भौतिकवादी पदार्थ प्रसूत प्रत्यय को एक स्वतंत्र अस्तित्व के रुप में देखता है। साथ ही प्रत्यय को क्रियाशील भी मानता है।

ज्ञानेंद्रियों की भूमिका के बारे में मार्क्स का कथन है- ''मेरे लिए किसी विषय का अर्थ उसी हद तक व्याप्त होता है, जिस हद तक मेरी ज्ञानेंद्रियां असामाजिक व्यक्ति की ज्ञानेंद्रियों से भिन्न होती है।''(5)

एंजेल्स के अनुसार, 'विचार या चेतना मानव मस्तिष्क की उपज है और मनुष्य प्रकृति की उपज, ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष कि मानव-मस्तिष्क की उपज विचार या चेतना अंतिम विश्लेषण में प्रकृति की ही उपज ठहरती है, शेष प्रकृति का निषेध नहीं करती, वरन उनकी संगति में ही है।' शिवदामसिंह चौहान के अनुसार, 'मार्क्स ने यह सिद्ध कर दिखाया कि विश्व भौतिक है और इस भौतिकता का प्रधान गुण उसका निरंतर गतिशील होना है। विचार और चेतना मानव-मस्तिष्क की उपज है, जो स्वयं प्रकृति की उपज है और जिसका विकास उसके वातावरण के साथ हुआ है। मानव मस्तिष्क इस भौतिक जगत को प्रतिबिंबित करके विचारों को रुप देता है। भौतिक जगत का अस्तित्व हमारे बावजूद है, प्रकृति के अपने नियम है और मनुष्य जिस सीमा तक इन नियमों को जान समझ लेता है उसी हद तक वह नियति की अंध आवश्यकताओं पर काबू पाकर प्रकृति पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है और मुक्त भी हो जाता है।''(6)

(2) **गति** -गति सत्ता का अनिवार्य धर्म है। मार्क्सवाद प्रत्येक वस्तु को निरंतर गतिशील, विकासशील और परिवर्तनशील मानता है। पदार्थ और गति एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। जबकि पदार्थ निरंतर गतिशील है, अतः परिवर्तन आवश्यक है।

रामविलास शर्मा के अनुसार ''समाज में दो तरह की गति है, एक आर्थिक गति है और दूसरी राजनीतिक गति है। यह राजनीतिक गति यथासंभव स्वतंत्र होने की कोशिश करती है, एक बार कायम हो जाने पर उसे अपनी अलग गति प्राप्त हो जाती है। आर्थिक गति प्रधान है, वही राजनीतिक गति को कायम करती है। एक बार कायम हो जाने के बाद यह राजनीतिक गति सापेक्ष रुप से स्वतंत्र हो जाती है।''(7)

(3) **विरोधी समागम :** संसार के विकास में ही हमें अन्तर्विरोध नजर आता

है। विकास के मूल में विरोधी समागम कार्य करता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवादियों के अनुसार विरोध अवश्यंभावी है। क्योंकि इसी के परिणामस्वरूप संघर्ष होता है और वस्तु में परिवर्तन या विकास होता रहता है। विरोधी तत्वों के द्वंद्व के द्वारा ही क्रांति संभव है। मार्क्स एवं एंगेल्स के अनुसार, ''डायलेक्टिकलस अथवा द्वंद्व बाह्य जगत और मानव के वैचारिक जगत की गतियों के नियमों का विज्ञान है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति अथवा मानवीय विचारों को स्वतंत्र 'रेडिमेड' स्वरूप में न स्वीकार कर, उन्हें सतत विकासमान, परिवर्तनशील, एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रुप में स्वीकार करता है।''(8)

(4) **वर्ग संघर्ष** - The history of all human society of past and present has been the history of class strugle. समाज दो वर्गों में विभाजित है- शोषक और शोषित। दोनों एक दूसरे के विरोधी है लेकिन साथ ही एक दूसरे पर निर्भर भी है।

वर्ग विषमता के संबंध में राम मनोहर लोहिया का मत है- ''हथियारों के खातमें की तरह गरीबी का अन्त भी अपने आप नहीं हो जाएगा। दोनों के लिए लगन के साथ यत्न करना पडेगा। हथियार और गरीबी में बिला शक गरीबी ज्यादा मारक रोग है।

(5) निषेध का निषेध : 'द्वंद्वात्मक' शब्द को स्पष्ट करने के लिए मार्क्स ने यह घोषणा की थी कि विकास के लिए पूर्वरुप का निषेध आवश्यक है। कोई भी निषेध अपने आप में अंतिम नहीं होता। निषेध को स्वयं ऐसी स्थिति से गुजरना पड़ता है, जहाँ वह स्वयं निषेधित हो उठता है।

(6) **विकास की प्रक्रिया** - मार्क्स के अनुसार विरोधी तत्वों के संघर्ष के द्वारा ही विकास संभव है। विकास की प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- वाद, प्रतिवाद, संवाद।

(7) **परिवर्तन की प्रक्रिया** - मार्क्सवादियों के अनुसार परिवर्तन मात्रा से गुण की ओर बढ़ता है। अर्थात किसी निश्चित सीमा पर पहुँचकर परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन के लिए द्वार खोल देता है।

गुण और परिमाण के बीच में जब एकता बनी रहती है, उसे मान कहते है। केवल परिमाणात्मक भेद भी एक खास बिंदु से आने-जाने पर गुणात्मक परिवर्तन बन जाते हैं।

(8) **मूल्य एवं अतिरिक्त मूल्य सिद्धांत** - पूँजीपतियों ने श्रमिकों की मेहनत से अपने महल खड़े किए। उन्हें प्राप्त होनेवाला संपूर्ण लाभ अतिरिक्त मूल्य ही है। श्रमिकों का शोषण उपभोक्ता के रुप में भी होता है। पूँजीपतियों द्वारा अधिक मूल्य पर बाजारों

में बेची गयी वस्तुएँ मजदूरों को भी खरीदनी पड़ती है। पूँजीपति व्यवस्था में श्रमिक को उसके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। [9] पूँजीवादी व्यवस्था क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लेनिन कहता है - ''समाज में सभी पदार्थों को सौदे के रुप विनिमय के लिए उत्पन्न करना और परिश्रम की शक्ति को भी विनिमय की वस्तु की तरह खरीद कर व्यवहार में लाना पूँजीवाद की अवस्था है।'' पूँजीवादी प्रणाली की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने लिखा है - ''पूँजीवादी प्रणाली में सभी पदार्थ विनिमय के लिए तैयार किए जाते हैं । पूँजीवादी समाज में नयी बात यह होती है कि मनुष्य की परिश्रम की शक्ति भी बाजर में बेची और खरीदी जाती है। इसके अतिरिक्त पूंजीवादी प्रणाली की विशेषता है पूंजी द्वारा (मेहनत करनेवाले से अतिरिक्त श्रम या अतिरिक्त मूल्य के रुप में) मुनाफा कमाना है। पूंजीवाद अतिरिक्त श्रम या अतिरिक्त मूल्य के रुप में ही पूंजी से पूँजी कमा सकता है।[10]

(9) **मैनीफेस्टो** - मैनीफेस्टो का आरंभ ही इस सामान्य कथन से होता है कि आज तक के संपूर्ण समाज का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है। मैनीफेस्टो में पूँजीपति वर्ग (Bourgeois) तथा सर्वहारा वर्ग (Proletanat) के संघर्ष का विवरण प्राप्त होता है। इसके प्रधान तत्व निम्नलिखित है-

1) पूँजीपति वर्ग उत्पादन यंत्रों में क्रांति लाए बिना नहीं रह सकता।

2) पूँजीपति वर्ग अपने लाभ की दृष्टि से उत्पादन यंत्रों में परिवर्तन करता रहता है।

3) बाजार का निर्माण और विस्तार पूँजीपति वर्ग अपने स्वार्थों के लिए करता है।

4) छोटा पूँजीपति बड़े पूँजिपति के द्वारा शोषित होता रहता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि पूँजी थोड़े से बड़े पूँजीपति के हाथों में एकत्रित हो जाती है।

5) पिछड़े राष्ट्रों को पूँजीवादी उत्पादन पद्धति को अपनाने के लिए विवश किया जाता है।

6) पूँजीपति वर्ग के सामने आवश्यकता से अधिक उत्पादन के साधन जुटाने के कारण नवीन संकट उत्पन्न होते हैं। पूँजीवादी समाज की स्थिति उस जादूगर के समान है जो उस मायावी संसार की शक्तियों पर नियंत्रण करने में असमर्थ है।

7) श्रमिक वर्ग भी उसी अनुपाल में बढ़ता है जिस अनुपात में पूँजीपति वर्ग बढ़ता है।

मार्क्सवादियों को अपने वाद के एकांगीपन का जब अनुभव हुआ तो वे उसका क्रमशः स्पष्टीकरण करने लगे। एंजिल ने लिखा है-

"Marx and I are partly responsible for the fact that at time our desciples have laid move weight upon the economic factor than belongs to it." (11)

अपनी कुछ कतिपय न्यूनताओं के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि मार्क्सवाद सामाजिक सुधार, साम्यवाद को प्रस्थापित करने का प्रयास करता है।

रामविलास शर्मा के अनुसार, ''समाज को समझने और बदलने तथा शोषणहीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करने के विज्ञान का नाम 'मार्क्सवाद' है। यह व्यवस्था हवा में नहीं बनती, प्राचीन व्यवस्था के उपकरणों का महत्वपूर्ण योग भी उसमें होता है।''(12)

'द्वंद्ववाद', 'ऐतिहासिक भौतिकवाद', 'भौतिकवाद', 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' से शनैः शनैः विकसित होते-होते कार्ल मार्क्स के 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' से सोपान दर सोपान साम्यवाद के रुप में विकास किया है। डी-क्लास या वर्ग-विहीन समाज की मनो-कामना मार्क्सवाद और प्रकारांतर से साम्यवाद की श्रेणियाँ है।

नामवर सिंह लिखते हैं- ''कम्युनिस्ट घोषणापत्र में जोर देते हुए कहा गया है कि साम्यवाद एक ऐसा संगठन होगा जिसमें हर व्यक्ति का मुक्त विकास सबके मुक्त विकास की शर्त होगा। इसे दोहराते हुए पूँजी में कहा गया है कि साम्यवाद एक उच्चतर प्रकार का समाज होगा और इसका मूल सिद्धांत होगा हर व्यक्ति का पूर्ण और मुक्त विकास।''(13)

विभिन्न विचारकों और आलोचकों ने मार्क्सवादी विचारधारा की कटु आलोचना भी की। लेकिन सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो काफी क्रियाशील कार्य भी इसके द्वारा किया गया जो निश्चित रुप से सराहनीय है।

''मार्क्सवाद से समाजवाद और समाजवाद से सर्वोदय की ओर हमारी यात्रा बढ रही है। भौतिक जीवन में जो कुछ हितकर, मंगलमयी और सुखद है, वह मानव को उपलब्ध कराने के लिए समाजवाद कटिबद्ध है।''(14)

अतः कह सकते है कि अपने युगीन परिवेश के अनुरूप समाज की आर्थिक व्यवस्था को परिवर्तित करने हेतु एक नया दर्शन सामने उभरकर आया जिसे सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण माना गया।

५.१ मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र

मार्क्सवादी विचारधारा ने साहित्य के लिए एक नवीन भावभूमि का निर्माण

किया जिसने साहित्य को समाज-सापेक्ष दृष्टिकोण प्रदान किया। मार्क्सवादी चिंतकों की दृष्टि में समाजविहीन संकल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। उनके अनुसार, वही रचना श्रेष्ठ है जिसमें सर्वहारा पक्ष को अधिक महत्व दिया गया हो अथवा उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी हो।

मार्क्सवादी कला चिंतन के संबंध में विभिन्न विचारकों के मत इस प्रकार हैं-

जार्जी प्लेखनोव के अनुसार, ''एक कलाकार वस्तुतः केवल उन्हीं चीजों से प्रेरित होता है जिनमें जन-संसर्ग को सुविधाजनक बनाने की क्षमता होती है। इस संसर्ग की संभावित सीमाओं का निर्धारण खुद कलाकर नहीं, बल्कि उस सामाजिक इकाई द्वारा प्राप्त सांस्कृतिक स्तर करता है, जिसका कलाकार सदस्य होता है।''(15)

हिगेल ने कहा था कि, ''कला बाह्य वस्तुओं में अपने को प्रक्षेपित करने की और वस्तु रुपांतरण की इस प्रक्रिया द्वारा आत्म चेतना को विकसित करने की मनुष्य की जरुरत से उपजती है। इस अर्थ में कला को उस श्रम का एक अंग माना जा सकता है जिसके जरिए मनुष्य खुद का निर्माण करता है।''(16)

मार्क्स के अनुसार, ''कलात्मक विषय ऐसी जनता का गठन करता है जिसमें कलात्मक अभिरुचि होती है तथा जो सौंदर्य का रसपान करने में समर्थ है- यही बात किसी और उत्पाद के बारे में कही जा सकती है।''(17)

काडवेल के अनुसार, ''समाज संघटन का आधार आर्थिक है अतएव काव्य का भी मूलधार आर्थिक ही ठहरता है। आवश्यकता इस बात की है कि काव्य पहले की भाँति पुनः समाज के बीच खड़ा हो। समाज का सबसे दुःखी अंग श्रमिक वर्ग है, काव्य को उसके सुख समाधान में योग देना चाहिए।''(18)

नामवर सिंह लिखते हैं - '' मार्क्स ने बताया कि सौंदर्यचेतना ठोस ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की विशिष्य संरचनाओं के बीच खास तौर से मानवीय श्रम के विकास के अंग के रुप में, क्रमशः जन्म ले सकी है। मार्क्स की दृष्टि में कलात्मक रचना और कला आस्वादन विशिष्ट रुप से मानवीय क्षमताएँ है। उन्हें पशुजगत में दिखाई पड़नेवाली उनसे मिलती-जुलती चीजों के साथ एक न समझना चाहिए। श्रमजीवी मनुष्य श्रम कौशल को विकसित करने और भौतिक जगत पर विचार तथा क्रिया के जरिए नियंत्रण करने के दौरान सौंदर्य-चेतना हासिल करता है और फिर उसे और परिष्कृत करता है।''(19)

गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार, ''कला शरीर की नसों में नया रक्त और नवस्फूर्ति का संचार जनता के अथाह ह्रदय के सम्पर्क में आने से ही होगा।''(20)

मुद्राराक्षस लिखते हैं- ''कहा जाता है कि कवि सौंदर्य के माध्यम से सत्य

को प्रत्यक्ष करता है। पर सौंदर्य की परिभाषा बड़े-बड़े मनीषियों द्वारा भी सर्वथा निश्चयात्मक रुप में नहीं दी जा सकी। सौंदर्यबोध के प्रतिमान भी बदलते रहे हैं। अतएव मैं निषेधात्मक रुप से कहना चाहूँगा कि जीवन के व्यापक भाव सत्य की उपलब्धि में जो कुछ भी बाधक होता है वही असुन्दर है।''(21)

मार्क्सवादी कला चिंतन निश्चित रुप से कलावाद का विरोधी नहीं है लेकिन समाज निरपेक्ष कला की वह कल्पना नहीं करता। वह समाज के मूल में अर्थ की सत्ता को स्वीकार करता है। मार्क्स ने कला को भी श्रम से जोड़ा है। मनुष्य श्रम के द्वारा रचनाकार के गुणों को विकसित कर सकता है। कला भी वही श्रेष्ठ होती है जिसमें जनमानस की चेतना धड़कती है। श्रमजीवी मनुष्य अपने परिश्रम के द्वारा जीवन में सौंदर्य हासिल कर सकता है चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग से क्यों न जुड़ा हो। मार्क्स परंपरा और भाग्य का विरोध करता है। मनुष्य की सफलता असफलता उसके श्रम पर निर्भर करती है।

५.२ प्रगतिवादी विचारधारा

'प्रगति' का साधारण अर्थ है आगे बढ़ना। साहित्य को जीवनान्मुख करके विकासवादी एवं परिवर्तनशील सकारात्मक मूल्यों को लेकर चलनेवाली दार्शनिक प्रणाली का नाम ही 'मार्क्सवाद' है। संघर्षशील चेतना से अभिभूत यह दार्शनिक विचारधारा' द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' से अनुप्राणित है। राजनीतिक स्तर पर जो वाद-विशेष मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद के रुप में प्रस्फुटित हुआ।

''मार्क्सवाद का आग्रह कला और साहित्य के संबंध में यथार्थ परिस्थितियों और यथार्थ चरित्रों की सामाजिक विशिष्टताओं के निर्वैयक्तिक चित्रण पर था यानी परिस्थितिजन्य यथार्थमूलक, निर्वैयक्तिक और चारित्रिक विशिष्टता का निष्कर्ष देनेवाले अनुभवों की अभिव्यक्ति पर था।''(22)

इस यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण मार्क्सवाद और प्रकारांतर से प्रगतिवादी साहित्य हिन्दी साहित्य को एक नयी दिशा देने हेतु अग्रसर हुआ जिस कारणवश उसे छायावाद के भाव-प्रवण स्वच्छंदतावाद से मुक्ति मिल गयी।

मार्क्सवादी चिंतन के मूल में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था है जिसके उत्थान के लिए ही मार्क्स ने विभिन्न सिद्धांतों को रखा जो कि व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टि में तर्क-संगत था, इसके साथ ही मानव-कल्याण की भावना भी इसमें निहित थी। कालांतर में कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने मार्क्सवादी विचारधारा को आगे बढ़ाया। इस प्रकार यथार्थ की जमीन पर एक नए चिंतन का विकास हुआ जो कि परंपरा

से हटकर भी है। इसके संदर्भ में बहुत कुछ कहा जा चुका है और आज भी इसको तरह-तरह से परिभाषित किया जा रहा है। मैं संक्षिप्त रूप में कतिपय विद्वानों के विचार शोध के संदर्भ में प्रस्तुत कर देना समीचीन समझती हूँ।

डॉ.रामविलास शर्मा के अनुसार, '' समाज को समझने और बदलने तथा शोषणहीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करने के विज्ञान का नाम 'मार्क्सवाद' है। यह व्यवस्था हवा में नहीं बनती, प्राचीन व्यवस्था के उपकरणों का महत्वपूर्ण योग भी उसमें होता है।''(23)

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, ''प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों का इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरंतर विकास का इतिहास है जो केवल राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमश: जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमश: यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थ से आरंभ होकर क्रमश: स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है।''(24)

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद लिखते है- ''प्रगतिवाद युग छायावाद युग का परवर्ती होने के कारण उससे उपकृत, पोषित होकर भी कई दृष्टियों से द्विवेदी युग का पुनरावर्तन है। जहाँ द्विवेदीयुगीन दृष्टिकोन सुधारवादी था वहाँ प्रगतिवादी दृष्टिकोन क्रांतिवादी है।''(25)

जयकिशन खंडेलवाल के अनुसार, ''प्रगतिवाद मार्क्सवाद का हिन्दी रुपांतर न होकर हिन्दी साहित्य में सामाजिक मानवतावाद की प्रतिष्ठा है जो तत्कालीन युग में इस देश की आवश्यकता थी।''(26)

सुमित्रानंदन पंत ने जुलाई 1938 में 'रूपाभ' की भूमिका में प्रगतिवादी साहित्य की अनिवार्यता और आवश्यकता पर बल देते हुए कहा, ''इस युग में जीवन की वास्तविकताओं ने जैसा उग्र रुप धारण कर लिया है। (27)

ध्यान देने योग्य बात यह है कि पंत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद छायावादी कविता में जिस वायवीय कल्पना प्रवण दृष्टि को चित्रित कर रहे थे, कालांतर में रचनाकारोंको यह महसूस होने लगा कि हम धरती पर रहकर कल्पना की नील उड़ानो की वायवीय बाते न करे। बल्कि जीवन का वास्तववादी चित्रण करे। अत: पंत और निराला ने जीवन के इस सत्य को समजकर प्रगतिवाद की ओर प्रयाण किया।

गजानन माधव मुक्तिबोध लिखते है, ''सामाजिक तत्वों में उपेक्षा करने से विश्व-प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है। जब समाज में अराजकता, अनैतिकता, अव्यवस्था, अन्याय और शोषण दिखायी देता है तब स्वयं को उस समाज का अंग मानकर उद्धार

और कल्याण के लिए स्वयं को अंतर्भूत करना, डुबो देना ही प्रगतिवाद का प्रधान कर्म है।[28]

जैनेन्द्र कुमार के अनुसार, ''आगे बढ़ने का सीधा-सादा मतलब अगर प्रगति शब्द से लिया जाय तो मैं मानता हूँ कि अपने प्रति ईमानदार लेखक प्रगतिशील है। जहाँ है वहाँ से वह आगे पहुँचना चाहता है। इसी प्रेरणा में वह लिखता है।''[29]

राजेन्द्रप्रसाद सिंह का मंतव्य है, ''प्रगति एक सापेक्ष अर्थ रखनेवाला शब्द है। किसी युग, राष्ट्र, समाज या व्यक्ति के संबंध में जब इस शब्द का प्रयोग होता है, तो एक अवस्था क्रिया या विचार का दूसरे इन तत्वों से बढ़ जाना ही सामान्य अभिप्राय रहता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि समय के व्यतीत हो जाने से ही 'प्रगति' की संज्ञा सार्थक हो जाती है, प्रत्युत एक स्थिति के कुछ प्रमुख तत्वों का दूसरी में विकास हो जाने से होती है। परिवर्तन ही प्रगति नहीं है, प्रगति की प्रक्रिया में परिवर्तन, विकास या क्रान्ति घटित हो सकती है।''[30]

५.३ वस्तु और रुप का अन्त:संबंध

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में वस्तु एवं रुप के स्वरूप एवं उनके अन्त:संबंधों को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से विशद एवं व्यापक चर्चा की है। आज भी यह विवेचन का विषय बना हुआ है। वस्तु और रुप के संबंधों को दर्शानेवाला संस्कृत का एक श्लोक द्रष्टव्य है-

अङ्गान्य भूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।
येन भूषितवद् भान्ति तद् रुपमिति कथ्यते॥[31]

भारतीय काव्यशास्त्र में प्राप्त रुप-विधान की चर्चा करते हुए डॉ.नामवर सिंह लिखते है- ''जब रूप विन्यास अंग-प्रत्यंग से यथोचित सन्निविष्ट, संश्लिष्ट तथा सन्धिबन्ध होता है तभी वह स्वाभाविक प्रतीत होता है। भावों के साथ उसका मेल भी तभी बैठ सकता है और ऐसी ही स्थिति में किसी प्रकार के आभूषण बिना ही शरीर विभूषित मालूम होता है। सुघड़ और सुडौल अंग यष्टि अपने आप ही शोभन है।''[32]

वस्तु और रुप के अन्योन्याश्रय की बात करने के पूर्व भिन्न-भिन्न रुप से 'वस्तु' और 'रूप' की अपनी स्वतंत्र इयत्ता पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा। कलाकार अपने चारों ओर के परिवेश से प्रभाव ग्रहण करता रहता है और निश्चित रुप से अन्यों की अपेक्षा (संवेदनशीलता के कारण) अधिक रूप से कलात्मक प्रभाव उसके मन-मस्तिष्क पर पड़ता है और चिंतन के क्षणों में वे विषय स्फुरित हो उठते हैं। अमृतराय के अनुसार, ''कला में स्थायित्व तभी आ सकता है जब वह मानव प्रकृति के किन्हीं

शाश्वत तत्वों से स्फुरित हो और उन्हीं के प्रति निवेदित हो। वे शाश्वत तत्व कौन से है? यह हर कलाकार के स्वत: अन्वेषण करने की बात है और यही कलाकार के नाते उसका वास्तविक संघर्ष होता है।''(33) रचनाकार के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वह समसामायिक, तात्कालीक जीवनानुभव, परिस्थितियों को अपनी रचना में समान्वित करें। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार, ''कोई भी रचनात्मक कृति एक समन्वित संपूर्ण सत्ता होती है जिसके विभिन्न अंग मूलत: अविभाज्य रुप से एकाकार होते हैं। किसी भी युग की सार्थक और युगीन यथार्थ का संवेदनशील बोध आवश्यक है। इसके बिना रचना निरा वाग्विलास, शब्दजाल और चमत्कार मात्र है, फैशन है, साहित्य नहीं।''(34)

यह ध्यान देने योग्य है कि सामान्य व्यक्ति की अनुभूति और कलाकार की अनुभूति में निश्चित रुप से अंतर होता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि कलाकार भी एक व्यक्ति ही है लेकिन सृजनात्मक चिंतनशीलता के कारण उसकी अनुभूति में विशिष्टता आती है। जगदंबा प्रसाद दीक्षित के अनुसार, ''रचनाकार की व्यक्तिमत्ता इस तथ्य में निहित है कि वह औरों से अधिक संवेदनशील है, करुणा के तत्व को अधिक तीव्रता से अनुभूत करता है। उसकी विशिष्ट प्रतिभा इस बात में है कि उसका बुद्धिपक्ष औरों से अधिक सशक्त है। उसकी विशिष्ट प्रतिभा इस बात में है कि वह रचना की अंतर्वस्तु के आग्रहों को स्पष्टता से महसूस करता है। एहसास की यह स्पष्टता ही अंतर्वस्तु को रुप-पक्ष तक पहुँचाने में मदत करती है।''(35)

कलाकार का दायित्व यह है कि उसके मन में जो उद्वेग पैदा होते हैं उसकी कारण मीमांसा करके परिवेशगत स्त्रोतों को जान-समझकर निर्णायक भूमिका का निर्वाह करे। गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार, ''कला शरीर की नसों में नया रक्त और नवस्फूर्ति का संचार जनता के अथाह हृदय के सम्पर्क में आने से ही होगा।''(36)

मूलत: कई बार यह सवाल उत्पन्न होता है कि वस्तु किसे कहे? विषय को? विचारकों का मानना है कि विषय स्वयं अपने आप में काव्य का विषय नहीं होता। उदाहरण स्वरुप कह सकते है कि तुलसीदास का 'रामचरितमानस' और वाल्मिकी का 'रामायण' दोनों का विषय तो एक है लेकिन काव्यगत विषय-वस्तु में अंतर है। मुक्तिबोध के अनुसार ''विषय शब्द का अर्थ व्यापक है, वस्तु का संकुचित। काव्य की वस्तु कवि मन के भीतर ही अन्तर्तत्व-व्यवस्था का ही एक भाग होते हैं। ये अन्तर्तत्व बाह्य जीवन-जगत के आभ्यंतरीकरण का जो सिलसिला बचपन से चालू होता है उसी के विकसित रुप में उपस्थित होते हैं।''(37)

सर्जना के क्षणों में रचनाकार बाह्य जीवन जगत का आभ्यंतरीकरण करता है और विकसनशील होते-होते अपने अनुभवों को संपन्न करते हुए उसका बाह्यीकरण

किया जाता है। मुक्तिबोध की शब्दावली में हम उसे संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन कह सकते हैं। इस प्रक्रिया में आंतरिक जीवन-जगत और बाह्य जीवन-जगत में निरंतर रुप से संघर्ष होता है साथ ही समन्वय भी होता रहता है। यह संघटन-विघटन निरंतर रुप से चलता ही रहता है।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, ''कला की विषयवस्तु न वेदांतियों का ब्रह्म है, न हिगेल का निरपेक्ष विचार। मनुष्य का इन्द्रियबोध, उसके भाव, उसके विचार, उसका सौंदर्य-बोध, कला की विषय-वस्तु है।''(38)

जार्ज ड्यूईने अपनी पुस्तक 'आर्ट एज एक्सपेरिएन्स' में लिखा है - ''विषय काव्य का बाह्य तत्व है जबकि वस्तु अन्त: तत्व।''(39) ड्यूई ने उसे कच्चे माल के रुप में स्वीकार किया है अर्थात वह रचनाकार के जीवनानुभव से सम्मिलित होकर 'वस्तु' में परिणित हो जाता है।

आज हम अपने चारों ओर देखे तो ज्ञात होता है कि स्वतंत्रतापूर्व काल में विषय-वस्तु के अंतर्गत जो आदर्शवाद का पुट रहता था उसका तिरोभाव हो गया है और यथार्थवादी दृष्टि मुखर हुई है। शिवकुमार मिश्र लिखते हैं- ''जनता हमसे सुंदर चित्रों की मांग करती है, किन्तु उनके नमूने इस समाज व्यवस्था में है कहाँ? आपके छिनौने वस्त्र, आपकी अपरिपक्व क्रांतियां, आपका बातूनी बुर्जुआ, आपका मृतधर्म, आपकी निष्कृष्ट शक्ति बिना सिंहासन के आपके बादशाह ये सब क्या इतने काव्यात्मक है कि इनका चित्रण किया जाए?''(40)

युगीन परिवेश में तो समयानुकूल परिवर्तन आते रहते है, रचनाकार को तदनुसार विषय-वस्तु का निर्माण करना पड़ता है। बदलते हुए परिदृश्यों में विषय-वस्तु के निर्माण के संबंध में अज्ञेय ने लिखा है-

''काव्य का विषय और काव्य की वस्तु (कटेंट) अलग-अलग चीजें है। यह बिल्कुल संभव है कि हम काव्य के लिए नये से नया विषय चुनें पर वस्तु उसकी पुरानी ही रहे, जैसे यह भी संभव है कि विषय पुराना रहें पर वस्तु नयी हो। विषय सम्प्रेष्य नहीं है वस्तु सम्प्रेष्य है।''(41)

पाश्चात्य काव्य शास्त्र में 'रुप विधान' पर विस्तार से चर्चा की है। इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए है।

सुसन लैंगर ने अपनी पुस्तक 'फीलिंग ॲण्ड फार्म' में कहा ''कलाकृति केवल ऐन्द्रिय अनुभवों का विषय होती है। चित्र केवल देखने के लिए होता है, गीत केवल सुनने के लिए।''(42)

रेडर का मानना है ''कलाकार के भीतर जो विशिष्ट सौंदर्यात्मक अनुभूति

होती है वही रुप को सार्थकता प्रदान करती है।''(43)

सुप्रसिद्ध रुपवादी चिंतक क्लाईव बेल ने भी रचना के रुप विधान को अधिक महत्व किया है। साथ ही अंग्रेजी के समालोचक हर्बर्ट रीड ने 'रुप' को उसके शब्द, संगीत, बिंब, उपमा संरचना, धारणा आदि से परे माना है।

प्राय: यह विवाद उठ खड़ा होता है कि वस्तु और रुप में से किसे अधिक महत्वपूर्ण माने, उसका रुप-विधान तो केवल बाह्य आवरण है। उपरी चकाचौंध मात्र से क्या लाभ? परंतु इस प्रकार का सोचना एकांगी है। यदि रचना में केवल आत्मिक या मानसिक अन्त:प्रेरणा है लेकिन अभिव्यक्ति का साधन सशक्त नहीं है तो रचना महान नहीं बन सकती। साथ ही रचना को बाह्य रुप से सजाया-सवारा गया है लेकिन अनुभूति की कमी हो तो भी वह रचना निकृष्ट कोटि की कहलायी जाएगी। भावक के पास केवल भाव रहता है लेकिन वह उसे व्यक्त नहीं कर पाता। रचनाकार के पास भाव भी है और अभिव्यक्त करने की क्षमता भी है जिस कारण वश रचना सार्थक हो जाती है। अमृतराय के अनुसार, कोई सच्चा चित्रकार किसी के जीवन का चित्र नहीं उतारता, वह तो उसके मानस में स्थित इस चित्र को उकेरता है। मगर सर्जनात्मक क्षणों में ऐसे कई अवसर महत्वपूर्ण है, जिससे किसी कलाकृति को पूर्णता प्राप्त होती है।(44)

निष्कर्षात्मक रुप से विभिन्न आलोचकों ने स्वीकार किया है कि वस्तु और रुप का अंगांगिभाव रहता है, वे दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं।

हावर्ड फास्ट के अनुसार, ''साहित्य में रचना-प्रक्रिया हमेशा एक संश्लेषण है, प्रतिलिपि नहीं। लेखक सूची मात्र नहीं बनाता, उसे चुनाव करना होता है।''(45)

मुक्तिबोध के अनुसार, ''सृजन प्रक्रिया के समय मन में स्थित तत्व स्थिर नहीं होते, उन्हें संशोधित और विकसित करना पड़ता है जिसके कारण रचनाकार के भाव पुष्ट और प्रकाशित होते हैं साथ ही अभिव्यक्ति में सहजता आ जाती है, आत्मोद्घाटन या प्रकटीकरण में समय-समय पर उसका रुप भी निर्धारित होता रहता है।''(46)

ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान की पुष्टि करते हुए मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया की मान्यता के अलावा हमें नयी समीक्षा के अंतर्गत भाषिक संरचनावाद के तहत वस्तु रूप में हो रहे परिवर्तन की अवधारणा भी प्राप्त होती है। जार्ज लुकाच की मान्यता है कि ''विषय वस्तु की नवीनता नये कला रूपों की माँग करती है जो इस बात को प्रमाणित करता है कि वस्तु में परिवर्तन ही मूलत: कला रुपों में परिवर्तन का कारण है।''(47)

मार्क्सवाद इस बात पर जोर देता है कि रुप और तत्व एक दूसरे से अलग और निष्क्रिय, अविछिन्न नहीं है। तत्व वस्तु रुप को जन्म देता है, वह उससे संबद्ध और अविछिन्न है। विषयवस्तु प्रथम स्तर पर होने के कारण उसका प्रभाव रुप पर पड़ता

है।

डॉ. रामविलास शर्मा की जनवादी फार्म संबंधी मान्यता का विरोध करते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि ''प्रश्न का यह रुप एक बुनियादी गलतफहमी को प्रकट करता है। कवि का काम है कि अपनी बात को, उन काव्य-प्रकारों (फार्मों) के माध्यम से व्यक्त करें। अव्वल तो फार्म अपने अनुकूल एक खास मिजाज को ढूँढता है और हर कवि या शायर का अपना मिजाज उस खास प्रकार को चुन लेता है।''(48)

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, ''प्रश्न होता है कि वस्तु पहले है या रुप । वस्तुत: दोनों में कोई न कोई पहले है न बाद में। दोनों एक साथ है। 'गिरा अरथ जल बीचि, राम कहियत भिन्न न भिन्न' 'वागार्थो सम्पृक्तौ वस्तु' आदि से अन्त तक रुप है और रुप आदि से अन्त तक वस्तु। वस्तु रुप में आदयंत विराजमान रहती है। यदि वस्तु रुप के पहले कोई चीज है तो विषय है। रचनात्मक प्रक्रिया में विषय ही वस्तु बनता है। पर प्रक्रिया के दौरान वस्तु रुप को और रुप वस्तु को प्रभावित करते चलते हैं।''(49)

अन्तर्वस्तु और आकृति के संबंध में 'रोहिताश्व' का मानना है- ''अन्तर्वस्तु और आकृति- ये दोनों हर वस्तु में निहित है और इसलिए एक दूसरे से भिन्न नहीं की जा सकती। यों अन्तर्वस्तु, जैसी कोई चीज नहीं होती, केवल आकृतियुक्त अन्तर्वस्तु ही होती है जिसकी निश्चित आकृति होती है। इसी तरह अन्तर्वस्तु से अलग विशुद्ध आकृति का अस्तित्व नहीं होता।''(50)

अंतत: कह सकते है कि साहित्य का प्रयोजन और वस्तु का चयन यह दोनों परस्परावलंबी है। कलाकार स्वयंस्फुरित होकर प्रतिक्रियात्मक प्रभाव उसकी अन्त:श्चेतना पर पड़ता है। स्फुरण के समानांतर तो कभी तद्उपरांत उसकी अभिव्यक्ति होती रहती है। इतना निश्चित है कि वस्तु चयन के लिए चिंतन की आवश्यकता होती है, चिंतन के लिए व्यक्ति (कलाकार) वस्तु की पूर्वसत्ता को ज्ञात करें, यह भी आवश्यक है। मुक्तिबोध के अनुसार, रचनाकार में आत्मबल हो, भाषा की समृद्धि, ज्ञान का भंडार, विशाल कल्पनाशीलता, जीवन-जगत की अभिव्यक्ति के लिए आध्यात्मिक सामर्थ्य चाहिए।

इतना तो निश्चित है कि रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत वस्तु को सचेत रहतर उसके गठन के अनुरूप अनुकूल रुप देना पड़ता है। तब वह एक सफल रचना बनकर हमारे सामने आती है। वस्तुगत रुप और रुपगत वस्तु में तादात्म्य स्थापित हो जाता है।

प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत मैंने वस्तु और रुप के अन्त:संबंधों को विभिन्न

विद्वानों के विचारों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसका व्यावहारिक विवेचन 'त्रिलोचन के काव्य में भाषा संबंधी दृष्टि' अध्याय में किया जाएगा।

पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन और साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का अपने समय में और बाद के कई वर्षों तक व्यापक प्रभाव रहा । कालांतर में अपने कतिपय अन्तर्विरोधों के कारण इसकी प्रासंगिकता धूमिल पड़ गयी। इसके गुणों एवं दोषों के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए है।

मार्क्सवादी जीवन दर्शन के प्रति गहरी सकारात्मक दृष्टि रखते हुए मोहित सेन लिखते है ''अगर मध्ययुगीन प्रगतिविरोधी ताकतों को राष्ट्रीय विचारधारा के विघटन के फलस्वरूप बने शून्य में जहरीले धुएँ भरने से रोकना चाहते हैं तो सामूहिक कारवाई के स्तर पर जरूरी है कि मार्क्स के बुनियादी विचारों का अधिक से अधिक प्रसार हो।''(51)

मार्क्सवाद को केवल तात्विक रूप से विवेचित करने से कुछ भी साध्य नहीं होगा, व्यावाहारिक रूप से उसकी पक्षधरता लेने के बाद क्या प्राप्त होता है, इसके कारण की मीमांसा करके उसके न्यून पक्ष को जीवन-सापेक्षता के आधार पर जाँचते हुए विश्लेषित करना होगा।

विश्वनाथ त्रिपाठी मार्क्सवादी दर्शन के असफल होने के कारण की मीमांसा करते हुए लिखते हैं '' प्रगितिशील साहित्य दोषों से मुक्त नहीं रहा है और हम उसे और भी उन्नत तभी कर सकते हैं जब हम इन दोषों को समझे और उन पर विजय पाएँ। इस दौर में तमाम प्रगतिशील साहित्य में जो सबसे बड़ी कमजोरी रही है वह यह कि प्रगतिशील लेखकों का लगाव जनता से जिनकी अगुवाई मजदूर श्रेणी कर रही है काफी नहीं रहा है।''(52)

जब मार्क्सवाद को प्रारंभिक चरण में हिन्दी के तमाम साहित्यकारों ने अपनाया तब हम सोच सकते थे कि वह शुरूवाती दौर में कुछ गलतियाँ कर सकता है, लेकिन मार्क्सवाद के पूर्णत: विकास के बाद और अनेक प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशनों के अनेकानेक योजनाओं के उपरांत भी जब मार्क्सवाद दलगत राजनीति से आबद्ध हो गया तब चिंता का कारण बन गया और दिशा-हीनता दृष्टिगोचर होने लगी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रगतिवादी कविता के प्रति अपनी अपेक्षा इन शब्दों में प्रकट की है- ''आज जबकि कवि अपनी ओर से यथा संभव कम कहकर वस्तु के यथार्थ को समझाने की चेष्टा कर रहा है, व्यंग्यार्थ का प्रधान होना ही उचित था। चूंकि हिन्दी की यह यथार्थवादी कविता अभी प्रारंभिक अवस्था में है इसलिए यदि उसमें पूरी व्यंजकता नहीं दिखलायी पड़ती है तो यह बात चिन्ताजनक नहीं है।''(53)

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, ''मार्क्सवाद एक नया वैज्ञानिक दृष्टिकोन देता है, समाज की गतिविधि को समझने के साथ साहित्य के मूल्यांकन के लिए भी

नई दृष्टि देता है। साथ ही जनता से प्रेम, जनता में भी सम्पत्तिहीन जनों से गाढी सहानुभूति और सहानुभूति के साथ उनका भाग्य बदलने का क्रान्तिकारी उत्साह भी देता है। किन्तु हमारे अनेक मार्क्सवादी लेखक सहानुभूति और विचारधारा दोनों ही में पुराने साहित्यकारों से पिछड़े हुए हैं।(54)

श्री रामवक्ष का भी यही विचार है कि, ''हमारे चिंतको का हमारे साहित्य से जीवन्त संपर्क टूट गया है, इसके कारण हमारी साहित्यिक समस्याएँ हमें परेशान नहीं करती। यही नहीं, हमारे आसपास के जीवन से भी हमारे चिंतकों का संपर्क टूट रहा है। यहाँ तक कि अपने आसपास के जीवन के प्रति एक जिज्ञासा कृति तक नहीं बची है। इसी कारण सैद्धांतिक लेखों में 'सामाजिक जीवन', 'आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ' आदि पदावली तो खूब आयेंगी लेकिन वास्तविक समाज के बारें में वास्तविक बाते पढने को नहीं मिलेंगी।''(55)

परमानंद श्रीवास्तव का अभिमत है कि, ''प्रगतिशील कविता के बारे में यह धारणा रही है कि वह सपाट नारेबाजी होती है- यथार्थ की जटिलताओं को वर्ग-संघर्ष जैसे सामान्य अवधारणात्मक तर्क में रिड्यूज करती है और इस प्रकार अपनी समस्त आन्तरिक उर्जा और संभावना नष्ट कर चुकी होती है।''(56)

यह भी सत्य है कि त्रिलोचन जैसे कवि को तथाकथित खेमेबाजी से न जुड़ने पर भी इसके प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। त्रिलोचन 'प्रगतिवादी' की अपेक्षा 'प्रगतिशील' अधिक थे लेकिन त्रिलोचन के जीवन का त्रासद पक्ष यह रहा कि हमेशा जो विध्वंसकारी चोटे रही उसकी थपेड़ों ने उन्हें अत्याधिक रूप से घायल किया लेकिन फिर भी उनकी रचनाशीलता अबाधित रही।

काव्य लयात्मक प्रत्ययन, सजीव बोध और स्वतः प्रमाणित ज्ञान है। ज्ञान ही शक्ति है। अस्तित्व के उच्चतर संघर्ष में काव्य साहित्य की शक्ति के रुप में कार्य करता है, शक्ति जो उद्घाटक है, जो प्रेरणाप्रद है, जो उपशामक है, और इनके कारण ही महान काव्य अनुभव करता है-

> ''एक बालुका कण में विश्व दर्शन
> और एक जंगली फूल में स्वर्ग का
> हथेली पर दिव्यता को धारण करना
> और अनन्तता को एक क्षण में''(57)

यदि रचनाकार इस ओर ध्यान देते और पूरी दृढ़ता और आस्था के साथ मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति समर्पित भाव रखते हुए एकनिष्ठता दिखाते तो शायद कई हदों तक साहित्य की गतिविधियों में आमूल-चूल परिवर्तन नजर आता और समाज भी नवीन विचार-सरणि से जीवन स्त्रोत प्राप्त करता।

मार्क्सवादी विचारधारा को अपने समय में तथा उसके बाद भी अनेक प्रकार के विरोधों का सामना करना पड़ा। वैसे देखा जाए तो जब कोई वाद-विशेष आरंभिक दौर में उभरकर सामने आता है तो बहुतायात रुप से विरोध होता ही है। लेकिन मार्क्सवाद के असफल होने के पीछे उसमें ही कुछ आंतरिक तत्व अर्न्तर्निहित थे। वर्ग-समानता की बात करनेवाले बहुत से मार्क्सवादी सत्ता आर कुर्सी के प्रभाव से प्रभावित रहे। दूसरी बात यह है कि यह दर्शन पूँजीपति वर्ग की शोषण प्रवृत्ति का विरोधी होने के कारण स्वयं पूँजीपतियों ने इसे सर्वथा अमान्य घोषित किया। साथ ही मार्क्सवाद का केवल तात्विक रुप में मूल्यांकन करने के कारण भी वह असफल रहा।

सुरेन्द्र चौधरी के अनुसार, ''बूर्ज्वा दुनिया जिस आत्यंतिक संकट और आत्म-विघटन से होकर गुजर रही है, उसके भीतर यह आवश्यक है कि आत्मरक्षा के लिए वह चेष्टापन्न हो। इस चेष्टा का विस्तार ही मार्क्सवाद के विरोध को जन्म देता है।''[(58)]

कई बार रचनाकारों के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि आलोचकों का दृष्टिकोण क्या है? उसकी पक्षधरता-संवेदनशीलता यदि जन-समुदाय के साथ है तो वह प्रकट होता ही है।

हमें मार्क्सवादी विचारधारा के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि ड़ालने पर यह ज्ञात होता है कि उनमें भी कई तत्व ऐसे है जिनमें विरोधाभास नजर आता है। यह विरोधाभास उसके अंतर्गत निहित विभिन्न विचारों से होता है। इसके साथ ही उसके समानांतर चलनेवाली दूसरी विचारधारा से भी। दो विचारधाराओं के टकराहट में निश्चित रुप से एक विचारधारा अपने कुछ मायनों में कमजोर पड़ जाती है। साहित्यकारों का यह दायित्व बन जाता है कि वह सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाए। हमें मानना होगा कि कुछ समय तक निश्चित रुप से मार्क्सवादी चिंतन ने समाज-व्यवस्था विशेषतः पूँजीवादी सभ्यता को झकझोरकर रख दिया।

५.५ त्रिलोचन की काव्यलोकाभिमुखता

साहित्यकार परिवर्तित होती सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित होता रहता है। यदि रचना संप्रेषणीयता और पठनीयता के धरातल पर जनता से जुड़ी रचना है तो वह लोगों के बीच लोकप्रिय होती है अन्यथा पुस्तकालय की शोभा बनकर रह जाती है। सूर, तुलसी, प्रेमचंद के साहित्य की लोकाभिमुखता से सभी लोग परिचित हैं। प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि की कविताओं में भी लोकाभिमुखता

के गुण विद्यमान है।

त्रिलोचन की रचनाएँ नागार्जुन की भाँति अपने गाँव, समाज से ज्यादा जुड़ी है। केदारनाथ सिंह की रचनाओं में भी लोकाभिमुखता के गुण विद्यमान है परंतु संप्रेषणीयता की दृष्टि से वह विशिष्ट पाठकों तक सीमित हो जाती है। रचनाकार को सार्वजनिक अभिमत के बारे में सोचना चाहिए।

मालार विन्दम चतुर्वेदी का मंतव्य है, ''कवि के व्यक्तित्व में एक ऐसा तत्व है जो उसे सभी प्राणियों से भिन्न कर देता है तथा वह तत्व है सार्वजनिकता (Universality) का। उसके सुख-दुःख तथा उसकी अनुभूतियों का जन्म व्यक्तिगत हो सकता है परंतु उनका प्रकाशन सदैव विश्व-व्यापी होता है।

अरस्तू कहता है- For poetry tends to express the Universal the history the particular क्योंकि अंततोगत्वा कवि का व्यक्तित्व, देशकालातीत विश्य व्यापकपूर्ण हो जाता है।''[59]

यह सर्वज्ञात है कि त्रिलोचन धरती के कवि है। उनकी कविता में जो आत्माभिव्यक्ति झलकती है वह सामाजिकीकरण के द्वारा अहं की सीमा में सीमित नहीं रह जाती और इसलिए कविता आम आदमी की संवेदना सी प्रतीत होती है।

गजानन माधव मुक्तिबोध का मंतव्य है- ''कवि की प्रगतिशीलता अट्टाहासपूर्ण आन्तरिक क्षति-पूर्ति के रुप में नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन-संघर्ष से मँज घिसकर तैयार हुई है।''[60] इसलिए कवि कह उठा-

मुझमें जीवन की लय जागी
मैं धरती का हूँ अनुरागी
जड़ीभूत करती थी मुझको
वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी-[61]

कवि प्रयोगवादियों की तरह घोर एकान्विति में विलुप्त नहीं होता बल्कि आम जनता की आपदाओं के साथ आत्मीयता दर्शाता है, इसलिए उसकी कविता जनता और पाठकों के साथ एक संप्रेषण बनाती हुई आगे बढ़ती है। कवि अंधकार में जीवन की बनती हुई रेखाओं को देख रहा है ताकि लोगों में विश्वास और आस्था के बीज उत्पन्न हो सके।

प्रगतिवादी विचारधारा का मूलमंत्र है कि अपने साथ औरों को भी आगे लेकर बढ़ो- जो त्रिलोचन की कविता में प्राप्त होता है। दलित, दमित, शोषित, पीड़ित जनता के प्रति कवि उन्मुख होता है और उनकी सहायता के लिए प्रेरित हो उठता है-

लूटे सताये हुए आदमी जहाँ पड़े हों

अच्छा हो जागृत जन उनके लिए खड़े हों।[62]

कवि एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें किसी प्रकार का अभाव न हो, हमारे देश में राम-राज्य आ जाए, शायद यह एक यूटोपिया हो लेकिन अभावमय जीवन जीनेवाले व्यक्ति में एक छोटी सी आशा की किरण तो कवि निश्चित रुप से ला सकता है।

तुम करो नष्ट सब भेद-भाव
तुम भरो निखिल जग के अभाव
सब बाधा हर
होकर तत्पर
नव साहस भर [63]

अत: कह सकते हैं कि त्रिलोचन अभावमय जीवन में नए भाव भरकर जीवन को रागात्मक बनाना चाहते हैं। अतंतोगत्वा कवि की रचनाधर्मिता उसे लोकाभिमुख करती है और वह विभिन्न गुत्थियों में उलझे हर मानव को नयी दिशा की ओर अग्रसर करता है । कहनेवाले त्रिलोचन जानते हैं कि इस धार्मिक सड़ांध से जनता का कल्याण नहीं हो सकता। महाकुंभ के मेले में हो रहे अत्याचारपूर्ण त्रासद घटना से त्रस्त होकर कवि लिखने के लिए बाध्य होता है। मगर आवश्यकता इस बात की है कि पाठक या काव्य-श्रोता भी इससे प्रभाव ग्रहण करके कविता को समझे। क्योंकि त्रिलोचन तो लोकाभिमुख हुए लेकिन हम कितने कविताभिमुख होते हैं यह सवाल जारी है।

संघर्षशीलता

त्रिलोचन के जीवन की पूंजी उनकी संघर्षशील चेतना में ही निहित है। जिसकी आँखे घोर आर्थिक संकट एवं अभाव के बीच खुली हो, वह भला आराम एवं चैन का जीवन कैसे बिता सकता है? अभाव हमें जीवन में जूझने के लिए बल प्रदान करता है। दरअसल बाल्यकाल के संघर्षमय जीवन के कारण ही उनकी दृष्टि प्रगतिशील विचारों की ओर उन्मुख हुई। प्रथम अध्याय के अंतर्गत मैंने त्रिलोचन के प्रारंभिक जीवन संघर्षों का उल्लेख किया है। यहाँ पर उनकी रचनाओ के द्वारा संघर्षमयी जीवन की पुष्टि की गयी है। 'धरती' काव्य-संग्रह से ही उनकी संघर्षशीलता झलकने लगती है। कवि का संपूर्ण जीवन संघर्षमयी रहा है -

ठोकरें दर -ब-दर की भी हम थे,
कम नहीं हमने मुँह की खाई है।[64]

जीवन का यह संघर्ष ही कवि को संघर्षशील चेतना के उद्घाटन के लिए प्रेरित करता है क्योंकि कवि का विश्वास है कि अनेक प्रकार के आघातों को सहने के उपरांत ही व्यक्ति में परिपक्वता आ जाती है, उसकी चेतना में दृढ़ता आती है और वह कर्मक्षेत्र में अग्रसर होता है।

विश्वेश के अनुसार ''त्रिलोचन अन्याय के विरूद्ध जन आंदोलनो को, जन संघर्षों को निरंतर जारी रखने का आहवान करते हैं, सही मायने में वे जन उद्बोधन और जन आस्था के कवि हैं, समाज के अंतिम आदमी का प्रतिनिधित्व की मनसा उनमें साफ झलकती है।''(65) उक्त विचारो की पुष्टि त्रिलोचन की निम्नलिखित पंक्तियों में होती है -

जब तक पथ है पथिक तभी तक, किंतु चरण का
विचरण कब रुकनेवाला है, पर्वत घाटी, नदी, सिंधु,
कांतार मौन साक्षी है गति के-(66)

त्रिलोचन संघर्ष एवं कर्म में विश्वास करते हुए गरीबी को सबसे बड़ा अभिशाप मानते हैं। रोटी मनुष्य जीवन की अनिवार्य शर्त है। इसके बिना जीवन जगत के नाना क्रिया-कलाप, एवं ज्ञान-विज्ञान आदि सारी बातें व्यर्थ है।

त्रिलोचन जीवन-संघर्षों में मूल्यों की महत्ता को स्वीकार करते हैं । क्षणिक सुविधाओं एवं प्रलोभनों के समक्ष झुकना उनके लिए संभव नहीं है। संघर्षरत मूल्यों के प्रति आस्थावान लोगों से ही वे एक नए समाज के निर्माण की कामना करते हैं।

मैंने उनके लिए लिखा है , जिन्हें जानता हूँ
जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी जूझ रहे हैं
जो फेंके टुकड़े पर राजी कभी नहीं हो सकते हैं
मैं उन्हें मानता हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता
नये युग के उद्गाता ये हैं (67)

रेवती रमण के अनुसार, ''प्रगतिशील काव्यन्दोलन को त्रिलोचन की आस्था और समझ ने कथ्य और कला दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त समृद्ध किया है। उनकी यह आस्था और समझ जीवनानुभवों और संघर्षों से सुदृढ हुई है।''(68)

कवि आशान्वित है कि संघर्ष के परिणाम स्वरूप ही स्थितियों में बदलाव आएगा और गरीब जनता वंचक नहीं रहेगी। कवि कहता है-

उसका यह नारा है
काम करे सो खाये, जग में परोपजीवी
जमींदार पूंजीपति सबको ललकारा है।
चारण नहीं बनेंगे आगामी मसिजीवी

उच्च वर्ग के, वर्गहीन होगा समाज यह
पूज्य रहोगे उस समाज में पर तुम अहरह-(69)

कवि स्थितियों के बदलाव के लिए दैवी विधान की प्रतीक्षा नहीं करता बल्कि लोगों की संघर्षशील चेताना को जगाकर उनमें बल पैदा करता है। लोग हारे -थके-गिरे तो भी दुबारा बल पाकर आगे बढ़े यही कवि का मंतव्य है। कवि कहता है-

जिसका विश्वास टूट गया हो,
साथ और कोई न हो
वह मेरे सपने ले
जिसका बल अवसर पर धोखा दे जाता है
वह मेरे सपने ले।(70)

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, ''संघर्षशील चेतना, पूँजीपतियों और जमींदारो की चेतना नहीं है, यह किसानों, मजदूरों और मध्यवर्ग के प्रबुद्ध अंश की चेतना है। नयी कविता शहर और देहात के गरीबों से जितना ही दूर है, त्रिलोचन की कविता उनके उतना ही पास है।(71)

कवि समाज के उन सभी वर्गों के प्रति आस्थावान है जो कि संघर्ष में विश्वास करते हैं - चाहे वह क्रान्तिकारी, किसान या मजदूर कोई भी हो। मानो त्रिलोचन उनके साथ एकाकार हो जाते हैं और कहते हैं

जिस समाज में तुम रहते हो
यदि तुम उसकी एक शक्ति हो,
उसकी ललकारों में से ललकार एक हो
उसकी अमित भुजाओं में दो भुजा तुम्हारी
चरणों में दो चरण तुम्हारे
आँखों मे दो आँख तुम्हारी
तो निश्चय समाज-जीवन से तुम प्रतीक हो।(72)

मुक्तिबोध के अनुसार, ''संघर्ष की वास्तविकता उसके मन में इतनी गहरी गयी है कि न वह प्रलयवादी रोमैंटिक स्वप्नों में डूबता है और न किसी समझौते की भावना से परिचालित हो, आदर्शवादी तलैया को अपना समुद्र समझता है। वह संघर्ष इतना यथार्थ है कि उसमें सफलता के लिए धीर गंभीर व्यक्तित्व की आवश्यकता है, जिसकी परिकल्पना की कसौटी पर वह अपने व्यक्ति को कसना चाहता है।''(73)

त्रिलोचन की संघर्षशीलता के संबंध में मुक्तिबोध ने जिन विचारों का उल्लेख किया है उन्हीं से मिलते-जुलते विचार महावीर अग्रवाल भी व्यक्त करते हैं ''संघर्षों

के बीच जूझती जिदंगी के भीतर से प्यार उपजा है। उनकी अनुभूतियाँ बहुत संयम के साथ प्रकट हुई है। उनमें चीख पुकार या आंदोलन नहीं है। इसके बाद भी त्रिलोचन जनता की संघर्षशीलता के गायक हैं।'' (74)

यदि सर्वहारा वर्ग के जीवन में केवल संघर्ष ही है तो वे उस संघर्ष का चित्रण करके नहीं रुकते। अभावों से न दबकर स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीन के लिए वे संदेश देते हैं। तब यह संघर्ष काफी सकारात्मक और स्वस्थ हो उठता है।

'नदी कामधेनु' कविता में मनुष्य और प्रकृति के संघर्ष को रुपायित किया गया है। नदी को कामधेनु के रूप में परिवर्तित कर देना मुनष्य के लंबे संघर्षो की उपलब्धि है। यही संघर्ष त्रिलोचन और उनकी कविता को प्रगतिशील बनाता है। त्रिलोचन के काव्य में से यदि संघर्ष के हिस्से को निकाल दें तो काफी निस्तेज लगेगा।

संघर्षशीलता के सामान्य स्वरूप को विवेचित करते हुए देवेन्द्र इस्सर का कहना है '' हर युग में संवेदनशील और विवेकवान व्यक्ति को स्वत्व के संकट का सामना करना पड़ता है, अपने निजत्व को बहाल एवं प्रमाणित करने और अपने को विश्वस्त करने के लिए कि उसका निजी अस्तित्व अनुपस्थित नहीं। इस निजी स्पेस को सुरक्षित रखने के लिए जिंदगी को भी दाँव पर लगाना पड़ता है।(75)

त्रिलोचन भी क्रियाशील रहकर संघर्ष करते हैं। इनका संघर्ष आरोपित एवं कृत्रिम नहीं लगता। बल्कि वह जमीन से जुड़ा हुआ है। वे जीवन के प्रति काफी आस्थावान है। आस्था के विषय में निर्मल वर्मा का कथन है -'' आस्था विश्वास करने की इच्छा है, किसी चीज में विश्वास करने का अर्थ है यह विश्वास करने की इच्छा करना कि उस चीज का अस्तित्व है''(76)

संघर्षमयी जीवन में निरत त्रिलोचन को इसी आस्था ने उबारा है, उनकी नैया को पार लगाया है। कई बार त्रिलोचन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी कविताओं में वह धार नहीं है जो तहस-नहस करने की जोड़-तोड़ को लेकर साहित्य में उभरी थी। विचारणीय तथ्य तो यह हैं कि कवि का व्यक्तित्व काफी संयमित रहा है तथा उसी के अनुरुप उनकी संघर्षशील चेतना भी अपनी गति में अविरल चल पड़ती है। मलजय लिखते है, ''उसके जीवन-संघर्ष का स्वर जुझारू या लड़ाकू नहीं है बल्कि बहुत कुछ अपने को उद्‌बोधन देने जैसा है। उसमें संकल्प का ओज है, वह दहकती हुई आग नहीं जो अन्याय और असमानता को जलाकर राख कर दें। इसीलिए उसके क्रान्ति के आह्वान में भी एक शान्त गंभीर मंत्रणा का पुट है, व्यवस्था और तन्त्र की ईंट से ईंट बजा देनेवाली आक्रोशी ललकार नहीं। उसके जीवन संघर्ष की आँच बाहर से अधिक भीतर को प्रकाशित करती है।(77) मनुष्य को आगे बढ़ना होगा तो निरंतर रूप से प्रयास करना होगा, सामूहिक रूप से प्रयास करके ही शोषण का समूल विनाश

किया जा सकता है। 'घोर पराजय में भी गान विजय के गा तू' तथा 'जाग रे पहाड, जाग ओ पहाड की आत्मा विहँस' का संदेश उनकी कविताओं में प्राप्त होता है। कवि लिखता है कि आँखे बंद कर निष्क्रिय होकर बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। शिवमंगल सिंह सुमन का मानना रहा है कि संघर्ष में जीवन तपता है, और सर्जना भी परिपक्व होती है। बिना संघर्ष के जीवन का कोई अर्थ ही नहीं है। जीवन संघर्ष रचना को विकसित करता है और सर्जनात्मक संघर्ष से जीवन में संपन्नता आती है। सपंन्नता का अर्थ सुविधाएँ जुटाना नहीं है। घर फूँककर भी संपन्न होने की प्रक्रिया हम त्रिलोचन में देखते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था की भर्त्सना

पूँजीवादी व्यवस्था अर्थ केंद्रित होती है जिसकी कि प्रगतिवादी रचनाकारों ने तीव्र भर्त्सना की है। क्योंकि इसके मूल में सामाजिक हित निहित नहीं है। इस प्रकार की व्यवस्था तमाम तरह की विसंगतियों को जन्म देकर सामाजिक जीवन को विद्रुप बनाती है। त्रिलोचन ने अपनी कविताओं के माध्यम से पूँजीवादी बुर्जुआ संस्कृति का विरोध किया है और सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। पूँजीवादी व्यवस्था में जिसके पास धन होता है उसे ही अधिक महत्व प्राप्त होता है अन्यथा उपेक्षा को सहना पड़ता है। जिसे हम स्वदेश कहते है वह कुछ चुने हुए लोगों के हाथों में आ गया है। कवि कहता है -

स्वदेश की आज अवस्था
इतनी उन्नत है, सुखमय है, दु:ख कहीं नहीं
शेष अवैधानिकता है, छींको या खाँसो
सब नियमानुसार हो, यदि विपरीत किया तो
दंड भोगना होगा।[78]

ग्रामीण जीवन में त्रिलोचन ने सेठ, साहूकारों एवं जमींदारो के शोषण को अपनी स्वयं की आँखों से देखा है, वे हमेशा जनता का सारा माल हड़पकर अपनी तिजोरी भरने के चक्कर में रहते हैं।

डॉ. सोफिया मैथ्यू के अनुसार, ''त्रिलोचन की दृष्टि में जमींदार और पूँजीपति इस जंग में परोपजीवी है। कवि लोगों को उच्च वर्ग का चारण नहीं बनाना चाहता क्योंकि उसका लक्ष्य है एक वर्गहीन समाज की रचना।[79]

पूँजीवाद के बढ़ते हुए उत्पात को देखकर निराशा होती है। प्रगतिवाद, नयी कविता एवं समकालीन कविता के कवियों ने आजादी से प्राप्त मोहभंग को विविध रूपों में चित्रित किया है। रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' एवं धूमिल की 'पटकथा'

कविता मोहभंग की स्थितियों का यथार्थ चित्रण करती है।

त्रिलोचन ने भी अपनी रचनाओं में पूँजीवादी व्यवस्था के बढ़ते हुए प्रभाव के तहत रामराज्य की संकल्पना को नष्ट होते हुए देखा है।

आजादी के बाद शोषण के स्वरूप में काफी बदलाव आया है। आज प्रेम, आश्वासन, सहानुभूति एवं दया दिखाकर पूँजीवादी एवं राजनीतिक शक्तियाँ जनता का शोषण कर रही है।

शोषक वर्ग की शिकार जनता हताश एवं निराश होकर इसे अपनी नियति मानकर चुपचाप सह रही है। इससे उसकी मानवीय संवेदनाएँ आहत हो रही है। आजकल यह सब देखकर हममें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। रोजमर्रा के जीवन की प्रक्रिया के रूप में हमने इसे स्वीकार किया है।

त्रिलोचन अपनी कविताओं के द्वारा भले ही सत्ताधारी, पूँजीपति वर्ग के विनाश को उद्घोषित करें लेकिन प्रकट रूप में वे मार्क्सवादी विचारधारा का कहीं भी स्पष्टीकरण नहीं देते। बिना किसी बड़बोलेपन के धीरे-धीरे स्वाभाविक ढंग से वे कहते हैं। अत: पूँजीवादी संस्कृति का चित्रण करने के बाद भी उनकी कविता अन्य प्रगतिवादी कवियों से हटकर है।

उन्होंने अपने विभिन्न काव्य-संग्रहों में पूँजीवादी व्यवस्था की भर्त्सना की है। इसे वे साम्यवादी व्यवस्था का शत्रु मानते हैं । दु:खद पक्ष यह है कि आज भी पूँजीवाद का प्रभाव बढ़ता हुआ नजर आ रहा है। बड़ा आदमी और बड़ा होता जा रहा है, छोटा उस दौड़ में आज भी पीछे है। लेकिन कवि को विश्वास है कि निश्चित रूप से एक ना एक दिन पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश होगा और मानवता की जय होगी।

प्राय: हम देखते है कि पूँजीवादी, कम्युनिज्म की बात करनेवाले रचनाकार पार्टी के साथ जुड़े रहते हैं। लेकिन अपनी कविताओं के द्वारा सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता लेनेवाले त्रिलोचन शमशेरबहादुर सिंह की तरह किसी पार्टी के साथ जुड़े नहीं रहे, न ही उनमें नागार्जुन की तरह विरोध -व्यंग्य की तीखी धार है, मोहभंग भी नहीं है, है तो गहरी आस्था। उन्होंने अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रभाव ग्रहण कर स्वयं को अभिव्यक्त किया। अत: उनकी वर्ग विहीन समाज रचना की विचारधारा में कहीं भी कट्टरता नहीं है।

राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसार "वे वस्तुवादी दृष्टि के द्रष्टा है। इसी दृष्टि से जीवन और समाज को देखा है पर इस धारा के रूढ और क्रमागत फारमूलों या सोपों का अता-पता उनकी रचनाओं में प्राय: नहीं मिलता या कम मिलता है शायद इसीलिए प्रगतिवादी कवियों की सूची में जो बड़े नाम मिलते हैं वहाँ वे लापता है।"[(80)] डॉ.

जीवन सिंह का मानना है- '' उपेक्षितों और परित्यक्तों के जीवन को कविता का जीवन बनाने का काम आसान नहीं है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि उनकी पीढी के दूसरे कवि भी इस काम को करते हैं किन्तु त्रिलोचन इस बात में उनसे भिन्न हैं कि वे 'लोक' के स्तर पर रहकर एक 'पिछड़ा कवि' होने की चुनौति को जानबूझकर स्वीकार करते हैं। वे अपनी समृद्ध काव्य परंपरा के उदात्त स्वरूप से विमुख नहीं है, किन्तु उस आधुनिकतावाद की गिरफ्त से मुक्त नहीं है, जो गगन बिहारी है। वे उस धरती के कवि है, जो गर्जन -तर्जन वाली नहीं है।''(81)

दलितोद्धार

दलितोद्धार प्रगतिवादी विचारधारा की खास प्रकृति है। यहाँ दलितोद्धार से तात्पर्य सर्वहारा वर्ग का उद्धार है। इसे केंद्र में रखकर प्रगतिशील रचनाकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं का सर्जन किया है। त्रिलोचन का मानना है कि रचानकार को सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। कवि कहता है -

मैने उनके लिए लिखा है, जिन्हें जानता हूँ
जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी जूझ रहे हैं
जो फेंके टुकडे पर राजी कभी नहीं हो सकते हैं-(82)

विश्वनाथ त्रिपाठी का मानना रहा है की कविताओं में अवध की संस्कृति को बडी आसानी के साथ देखा जा सकता है क्योंकि उनके संस्कार ही उसी प्रकार के है, वे बडी उत्कटता के साथ ग्रामीण जीवन में व्याप्त शोषण को चित्रित करते है। यह पूँजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग के विनाश के लिए हमेशा तत्पर रहता है। इसे देखकर कवि उद्विग्न होते हुए कहता है -

दीवारें दीवारें दीवारें दीवारें
चारों और खडी हैं, तुम चुपचाप खड़े हो
हाथ धरे छाती पर मानो वहीं गढे हो
और ढहा दें उधम करते कभी न हारें -(83)

नगई महरा, भोरई केवट, चंपा आदि इनकी कविताओं के प्रमुख चरित्र हैं जिनके माध्यम से त्रिलोचन ने दलितोद्धार की प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण किया है।

प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषताओं के अंतर्गत हम भले ही सर्वहारा वर्ग को रेखांकित करते हैं लेकिन उसमें अछूतोद्धार का तत्व कहीं हट सा जाता है। त्रिलोचन के काव्य की विशेषता यह रही है कि उन्होंने आज के साहित्य में तथाकथित दलित के रूप में चर्चित वाद को वाद के रूप में न लेकर अपने स्वाभाविक ढंग से व्यंजित

किया। जबकि प्रगतिवादी कविता में यह तत्व उभरकर नहीं आता। हिन्दी क्षेत्र में हो रहे दलित साहित्य के आंदोलन के संदर्भ में शिवकुमार मिश्र लिखते हैं - '' भारत की अपनी संरचना में वर्ग की जो अहमियत है, एक व्यापक विश्व दृष्टि के आलोक में साधारण जन की मुक्ति का लक्ष्य लेकर आविर्भूत होनेवाले प्रगतिशील आंदोलन में वर्ण के स्थान पर वर्ग दृष्टि को अहमियत मिली, दलित जिसके दायरे में आते हुए भी अलग से रेखांकित नहीं हुए, शोषित मनुष्यता के एक हिस्से के रूप में ही जाने पहचाने लगे।''(84)

त्रिलोचन की दृष्टि में केवल निम्न वर्ग का व्यक्ति ही दलित-पीडित नहीं है बल्कि मध्य-वर्ग विशेषत: निम्न मध्यवर्ग में भी अभावमय जीवन है। ''रैन बसेरा' का अभागा आर्थिक विपन्नता के कारण अतिथि को घर नहीं बुला पाता।

प्रगतिवादी आंदोलन के बाद के विभिन्न काव्यांदोलनों में सर्वहारा वर्ग को विविध रूपों में चित्रित किया गया है। उत्तर सदी के दौर में तो नारी-विमर्श एवं दलित चेतना महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के रूप में उभरी है जिसके प्रभाव को सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में देखा जा सकता है। लेकिन प्रगतिवादी कविता में शोषक -शोषित वर्ग के संघर्षमयी चित्रण के द्वारा शोषित, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी है और पूँजीवादी वर्ग की भर्त्सना की है ।

कवि के सर्वहारा वर्ग में नगई महरा, चम्पा, बचपन की इंदो बुआ, माँ, बाबा, सुकनी बुढ़िया, चमार, धोबी, तेली टेल्हू, मुसहर है जिनके प्रति उनके मन में अपार प्रेम है। उनके अभाव एवं पीड़ा को त्रिलोचन स्वयं की पीड़ा महसूस करते हैं और जिसे सामान्य वर्ग चाहकर भी व्यक्त नहीं कर सकता, मूक मौन रहकर बरदाश्त कर लेता है उसे कवि अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहता है

मैं अपने युग का, समाज का जन जीवन का
अभिव्यक्तिमय एक व्यक्ति हूँ जाग्रत मन को।(85)

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह ने त्रिलोचन की कविताओं का विश्लेषण करते हुए लिखा है '' वहाँ अमूर्त जीवन नहीं हाड़ मांस के जीते-जागते इंसान है, चित्र नहीं, चरित्र हैं। लड़ते-झगड़ते, हँसते, खीझते, नाचते-गाते, गिरते-पड़ते, फिर भी जीते-जागते। 'चम्पा' और 'नगई महरा' की कविता होने में कुछ लोगों को सन्देह है । सन्देह इसलिए कि वे साधारण हैं। साधारण होने में ही उनकी असाधारणता है। त्रिलोचन साधारण के असाधारण कवि हैं।'' (86)

त्रिलोचन अभाव भरे दलितों के मरुस्थल जीवन में अपने प्रेम एवं करूणा से आशा का संचार करते हैं।

त्रिलोचन को पूरा विश्वास है कि यदि सभी शोषित ताकतें एकत्र हो जाए तो संभव है कि हमारे समाज में लाचारी, हीनता, दीनता, पूरी तरह से दूर हो जाएगी।

अलग-अलग रहकर सर्वहारा वर्ग सब कुछ हार कर ही जीने के लिए अभिरशप्त होगा। त्रिलोचन की इस मनोभूमि का विवेचन करते हुए केदारनाथ सिंह लिखते है '' आदमी की अलग-अलग हार त्रिलोचन को परेशान करती है क्योंकि वे इस सच्चाई को जानते हैं कि दरअसल अलग-अलग होना ही हार है।'' (87)

त्रिलोचन की कविताओं के चरित्र ग्रामीण जीवन के हैं जिनके साथ उनका रोज का उठना बैठना है। इनकी इसी ग्रामीण दुनिया के विषय में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है ''त्रिलोचन की कविता में गरीबी, शोषण और उत्पीड़न के शिकार किसान है। उनकी कविता में सबसे अधिक खेतिहर मजदूर आते हैं और उन खेतिहर मजदूरों में स्त्रियों की जीवन दशा पर उनका ध्यान अधिक जाता है। उनकी कविताओं में कुछ चरित्र हैं। वे सब ग्रामीण कारीगर, खेत-मजदूर और स्त्रियाँ है। नगई महरा, भोरई केवट, मंगल, निरहू, भिखरिया, अवतरिया, चम्पा, सोना, सुकनी आदि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के माध्यम से गाँव में कठिन जिन्दगी जीनेवाले लोगों के ठोस अनुभवों की एक दुनिया साकार रूप में हमारे सामने आती है।''(88)

जहाँ प्रगतिवाद के अंतर्गत पूँजीपति और कल-कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के संघर्ष को चित्रित करने में अधिकांश कवियों ने अपनी उर्जा खर्च की वहाँ त्रिलोचन कम्युनिस्ट विचारधारा के कटघरे से कविता को बाहर निकालकर सड़क के आम आदमी की ओर ले आते हैं। उनका सर्वहारा असहाय, निरीह, बेबस, लाचार, वह हर कोई है जो संत्रास से उत्क्रांत है।

उक्त विचारधारा का अमलीकरण त्रिलोचन की कविताओं में प्राप्त होता है। त्रिलोचन की कविताएँ सर्वहारा वर्ग की विसंगतियों के संदर्भ में कई प्रश्नों को जन्म देती है। क्यों चंपा अपने बालम को कलकत्ता नहीं भेजना चाहती? क्यों कवि बुढ़ी स्त्री से उसका सारा सामान खरीदने की ललक रखता है? क्यों नगई महरा अपनी ग्रामीण व्यवस्था में भोज देने के लिए अभिशप्त है? सर्वहारा वर्ग का भविष्य क्या है? उनके पास तो उनका स्वयं का स्थायी वर्तमान नहीं है, तो भविष्य की चिंता क्यों करे? व्यावहारिक जीवन में हमें यही चित्र दिखायी देता है कि सर्वहारा वर्ग सभी कुछ हारकर नैराश्यमय जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त है।

डॉ. भगवान सिंह के अनुसार, ''ह्विट्मैन की तरह त्रिलोचन भी यह दावा कर सकते हैं कि जो कुछ भी है वह सब मेरी कविता का विषय है और मेरे लिए कुछ भी त्याज्य या अपवित्र नहीं है क्योंकि मैं मनुष्यता का कवि हूँ। उसी की तरह वह भी कह सकते है कि सबका मुझपर अधिकार है और मैं सबका हूँ पर सबसे अधिक उपेक्षितों और गिरे हुओं का हूँ और उनसे भी अधिक अपने युग का हूँ।''(89)

कवि नागार्जुन की भाँति बहुजन समाज के प्रति प्रतिबद्ध है। यह प्रतिबद्धता दिखावटी नहीं बल्कि यथार्थपरक है जिसका संबंध जमीनी सच्चाई से है। बदतर होते जीवन में बेहतर होने की जिजीविषा त्रिलोचन की स्वप्नदृष्टि है।

त्रिलोचन के जीवन का विश्लेषण करने के बाद क्या यह बात खरी नहीं उतरती? उनकी स्वप्नदृष्टि में आशा, आकांक्षा से भरे जीवन की कामना दृष्टिगोचर होती है। वे सदैव दु:ख के बाद सुख की कामना करते हैं। इनकी इस कामना में लोक-मानस का कल्याण निहित है। जीवन की सहजता और सरलता के कारण त्रिलोचन एक लंबे समय तक समीक्षकों की नजर से दूर रहे लेकिन चूँकि इनकी कविताओं में आम जीवन की धड़कन विद्यमान थी इसलिए कालांतर में उन्हें पहचाना गया। इनकी कविताओं की ओर पाठक एवं समीक्षक वर्ग आकृष्ट हुए।

कृष्ण बिहारी मिश्र ने कविता में लोक की महत्ता को इस प्रकार व्यक्त किया है- ''जो कविता लोक-मानस के स्पंदन को लेकर चलेगी, देर-सबेर लोकप्रिय होगी ही लेकिन जो कविता व्यावसायिकता की गंध से अनुप्राणित होगी वह सद्य: लोकप्रिय हो कर भी क्षणजीवी होगी। क्षणजीवी कविता प्रेरणा शून्य होती है, दृष्टि नहीं देती।''(90)

त्रिलोचन की कविता क्षणिक आल्हाद देनेवाली नहीं है, उसमें जीवन का मर्म छिपा है। ऊपरी-ऊपरी तौर पर वह भले ही सरल और सहज लगे लेकिन गहराई में उसकी अर्थवत्ता बहुत अधिक है। वह सुगम भले ही हो लेकिन गहन है।

पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी का मंतव्य है- ''जमीन से जुड़ी हुई जन-मन-गण की कविता समकालीन दलित कविता ही है जो समता-ममता की नींव पर टिकी हुई और सक्रिय जीवन के मूल्यों को आज प्रस्थापित करने की चेष्टा में है। दलित कविता के पास जाना देश के उस सामाजिक जीवन के पास जाना है, जो कर्मरत जीवन जीने के बाद भी भूखा और नंगा है तथा जिसके पास समृद्धि-सुख की मंजिल पाने के लिए 'सफलता-सीढ़ी' भी नहीं है।''(91)

सामाजिक यथार्थवाद

हावर्ड फास्ट ने लिखा है, ''यथार्थवाद ऐसा साहित्यिक संश्लेषण या संयोग है जो रचना तथा चुनाव के जरिये अपने यथार्थ विचारों के उदात्त बोध को पाठकों के सामने रखता है।''(92)

सामाजिक यथार्थवाद के अंतर्गत साहित्यकार समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यही कार्य प्रगतिवादी रचनाकारों ने किया। रचनाकार का यह दायित्व है कि उसका रचना-कार्य समाजोन्मुख हो। त्रिलोचन भी अपनी कविताओं

में सामाजिक यथार्थवाद को वाणी देते हैं। सामाजिक जीवन की विद्रुपताओं को व्यंजित करते हुए वे 'सुकती बुढ़िया' के अवसाद को प्रकट करते हुए लिखते है-

> कभी-कभी लगता है कोई अर्थ नहीं है,
> इस जीवन का यदि कुछ है तो मार-काट है
> हत्या और आत्म-हत्या है, लूटपाट है,
> बलात्कार है, जग में कौन अनर्थ नहीं है- (93)

चंद्रबली सिंह के अनुसार, ''उनका धरातल उन सामान्य प्रयत्नों और अनुभूतियों का है जो हमारे जीवन के यथार्थ परिवेश की उपज है। त्रिलोचन की प्रगतिशीलता इसमें है कि वे उन प्रयत्नों और अनुभूतियों को स्वस्थ रूप में ग्रहण करते हैं।''(94)

त्रिलोचन ने युद्ध की भयावहता का भी विदारक चित्र प्रस्तुत किया है।

विश्व स्तर पर हुए युद्ध के साथ-साथ त्रिलोचन भारतीय परिवेश में धार्मिक वितांडों में 'महाकुंभ' की यात्रा में रक्त-पात देखकर हलकान हो जाते है।

त्रिलोचन ने स्वयं अपने जीवन में अनेक परेशानियों का सामना किया है, अत: वे जानते हैं कि अभावों को दूर करने के लिए केवल भावना से काम नहीं लिया जा सकता। उनकी यथार्थवादी दृष्टि रोटी की माँग करती है। कवि कहता है कि मैं अंतर्मन से यथार्थ का प्रेमी हूँ, समाज में शिव हो, सुंदर हो, सामाजिक जीवन पर जो गर्द जमा हुआ है, उसे झाड़ देना चाहता हूँ ।

त्रिलोचन का कवि मन जानता है कि वह ऐसे परिवेश में जी रहा है जहाँ दुनिया तो कहाँ से कहाँ पहुँच गयी लेकिन सर्वहारा वर्ग तो बद से बदतर जीवन जी रहा है। वह जानता है कि युग चाहे सामंतवाद का हो या पूँजीवाद का शोषित वर्ग को हमेशा दबाया गया, मेहनतकश जनता का निरंतर रुप से खून चूसा जा रहा है, उसे मूर्ख बनाया जा रहा है और वह बन भी रहा है।

त्रिलोचन की कविता वायवीय नहीं हो सकती, वह निश्चित रुप से समाजोन्मुख है, इस संदर्भ में केदारनाथ अग्रवाल लिखते है, ''त्रिलोचन की कविताएँ आज भी इस माहौल में विघटन के दौर में भी आदमी से आदमी जोड़ती है- आदमी से आदमी की कथा-व्यथा कहती है- आदमी से आदमी को सहानुभूति दिलाती है- आदमी की अभिव्यक्ति को, आदमी के लिए, आदमी की भाषा में, आदमी को आदमी बनाने के लिए कारगर सिद्ध होती है। उन्हें पुरानी पड़ गयी कहना-बेकार कहना- युगबोध से बहिष्कृत करना और उन्हें विस्मृति के गर्भ में फेंक कर उनसे पिंड छुड़ाना गलत है।(95)

त्रिलोचन समाज में व्याप्त विसंगतियों को जैसे का तैसे चित्रित करते हैं फिर भी उसमें अपनी स्वभावगत स्थिरता और संयम का परिचय देते हैं।

रामविलास शर्मा ने लिखा है - ''भूख, उपवास और बेरोजगारी पर जैसी अनुभूति तीव्रता त्रिलोचन की कविताओं में है वैसी अन्य प्रगतिशील कवि में नहीं।''(96)

भले ही त्रिलोचन ने अपनी कविताओं के द्वारा समाज का वास्तविक चित्र उकेरा है लेकिन इस चित्रण में कहीं भी प्रक्षोभण या आक्रमक विक्षोभ नजर नहीं आता, यही त्रिलोचन के काव्य लेखन की प्रधान उपलब्धि है।

त्रिलोचन के व्यक्तिगत जीवन के अभाव उनकी रचनाओं में बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त हुए हैं क्योंकि यह उनका भोगा हुआ यथार्थ अनुभव है। इस प्रकार की कचोट शिवमंगल सिंह सुमन एवं अन्य प्रगतिवादी रचनाकारों की कविताओं में नहीं मिलती।

त्रिलोचन ने नागार्जुन की भाँति राजनीतिज्ञों का नाम लेकर व्यंग्य नहीं किया है। व्यवस्था के प्रति विरोध है मगर बहुत ही संयत रुप में व्यक्त हुआ है। नागार्जुन 'मन करता है' जैसी कविताओं के द्वारा समाज के घृणित सत्य को वैसे ही रुपायित करते हैं जब कि त्रिलोचन पीड़ा के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी संयमित रहते हैं।

मारो-काटो की ललकार केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन एवं नई कविता के कुछ कवियों की रचनाओं में देख सकते हैं। जहाँ क्रान्ति का उद्घोष हुआ है।

अकाल, बेरोजगारी, मँहगाई, गरीबी, जहालत भरी जिंदगी, पीड़ा, संत्रास, अभाव, रोटी-कपड़ा-मकान के चक्कर में घूमते हुए बेबस मध्यवर्ग, पारिवारिक सुखद लह्मों से दूर हटता गाँव का व्यक्ति, निरक्षरता आदि त्रिलोचन के सामाजिक यथार्थवाद के विभिन्न आयाम है।

डॉ. सुधेश के अनुसार, ''कविता की प्रेरणा का कविता के विषय से घनिष्ठ और अनिवार्य संबंध है। कविता के विषय जब कवि दृष्टि में कौंध जाते हैं, तब वे जड़ विषय बन जाते हैं। कविता के जीवन्त विषय को ही कविता की प्रेरणा का नाम दिया जा सकता है। दृश्य जगत की अनन्त वस्तुएँ अथवा विविध क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ जब कवि की चेतना का अंश बनकर उसके भावलोक में स्पन्दन उत्पन्न करती है, तब अपना जड़त्व छोड़कर कविता का जीवन्त विषय बन जाती है और तभी वे कविता की प्रेरणा कहाती है।''(97)

त्रिलोचन के साहित्य में जो सामाजिक यथार्थवादी भावना झलकती है उसके पीछे भी यही तत्व कार्य करता है। उनके आस-पास का दृश्य जगत विपरीत परिस्थितियों से घिरा हुआ था, अत: कवि इन स्थितियों से कैसे निर्लिप्त रह सकता था?

शिवकुमार मिश्र का मंतव्य है ''सामाजिक यथार्थ की चेतना प्रगतिशील कवि को जीवनाभिमुख बनाती है, परिवेश की सारी भयावहता, सारे तनावों के बावजूद उसे घुट-घुटकर मरने की ओर नहीं, प्रत्युत आशा, विश्वास और जीवन की सारी कुरूपता से संघर्ष करते हुए उसके नये संस्कार को संभव बनानेवाली दिशाओं की ओर सक्रिय करती है।''(98)

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह आशावाद कोरा आदर्शवाद नहीं है, रचनाकार किसी भी क्षण वास्तविकता से मुँह मोड़कर नहीं चलता।

परिवर्तनशील विकासगामी दृष्टि

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, परंपरागत मूल्यों पर आधारित जीवन एवं साहित्य में समयानुकूल यदि परिवर्तन नहीं किया गया तो उसमें जड़ता आ जाएगी। परिवर्तन जीवंतता का प्रतीक है।

प्रगतिवादी विचारधारा परिवर्तन में विश्वास करती है जिसके मूल में ही परिवर्तन द्वारा नए समाज की संकल्पना की गयी है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन द्वारा ही साहित्य को नयी उर्जा प्राप्त होती है जिसके द्वारा रचनाकार मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाकर प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है। आज मानव जीवन परिवर्तन के कारण ही एक नयी वैज्ञानिक दुनिया में प्रवेश कर रहा है जहाँ पर कि कोरी भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को महत्व दिया जा रहा है। परिवर्तन की महत्ता को प्रसादजी ने 'श्रद्धा' सर्ग में इस रूप में उद्धृत किया है।

प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।
पुरातनता का यह निर्मोक सहन, करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनंद किए है परिवर्तन में टेक।(99)

त्रिलोचन परिवर्तनशील विकासगामी दृष्टि में विश्वास करते हैं। जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए वे इसकी अनिवार्यता पर बल देते हैं। कवि का मानना है कि वह कौनसा व्यक्ति है जो कि परिवर्तन की धारा में न बहता हो?

कोई कुछ भी कहे गुने परिवर्तन धारा
बड़े वेग से बहती है, पल भर को रुकना
शक्य नहीं है, प्राप्य कहाँ है यहाँ किनारा
बहना है सबको तरंग में- (100)

कवि बड़ी ही पैनी दृष्टि से निजी एवं सामाजिक जीवन के बदलावों का अध्ययन

करता है। वह अभाव पीड़ा एवं दु:ख के क्षणों को सहर्ष जीना चाहता है। क्योंकि उसकी आस्था परिवर्तन में है। उसे विश्वास है कि जीवन में कभी न कभी सुख का कमल जरुर खिलेगा। कवि का मंतव्य है -

और विश्व का यह जीवन भी कहाँ मिलेगा
दुख अभाव अवसाद अभी है तो होने दो
अरूण सूर्य को आ आ कर प्रकाश बोने दो
कभी न कभी लहर के उपर कमल खिलेगा (101)

कवि का मानना है कि व्यक्ति को जो मानवीय जीवन प्राप्त हुआ है, उसे सार्थक बनाने के लिए उसे भरसक प्रयास करना होगा तभी वह विकासगामी बन पाएगा, निर्माण के साथ विनाश और विनाश के साथ निर्माण जुड़ा हुआ है।

कवि के अनुसार कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब संघर्षशील स्थितियों में व्यक्ति थक जाता है, हताश - निराश होकर बैठ जाता है। तब उसे चाहिए कि वह बिना किसी आलस्य से आगे बढ़े। कवि संघर्षशील स्थितियों में हताश एवं निराश होकर बैठने को कायरतापूर्ण जीवन की संज्ञा देता है। उसका विश्वास सदैव आगे बढ़ने में है ।

त्रिलोचन ने अपने व्यक्तितग जीवन में कभी हार नहीं मानी। चुनौतियो को स्वीकार करना उनका स्वभाव बन गया था। बचपन से ही अपने इष्ट मित्रों के साथ होड़ लेने की प्रवृत्ति इनमें विद्यमान थी। इसके किए वे खतरनाक से खतरनाक रिस्क लेने के लिए तैयार हो जाते थे । इसी स्वभावगत विशेषता के कारण अपनी कविताओं के द्वारा त्रिलोचन संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। भारत में जमींदारी एवं पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंककर साम्यवादी मूल्यों की स्थापना के लिए कवि सामाजिक क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल देता है। इसके लिए वह रूस एवं चीन की सामाजिक व्यवस्था का गुणगान करता है। त्रिलोचन 'बढ़ रहे है दल उमड़ते हाथ में झंडे उठाए' कहकर चीन की लाल क्रांति की प्रशंसा करते हैं ताकि भारतीय जनता भी परिवर्तनगामी हो और समाज में साम्यवाद आ जाए।

इस प्रकार के परिवर्तन के लिए क्रान्ति करना अवश्यंभावी है। प्रगतिवादी कवि ऐसी क्रान्ति की सृष्टि करना चाहता है जिसमें ध्वंस की आधारशिला पर निर्माण का प्रासाद खड़ा किया जाए। उसका विश्वास है कि सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति में संपूर्ण मानवता की मुक्ति निहित है। कवि कहता है -

क्रान्ति उन्हीं लोगों के पास पला करती है
दुख के तम में जीवन ज्योति जला करती है।(102)

कवि के अनुसार क्रान्ति के लिए आवश्यक है जन समुदाय का एकत्रित होना, बिना कदम डगमगाए निरंतर आगे बढ़ना। अत: कवि कहता है -

साँसो के द्रूतगामी रथ पर नहीं रूका हूँ
चिरयात्री मैं, ठोकर खाकर नहीं झुका हूँ (103)

अपनी कविताओं के माध्यम से परिवर्तन और गतिशीलता का संदेश देनेवाले त्रिलोचन की काव्यगत प्रकृति में भी वही गतिशीलता झलकती है। सोमदत्त के अनुसार, ''त्रिलोचन की कविताएँ पढ़ते समय जो बाते सबसे ज्यादा हम पर प्रभाव छोड़ती है वे है गति। पर उनकी निष्ठा, मोह और दलित जन के और उपर उठने के जीवट से उनका लगाव।''(104)

त्रिलोचन ने मार्क्सवाद की विचारधारा को यथातथ नहीं स्वीकारा लेकिन मार्क्सवाद की विचार दृष्टि हमें उनके साहित्य में दिखायी देती है। लेकिन वे मार्क्सवादी नहीं है, वे तो प्रगतिशील हैं। कवि जब वर्गहीन समाज रचना का मुद्दा उठाता है तो उसके पीछे उसका मंतव्य तथाकथित मार्क्सवाद की नारेबाजी नहीं है बल्कि स्वस्थ समाज व्यवस्था के निर्माण की अभिलाषा है।

कवि का विश्वास है कि जब सामाजिक जीवन में परिवर्तन होगा तब ही हम एक नए विश्व का निर्माण कर पाएंगे और इसके द्वारा पुराने विश्व के पुराने पाप नहीं रह पाएंगे, प्रगतिशीलता के साथ जुड़ना यानी उनके लिए जीवन के साथ जुड़ना है। अपने आप को गलाकर, तपाकर, स्वयं को बरबाद करके निर्माण का हेतु रखना, मूक-मौन रहकर निरंतर रूप से औरों के बारे में सोचते रहना, डींगे न हाँकते हुए अपनी गति से स्थितप्रज्ञ होकर विकास की कामना करना, मानों 'रातों रात धूल में काई फूल उग आये' जैसी रचना धर्मिता उनकी कविता में प्राप्त होती है। परंतु उसके लिए आवश्यक है निरंतर चलते रहना, संकल्प करना, असीम को प्राप्त करने के लिए उस सीमा को छूना जो बहुत दूर है, चाहे किसी का साथ हो या न हो लेकिन निरंतर रूप से आगे बढ़ना ही जीवन है। इसी से परिवर्तित जीवन में प्रसन्नता और मंगलमयी क्षण आ जाएंगे। जब व्यक्ति अपने 'स्व' की परिधि से बाहर हटकर अपने आप का मूल्यांकन-विश्लेषण करेगा तब ही विकास संभव होगा। भवानीप्रसाद मिश्र 'गांधी पंचशती' कविता में लिखते है -

खुद से बाहर निकलो
और फिर अपने को जांचो
अपने से बाहर खड़े होकर
अपने से भीतर तक बांचो-(105)

त्रिलोचन ने भी अपने जीवन में परिवर्तनशीलता, गतिशीतलता और विकासशीलता के लिए आत्म - विश्लेषण की प्रवृति को ज्ञात कर स्वयं को परिचालित किया। आत्म-परिक्षण के कारण उनके व्यक्तित्व में तेजस्विता आयी और वही निखार उनकी कविता में भी झलकता है।(106)

ठीक निराला की तरह उनका स्वाभिमान विषम परिस्थिति में और भी सतेज होकर उनके ज्योतिष्क लोचनों में उभर आया है। ज्योतिष्क इसलिए कि त्रिलोचन की आंखों में वही रोशनी मिलेगी जो ग्रह-नक्षत्र-तारागणों में मिलती है। यह निसर्ग जात है। पेट की भूख इस चमक को मार नहीं सकी।

साथ साथ जब रचनाकार अपने समाज के प्रति जो दायित्व है उसके प्रति जागरुक रहता है तो वह भाव उसे हर स्थितियों में झकझोर कर रख देता है। ऐसे में समाज से कटकर विमुख होकर वह जीवन यापित कर ही नहीं सकता।

डॉ. गोपाल राय के अनुसार, ''साहित्य सामाजिक परिवर्तन या क्रान्ति का वाहक होता है। साहित्यकार अपनी रचना को सजग रूप में इसके लिए ह थियार बनाता है। साहित्य केवल मनोरंजन या किसी लोकोत्तर आनंद का साधन मात्र नहीं है। उसका लक्ष्य जीवन को बदलना, उसे बेहतर बनाना भी है। गोस्वामी तुलसीदास स्पष्ट कहते है- कीरति भनिति भूति भलि सोई। सूरसरि सम सब कहँ हित होई।''(107)

अत: कह सकते है कि त्रिलोचन ने भी एक सच्चे नागरीक होने के दायित्व का निर्वाह करते हुए काव्य रचना के द्वारा परिवर्तनशील विकासगामी दृष्टि पर अत्याधिक बल दिया ताकि समाज में सकारात्मक तत्व उभरकर सामने आए।

विद्रोही स्वर

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के पूर्व भी विरोध को एक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। कबीर और निराला को विद्रोही कवि के रूप में जाना जाता है। जब विरोध सच्चाई एवं यथार्थ की जमीन से जुड़ा होता है तो वह समाजोपयोगी होता है। त्रिलोचन ने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, विद्रुपताओं ढकोसलों, कुचक्रों, अनैतिक आचरणों आदि के द्वारा प्राप्त विभिन्न स्थितियों के प्रति विरोध प्रकट करते हुए विद्रोही भावना को मुखरित करने का प्रयास किया है।

इस विद्रोहमूलक प्रवृत्ति में हम मार्क्सवाद का आरोपण न करें तो बेहतर होगा। त्रिलोचन के काव्य में विद्रोह सहज संयमित रूप में झलकता है, इसमें उग्रता एवं आक्रोश विद्यमान नहीं है। त्रिलोचन के अनुसार यह समय की माँग है कि स्थितियों से स्वयं को उबारने के लिए व्यक्ति विद्रोह एवं विरोध करें।

त्रिलोचन की भाँति ही 'धूमिल' 'हे भाई हे, अगर चाहते हो कि हवा का

रूख बदले, तो संसद जाम करने से बेहतर है सड़क जाम करो' की बात करते हैं। क्योंकि विद्रोह के प्रयोग के द्वारा ही परिवर्तन होगा। इस परिवर्तन के लिए संघर्ष करना अवश्यंभावी है।

कवि जानता है कि सामाजिक सड़ाँध को दूर करने के प्रयास में शायद उसे प्रारंभिक दौर में कोई साथी मिले न मिले लेकिन वह गंतव्य तक पहुँचने का प्रयास करेगा। कवि कहता है-

पीछे मुड़कर देख रहा हूँ पथ सूना है,
जिस पर चलता रहा और चलता जाऊँगा
आगे भी। मुझको उस सीमा को छूना है
जहाँ असीम मुसकराता है। मैं गाऊँगा
जीवन के एकांत क्षणों में (108)

इसी विरोधी और विद्रोही विचारधारा के कारण हम त्रिलोचन को प्रगतिशील कह सकते हैं। त्रिलोचन कभी तथाकथित प्रगतिवाद के खेमे में नहीं रहे लेकिन सतह में उनका दृष्टिकोन प्रगतिशील ही रहा।

डॉ. हरदयालके अनुसार " इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी कविताओं में प्रगतिशीलता के अनेक तत्व विद्यमान है लेकिन उनकी कविताओं में प्रगतिवाद की रूढ़िग्रस्तता नहीं है। वे वर्गहीन समाज-व्यवस्था के पक्ष में है उसे वे स्पष्ट शब्दों में वक्तव्य के रूप में कहते हैं लेकिन नारेबाजी प्रायः नहीं करते हैं और नहीं प्रगतिवादी हिन्दी कविता की रूढ़ वस्तु को रूढ़ ढंग से व्यक्त करते हैं।"(109)

यह भी उतना ही सच है कि कविता के निर्माण में वर्जना और विघटनकारी तत्वों से काम नहीं चल सकता, मंडनात्मकता की आवश्यकता होती है । जीवन विधायक तत्वों को जोड़कर ही व्यक्ति प्रगतिगामी हो सकता है। अतः नव-निर्माण की प्रक्रिया में जो अनावश्यक, अप्रासंगिक तत्व है उनका विद्रोह कर प्रासंगिक, समन्वयात्मक तत्वों को उभारना है। कवि विनाशकारी, व्यक्ति के व्यक्तित्व का अधःपतन करनेवाले तत्वों को विखंडित करना चाहता है ताकि समाज में से ईर्षा, द्वेष, दंभ की भावना दूर हो जाए, मानव मानव के लिए सहायक हो, इसके लिए कवि की आँखे पथचारी है और वह स्वयं को पथ का रजकण कहकर संबोधित करता है। त्रिलोचन के विद्रोही स्वर में समाज सापेक्षता है, उनकी कविता आत्मविस्मरण या रसात्मकता को उत्पन्न करनेवाला साधन मात्र नहीं है। वे कवि की अपेक्षा एक चिंतक, तत्ववेत्ता के रूप में भाष्य करते हैं। इसलिए उनकी कविता का संघर्ष, विद्रोह आत्मध्वंस नहीं करता बल्कि वह बाह्योन्मुख हो जाता है। पतित को तिरोहित कर मंलगमयी समाज के स्वप्नद्रष्टा के रूप में त्रिलोचन उजागर होते हुए नजर आते हैं।

प्रयोगवादी कविता के समान

'चाँदनी चंदन सदृश्य हम क्यों लिखे
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दीखे' -(110)

कहते हुए विरोधमूलक आक्रमकता त्रिलोचन में कहीं भी दिखायी नहीं देती। उनका विरोध मात्र विरोध के लिए नहीं है अपितु उसमें जीवन की सच्चाई है।

देवेन्द्र इस्सर के अनुसार, "यदि मुझे विशुद्ध कलात्मक निकष पर खरा उतरनेवाली लेकिन मानवघाती मूल्यों की प्रवर्तक कविता और कलात्मक तौर पर कमजोर परंतु मानव स्वतंत्रता और स्वाभिमान की पोषक कविता में चयन करना पड़े तो मैं पहली की अपेक्षा दूसरी कविता को चुनूँगा।"(111)

त्रिलोचन भी अपनी कविताओं के माध्यम से विरोध और विद्रोह करते हुए विस्थापित होते हुए मानवीय मूल्यों को दृढतर करने का प्रयास करते हैं। कवि इसके लिए सत्ता-व्यवस्था की बिलकुल ही चिंता नहीं करता जो कि आधुनिक साहित्यकारों में कम ही दिखायी देता है।

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का मंतव्य है- "बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का कवि और चिन्तक स्वयं अपने से क्षुब्ध है। वह उनसे तो क्षुब्ध है ही जो वर्ग शत्रु है या शोषक समुदाय के हैं, परजीवी, यथास्थितिशील, परंपराग्रस्त या रूढ़िवादी अंधविश्वासी या संप्रदायवादी या व्यक्ति केंद्रित या व्यक्तिवादी है, वह उनसे भी क्षुब्ध है... जाहिर है ऐसा कवि आत्म-सीमित नहीं हो सकता। उसकी रचनाशीलता और संवेदना इकहरी और संकरी नहीं है।"(112)

प्रयोगवाद के समान त्रिलोचन के काव्य में यह क्षुब्धता उन्हें एकांगी नहीं बनाती। कवि घोर एकांत के क्षणों में भी साहित्यकार के रुप में अपने दायित्व का निर्वाह करता है, इसलिए त्रिलोचन तथाकथित वाद विशेष की धारा से हटकर अविरल रुप से सर्जना करते हैं।

श्री गोविन्द रजनीश लिखते है, "किसी भी क्रान्ति या विद्रोह के लिए निश्चित जीवन दर्शन, आस्था, न डिगनेवाला संकल्प और उसके क्रियान्वय हेतु निश्चित प्रक्रिया का होना आवश्यक है।"(113)

इस दृष्टि से त्रिलोचन अपने काव्य में खरे उतरते हैं।

व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति

प्रगतिवादी काव्यधारा में व्यंग्य की प्रवृत्ति बहुतायात रुप में प्राप्त होती है। कवि त्रिलोचन शास्त्री प्रगतिशील विचारधारा के रचनाकार होने के कारण उन्होंने अपनी कविताओं में व्यंग्य का सफल चित्रांकन किया है। मगर यह व्यंग्य कही भी अपनी अतिवादिता की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करता वहाँ भी उनका स्वर काफी संयत

है। कवि कहता है-

सबको बहकाया है श्रद्धा रही अब कहाँ?
प्रणत हो गया भक्त, कहा स्वामीजी, भोजन रूचि
का हुआ न होगा, हम वैसा आयोजन कहाँ कर सके
अजी माल था तुष्ट हूँ यहाँ-(114)

त्रिलोचन का यथार्थवाद दूसरे कवियों के यथार्थवाद से कुछ अलग है। उसमें न कही भावुकता है, न झूठा आशावाद है। न काल्पनिक संघर्षो के अमूर्त चित्र हैं, न मारो-मारो, काटो - काटो की ललकार है। वहाँ जनशक्ति में आस्था है, संघर्ष के लिए आह्वान है।(115)

कुछ भी आप कहें ऐसे कुत्तों को गोली
मार दिया करते हैं 'साहब क्षमा कीजिए-
मुझमें उनमें कोई मौलिक भेद नहीं है -(116)

डॉ. सोफिया मैथ्यू के अनुसार'' त्रिलोचन की कविताओं में मूलत: जीवन का स्पंदन हैं। उनकी कविता अपने युग की, समाज की जनजीवन की अभिव्यक्ति है।'' अत: वे अपने तत्कालीन जीवन की समस्याओं को चित्रित करने के लिए और पाठकों के मन में टीस पैदा करने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं।''(117)

श्री चंद्रबली सिंह के अनुसार, ''त्रिलोचन के व्यंग्य में विद्रूप की जगह संयम और गहरी चोट करने की जगह नोक चुभाने की प्रवृत्ति है।''(118) कवि सत्ता व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कहता है -

आप देखेंगे सिर धुनेंगे अब
सोचकर कोई पथ चुनेंगे अब
वे समाजवाद के नशे में हैं
आपकी बात क्या सुनेंगे अब-(119)

पूँजीपति वर्ग के लोग अन्य लोगों के पैसों को लूटकर डकारते हैं इस प्रवृत्ति को देखते ही बनता है हिलने लगी तोंद में सिहरी संचित रोटी में त्रिलोचन का विधान काफी व्यंग्यात्मक है।

राजेश जोशी लिखते है ''त्रिलोचन में व्यंग्य के कई स्तर है। एक वह, जहाँ वह राजनीति पर चोट करते हैं या सामाजिक विडंबनाओं और पाखंडियों पर। ऐसे प्रसंगों में सुर की तटस्थता के बावजूद घृणा को देखा जा सकता है। यह मुखर होकर डाँट फटकारवाली घृणा तो नहीं बनती पर छेदनेवाली घृणा अवश्य होती है।''(120) उनकी व्यंग्य कविता में भी न किसी प्रकार का बड़बोलापन है और नहीं दांभिकता, वे सहज रूप में कहते है -

बड़े बड़े शब्दों में बड़ी बड़ी बातों को
कहने की आदत औरों में है पर मेरा
ढर्रा अलग गया है। ढाकों के पातों को
थाली की मर्यादा देकर पहला घेरा, तोड़ दिया।[121]

कटु व्यंग प्रहारों के अलावा कवि ने हास्य व्यंग्य के द्वारा भी जीवन में व्याप्त अभावों को चित्रित किया है। त्रिलोचन लिखते है कि अभावमय घर में नाते रिश्ते भी निबाहते-निबाहते स्थिति खराब हो जाती है। ऐसे में ससुराल के सुजन आ पड़े तो वे अधिक खाना न खाए इसकी चिंता बनी रहती है।

त्रिलोचन के व्यंग्य मे समाज के प्रति तीव्र सहानुभूति है। जीवन सिंह लिखते हैं - ''त्रिलोचन की कविता दुनिया के होके दुनिया में रहने की कविता है।''[122]

नागार्जुन जब 'मन करता है' कविता लिखते हैं तो उनकी नुकीली धार से सुननेवाला आक्रांत, उद्वेलित और प्रताड़ित हुए बिना नहीं रह सकता, लेकिन त्रिलोचन की व्यंग्य भाषा में भी संयम झलकता है।

त्रिलोचन भी अपनी कविताओं में संयमित ढंग से ही सही लेकिन चुभोनेवाले व्यंग्य करते हैं। व्यंग्य के चित्रण में स्थित संयमित भाव को उपलब्धि कहें या सीमा यह पाठक की मानसिकता पर निर्भर करता है।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार, ''केन्द्रीय वर्ग के कवियों में त्रिलोचन शायद अकेले कवि हैं जो अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति में सहज मानववादी कवियों के इतने नजदीक तक पहुँच जाते हैं। उनकी सजग प्रगतिशीलता अगर कहीं व्यक्त होती है तो वह धरती की कुछ उपदेशात्मक और सिद्धांत विवेचन करनेवाली कविताओं में ही और इनमें से बहुत कम कविताएं हैं, इसलिए उन्हें छोड़ते हए कहा जा सकता है कि उनका लगभग सारा काव्य सृजन उन्हें एक स्वस्थमना सहज प्रगतिशील कवि ही सिद्ध करता है।''[123]

अत: हम कह सकते हैं कि त्रिलोचन शास्त्री ने अपनी कविताओं के द्वारा सॉनेटों के माध्यम से विषय वस्तु का सफल संयोजन किया है। काव्यवस्तु को रूप विधान में सराबोर करके कवि अपनी वैचारिक भावभूमि को कही भी ड़ावाड़ोल नहीं होने देता।

रामविलास शर्मा के अनुसार, त्रिलोचन की कविताएँ समकालीन बोध की सुपरिचित परिधि को तोड़नेवाली कविताएँ हैं और इस तरह आज की कविता की हमारी बनी बनाई अवधारणा को थोड़ा छिन्न - भिन्न करनेवाली कविताएँ।[124]

त्रिलोचन की कविताओं की विशिष्टता को व्यंजित करते हुए डॉ. भगवान

सिंह लिखते हैं- ''अन्य प्रगतिशीलों से त्रिलोचन का यह महत्वपूर्ण अंतर है कि जहाँ उन्होंने खोखली ललकारों से कान बहरे किए, वहाँ त्रिलोचन ने अपनी इस चेतना को सुरक्षित रखा था और कलात्मक विवेक से कविताएँ लिख रहे थे।''(125)

त्रिलोचन की समग्र रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके साहित्य का रचनाकाल और प्रकाशन काल में कई सालों का अंतर है, इसलिए उनकी रचना प्रक्रिया में आधुनिकता के तत्व खोजतें हुए तथाकथित मानदंडों को अपनाने से काम नहीं होगा। वे अलग अर्थो में आधुनिक है क्योंकि उनकी आधुनिकता वैचारिक स्तर की है, जो कहीं - कहीं कालातीत लगती है।

अशोक वाजपेयी लिखते है, ''जहाँ आधुनिक कवि का समकालीन होना अनिवार्य है यह बिलकुल जरूरी नहीं है कि समकालीन कवि आधुनिक भी हो। शायद हर समाज कहीं गहरे अपनी नियति अपने भविष्य अपने अर्थ की खोज करता संसार है। आधुनिक काव्य संसार में इस खोज का अहसास और तनाव जरूरी नहीं कि स्पष्ट हो।''(126)

इसका मतलब यह निश्चित रूप से नहीं है कि कविता में अस्पष्टता और दुरूहता होनी चाहिए। जब कि वह कविता जो अपने विभिन्न अंगों में कई अर्थ प्रदान करती है निश्चित रूप से श्रेष्ठ है। 'नगई महरा', 'चित्रा जांबोरकर' जैसी कविता जितने सरल ढंग से परत-दर-परत खुलती जाती है उसी तरह से अपने लाक्षणिक अर्थ में वह पढ़ते समय व्यंजकता भी प्रदान करती है ।

साहित्य का सत्य व्यावाहारिक जीवन की सच्चाई तक ही सीमित नहीं है। अपनी गहराई में यह जीवन के मूलभूत प्रश्नों से जुड़ता है और इस तरह से अपनी सार्वभौमिकता प्राप्त करता है। पर यह सब जाँचने के पहले हमें सत्य की समझ और गहरी कर लेनी चाहिए।

यह जीवन सत्य और साहित्यिक सत्य बड़े ही प्रामाणिक रूप से त्रिलोचन के काव्य में मुखरित हुआ हैं। अपनी धरती-अवाम के प्रति सहुदयता और संवेदनशीलता कवि त्रिलोचन की प्रगतिशीलता और प्रतिबद्धता के द्योतक है।

अशोक वाजपेयी अपने एक साक्षात्कार में कहते है ''अब साहित्य जितना समाजोन्मुख हो गया है समाज उतना ही साहित्य से दूर चला गया है। हमने ऐसा समाज बना दिया कि उसमें साहित्य के लिए कोई जगह ही नहीं बची।''(127)

उत्तर आधुनिकता के पूर्व समाज और साहित्य एक दूसरे के ज्यादा करीब थे। सूचना प्रोद्योगिकी और मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण एक ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है जिसमें साहित्य मात्र शोभा की वस्तु बन गयी है। दोनों के बीच दूरी बढने

के कारण आज तमाम तरह की विसंगतियाँ जन्म ले रही है । यहीं पर त्रिलोचन के साहित्य की खास बात यह है कि वे अपने को इससे दूर रखते हैं। हिन्दी साहित्य में स्थित कुछ एक गिने-चुने रचनाकारों के कारण साहित्य जीवित है, उसमें उर्जा है।

डॉ. सुनीता जैन लिखती है " हिन्दी कविता को कबीर की फकीरी, मीरा की एकनिष्ठता, निराला का पागलपन, अज्ञेय का धैर्य और मुक्तिबोध की व्यग्रता मिलती ही रहेगी। कभी जल्दी कभी देर से । तो भी पिछले पचास वर्ष की हिन्दी कविता ने अपने पांच कोस खो दिये है।"(128)

असल में आज के सतर्क रचनाकारों को इस बात का ध्यान होना चाहिए कि वे देखें कि आधुनिकता के तथाकथित पचड़ों में पड़कर कहीं काव्य की आत्मा तो नहीं खो रही है। अतिशयता की स्थिति हमेशा विध्वंस की ओर ले जाती है। कवि को चाहिए कि उसकी जो अनुभूति है उसे उसकी प्रामाणिकता में व्यक्त करें वरना वह साहित्य निर्जीव बन जाएगा। जो स्वयं प्राणहीन है वह समाज को भला कैसे प्राणवान करेगा?

"आधुनिकता का विचार जब साहित्य के संदर्भ में होता है, तब वह केवल अवधारणा मात्र नहीं रह जाती। वह विकास के एक बिन्दु तक पहुँचे हुए समाज के अनेक संवेदनात्मक सौंदर्य बोधात्मक एवं चित्तनाशक आवर्तों से जुड़कर एक संश्लिष्ट जीवन बन जाती है।"(129)

त्रिलोचन के काव्य का मूल्यांकन करने के बाद यही ज्ञात होता है कि उनका काव्य चाहे वह औरों के द्वारा सराहा जाए अथवा न जाए लेकिन यह निर्विवाद है कि इसमें भोगा हुआ यथार्थ है इसलिए वह खरा है, आरोपित नहीं जो हमारे लिए वंदनीय होना चाहिए, उपेक्षित नहीं। कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार, "जब तक समीक्षक उस जीवन को नहीं जानता, जिसे प्रतिबिंबो की, विभिन्न पैटर्न्स में गुंथी हुई रचना की वह आलोचना करने बैठा है, तब तक वह समुद्र दर्शन के नाम पर लहरें गिनता हुआ बैठा है। आलोचक या समीक्षक का कार्य वस्तुत: कलाकार या लेखक से भी अधिक तन्मयतापूर्ण और सृजनशील होता है। उसे एक साथ जीवन के वास्तविक अनुभवों के समुद्र में उतरना पड़ता है कि जिससे लहरों का पानी उसकी आँखों में न घुस पड़े। अपने वर्ग समाज श्रेणी की जिंदगी में अपनी जिंदगी की सही हिस्सेदारी के बगैर जो समीक्षक उस जिंदगी के प्रतिबिंबो के पैटर्न्स का मूल्यांकन करने बैठता है, वह कभी भी सच्ची आलोचना नहीं कर सकता ।"(130)

अत: मुझे लगता है कि शायद यहीं कारण है कि बदले हुए परिप्रेक्ष में जहाँ लोगों की मानसिकता बदल गयी है, विचारशीलता में आमूलाग्र परिवर्तन हुआ है वहाँ

आस्था-विश्वास की बातें करना, बरदाश्त की हद गुजर जाने के बाद भी संयत होकर बरदाश्त करने की त्रिलोचन की प्रवृत्ति आलोचकों को रास नहीं आयी। अत: कवि के रूप में त्रिलोचन को अपने समय में जितना समझा जाना चाहिए था उतना समझा नहीं गया। गंगाप्रसाद के अनुसार, ''अगर लेखक की कोई सत्ता है तो वह प्रभावकारी और सार्थक लेखन द्वारा ही स्थापित होती है। किसी भी प्रभावकारी, सार्थक लेखन की कसौटी स्वयंभू सौंदर्यशास्त्र या साहित्य शास्त्र नहीं है। रचना की कसौटी का एक मात्र अधिकार उस सामाजिक के पास है जो उस रचना से अपने आत्म संकटों से मुक्ति पा सकता है तथा सतत परिवर्तन की भूमिका समझ सकता हो। लेखन की सार्थकता ही लेखक का महत्व स्थापित कर सकती है।''(131)

अत: देर से ही सही डॉ. नामवर सिंह जैसे समीक्षकों ने त्रिलोचन के अस्तित्व को समझा और त्रिलोचन की यह शिकायत कि प्रगतिशील कवियों की लिस्ट में उनका नाम नहीं है-को दूर किया। नयी कविता और उत्तर आधुनिकता की होड़ में भी अपने ढंग से 2002 तक प्रकाशित होनेवाली त्रिलोचन की रचनाएँ यह प्रमाणित करती है कि सर्जनात्मकता अभी तक शेष है जो किसी कवि की कारयित्री नहीं बल्कि भावयित्री प्रतिभा के साथ जुड़ी है।

त्रिलोचन ने न कभी पगडंडियों का सहारा लिया न ही स्वाभिमान को ताक पर रखकर समझौते किए। इसलिए सफलता के तथाकथित निकषों से दूर हटकर वे काव्य लेखन में निरत रहें। उनकी कविताओं को परखने के बाद हम पाते हैं कि कविता जीवन के लिए है, जीवन जीने के लिए है इसके द्वारा यदि कलात्मक अभिव्यक्ति होती है तो सोने पे सुहागा लेकिन कथ्य अपने आप में प्रभावशाली हो। कई बार त्रिलोचन की कविता में प्रगतिशीलता के तत्वों की अपेक्षा आदर्शवाद की छवियो को ढूंढा जाता रहा है लेकिन यह ध्यान देना चाहिए कि कवि की आस्था और विश्वास ही है जो उन्हें तथाकथित प्रगतिवाद के मानदंडों से अलग हटाती है।

अत: हम कह सकते है कि प्रगतिवाद और प्रगतिशीलता में मूलभूत अंतर है। जब कि त्रिलोचन 1936 के बाद प्रगतिवादी दौर में रचना कार्य करते रहे हैं। इसलिए हम उन्हें प्रगतिवादी कहते है लेकिन वे अपने समय में प्रगतिशील ही रहे। अपने समय के पंरपरागत रचना-विधान को ठुकराकर अपने स्वयं के रास्ते पर चलना-जो रास्ता निर्जन है - क्या स्वयं में प्रगतिशीलता नहीं है? मगर ऐसा भी देखा नहीं है कि वे प्रगतिवादी नहीं है। प्रगतिवाद का पुट यत्र-तत्र उनके काव्य में विद्यमान है लेकिन यह वाद विशेष उन पर कहीं भी हावी नहीं होता।

प्रभाकर श्रोत्रिय 'सापेक्ष' पत्रिका में लिखते है ''त्रिलोचन न तो तुफान कवि है न किताबी जुमलों के । वे जन से, उसकी रोजमर्रा की समस्याओं से अंतरंग रूप

में प्रतिबद्ध होने के कारण प्रगतिशील है - सिर्फ प्रगतिशील दिखनेवाली कविताएँ लिखने के कारण नहीं। दूसरी बात यह है कि त्रिलोचन ने मनुष्य को और स्वयं काव्य को ही काल के एक खंड में नहीं देखा, एक लंबी परंपरा और देश के अपने स्वभाव के भीतर देखा है । वे उस यातना, सुख, अनुक्ष्य को एक लंबी संलग्नता में देखते हैं । नितांत तात्कालिकता में नहीं ।''(132)

o-o-o-o-o

संदर्भ सूची - चतुर्थ अध्याय

1. वैज्ञानिक भौतिक वाद : राहूल सांकृत्यायन, पृ.126
2. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप : डॉ.रवि रंजन, पृ.372
3. वही, पृ. 378
4. मार्क्सवाद : यशपाल, पृ.151
5. मार्क्सवादी कला चिंतन और चिंतन : श्यामसुंदर शुक्ल, पृ.5
6. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : रोहिताश्व, पृ.90
7. आलोचना - जुलाई- सितम्बर 81 मार्क्स और सामाजिक विकास : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.128
8. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : डॉ. रोहिताश्व शर्मा, पृ.100
9. प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. रणजीत, पृ.५८
10. मार्क्सवाद : यशपाल, पृ.151,152
11. दृष्टिकोण : विनय मोहन शर्मा, पृ.39
12. साहित्य, स्थायी मूल्य और मूल्यांकन : रामविलास शर्मा, पृ.21
13. कार्ल मार्क्स, कला और साहित्य चिंतन : नामवर सिंह, पृ.188
14. लोकशाही समाजवाद : देवदत्त दाभोलकर, पृ.113
15. कला और सामाजिक जीवन : जार्जी प्लेखनोव, पृ.47
16. कार्ल मार्क्स : कला और साहित्य चिंतन : सं. नामवर सिंह, पृ.117,118
17. मार्क्सवादी कला चिंतन और चिंतन : श्यामसुंदर मिश्र, पृ.150
18. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद : विजयशंकर मल्ल, पृ.15
19. कार्ल मार्क्स कला और साहित्य चिंतन : सं.नामवर सिंह, अनुवाद गोरख पांडेय, पृ.157
20. आखिर रचना क्यों? : मुक्तिबोध, पृ.15
21. साहित्य समीक्षा, परिभाषाएँ और समस्याएँ : मुद्राराक्षस, पृ. 131
22. आलोचना, अप्रैल 1959 मार्क्सवाद की काव्य विषयक प्रतिपत्तियाँ : राजेंद्रप्रसाद सिंह, पृ.64-65
23. साहित्य, स्थायी मूल्य और मूल्यांकन : रामविलास शर्मा, पृ.21
24. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : नामवर सिंह, पृ.79
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास : जयकिशन खंडेलवाल, पृ.452
26. वही , पृ.454
27. वही, पृ.451

28. आखिर रचना क्यों? : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.15
29. साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेंद्र कुमार, पृ.195
30. आलोचना - अंक 10 प्रगतिशील चिंतन और साहित्य : राजेंद्र प्रसाद सिंह, पृ.114
31. सहचिंतन : अमृतराय, पृ.63
32. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप : डॉ. रविरंजन, पृ.55
33. सहचिंतन : अमृतराय, पृ.63
34. बदलते परिप्रेक्ष्य : नेमिचंद्र जैन, पृ.43
35. रचना प्रक्रिया और रचनाकार : डॉ.देवेश ठाकुर लेख-रचना प्रक्रिया और सामाजिक परिवेश : जगदंबा प्रसाद दीक्षित, पृ.20
36. आखिर रचना क्यो ? : गजानान माधव मुक्तिबोध, पृ.15
37. वही, पृ.119
38. आस्था और सौंदर्य : डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.31
39. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप : डॉ. रवि रंजन, पृ.81
40. दर्शन साहित्य और समाज : शिवकुमार मिश्र, लेख- यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद , पृ.35
41. तीसरा सप्तक : अज्ञेय - भूमिका
42. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप : डॉ रवि रंजन, पृ.55
43. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप : डॉ. रवि रंजन, पृ.58
44. सहचिंतन : अमृतराय, ३७
45. साहित्य और यथार्थ लेखक हावर्ड फास्ट, अनुवाद विजय सुषमा, पृ.17
46. आखिर रचना क्यों? : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.114
47. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : रोहिताश्व, पृ.226
48. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : रोहिताश्व, पृ.69
49. साहित्य का समाजशास्त्र : डॉ. बच्चन सिंह, पृ.11
50. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : रोहिताश्व, पृ.69
51. आलोचना, अप्रैल-जून -68 पुनर्जीवन में महानता, कार्ल मार्क्स, 150 वीं वर्षगाँठ : मोहित सेन, पृ.66
52. आलोचना, अप्रैल-जून 74 प्रगतिशीलता का अर्थ सर्वहारा से भावात्मक तादात्म्य : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.23
53. आलोचना - अप्रैल-जून 79, आचार्य द्विवेदी और प्रगतिवाद : नंदकिशोर नवल
54. आलोचना- जुलाई 1957 मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन डॉ. रामविलास शर्मा

55. आलोचना, जनवरी-मार्च 78, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र कुछ विचार, रामवक्ष, पृ,105
56. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर 87 समकालीन कविता और काव्यमूल्य परमानंद श्रीवास्तव, पृ.42
57. आलोचना- अप्रैल-जून 87 महान कविता क्या है ?
58. आलोचना-अक्तूबर-दिसंबर 1969 मार्क्सवाद और समकालीन बूर्ज्वा विचारधाराएँ : सुरेंद्र चौधरी
59. आलोचना - अप्रैल 1957 कवि और सामाजिक दायित्व : मालार विन्दम चतुर्वेदी, पृ.86
60. धरती : एक समीक्षा, मुक्तिबोध, पृ.492
61. वही, पृ.492
62. त्रिलोचन संचयिता : सं. ध्रुव शुक्ल, पृ.76
63. सापेक्ष, धरती : एक समीक्षा : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.
64. दिगन्त, पृ.23
65. सापेक्ष, त्रिलोचन : देसी संस्कार के बेबाक कवि, पृ.
66. त्रिलोचन संचयिता : सं.ध्रुव शुक्ल, पृ.130
67. दिगन्त, कस्मै देवाय, पृ. २३
68. सापेक्ष, अपनी राह चला, आँखो में रहे निराला : रेवती रमण , पृ.199
69. फूल नाम है एक, पृ.98
70. सापेक्ष -त्रिलोचन -देसी संस्कार के बेवाक कवि : विश्वेश, पृ.213
71. सापेक्ष त्रिलोचन, आधुनिकता और परंपराबोध : रामविलास शर्मा, पृ.410,411
72. सापेक्ष, त्रिलोचन, कविताएँ त्रिलोचन की तब और अब के संदर्भ में केदारनाथ अग्रवाल, पृ.376
73. सापेक्ष, धरती : एक समीक्षा : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.493
74. सापेक्ष, धरती : आस्था और विश्वास के कवि : महावीर अग्रवाल, पृ.672
75. कथादेश, दिसम्बर 20001 साहित्य स्वत्व का संकट और अंतकरण की आवाज, देवेंद्र इस्सर पृ.27
76. आलोचना - अप्रैल-जून 73 साहित्य और आस्था : निर्मल वर्मा, पृ.3
77. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविता : मलयज, पृ.388
78. उस जनपद का कवि हूँ,८५
79. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक [redacted] मैथ्यू सोफिया पृ.228
80. सापेक्ष - कविवर त्रिलोचन : राममूर्ति त्रिपाठी, पृ. १५२
81. सापेक्ष, त्रिलोचन और उनका लोक मानस - जीवन सिंह, पृ. १८।

82. सापेक्ष, त्रिलोचन और उनका लोकमानस - जीवन सिंह, पृ.180
83. गुलाब और बुलबुल , पृ.100
84. नया पथ- जुलाई-सितंबर 1997 दलित साहित्य का आंदोलन और हिन्दी क्षेत्र : शिवकुमार मिश्र
85. अनकहनी भी कहनी है
86. सापेक्ष, खेतिहर जिजीविषा के कवि त्रिलोचन , पृ.150
87. सापेक्ष, ताप के ताए हुए : त्रिलोचन : केदारनाथ सिंह, पृ.518
88. त्रिलोचन के बारे में, जीवन की लय में मुक्ति का राग पृ.157 मैनेजर पाण्डेय, पृ.151
89. सापेक्ष-त्रिलोचन, सो जाने जेहि देइ जनाई : डॉ. भगवान सिंह, पृ.
90. ज्ञानोदय, नवंबर 1969 कविता की लोकप्रियता का प्रश्न आज का संदर्भ: कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ.92
91. आजकल, अप्रैल 1991. लोकशक्ति की कविता, दलित कवि पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.8
92. आलोचना के आधुनिकवाद और नयी समीक्षा : शिवकरण सिंह, पृ.13
93. त्रिलोचन संचयिता : सं. ध्रुव शुक्ल, पृ.164
94. सापेक्ष -कवि त्रिलोचन शास्त्री : चंद्रबली सिंह, पृ
95. सापेक्ष, कविताएँ त्रिलोचन की तब और अब के संदर्भ में केदारनाथ अग्रवाल, पृ.375
96. त्रिलोचन के बारे में, सहज सुंदर का अर्थ : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.118
97. आजकल , जून 1987 कविता की प्रेरणा : डॉ. सुधेश
98. आलोचना, जून 1965, हिन्दी कविता, प्रगतिशील : डॉ.शिवकुमार मिश्र, पृ.77
99. कामायनी : जयशंकर प्रसाद 'श्रद्धा' सर्ग पृ.
100. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.15
101. शब्द, पृ.69
102. दिगन्त, कस्मै देवाय , 23
103. सापेक्ष, अपनी राह चला आँखों में रहे निराला, पृ.205
104. सापेक्ष, जबकि वे हमारे लोर्का हो सकते थे : सोमदत्त, पृ.460
105. प्रतिनिधि कविताएँ : भवानीप्रसाद मिश्र, पृ.107
106. सापेक्ष, अपनी राह चला आँखों में रहे निराला, पृ.200
107. संचेतना मई 1979 सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की भूमिका : डॉ. गोपाल राय, पृ.22
108. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताएँ : चंचल चौहान, पृ.433

109. प्रकर, सितम्बर, अनकहनी भी कुछ कहनी डॉ. हरदयाल
110. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : जयकिशन खंडेलवाल , ८९०
111. संचेतना, जून 1978, मनुष्य की मुक्ति और कविता की मुक्ति, पृ.24
112. आजकल जनवरी 1991 नवे दशक की कविता - कविता को हथियार बनाने की मानसिकता : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ.8
113. आलोचना-जुलाई-सितम्बर 78 समकालीन हिन्दी कविता में विद्रोह, पृ.57
114. दिगन्त, पृ.19
115. सापेक्ष, जनता की आस्था के कवि : ज्योतिष जोशी, पृ.612
116. दिगन्त, पृ 41
117. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना, डॉ. सोफिया मैथ्यू, पृ.227
118. त्रिलोचन के बारे में, संपादक गोविंद प्रसाद, पृ 72,73
119. गुलाब और बुलबुल, पृ.22
120. त्रिलोचन के बारे में, संपादक गोविंद प्रसाद, पृ 200
121. वही
122. सापेक्ष त्रिलोचन और उनका लोक मानस, जीवन सिंह
123. हिन्दी के प्रगतिशील और समकालीन कवि, पृ. 111
124. त्रिलोचन के बारे में, संपादक गोविंद प्रसाद, पृ 54
125. वही, पृ. 130
126. आलोचना, अप्रैल-जून 69 समकालीन कविता, एक दृश्यालेख, अशोक वाजपेयी, पृ 8
127. आजकल, सितंबर 2001 अशोक वाजपेयी से संजय श्रीवास्तव की बातचीत, पृ31
128. संचेतना, मार्च 2001 प्रकाशित जून 2001 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता - तेवर और कलेवर, डॉ. सुनीता जैन, पृ. 25
129 समीक्षा, जुलाई-सितंबर 1988, आधुनिक हिन्दी कविता, सर्जनात्मक संदर्भ, चंद्रप्रकाश अमिताभ, पृ. 19,20
130. इंद्रप्रस्थ भारती, अप्रैल-मई -जून 1991, समसामायिक कविता और सर्जनात्मक आलोचना के नये आयाम, कृष्णदत्ता, पृ. 300
131. आलोचना, जनवरी मार्च 74, आज की सामाजिक स्थिति और लेखक की सत्ता, गंगाप्रसाद विमल पृ. 26
132. सापेक्ष, परिसंवाद, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 290

o-o-o-o-o

पंचम अध्याय

त्रिलोचन की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में हो रहे परिवर्तन से वह क्षण-प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। उसकी संचेतना पर सामाजिक जीवन से जुड़े अनेकानेक परिस्थितियों- राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि का प्रत्यावर्तन दिखायी देता है। यह निर्विवाद है कि सारी परिस्थितियाँ एक दूसरे के साथ संलग्न है अर्थात उसमें अंगांगीभाव है। यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि केवल सामाजिक परिस्थितियों से ही व्यक्ति में परिवर्तन होता है। सारी परिस्थितियाँ समाज में ही अन्तर्निहित रहती है इसलिए यह कहा जाता है कि व्यक्ति समाज से प्रेरित और प्रभावित होता रहता है। मानव के जीवन का विकास, उत्थान या पतन पूर्णरूपेण सामाजिक जीवन के अधीन रहता है।

हम कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य के द्वारा साहित्यकार समाज में घटित होनेवाली क्रियाओं को कलात्मक रुप से उद्घाटित करता रहता है। पुनः प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या हर व्यक्ति साहित्यकार बन सकता है? क्योंकि

जीवन की स्थितियों से तो हर व्यक्ति प्रभावित होता ही रहता है। लेकिन यह निःसंशय कहना होगा कि सर्जनशीलता की प्रक्रिया में कलाकार के अंतर्मन में यह प्रभाव, जीवनानुभवों द्वारा आलोड़ित होता रहता है और अपने विशिष्ट ढाँचे में कलात्मकता के साथ वह रचना का आकार लेकर समाज के सामने प्रस्तुत करता है। यह कह सकते हैं कि व्यक्ति समाज से प्रभाव ग्रहण करके पुनः वही प्रभाव समाज को सौंपकर अपने दायित्व का निर्वाह करता है। कलाकार भी स्वयं व्यक्ति होता है लेकिन हर व्यक्ति कलाकार या सर्जनशील साहित्यकार नहीं होता।

प्रस्तुत अध्याय में ''त्रिलोचन के काव्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि'' का अध्ययन करने से पूर्व यह देखना होगा कि व्यक्ति, समाज, संस्कृति की अवधारणा क्या है? तथा प्रकारांतर से यह देखना होगा कि ऐसे कौनसे तत्व है जिसके कारण साहित्य समाज के साथ जुड़ जाता है?

5.1 व्यक्ति और समाज - स्वरूपगत विश्लेषण

'समाज' शब्द का प्रचलन हमारे व्यावहारिक जीवन में बहुतायात रूप में होता है। भारत सेवक समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज आदि शब्दावलियों से हम भली-भाँति परिचित हैं। किन्तु समाजशास्त्र में 'समाज' शब्द का प्रयोग किसी विशेष समूह या सम्प्रदाय के लिए न होकर मानव संबंधों की एक विशेष व्यवस्था का अर्थ इसमें अन्तर्निहित है।

मनुष्य सामाजिक जीवन को व्यतीत करता है इसलिए वह अन्य प्राणियों से भिन्न है। समाज में रहकर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। इसके अभाव में मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि वह अकेले रह नहीं सकता। सामाजिक जीवन मनुष्य की स्वभावगत विशेषता है। समाज की कल्पना विभिन्न क्षेत्रों में की जाती है परंतु मानव का समाज ही एक मात्र व्यवस्थित समाज है और मानव की महत्वपूर्ण निधि उसकी संस्कृति है और यही मानव को अन्य समाजों से अलगाती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों ने अपने -अपने ढंग से 'समाज' को परिभाषित एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया है, उनमें से कुछ विद्वानों के विचार द्रष्टव्य हैं-

मैकाइवर और पेज- ''समाज व्यक्ति की भौतिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और उसकी प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करता है। जन्म के साथ ही समाज भी व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। समाज मानव संबंधों का जाल है।''(1)

गिडिंग्ज '' समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबंधों

का ऐसा योग है जिसके कारण उसके अन्तर्गत सब व्यक्ति एक दूसरे के साथ संबद्ध रहते हैं।''(2)

एडम स्मिथ- '' मानव के पारस्पारिक संबंधों में बचत के कृत्रिम उपाय का नाम समाज है।''(3)

थामस हाब्स- ''मानव समाज के अपने ही अभिरूद्ध स्वभाव के परिणाम से बचने के लिए मनुष्य ने जो साधन बनाया है, उसे समाज कहते है।''(4)

गिन्सबर्ग- ''समाज व्यक्तियों के उस समूह को कहते है जो किन्हीं खास संबंधों या खास व्यवहारों द्वारा आपस में बँधें रहते हैं। जो व्यक्ति उन संबंधों तथा व्यवहारों से नहीं बँधे होते हैं वे उस समाज में नहीं गिने जाते ।''(5)

राईट- ''समाज का अर्थ सिर्फ व्यक्तियों का समूह ही नहीं है वरन् समूह में रहनेवाले व्यक्तियों के आपस में जो संबंध बनते है, उन संबंधों के संगठित रूप को समाज कहते है।''(6)

Kingsley Davis " A socity is sysytem of relations but realtions between organism, themselves rather than between cells"(7) साथ ही वे यह भी कहते है-

"All sociities whether animal or human, have certain things in common which lead to thier being classed together."(8)

John Hewitt "society, culture, social structure, power, groups, organizations is ultimately dependent on the acts of individuals Yet individuals cannot only because they acquire the capacity to do so as members of a society, which is the source of thier knowledge, languge, skills, orientation and motives."(9)

John Cuber "A society may be defined as a group of people who have lived long enough to become organised and to consider themselves and be considered as a unit more or less distint from other human units."(10)

Parsons "Society may be defined as the total complex of human realtionship in so far as they grow out of action in terms of mean end relationship, intrinsic or symbolic."(11)

Cooley "Society is a complex of forms or processes each of which is living and growing by interaction with the others, the whole being so unified that what takes place in one part affects all the rest."(12)

G.D.H. Cole "Society is the complex of organised association and

institution within the community."(13)

Leacock "Socity included not only the political relations by which men are bound together but the whole range of human relations and collective activities ."(14)

Harkins"Socitey is any permanent or continuing group of men, women and children, able to carry on independently. the process of racial perpetuation and maintenance on their own cultural level. (15)

डॉ. प्रभावती सिन्हा- ''समाज शब्द का अर्थ चाहे जिस किसी अर्थ में भी लिया जाय, मनुष्यों का वही समूह समाज का निर्माण करता है जिसका कुछ सामान्य हित हो और जो सामान्य हित सार्वजनिक हित में हो।''(16)

डॉ. शिवकुमार मिश्र -'' समाज मानव के सम्मिलित समूह को कहते है, समाज मानवों से मिलकर बना है। अत: समाज की हित चिन्ता, उसके हित साधन का अर्थ मानव के हित की चिन्ता उसका हित साधन हो जाता है।''(17)

प्रो. सिंहासनराय सिद्धेश- ''समाज व्यक्ति की समष्टि है। समाज का निर्माण मनुष्यों ने किया है। अपनी एकान्त अवस्था की समाप्ति के लिए ही उसने उसका निर्माण किया है। समाज से विलग रहकर वह उदासीनता का अनुभव करता है। वह समाज से अलग रह नहीं सकता।''(18)

जैसा कि शोधकार्य में प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में ही मैंने स्पष्ट किया कि व्यक्ति समाज में रहकर ही साहित्य या कलात्मक कृतियों की सर्जना करता है। लेकिन वह कलाकार अन्य सामान्य व्यक्तियों से अनेक मायनों में भिन्न होता है।

रघुवीर चौधरी के अनुसार ''साहित्यकार किसी का दास नहीं विचार का भी नहीं, अपना भी नहीं। वह साहित्यकार सत-चित्त-आनंद का उपासक है, आवरण भंग करनेवाला आत्म स्वरूप कर्ता है, एक ऐसा कर्ता है जो अपने आप को निमित्त से अधिक न समझे।

वे आगे कहते हैं साहित्यकार को निजत्व बोध के लिए अपने आप को सदा खुला रखना है, उन्मुख रखना है, बंध जाने से बचना है। कृष्ण का ब्रह्मचारी होना या दुर्वासा का उपवासी होना साहित्यकार के लिए एक अर्थ रखता है जो परिस्थिति में न हो कह मन:स्थिति में हो सकता है।''(19)

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि व्यक्ति समाज की इकाई है, वह समाज में रहकर स्वयं को संवलित करता रहता है और इसी के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता रहता है।

संस्कृति-स्वरूपगत विश्लेषण

'संस्कृति' शब्द संस्कार से बना है। जो संस्कार-संपन्न है, वही संस्कृति है। 'संस्कार' 'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'घम्' प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका अर्थ है- सुधारना या परिष्कार करना। व्यवहार में तीन समानधर्मी शब्दों का प्रचलन प्राप्त होता है- संस्कार, संस्कृत, संस्कृति।(20)

अंग्रेजी में संस्कृति के लिए कल्चर शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। यह शब्द प्राचीन मूल लैटिन 'कुल्तुस' से मिलता है, जिसका पर्यायवाची शब्द 'हुमैनिटस' का अर्थ मानवता अर्थात् मानवी कृतियों का बोधक है।(21)

यहाँ पर संस्कृति के संबंध में कतिपय विद्वानों के मन्तव्य प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

नरेंद्र मोहन- ''संस्कृति का संबंध मानव की अंतर्मुखी दशा है। जिस कर्म व भाव से हमारे संस्कार सुंदर बने, जिससे कृति का सौंदर्य तथा दिव्यता अधिक स्पष्टता से प्रकट हो सके, वही है संस्कृति। जो चेतना हमें उर्ध्वारोहित करती है, वही है संस्कृति। जो चेतना हमें उर्ध्वारोहित करती है, वही है संस्कृति का वैशिष्ट्य। उर्ध्वारोहण को प्रेरित करनेवाली चेतना का स्तर हर व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होता है। ठीक वैसे ही जैसे कि हर व्यक्ति की मानसिक संरचना भिन्न-भिन्न होती है।''(22)

डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा का मंतव्य है- ''संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं।''

वे आगे कहते हैं ''संस्कृति ऐसी भूषणभूत परिष्कृत कृति है जो जीवन को समग्र रुप में परिष्कृत करने की प्रेरणा प्रदान करती है। मानव के उदात्त विचार और कार्य ही उस प्रेरक शक्ति के रुप हैं। इस आधार पर संस्कृति उन उदात्त विचारों और पवित्र कार्यों की श्रृंखला को कहते हैं जो किसी देश या जाति के जीवन को गति प्रदान करते हैं।(23)

शांतिप्रिय द्विवेदी - ''संस्कृति मनुष्य के दैनंदिन जीवन को संयत और सुसंगत बनाती है। वह प्रकृति के साहचर्य में प्राण और काया को अन्विति देती है।''(24)

रामबक्ष- ''संस्कृति किसी समाज के उत्पादन संबंधों पर आधारित दर्शन, चिंतन, कला, साहित्य, विज्ञान आदि की गतिविधियों का कुल योग है। संस्कृति समाज का सार्वकालिक और सार्वभौमिक तत्व नहीं है, बल्कि वह मानव-इतिहास के साथ-साथ विकसित हुई है। मनुष्य अपनी मानवीयता की प्राप्ति और प्रकृति पर अधिकार कायम करने के लिए तथा अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए उत्पादन करता

है। वह जिस पद्धति से उत्पादन करता है, उसी के अनुरूप उसके सामाजिक संबंध बनते हैं। यही वह आधार है जिससे संस्कृति पैदा और विकसित होती हैं। इसमें नैतिक, राजनैतिक, शैक्षिक, साहित्यिक, धार्मिक-सभी विचारधारात्मक प्रक्रियाएँ शामिल हैं।''(25)

तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी - ''संस्कृति का निर्माण करनेवाले व्यक्तियों का जीवन ही इस संस्कृति का दर्पण है। मानवता का विकास ही यथार्थ में संस्कृति है।''(26)

शिवदत्त ज्ञानी - ''संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसे सुधरा हुआ, उँचा, सभ्य आदि विशेषणों से आभूषित किया जा सकता है।''(27)

डॉ. सावित्री चन्द्र 'शोभा' - ''संस्कृति एक मनुष्य की थाती नहीं है, अपितु उसमें सम्पूर्ण समाज की भौतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक सभी प्रकार की उपलब्धियाँ, विचारधाराएँ, मान्यताएँ, विश्वास और उद्‌देश्य निहित है। वह मात्र जाति विशेष को गत-जीवन से ही नहीं, वर्तमान परिस्थितियों एवं भविष्य की आकांक्षाओं को भी अपने में समाहित रखती है। संस्कृति के मुख्यत: दो रूप है- प्रथम भौतिक उन्नति या उपलब्धि के रूप में जिसे 'सभ्यता' की संज्ञा दी जाती है और जो किसी समाज की व्यावहारिक उपलब्धियों का परिणाम है। उसमें जाति के आचार-विचार जिनमें उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान एवं विविध कलाओं की उन्नति आदि का समावेश होता है।''(28)

डॉ. द्वारिकाप्रसाद गोयल - ''यह सामाजिक जीवन का ऐसा सर्वमान्य तथ्य है जो न केवल व्यक्ति के व्यवहार का एक अंग है अपितु व्यक्ति और व्यक्ति के, व्यक्ति और समूह के, पारस्परिक व्यवहारों को प्रतिमानित करने की केन्द्रीय शक्ति है। इस भांति संस्कृति एक सार्वभौमिक सामाजिक प्रत्यय है जिसमें न केवल भूतकाल ही अर्जित विलक्षणताएँ सम्मिलित हैं अपितु साथ ही साथ वर्तमान की सभी मानवीय क्षमताएं भी इसमें अन्तर्भूत है।''(29)

यशदेव शल्य - ''संस्कृति जीवन की समग्रता से संबंधित है। इसलिए सभ्यता भी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष प्रमाणित होती है। सभ्यता, समाज, साहित्य, कला, दर्शन, धर्म, आध्यात्मिकता, नैतिकता, प्रेम, सौंदर्य और भाषा मानव की अर्थ-पूर्ण रचनाएँ है। इन विभिन्न रचनाओं को सांस्कृतिक वृत्तियाँ भी कहा जाता है क्योंकि सांस्कृतिक चेतना के आकार है।''(30)

श्री राजगोपालचारी ने कहा है - ''किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति

है।''(31)

विश्वभर सहाय प्रेमी का संस्कृति के संदर्भ में अभिमत हैं - '' साधारण व्यक्ति के लिए संस्कृति का अर्थ उत्तम कर्म मे लीन रहना है ।''(32)

बलदेव राज शर्मा - '' जहाँ सभ्यता का बाह्य जीवन से संबंध है वहाँ संस्कृति का संबंध आंतरिक जीवन से है। संस्कृत पुरुषों, तत्वदर्शी पुरुषों के तत्व को स्पष्ट करनेवाले अभिव्यक्त विचार, श्रवण, मनन, तथा निदिध्यासन से संस्कारात्मक होते हैं। अतः ऐसे विचारों की परंपरा को संस्कृति कहते हैं अथवा इनसे संस्कार होता है इसलिए संस्कृति कहते हैं।''(33)

शंकर दयाल सिंह - ''संस्कृति मानवीय गरिमा और सांस्कृतिक सौष्ठव की संवाहिका है।''

वहीं एस.एम. चाँद का मानना है कि सभ्यता मानव जीवन का बाह्य स्वरूप है तो संस्कृति उसकी आत्मा।''(34)

देवदूत विद्यार्थी - ''सभ्यता जहाँ जीवित रहने की योग्यता के अर्थ में उपयोगिता का द्योतक है, वहाँ संस्कृति मनुष्य की पूर्णता की दृष्टि से मूल्यों की खोज है।''

डॉ. देवराज - ''संस्कृति का क्षेत्र ऐसा है जिससे सामाजिक अनुभव, ज्ञान आदि का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण और सामाजिक जानकारी संचित करने का प्रयत्न किया जाता है। जहाँ यह सत्य है कि सांस्कृतिक विशेषताएँ व्यक्तित्व में आश्रित होकर रहती है, वहां यह भी मानना पड़ेगा कि सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रतिमान एक विशेष ढंग से जातीय चेतना में रहते हैं और उसकी सम्पत्ति होते हैं।''(36)

डॉ. सिद्धेश्वरनाथ शर्मा - ''संस्कृति और समाज अभिन्न हैं। समाज के जीवन का व्यापक धर्म ही संस्कृति कहलाता है। समाज गुणों और अवगुणों दोनों की समष्टि का नाम है किन्तु संस्कृति के अंतर्गत सृजनात्मक विचारधारा को ही मान्यता प्राप्त है।''(37)

विभिन्न विदेशी विद्वानों ने भी 'संस्कृति' की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है जिनमें से कुछ प्रमुख हैं-

Tylor - "Culture is that complex whole which includes knowledge, belief at morals law, custom and any other capabilities acquired by man as a member of Society."(38)

A.L.Krober - "Culture is the special and exclusive product of man and is distinctive in quality in the cosmos"(39)

J.S. Slotkin - " A culture is the body of customs found in society and any one acts according to these customs is a participant in the culture.

From a biological view point, culture is the means by which a society generally follow the same body of customs."(40)

Walter - " Culture is the learned ways of acting and thinking which are transmitted by group members to other group members and which provide for each individual readymade and tested solution for vital life problems. While the radiments of the transference of aequired habits from old to young may be seen in some of the higher animals only in man three is the scope of such transmission so broad as to constitute the major factor in his life adjustment. The culture may be thought of as a highly distinctive and important human attribute, but it is essentially a group attribute and never the invention of an issolated individual."(41)

डॉ. नगेंद्र के अनुसार - ''संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग द्वेषो में परिमार्जन हो जाता है।''(42)

संस्कृति के द्‌वारा मानव संस्कार संपन्न होता है। संस्कृति रहित मानव की कल्पना करना संभव नहीं है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ मानव का विकास होता रहता है। संस्कृति की जड़े बहुत गहराई के साथ पैठी रहती है अत: कहा जा सकता है कि संस्कृति का मानवीय सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

5.2 व्यक्ति, समाज और साहित्य का अन्त:संबंध

जैसा कि व्यक्तियों के समूह को हमने समाज की परिभाषा दी है, उसी के अनुरुप विभिन्न विद्‌वानों ने यह सिद्‌ध किया है कि निरंतर चल रहे चक्र के समान व्यक्ति, समाज और साहित्य का चक्र क्रमश: निरंतर रुप से चलता रहता है। अध्याय के प्रारंभ में ही इनके अन्त:संबंधों की चर्चा कर चुकी हूँ। इसलिए यहाँ केवल विभिन्न विचारकों के विचार प्रस्तुत कर रही हूँ ।

डॉ. रामविलास शर्मा- 'ऐसा नहीं होता कि समाज के रथ में लेखक पीछे बंधा हुआ हो और उसके पीछे-पीछे लीक पर घसीटता हुआ चलता है। लेखक सारथी होता है जो लीक देखता हुआ साहित्य की बागडोर संभाले हुए उसे उचित मार्ग पर ले चलता है। प्रतिकूल भूमि पर भी वह नई लीक बनाता है।''(43)

डॉ. नामवर सिंह - ''साहित्य मानव के संपूर्ण व्यक्तित्व की वाणी है, अविभक्त जीवन की इकाई का प्रतिबिम्ब है।''(44)

रामधारी सिंह दिनकर - ''श्रेष्ठ काव्य वह है जिसका कोई न कोई सामाजिक उपयोग हो जो जीवन में पुण्य को बल और पाप को ऱ्हास देता हो।''(45)

नंदकिशोर नवल के अनुसार- ''लेखक के परिवेश और रचाना का संबंध

अत्यंत जटिल होता है इसलिए रचना लेखक के परिवेश की प्रतिकृति नहीं होती वह स्वयं एक कृति होती है।''[46]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर -''वसंत के एक शुभ प्रभात के लिए शुभ्र चमेली सृष्टि के किस अन्त:पुर की अपेक्षा करती रहती है, वर्षा की मेघस्निग्ध आर्द्रसन्ध्या के लिए एक शुभ्र जुही वर्ष भर अपने पूर्व जन्म को बिताती है। साहित्य भी उसी तरह अवसर के बीच जन्म ग्रहण करता है। इसके लिए बहुत सा आकाश, बहुत सा सूर्यलोक, बहुत सी श्यामल भूमि की आवश्यकता है। जिसप्रकार माधवीलता कार्यालय के पक्के फर्श को फोड़कर बाहर प्रकट नहीं हो पाती, उसी तरह साहित्य भी प्रकट नहीं होता।''[47]

नंददुलारे वाजपेयी - ''साहित्य सामाजिक इतिहास का अंग नहीं है, वह उसका स्मारक है। समाज और इतिहास के बदल जाने पर भी स्मारक नहीं बदला करता। फिर साहित्य समाज की श्रेष्ठतम संस्कृति का द्योतक है- मानवता की स्थायी निधि है। इन सब के अतिरिक्त वह एक स्वतंत्र कलावस्तु है। वाणी और मानव-भावना का साकार वैभव है।''[48]

बाबू गुलाबराय के अनुसार- ''जिस प्रकार साहित्य मारकाट और क्रांति के लिए उत्तरदायी है, उसी प्रकार साहित्य सुख, शान्ति और स्वातंत्र्य के भावों का भी कारण है।''[49]

सावित्री चन्द्र 'शोभा' - ''समाज शास्त्र के अनुसार समाज मनुष्यों का एक समूह है। कई समूहों का एक बृहद समुदाय है। यह मनुष्यों के आपसी संबंधों का पुंज है। अनेक मनुष्यों की जीवनावधि से सम्बन्धित होने के कारण उनके आपसी जटिल संबंधों के इस पुंज को 'समाज' की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें प्रत्येक मानव अपने आत्म-विस्तार, आत्म-संरक्षण और आत्मोपलब्धि का प्रयास करता हुआ भी एक व्यवस्था में रहता है।' आगे वे कहती हैं - 'किसी भी समाज को समझने के लिए उसके विभिन्न अंगो-व्यक्ति, परिवार, समूह, वर्ग, वर्ण में परखना होगा। साथ ही सामाजिक अन्त:क्रियाओं तथा उनमें व्याप्त विभिन्न आध्यात्मिक-आर्थिक-नैतिक-धार्मिक-राजनैतिक चेतना का अनुशीलन भी आवश्यक है।''[50]

डॉ.प्रमोद सिन्हा - ''समाज के बिना साहित्य और साहित्यकार की स्थिति शून्य है, और साहित्यकार के बिना समाज का संश्लिष्ट रुप। ये बहुत कुछ अन्योन्याश्रित कहे जा सकते हैं।''[51]

भगवतीचरण वर्मा - ''साहित्य का सृजन तो समाज द्वारा प्रेषित नहीं है, लेकिन साहित्य को समाज ही ग्रहण करता है। कभी-कभी तो समाज साहित्य का प्रेरक तत्व दिखने लगता है साहित्य का क्षेत्र तो भावनात्मक है। लेकिन उसकी

बौद्धिकता और सामाजिकता उनके साहित्य को अमरता प्रदान करती है।''(52)

डॉ.राजनाथ शर्मा - ''साहित्य समाज कीचेतना में सांस लेता है। वह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने-बाने से बुना रहता है।''(53)

महादेवी वर्मा - ''माता जिस प्रकार आस्था के बिना अपने रक्त से संतान का सृजन नहीं कर सकती, धरती जिस प्रकार ऋतु के बिना अंकुर को विकास नहीं दे सकती, साहित्यकार भी उसी प्रकार गंभीर विश्वास के बिना अपने जीवन को जन में अवतार नहीं दे सकता।''(54)

डॉ. रवीन्द्रनाथ दरगन - ''साहित्य में युग का प्रतिबिंब ही झलकता है। स्थूल आकार नहीं.. साहित्य केवल सामायिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन मात्र ही नहीं होता और न ही ऐसा साहित्य स्थायित्व प्राप्त करता है।''(55)

डॉ. सत्येन्द्र - ''साहित्य का युग से घनिष्ठ संबंध होता है। युग की प्रवृत्ति और प्रक्रिया की प्रतिक्रिया साहित्य में बड़े वेग से होती है। अत: युग का प्रतिबिंब भी साहित्य में मिलता है।''(56)

डॉ.प्रेमचंद विजयवर्गीश - ''साहित्य समाज में जन्म लेता है और समाज समय की इकाइयों में जीता है। इस प्रकार साहित्य एक ओर अपने समाज से संबंधित होता है और दूसरी ओर उस समाज के युग विशेष से। साहित्य में व्यक्त विचारधारायें भी एक ओर समाज से तो दूसरी ओर युग विशेष से संबंधित होती है।''(57)

बाबू गुलाबराय के अनुसार- ''जिस प्रकार बेतार को तार का ग्राहक यंत्र आकाश मंडल में विचरती हुई विद्युत तरंगो को पकड कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने समय के वायुमंडल में घूमते हुए विचारो को पकडकर मुखरित कर देता है।''(58)

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - ''साहित्य की मौलिकता का प्रतिमान समाज की मंगल दृष्टि से अनुप्राणित, परंपराप्राप्त शास्त्र दृष्टि से सुसंस्कृत और लोक-चित्र में सहज ही सुचिन्तित तत्वों को सरल रुप में प्रतिफलित करने में समर्थ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। यह व्यक्तित्व जितना उज्ज्वल और शक्तिशाली होगा साहित्य की मौलिकता उतनी उज्ज्वल और दृप्त होगी।''(59)

निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति समाज के दृवारा प्रभावित एवं प्रेरित होते हुए स्वयं को पुष्ट करता है और इस पुष्टता को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करके पुन: अपनी धरोहर समाज को सौंप देता है।

5.3 त्रिलोचन की सामाजिक दृष्टि

नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की भांति त्रिलोचन ने अपने गाँव के सामाजिक परिवेशगत जीवन को भली-भांति जिया है। उनकी अनुभूतियां व्यक्तिगत एवं लोक-जीवन के विविध चित्र प्रस्तुत करती हैं। दरअसल त्रिलोचन के स्वयं के भोगे हुए जीवन के यथार्थ इतने हैं कि उन पर ही पुस्तक का सर्जन किया जा सकता है। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का सामाजिकीकरण किया है।

"उनके पास आपबीती ही इतना है कि वही सब कह लिया जाय तो कहने को अपर्याप्त है। हाँ, यह अवश्य है कि वे इस सामग्री को तब तक काव्य की सामग्री नहीं बनने देते जब तक उनका सामाजिकीकरण न हो जाए।"

जब रचनाकार स्वयं के दु:ख में सबका दु:ख देखने लगता है तो उसकी आत्मा का विस्तार हो जाता है और तब वह व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि का दर्शन करने लगता है। इसी को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'चित्त की मुक्तावस्था' का नाम दिया है।

मुझको जीवन की मुद्राएँ घेर रही है
जल स्थल नभ में प्राणो की अगणित
धाराएँ प्रवाहमान हैं (60)

प्रगतिशील विचारधारा का रचनाकार सामाजिक यथार्थवाद को निश्चित रुप से बल देगा, सांसारिक समस्याओं के प्रति सचेष्टता होने के कारण वह सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता है।

प्रो. नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार, "त्रिलोचन की सामाजिक सहानुभूति स्पष्ट है किन्तु कवि के रुप में वह जिस माध्यम से उसे ग्रहण करता है, उसके समानधर्मी दूसरे कवि नहीं करते। त्रिलोचन की कविताओं का विषय जो कुछ हो, वह कविता के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है।"(61)

समाज में जो कुछ अच्छा बुरा घटित होता रहता है, कवि अपनी संवेदनाशीलता के कारण बड़ी ही गहराई के साथ उसे प्रकट करता है। इनकी संवेदना केवल सहानुभूति स्तर पर नहीं हैं, अपितु अभिव्यक्ति के धरातल पर भी प्रामाणिक एवं सजीव है।

त्रिलोचन की सामाजिक दृष्टि के अंतर्गत व्यक्ति और समाज का अन्त:संबंध, पारिवारिक जीवन, धार्मिक पाखंड, बेरोजगारी, युगीन(अन्य) समस्याओं के प्रति सचेष्टता, नारी समस्या, राष्ट्रीय स्वर की महत्ता, आर्थिक समस्या, आदि तत्वों का अध्ययन किया गया है।

व्यक्ति और समाज का अन्त:संबंध

सामाजिक जीवन की पहचान उसके अन्तर्गत रहनेवाले व्यक्तियों के क्रिया कलापों से की जाती हैं। रचनाकार की खास पहचान यह होती है कि वह इन क्रिया-कलापों की वैशिष्टपूर्ण बातों को संवेदनात्मक एवं कलात्मक वाणी प्रदान करता है।

त्रिलोचन लिखते हैं-

ध्वनिग्राहक हूँ मैं, समाज में उठनेवाली
ध्वनियाँ पकड़ लिया करता हूँ
इसपर कोई अगर चिढ़े तो उसकी बुद्धि
कहीं है खोई
कहना यही पडेगा. (62)

एक रचनाकार होने के नाते कवि कहीं भी अपनी रचनाधर्मिता के प्रति स्वयं के दायित्व को भूलता नहीं है। इसलिए लेखन कार्य में निरत होते हुए वह एक समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है- इसे विस्मृत होने नहीं देता। व्यक्ति और समाज के अंतर्द्वंद्वों को उद्घाटित करते हुए कवि काल्पनिक लोक में विचरण नहीं करता।

त्रिलोचन कहते है - ''कवि जब व्यक्ति होता है, नितांत अकेला होता है तब भी समाज का अंग होता है। कवि अपनी कविता में जैसा चित्रण करता है उसके अनुरूप ही उसके व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। यदि आप लेखक है तो आपका भी सामाजिक सरोकार है। मैं यह मानता हूँ कि केवल कल्पना से कोई लेखक नहीं बनता।''(63)

समाज के द्वारा मिली अनुभूतियों को कवि यथार्थवादी ढंग से प्रकट करते हुए कहता है-

यह दुनिया है, यहाँ कौन किसका है,
लगकर जीना है, तो यहाँ कुछ न कुछ होगा करना,
भीड़ भाड़ यह, जगह कहाँ, सूने में जगकर
काम नहीं चलता।(64)

सामाजिक जीवन के प्रति कवि की यह व्यक्तिगत अनुभूति रही है कि उसने जिन सामाजिक समस्याओं को गंभीरता और गहराई से लिया उसपर भी उसे लोगों का उपहास झेलना पड़ा, स्थितियों को किसी ने गंभीरता से नहीं लिया।

रंग कुछ ऐसा रहा और मौज कुछ ऐसी रही
आपबीती भी वह मेरी वह समझे कोई वाद था।(65)

इसके बावजूद कवि बिलकुल ही हताश, निराश न होते हुए सामाजिक जीवन के विभिन्न रंगों और अंगों को उकेरता है क्योंकि कवि के रुप में उसके लिए इससे हटकर और कोई अलग अस्मिता नहीं हो सकती।

त्रिलोचन अभाव भरी जिन्दगी को रंगीन बनाते हुए संघर्ष पथ पर आगे बढ़ते रहें। इन्होंने अपनी कविताओं में सामाजिक जीवन के विभिन्न रंगों को दर्शाया है- इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. गोरेलाल चंदेल लिखते हैं - ''सामाजिक विकृति और सामाजिक विडंबनाओं के लहरों के बीच सारंगी से जीवन-राग बिखराते हुए चैती का कवि उन तमाम शक्तियों की तलाश करते हुए नजर आते हैं जो जीवन को पूरी संजीदगी और संवेदना के साथ उकेरते हैं। ऐसे ही कलाधर्मी और रचनाधर्मियों को वे संसार के कोने कोने से तलाश कर उनके साथ सार्थक बहस करना चाहते हैं जिससे सामाजिक जिंदगी के विकासगामी तत्वों पर खुली चर्चा हो सकें।''(66)

जीवन गतिशील, विकासशील और परिवर्तनशील है- यह अखंड सत्य होने के बावजूद कवि की दृष्टि से हमारे जीवन में सकारात्मक रुप से परिवर्तन लाने के लिए हमें स्वयं प्रयास करना होगा, कोई अन्य बाहर से आकर हमारी समस्याओं को नहीं सुलझाएगा। इसलिए हमें हार नहीं माननी चाहिए, कवि का प्रश्न है-

हैं मानव इतने सारे
क्यों ये असहाय हुए
अलग-अलग हारे।(67)

त्रिलोचन का मानना है कि यदि व्यक्ति स्वयं को समाज में स्थापित करना चाहता है तो उसे विरोधी स्थितियों का ड़टकर मुकाबला करना होगा। साथ ही कवि मनुष्य के आत्मिक प्रेम के समक्ष धन-दौलत को तुच्छ समझता है।

धन की उतनी नहीं मुझे जन की परवा है
जितनी जो मुझ से खुल कर मन से मिलता है
मैं उसका वशवर्ती हूँ इससे खिलता है
मेरे प्राणों का शतदल एक ही दवा है।(68)

मलयज का मानना है- ''त्रिलोचन के लिए रचना किसी तनाव से मुक्त होने में नहीं, बल्कि जीवन का कुछ खोजने, पाने और फिर उसे बाँट देने में होती है। कला त्रिलोचन के लिए एक ऐसा आईना है जिसमें वे अपनी और दूसरों की अनुभूतियों के मर्म को सजीव थिरकते हुए रुपों में दिखा सकें।''(69)

कवि यदि कविता के माध्यम से स्वयं के विचारों को सम्प्रेषित करना चाहता हो तो उसे प्राथमिक स्तर पर रचनाकार और पाठक के बीच सह-अनुभूति या सहृदयता को लेकर चिंतन करना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हो पाता है तो रचना निर्जीव

बन जाती है। अतः त्रिलोचन बड़े-बड़े आख्यानात्मक वक्तव्यों की अपेक्षा सहज रुप में प्रायः छोटी-छोटी रचनाओं के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करते हैं-

मैं तुम से, तुम्हीं से, बात किया करता हूँ
और यह बात मेरी कविता है
कविता में अपने साथ देखो मैं कहा हूँ
नया मोड़ सामने है जीवन जिस ओर चले उस पर है,
अब पुरानी दीवारें गिरती हैं और नई उठती हैं-(70)

इन दीवारों के उठने और गिरने की प्रक्रिया में कई बार ऐसा लगता है कि हाथों से कुछ छूट रहा है, शायद वह जीवन हो या काल हो, लेकिन जीवन को जीना तो नियति है, जीवन से जुड़ते हुए अन्यान्य उपादानों से जुड़कर कई बातों का निर्वाह करना पड़ता है।

जो कल भरी भरी लगती थी अब काँटे का
आच्छद पहने इस गुलाब की टहनी ही रह
गई, कह गई बिन बोले जैसे-आभारी
हूँ मैं,पाया है मैंने अपने बाँटे का -(71)

अपने बाँटे का काला-पीला पीते-पीते कवि कई बार हताशा-पीड़ा में अकेलापन महसूस करता रहता है लेकिन यह कविता के माध्यम से पुनः कविता में (जीवन की जीवंतता) लौट आता है और प्रकारांतर से समाज के साथ जुड़ जाता है।

पारिवारिक जीवन

त्रिलोचन की कविताओं में स्वस्थ सामाजिक जीवन के अंतर्गत पारिवारिक दुःखद एवं सुखद स्मृतियों और रिश्ते-नातों का बखूबी चित्रण किया गया है। त्रिलोचन का पारिवारिक जीवन ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ है। दादी, माँ, भौजी, अवतरिया, नगई महरा आदि व्यक्तित्व व्यक्तिगत स्तर पर त्रिलोचन के साथ जुड़े हुए हैं, इसलिए मानो वे सारे चरित्र उनके परिवार के एक सदस्य है। इन चरित्रों के द्वारा त्रिलोचन ने जहाँ एक ओर समाज की विसंगतियों को दिखाया है वहीं दूसरी ओर पारिवारिक संबंधों की दृढ़ता की ओर इंगित किया है।

देवीशंकर अवस्थी के अनुसार, ''आज की नयी कविता में पारिवाकि चित्र विशिष्ट भर नहीं दुर्लभ भी है। नए काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ और असीम संभावनाएँ है, पर कभी-कभी ऐसा लगता है कि नया कवि सचमुच ही परिवार और

समाज से उखड़ गया है। समाज और परिवार के विविध संबंध जैसे उसके भाव जगत से दूर पड़ गये है।'' (72)

1970-80 के आस-पास पहुँचने के बाद भी त्रिलोचन की काव्यदृष्टि स्वस्थ पारिवारिक लह्मों को चित्रित करने में निमग्न है। अतः कह सकते है कि उनकी भावधारा वास्तव में एक अलग दिशा में प्रवाहित होती है। जहाँ आज व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों में घिरकर हम एक परिवार में रहकर भी अकेले द्वीप की तरह जिंदगी बिताते हैं, ऐसे में परिवार के संबल को त्रिलोचन प्रधानता देते हैं, साथ ही यदि येन-केन-प्रकारेण समाज में सुखद चित्र प्राप्त नहीं होता है तो उस वास्तविकता और कटुता को भी व्यक्त करते हैं।

मेले में सभी कितने अलग-अलग होते हैं
परिवार में भी राग व्यक्ति का अलगाया रहता है(73)

भौतिक एवं पूँजीवादी व्यवस्था के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार की परंपरा टूटती जा रही हैं। मीडिया के प्रचार-प्रसार ने हमारी भावनात्मक संवेदना को भी क्षति पहुँचाई है। इस कटु वास्तविकता का ऊहापोह करते हुए त्रिलोचन की कविताओं में विडंबना, विसंगति, तनाव, बीभत्सता आदि तत्व नहीं आ पाते। एक साथ रहने के बावजूद एक दूसरे के साथ किसी भी प्रकार का मानसिक जुड़ाव न रखते हुए जीवन-यापन कर रहे कुंठित, दमित, रूग्ण लोग त्रिलोचन के केंद्रबिंदू नहीं है। परंतु जहाँ तक रिश्ते-नातों का निर्वाह करने का प्रश्न है, त्रिलोचन स्वयं को इस मामले में दुर्भाग्यशाली मानते हैं, उन्हें कई दु:खद अनुभव मिले हैं। जहाँ तक त्रिलोचन की कविताओं का संबंध है वे मूलतः उनके जीवनानुभवों की सहज अभिव्यक्ति हैं।

ड़र लगता है जीवन में उनसे जो अपने
होते हैं, अपनेपन का ज्ञापन करते हैं
भावों और अभावों का मापन करते हैं।(74)

ऐसे परिवेश से पीड़ित होकर ही त्रिलोचन दुबारा अपने जीवनानुभवों का पिष्टपेषण करते हुए पीछे मुड़कर देखते हैं और ग्रामीण संस्कृति की सरलता और सहजता में विमुग्ध होकर वहाँ पत्नी, दादी, माँ, भौजी के साथ निभाए गए संबंधों को याद करके कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

भौजी आज नहीं है, जाता हूँ, आता हूँ,
पीछा करते कहाँ किसी को अब पाता हूँ!(75)

जीवन सिंह लिखते हैं - ''त्रिलोचन के गाँव में आदमी-आदमी का घुलना-मिलना है, उसकी पारस्परिकता और पारिवारिकता है और वह प्रकृति है जो मनुष्य के सहज संबंधों के लिए हर युग में जरूरी है।''(76)

वस्तुत: कवि ने जिस मानवीय संवेदनात्मक अनुभूति के साथ पारिवारिक संबंधों का जिक्र अपनी कविताओं में किया है, उनका वह स्वरूप आज हमें नहीं दिखाई देता। समकालीन कविता के कुछ रचनाकारों ने कहीं-कहीं पारिवारिक संवेदनाओं को बड़ी संजीदगी से पकड़ा है लेकिन इनमें त्रिलोचन जैसी सादगी और मन को छू लेनेवाला भाव प्राय: व्यक्त नहीं होता। हमें चाहिए कि हम मनुष्य के नाते मानवीय धरातल पर उनकी कविताओं में प्राप्त होनेवाले रिश्तों के अन्त:संबंधों की पहचान और परख करें। तब कहीं जाकर हम समझ पाएंगे कि यदि वे संबंधों के बिखराव को भी दर्शाते है तो क्यों?

आजकल का ढंग ही विचित्र है
हमारे घर
जितने ही निकट निकट होते हैं
उतने ही दूर दूर
हमारे मन
होते हैं -(77)

तीन-चार वर्ष की चित्रा जांबोरकर के प्रति अनायास ही कवि के मन में वात्सल्य भाव जगता है। क्योंकि वह संबंधों की निर्मलता, निष्कलंकता को अधिक महत्व देता है। यह हमारी युगीन आवश्यकता है।

अत: कह सकते है कि त्रिलोचन की कविताओं में पारिवारिक जीवन के चित्रण के अंतर्गत अनेक घरेलू लहमें प्राप्त होते हैं।

धार्मिक पाखंड

आज 21 वी सदी का भारतीय समाज धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त नहीं हुआ है। रुपकुँवर एवं मध्यप्रदेश की बीभत्स घटनाएँ सती-प्रथा की कहानी को दुहरा रही है। ग्रामीण जीवन में पता नहीं कितने लोग धार्मिक आडंबरों के शिकार बन रहे हैं। निरक्षर जनता की बात तो अलग ही है, बुद्धिजीवी एवं राजनेता भी इसकी गिरफ्त में है।

कवि त्रिलोचन अपनी कविता में आवाज बुलंद करते हुए कहता है-

धर्म-विनर्मित अंधकार से लड़ते-लड़ते,
आगामी मनुष्य, तुम तक मेरे स्वर बढ़ते(78)

''कविता में व्यक्त उनकी रुचियाँ नितांत स्थानीय, किसानी और ऐसी जनपदीय है जो पहले कभी व्यक्त नहीं हुआ। गरीब कल हुए मगर अपने जातिधर्म

में निहित छोटी जातियों के चरित्र, स्थान, समस्याएँ, देशकाल भी व्यक्त नहीं हुए। त्रिलोचन उसी 'आत्मस्थ' जन के कवि है उसी अखंड अनुराग के कवि हैं जो स्थानीयता में रहता है।''(79)

त्रिलोचन की दृष्टि में जो परंपराएँ अतीतोन्मुख हो चुकी है, उनको वे गालित करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। परंपरा अगर संस्कृति से जुड़ी हुई है तो वह ग्राह्य है लेकिन ऐसी परंपरा जो रुढ़िवादिता में परिवर्तित हो जाए, वह त्याज्य हैं।

त्रिलोचन धार्मिक आडंबर पर प्रहार करते हुए लिखते हैं कि धार्मिक अवसरों पर पुण्य बटोरने के लिए एक हजार आठ स्वामी को भोजन दिलाया जाता है, वे हिलती हुई तोंद से डकार लेकर चले जाते हैं, क्या यह वास्तव में पुण्य बटोरना हुआ? ऐसे अवसरों पर उन्हें कबीर की याद आती है। ब्राह्मण को तुकारनेवाला वह काशी का जुलहा था जिसने धार्मिक आडंबर, मूर्तिपूजा आदि का विरोध करके केवल मानव मात्र को महत्वपूर्ण माना और उसके अच्छे जीवन की कामना की।

त्रिलोचन सामाजिक जिंदगी से कटे हुए साधु संतों की परंपरा को अस्वीकार करते हैं। 'सारनाथ' कविता में स्पष्ट होता है कि अब सारनाथ नागरिकों का विहार स्थल बन गया है। त्रिलोचन को धार्मिकता के नाम पर होनेवाले बाह्याडंबर के प्रति तीव्र रुप से घृणा है।

'बाराहावतार' के द्वारा ज्ञात होता है कि हम नाम मात्र के लिए केवल परंपरा का अंधानुकरण करते हैं, लोगों में यह भाव बिलकुल नहीं रहता कि ईश्वर के प्रति समर्पित दृष्टिकोन होना चाहिए। इसलिए कवि कामना करता है कि समाज के द्वारा इसका विरोध किया जाए-

आज जो तुम्हारी बातें हैं बस,
बातें जो पीढियों की कालावधि लाँघकर
मेरे पास आई है
इनका पहनावा अब पुराना पड़ गया है
कानों को खटकती है इनकी आवाज(80)

'नगई महरा' कविता जातिगत संकीर्णता की दृष्टि से एक बढिया उदाहरण है।

''बाह्यत: इस कविता के मंच पर कुछ भी नाटकीय या महत्वपूर्ण घटित होता हुआ नहीं दिखायी पड़ता। पर सीधे-सपाट शब्दों के पीछे एक समूची दुनिया है। जहाँ बिना किसी घोषणा के चुपचाप एक पूरा युद्ध लड़ा जा रहा है- बहुत कुछ होरी के जीवन-युद्ध की तरह।''(81)

कवि का मानना है कि आज-कल धर्म बाह्याडंबर का विषय है, श्रद्धा की भावना अब रही नहीं। कवि कहता है-

सबको बहकाया है, श्रद्धा
प्रणत हो गया भक्त, कहा, ''स्वमीजी, भोजन
रुचि का, हुआ न होगा. हम वैसा आयोजन
कहाँ कर सके. अजी माल था, तुष्ट हूँ यहाँ-(82)

जीवन सिंह के अनुसार, ''वे परंपरा से अलगाव के साथ लगाव रखते हैं और लगाव के साथ अलगाव। कोई भी परंपरा न तो पूरी तरह वर्तमान हो सकती है और न ही कोई वर्तमान, पूरी तरह परंपरा बन सकती है। दोनों ही काल के भिन्न-भिन्न चरण है, दोनों एक दूसरे में श्रृंखला की कड़ियों की तरह गुँथे हुए। त्रिलोचन की काव्य राह दोनों की पृथकता में नहीं, एकता में है। इस श्रृंखला में एक नहीं, अनेक कड़ियाँ जुड़ी हुई है।''(83)

'फेरू' कविता के माध्यम से कवि धार्मिक रुढ़ियों के दूसरे पक्ष को रुपायित करता है। फेरू कहार है, ठकुराइन के साथ कलकत्ते में रहकर वापिस आने के बाद भी यही विज्ञापित किया जाता है कि वह काशीवास करके आयी है। इसके माध्यम से कवि निम्नजातियों में धार्मिक मान्यताओं में हो रहे परिवर्तन को संक्षेप में व्यंजित करता है। 'नगई महरा' हो या 'कहार' उसने अपनी जातियों की व्यवस्था के विरोध में जाकर काम किया है। यह वास्तविकता है कि जहाँ ज्यादा बंधन ड़ाले जाते हैं, व्यक्ति उतनी ही व्याकुलता के साथ उससे उन्मुक्त होने के लिए उहापोह करता है और कई बार धर्म के आवरण में इसे ग्राह्य मान लिया जाता है। कवि कहता है-

ठकुराइन तो बरस बिताकर
वापस आई
कहा उन्होंने मैंने काशीवास किया है
काशी बड़ी भली नगरी है
वहाँ पवित्र लोग रहते हैं
फेरु भी सुनता रहता है।(84)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि जिसे हमने धार्मिकता के नाम पर महत्व दे रखा है वही धार्मिकता कभी-कभी अपने जीवन के गोपनीय रहस्यों को छिपाने में भी कारगर सिद्ध होती है। ग्राम्य जीवन में प्राय: धार्मिकता के द्वारा ही बंधनों से मुक्ति पाने के मार्ग खोजे जाते हैं। कवि बडे ही विरोधी स्वर को अपनाते हुए बाह्याडंबर के प्रति विद्रोही दृष्टिकोन रखता हैं-

अगर मैं तुम्हारी बात न मानू
खुलकर विरोध करू
कहूँ यह झूठ है
तो तुम क्या करोगे- (85)

कवि को यह स्वीकार नहीं है कि जब समाज में बदबूदार घिनौने कीड़े रेंगते हों, सडाँध भरी हो तो हम केवल भागवत का पारायण करने के बहाने बाह्याड़ंबर करें।

बैठ घूर पर किया भागवत का पारायण
काम क्या किया- शिव शिव नारायण नारायण(86)

'मूर्तिकार हो दक्ष विधाता' कविता में कवि ईश्वर को कोसता है कि तुमने इतना बुरा समाज क्यों बनाया? तुम्हारी रचना इतनी भयंकर क्यो है? हम तो विनाश की ओर जा रहे है। सारे भेद-भाव दूर हो इसलिए हमें चाहिए कि हम आपस में मिलजुलकर रहें। 'वह मेरा भाई है' कविता में कवि यह खेद प्रकट करते हुए कहता है कि कोई मरे या जिए किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता, यह आज के समाज की कलाकारिता है कि कौन किसको किस ढंग से मारता है। इस परिवेश को देखकर ग्लानि होती है, क्यों यह हमारे समाज में अलगाव है? आखिर हम इंसान है और हमें तो इस इसांनियत के धर्म को अपनाना चाहिए। लेकिन हमारी जनता है जो बस भोग रही है, सत्ताधारी व्यवस्था से जुड़े हुए लोग भी परिवर्तन लाने के लिए क्रियात्मक स्तर पर कुछ नहीं करते। आधुनिक काल के सत्ताधारी यह नेता, टोपियों को पहननेवाले ये नेता, अन्य लोगों को टोपी लगाकर चले जाते हैं।

जिसने भोगा है,
वह तो गूँगी जनता है, जिसे जवाहर
जयप्रकाश, गोलवलकर फुसलाया करते हैं,
स्वर्ग तुम्हें दिखलाएँगे हम- (87)

अगर सत्ता-व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होता, यदि सामाजिक स्तर पर सुधारवादी संस्थाओं का निर्माण नहीं होता तो बदलाव की प्रक्रिया कैसे प्रारंभ होगी? यह एक गंभीर समस्या है। कवि समाज की इस स्थिति को देखकर विवश होकर कह उठता है-

हाथ पर हाथ धरे हिन्दुस्तान की जनता बैठी है
कभी कभी सोचती है- देखो, राम या अल्लाह
किसके पल्ले बाँधते हैं हम सब को

हिन्दुस्तान ऐसा है
बस जैसा तैसा है[88]

निष्कर्षत: कह सकते है कि त्रिलोचन की कविताओं में धार्मिक आडंबर द्‌वारा शोषण के विभिन्न चित्र मिलते हैं। कहीं-कहीं उसमें प्रगतिशील चिंतन को भी दर्शाया गया है। दरअसल कवि समाज को आडम्बर मुक्त बनाकर एक नए समाज की रचना करना चाहता है।

बेरोजगारी और गरीबी

आजादी के पश्चात विभिन्न सामाजिक समस्याओं में बेरोजगारी के कारण भी देश का समुचित विकास नहीं हो सका। इसके अनेक कारणों में जनसंख्या वृद्‌धि मुख्य थी। इस समस्या से समाज के अन्य वर्गों के साथ बुद्धिजीवी रचनाकार भी प्रभावित हुए हैं। केदारनाथ सिंह, शमशेर, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धूमिल, त्रिलोचन ने भी बेरोजगारी के दर्द को सहा हैं। त्रिलोचन पर शोध-कार्य करते हुए उनके जीवन के विभिन्न आयामों को जानने-समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इनके जैसे प्रतिभा संपन्न रचनाकार को भी आजीविका के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। इन्होंने अपने जीवन में बेरोजगारी की पीड़ा को भोगा और उसे रचना के माध्यम से यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान की।

दर असल हुआ यह कि प्रगतिवादी दौर में पूँजीपति व्यवस्था के अंतर्गत मशीनीकरण की प्रक्रिया में आम आदमी को सामान्य स्तर का जीवन-यापित करना मुश्किल लगने लगा। गाँव से शहर की ओर स्थलांतरित किया हुआ व्यक्ति भी अभावमय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो गया। अशिक्षा, अभाव, बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण रोजगार के साधन जुटा पाना मुश्किल हो गया। ऐसे में लोगों ने पगडंडियों के रास्ते का इस्तेमाल करना शुरू किया। पूँजीवादी व्यवस्था, मीड़िया, भौतिकता और वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था ने आम-आदमी के सुख चैन को छीनकर उसे पूंजी संग्रह की स्पर्धा में ला ढकेल दिया है, जहाँ वह छटपटाहट की जिंदगी जी रहा है जिसे आज की भाषा में शार्ट-कट की संस्कृति कहते हैं।

प्रतिभा नहीं चाहिए, मेरे गुट में आओ
इधर-उधरी मत भटका। देखो स्वयं जमाना
बहुत बुरा है, बेकारी छायी है। जाना-सुना
तथ्य है। जाओ वहाँ जहाँ सुख पाओ

जगह-जगह शाखाएँ है, अब नाम कमाना
और डुबोना अपनी इच्छा पर है।-(89)

जो इस होड़ाहोड़ी में शामील नहीं होते, उनके जीवन में केवल तकलीफें ही है। कवि कहता है-

कब तक जीवन में समाज के होड़ाहोड़ी
चला करेगी और राष्ट्र भी उसी बाट से
चला करेंगे, रोज नए से नए ठाट से
छीनाछपटी कहीं करेगी तोड़ातोड़ी-(90)

साथ ही कवि यह भी कहता है-

देखता हूँ बेरोजगारों को
असहाय हाथ बगल में दबाए
पाँव-पाँव चलते
और चुपचाप
कहीं पड़ जाते।-(91)

'रैन बसेरा' कविता में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहता है कि आज हमारे पास इतने संकट है, स्थिति इतनी बुरी है कि अध्यापक को भी रहने के लिए जगह नहीं मिलती। व्यक्ति रोटी, कपड़ा, मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पा रहा है।

तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार के कारण जनहित की योजनाओं का सही ढंग से कार्यान्वियन नहीं हो सका जिसका वहीं स्वरूप आज भी विद्यमान है। पूँजी कतिपय लोगों तक सीमित होने के कारण युवा वर्ग को बेरोजगारी का सामना करना पड़ा। चुनाव के नाम पर पानी की तरह पैसे खर्च किए गए। राजनीति धन और बल तक सीमित हो गयी। चूँकि त्रिलोचन का अनुभव जगत एवं रचनाकाल काफी व्यापक रहा है इसलिए उन्होंने समाज के अन्तर्गत होनेवाले परिवर्तनों को बड़ी पैनी दृष्टि से देखा और व्यक्त किया।

इलायची से बसा हुआ रुमाल लगाया
आँखों पर कि बह चले आँसू और साथ ही
नाम किसान मजूर का लिया, और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया
ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
नए-नए होंगे ठनकेंगे ढोलक ताशे। (92)

इस प्रकार के नेताओं की तानाशाही को बरदाश्त करने की आदत पड़ने के कारण हम समस्याओं का कोई समाधान नहीं ढूँढ पा रहे हैं। कवि का अनुभव है कि बेकारी की समस्या से जुझने के लिए स्वयं लोगों को एकत्रित आकर प्रयास करना होगा। 'गधे की याद' कविता में कवि कहता है कि पूँजीपतियों को शोषण करने की आदत पड़ी है, साथ ही निम्न वर्ग को भी गधे की तरह जी तोड़ मेहनत करके मरने की आदत पड़ गयी है। उन्हें स्वयं बेरोजगारी का अनुभव होने के कारण वे अच्छी तरह से जानते हैं कि उसकी दाहकता क्या होती है? कवि क्षोभ प्रकट करते हुए धांदली का वर्णन करता है-

छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मंडियों में शुरु व्यापारी त्योहार
व्यापारी त्योहार लगा है तुलने गल्ला
दर्शक डॉडी देख चकित है अल्ला अल्ला
फखरूद्दीन अहमद को यह थोड़ा है
बातों के घोड़े को संसद में छोड़ा है-(93)

ऐसी स्थितियाँ हमारे समाज में इसलिए आती है क्योंकि हम अपने देश को सही ढंग से चलाने में असमर्थ हो जाते है। भूख, गरीबी अभाव ने भारत की जनता को त्रस्त किया है। त्रिलोचन अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए प्रातिनिधिक रुप से कहते है-

यह नहीं है वह नहीं है, यह कहा ही जाएगा,
जानता हूँ खूब क्या देना है क्या देता हूँ मैं।(94)

असल में यह व्यक्ति का बड़प्पन है कि अभाव से भरे हुए जीवन में भी कवि अविरल रुप से संघर्षरत होकर जीवन को परिवर्तित करने का प्रयास करता रहता है लेकिन साथ-साथ यदि समाज में भूख, गरीबी और अभाव है तो उसे चित्रित करने में वह पीछे नहीं हटता।

त्रिलोचन ग्रामीण मेहनतकश जनता की आकांक्षाओं, स्वप्नों, संघर्षो और दिनचर्या को चित्रित करते हैं, वे एक गीत में बड़ी शिद्दत और व्यग्रता के साथ यह सवाल पूछते है कि हाथों वाले दिन कब आएंगे? अर्थात श्रमिकों और किसानों के दिन कब आएंगे?-

कई बार हम देखते है कि भूख, गरीबी और अभाव को लोग अपनी नियति मान कर चलते हैं। त्रिलोचन समाज को इस भ्रम से बाहर निकालना चाहते है और इस पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं-

दुखों की छाया के यह भव बसा है, नियति की
सदिच्छा होगी तो कुछ दिन करेंगे, समय के
सधे आयामों में भ्रम भ्रम रहेगा कि सच का
कभी पल्ला लेगा श्वसन ठहरेगा विजन में-(95)

'अवतरिया' की लाचारी पेट के आगे घुटने टेक देती है, यहाँ पर पेट के सामने सभी लाचार है- यह देखते हुए त्रिलोचन जटिल बौद्धिक उधेड़बुन में नहीं जुट जाते जबकि सामान्य धरातल पर एक दुनियादार व्यक्ति की मानसिकता के रुप में समस्या की ओर देखते हैं।

"यदि निश्छलता और सहजता त्रिलोचन की कविता की भीतरी कंडीशन है तो 'भूखा-दूखापन' उसकी सामाजिक कंडीशन है। त्रिलोचन मगर इस भूखे-दूखेपन को खूब समझते है और अपने प्रशंसकों को थैंक्यू कहने की जगह विकास के मर्म की ओर जाते हैं। त्रिलोचन अपनी प्रीति के लगभग स्वायत्त जगत में अचानक अभाव को देखते है। वे 'भूखे दूखेपन' के कारणों को बिना किसी वैचारिक उहापोह के अपने व्यवहार ज्ञान से समझते हैं। यही उसकी समस्या ग्रस्तता है और यही उनका सुझाया भोला हल।"(96)

इसे देखकर हम कह सकते है कि त्रिलोचन की कविता में भूखे-त्रासद जीवन जी रहे चरित्र अपनी समस्याओं को लेकर जब हमारे सामने आते हैं, तब वे हमारे अपने से जान पड़ते हैं। 'अवतरिया', 'नगई महरा', 'बुढ़िया' आदि सारे चरित्रों के साथ हमारी रागात्मक-संवेदनात्मक अन्विति रहती हैं।

नामवर सिंह लिखते हैं- "त्रिलोचन की कविता में साधारण जनों के बीच से उठाए गए ऐसे चरित्र बहुत आए हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में ऐसी दुनिया रची है, कविता के क्षेत्र में बहुत कुछ वही काम त्रिलोचन ने किया है।"(97)

कम से कम प्रेमचंद 'कफन' 'पूस की रात' आदि कहानियों में समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते समय यथार्थवादी दृष्टिकोन अपनाते है लेकिन त्रिलोचन उनसे एक कदम आगे बढते हैं और समस्या की गंभीरता को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

पड़ी थी लाश भी खुली
उसी खाट पर जिस पर दम तोड़ा या पाए
टिकड़ी, कहाँ भाग था उस का कब हिली डुली
निर्विकारता शव की कहीं देख यदि पाते
धर्मधुरंदर तो संतों का संत बनाते-(98)

यह स्थिति काफी दु:खद है कि भूख और गरीबी के कारण जब किसी की मौत होती है, तब किसी को कोई फरक नहीं पड़ता, सब कुछ अपनी गति से चलता रहता है। लेकिन त्रिलोचन अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए अपनी कविताओं के माध्यम से बेरोजगारी और उस कारणवश उद्‌बुद्‌ध अन्यान्य समस्याओं को चित्रित करते हैं।

युगीन समस्याओं के प्रति सचेष्टता

समसामायिक समस्याओं का चित्रण समकालीन कविता की खास प्रवृत्ति रही है। जीवन-जगत के अन्तर्गत होनेवाले परिवर्तनों में कुछ न कुछ आकस्मिक समस्याओं का जन्म होता रहता हैं। जैसे अभी हाल ही में अमरीकी और भारतीय संसद भवन पर होने वाली आतंकवादी घटनाओं ने संपूर्ण मानव-जगत को झकझोर कर रख दिया। उसी प्रकार आजादी के बाद कई ऐसी महत्वपूर्ण समसामायिक समस्याओं का जन्म हुआ जिसने कि सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य को ही बदल दिया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में स्खलित होते मूल्य, अवसरवादिता को चित्रित करते हुए त्रिलोचन लिखते हैं-

दोस्ती भी मौसमी हुआ करती है, दोस्तों
से छिपा नहीं है
यारो यारो छोड़ दे
लोग वहीं जाते हैं, जहाँ कहीं कुछ पाते,
जहाँ गाँठ का जाता है, फिर वहाँ न जाते।(99)

इस माहौल को देखने के कारण और उसमें अपने आप को ढ़ाल न पाने के कारण त्रिलोचन गाँव की ओर लौटते हैं क्योंकि वहाँ पर उन्हें प्रेम की गरमाहट-उर्जा प्राप्त होती हैं। संबंधों की उर्जितावस्था को चित्रित करने के पीछे भी कहीं न कहीं समसामायिक त्रासद स्थिति है।

डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं -''त्रिलोचन शब्द की पवित्रता की रक्षा के लिए उस प्राग्-आधुनिक जीवन-प्रणाली की जड़ों में जाते हैं, जहाँ सब कुछ के बावजूद सामाजिक जीवन की लय खण्डित नहीं हुई है और मानवीय सामाजिक संबंधों की गरमाई के बीच मनुष्य की वैयक्तिकता भी अक्षुण्ण है।''(100)

मानवीय गरिमा का निर्वाह करते हुए त्रिलोचन समाज में व्याप्त आडंबर, छल, छद्‌म, दिखावा, द्‌वेष, घृणा, झूठ, दंभ आदि की भर्त्सना करते हैं और अच्छे समाज संरचना की कामना करते हैं। कवि की आत्मा को तब तक संतुष्टि नहीं मिलती जब तक वह उसके खिलाफ आवाज न उठाए-

मैं तो खोजा करता हूँ
किधर बढ रहा है आडंबर कब डरता हूँ
कहीं किसी से, कुछ ऐसा हैं अपना जी भी
झूठ दंभ छल द्वेष घृणा का काला पर्दा
फाड़े बिना नहीं सुख पाता-(101)

त्रिलोचन समसामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए जनचेतना के साथ जुड़े रहते हैं। उनकी कविताओं का ग्रामीण समाज अवध का समाज है, उनकी समस्या प्रातिनिधिक रुप से भारत के देहात की समस्या को उजागर करती है। जिस प्रकार से आधुनिक अंग्रेजी कवि टामस हार्डी अपने प्रिय प्रदेश 'वैस्सेक्स' के साथ जुड़े रहे, उसी तरह त्रिलोचन अवध के साथ जुड़े रहे।

त्रिलोचन 'नगई महरा' की जो समस्या हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं, वह किसी कोने में बैठा हुआ एकमात्र इंसान नहीं है। हमारे देश की 75% जनता गाँवों में निवास करती है। अत: नगई की समस्या गाँव के जन की समस्या है जिसे हम शहर में रहकर शहरी मानसिकता से पढ़कर मुक्त नहीं हो सकते। शायद वे आलोचकों को समसामायिक इसलिए नहीं लग सकते क्योंकि प्रकारांतर से समकालीन साहित्य में चल रहे उत्तर आधुनिकता के पचड़े में त्रिलोचन की कविता नहीं पड़ती है। उनकी कविता के इंसान की समस्या दमित, कुंठित व्यक्ति की समस्या नहीं है बल्कि एक आम आदमी की अपने आप को स्थापित करने की समस्या है जिसमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ है।

सिफारिश से, सेवा से
गला सत्य का कभी न घोटूँगा। मेवा से
बरंब्रूहि न कहूँगा और न चुप रहने का।(102)

अपने आत्म-सम्मान और स्वाभिमान के कारण त्रिलोचन चापलूसी करनेवाले कुत्ते की दुम सरीखा जीवन जीना पसंद नहीं करते। गधों की तरह चुपचाप सब कुछ ढोने के लिए वे तैयार नहीं है लेकिन फिर भी यह दु:खद पक्ष है कि हमारे समाज में यह सब हो रहा है। कवि कहता है-

चाभो माल बनाओ उल्लू, मौज से जियो
उँटों के ब्याह में गधों की रीति निबाहे
चले चलो।(103)

कवि जानता है कि आज मानव जो कुछ कर रहा है, उसे उसकी करनी एक न एक दिन ले डूबेगी। पता नहीं वे स्थितियों को संभाल पाएंगे या नहीं? कवि

कहता है-

कुछ हाथों से सार-संभाल नहीं होने का,
बढ़ी कालिमा धाक न मानेगी धोने की।(104)

नारी समस्या

प्रगतिशील साहित्य में नारी और दलित समस्या को विशेष रुप से रेखांकित किया गया है। त्रिलोचन की दृष्टि ग्रामीण नारी पर केन्द्रित है जो कि अनपढ़, गँवार, सीधी-सादी जिंदगी बिताने वाली है। नारी के केन्द्र में उनकी अपनी दादी, भाभी, और पत्नी है जिनके प्रति उनके उद्‌गार पारिवारिक संवेदनाओं के अन्तर्गत व्यक्त किए गए हैं। यहाँ पर उनके द्‌वारा व्यक्त कतिपय श्रमिक एवं दलित नारियों की चर्चा करना चाहूँगी। नारी विमर्श, नारी-मुक्ति आंदोलन की तथाकथित मान्यताओं के मानदंड उनकी कविताओं में दिखायी नहीं देते।

त्रिलोचन की कविता की नारी नौकरी करने के लिए विदेस गए पति की बाँट जोहती है। त्रिलोचन 'सोसती सिरी सर्व उपमा जोग बाबूराम दास को' यह लिखते हुए काफी प्रतीकात्मक रुप से नारी की वेदना, छटपटाहट को व्यक्त करते हैं-

तुम्हें गाँव की क्या कभी याद नहीं आती
है
आती तो आ जाते
मुझको विश्वास है
थोड़ा लिखा समझना बहुत
समझदार के लिए इशारा ही काफी है।(105)

ग्रामीण परिवेश में नारी खुलकर अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाती थी, वहीं मानसिकता कमोबेश रुप से त्रिलोचन की नारी संबंधी कविताओं में भी प्राप्त होती है। आर्थिक अभाव, परेशानियों के कारण उसे खेतों में श्रम करना पड़ता हैं। शहर में रहकर 'आरर ड़ाल' नौकरी के कारण मशीन पर खटते हुए पति अपनी पत्नी को इतना दिलासा मात्र दे पाता है-

धीरज धरो आज कल करते तब आऊँगा
जब देखूँगा अपना घर कुछ कर पाऊँगा।(106)

आधुनिकता का ढ़ोल पीटते हुए तथाकथित स्वच्छंद जीवन जीने के लिए उद्‌यत नारी को विश्लेषित करनेवाले समकालीन रचनाकारों की भीड़-भाड़ में त्रिलोचन नारी के घरेलू रुप को ही चित्रित करते हैं।

सहधर्मिणी सहचरी और न जाने क्या क्या
तुम हो। मेरे मन क सारा शून्य भरा है
तुमने अपनी सुधि से।(107)

पुरुष प्रधान समाज में हम देखते हैं कि जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की बात हमेशा केवल नारी से ही की जाती है जिसे मूक-भाव से वह स्वीकार भी करती हैं। प्रायः लोग इसे जीवन का एक सर्वमान्य नियम के रुप में स्वीकार करते हैं। नारी के त्याग, समर्पण, विनम्रता, सादगी, सरलता के प्रति आदर व्यक्त करने की प्रवृत्ति समान्यतः पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में दिखायी नहीं देती। कवि को यह स्वीकार नहीं है-

ऐसी भी क्या बात कि नारी यह बलि पाए,
उसमें क्या है, उसमें क्या है, उसमें क्या है।
पुरुष अगर कुछ है तो उसका पौरूष क्या है।(108)

त्रिलोचन निश्चित रुप से नारी के गौरव को जानते हैं। जिस व्यक्ति ने जीवन भर प्रताड़नाओं को सहा है, वही व्यक्ति सही मायने में व्यक्ति को व्यक्ति के रुप में सम्मान देना जानता है और देता भी है। अन्य प्रगतिशील कवियों के समान त्रिलोचन की कविताओं में नारी के श्रृंगारिक पक्ष की अपेक्षा श्रमिक नारी का चित्र प्राप्त होता हैं।

राष्ट्रीय स्वर की महत्ता

त्रिलोचन अपनी कविताओं के माध्यम से वर्तमान सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाले घात-प्रतिघात पर प्रहार करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में मोहभंग की स्थिति में हम नष्ट-विनष्ट होते जा रहे हैं। राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक-धार्मिक स्तर पर हो रहे उथल-पुथल को जिम्मेदार है हमारी प्रशासनिक व्यवस्था जिसने हमें क्षत-विक्षत कर दिया है और इस प्रक्रिया से हम गुजर रहे हैं।

राज्यपाल को देखा तो पैरों पर माथा टेक दिया
फिर स्पष्टीकरण किया-भारत की परंपरा ही ऐसी है
दूतों को देखा, सिर के बल दौड़े, फोटो में उभरी
गाथा
ऐसी-ऐसी चाल ढाल है गत आगत की
मानवता शरमाए ऐसी जीवन रेखा-(109)

कवि आशावादी इसलिए है क्योंकि कहीं न कहीं वह आश्वस्त है कि प्रगतिशील रचनाकार अपने दायित्व को लेकर सजग है, बिगड़े हुए परिवेश में कवि

या साहित्यकार अपने दायित्व को निभाहने के लिए तत्पर रहता है। उससे हम अपेक्षा रख सकते हैं कि वह लगातार रुप से कोई सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहा है। त्रिलोचन कहते हैं- ''समाज की बदली हुई सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियाँ कवि को एक निष्कर्ष की ओर लगातार ठेलती है। इसके बाद भी कविता में सच्चाई तब आयेगी जब आप किसान, मजदूर या स्त्री के दुख और संघर्ष को सचमुच अपना दुख और संघर्ष मानते हो।''(110)

हमारे देश की दारूण स्थिति यह है कि आजादी के पचपन साल के बाद भी सर्वहारा मजदूर वर्ग का शोषण होता रहता है। कई पंचवर्षीय योजनाओं का कोई लाभ देश की जनता को नहीं हो पाया। देश की वर्तमान स्थिति की भयावहता को कवि अच्छी तरह से जानता है।

'भोरई केवट के घर' कविता में कवि सर्वहारा वर्ग का पक्षधर है। आजाद भारत देश में मँहगाई के जमाने में गरीब व्यक्ति के लिए परिवार का गणित चलाना मुश्किल हो जाता है। इसलिए वह कहता है-

बाबू, इस महँगी के मारे किसी तरह अब तो
और नहीं जिया जाता
और कब तक चलेगी लड़ाई यह?(111)

साथ ही कवि चिंता व्यक्त करते हुए कहता है-

जनता में कब होगा जनता का अधिकारी
कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी।(112)

'युग दर्पण' कविता में कवि गधे और जंगली सिंह के बीच तुलना करते हुए यह कहना चाहता है कि आज का आम इंसान जंगली सिंह नहीं बनना चाहता बल्कि गधे की तरह जीवन यापन करना चाहता है। क्योंकि उसमें विरोध करने की क्षमता नहीं है। वह तो सामंत और जमींदार के पांव सहलाने में ही अपनी कुशल समझता है। स्वतंत्रता के बाद एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण हो रहा है जिसमें उत्कृष्टता के लिए कोई स्थान नहीं है।

मानव की सन्तति में केवल बची धृष्टता,
उत्कृष्टता गयी, भायी है अब निकृष्टता।(113)

यह इसलिए होता है क्योंकि हम पगडंडियों के रास्ते से चलते हैं, आज के दौर में एक-दूसरे के पैरों को खींचकर आगे बढ़ने की होड़ है, मेहनत करके आगे बढ़ने के लिए कोई प्रतीक्षारत नहीं है, अत: कवि कहता है-

हम इन दमपट्टी की बातो में इसे छलो जो जानता
न हो कुछ घट्टा यह कन्धे का सब कुछ कह देता

है। गैल लगे चले चलो जितनी माटी चल पाओ
गुर है धंधे का -(114)

'अवसर की बात' कविता में त्रिलोचन राजनीति में व्याप्त धन और बल के महत्व को रेखांकित करते हैं। इसके साथ ही राजनेताओं के अवसरवादी राजनीति का पर्दापाश करते हैं कि ये किस प्रकार आश्वासनों का पुलिंदा फेंककर जनता को गुमराह करते हैं-

बड़े बड़े मसले हैं, यह करना, वह करना
सुप्त समुद्री चट्टानों से नाव लड़ी है
गाँधी टोपी, राज-काज को सिर पर धरना
सरल नहीं है। सुनता हूँ-कहता हूँ हँसकर
बहकी बातें करो दूसरों को बहका कर।(115)

'चैती' में 'मार्ग' कविता के माध्यम से कवि कहता है कि यदि हमें समाज को बदलना होगा तो बनी बनायी परिपाटी पर चलने के बजाए नए जीवन के रास्तों की तलाश करनी होगी। कुछ समय तक तो दिक्कतें जरुर आती हैं लेकिन कालांतर में वही ठीक लगने लगता है क्योंकि उसमें हमारी प्रगति के चिह्न दिखायी देने लगते हैं।

'नवजीवन के सिंहद्वार' कविता में कवि कामना करता है कि बड़े विश्वास के साथ नयी चेतना के द्वारा अत्याचारी वर्ग का विनाश करने केलिए हम आगे बढ़े। 'दीप जलाओ' में कवि कामना करता है-

इस जीवन में रह न जाए मल
द्वेष, दंभ, अन्याय, घृणा, छल
चरण चरण चल गृह कर उज्ज्वल
गृह गृह की लक्ष्मी मुसकाओ-(116)

कवि को ज्ञात है कि यदि विपरीत परिस्थितियों से हारकर हम बैठे रहेंगे तो किसी भी प्रकार का कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं कर पाएंगे। यह मानव के अपने हाथों में है कि वह जीवन को कैसे परिवर्तित करें-

तुम करो नष्ट सब भेद-भाव
तुम भरो निखिल जग के अभाव
सब बाधा हर
होकर तत्पर
तुम विजयी बन कर अपना नियमन आप करो-(117)

चाहे वह ग्रामीण परिवेश हो या शहरी- आवश्यकता है कि हम आपसी सदभावना को बढ़ावा दे ताकि मानसिक स्तर पर हम दूसरों के दर्द को समझ सकें

पूजा-अर्चा आए कओने काम
जऊँ ओसे मन पाएसि न ड बिसराम।(118)

इस तरह का संतोष प्राप्त होने के बाद व्यक्ति स्वयं की तथा समाज की उन्नति कर सकता है।

'कहा जियावन ने' कविता में कवि कहता है कि नेहरूजी ने देखा कि हम आजादी का गलत इस्तेमाल कर रहे हैं, जिन लोगों ने आजादी के आंदोलन में हिस्सा लिया वे ही अपने स्वार्थों में सिमट गये हैं। यह सब हमारे देश में चल रहा था, तब नेहरूजी जानते थे लेकिन उन्हें विश्वास था कि बहुत कुछ संभल जाएगा लेकिन ऐसा हुआ नहीं, हमें मोहभंग की स्थिति से गुजरना पड़ा। देश के नव-निर्माण की प्रक्रिया में यह स्थितियाँ हमे कहाँ ले जाएगी?

पंख लगा कर कौवा फिर फिर मोर न होगा,
एक बार हम लोगों ने भोगा सो भोगा।(119)

इस विपद स्थिति को देखकर त्रिलोचन को चीन के क्रांतिकारियों की याद आती है और वे कह उठते हैं-

हिन्द चीन की जय दीनों दलितों की जय है
इस जय में स्वतंत्रता नये गान गाती है
निर्भय मानव पंक्ति आज तैयार खड़ी है
लाली फैल चली है, सन्मुख सूर्योदय है-(120)

कवि केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही संचेतना जागृत करने में कार्यरत नहीं है बल्कि विश्व स्तर पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को बलशाली बनाने के लिए कभी माओ का वर्णन करके तो कभी चीन के आक्रमण की विभीषिका को प्रस्तुत करके लोगों को आह्वान करता है कि यदि समाज में सकरात्मक परिवर्तन लाना है तो प्राथमिक रुप से आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करें। यह परिवर्तन तब होगा जब समाज का एक बहुत बड़ा बुद्धिजीवी वर्ग इस दिशा में ठोस कदम उठाकर अग्रसर होगा। यह कार्य त्रिलोचन अपनी कविताओं के माध्यम से करने का प्रयास करते हैं।

इतिहास गवाह है कि राष्ट्रों के नव निर्माण में साहित्य और साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है किंतु वर्तमान स्थिति से दुखी होकर त्रिलोचन लिखते हैं कि आज का यह समाज भी राजनीतिक षडयंत्र के घेरे में आ गया है। आलोचक

रचना की गुणवत्ता का मूल्यांकन उसमें अर्न्तनिहित विचारों से न करके संबंधों एवं अन्य सुविधाओं के आधार पर करता है।

अमुक अमुक कवि ने जाकर जलपान कराया
आलोचक दल कीर्तिमान में कब रुकता है
दूध दुहेगा, जिसने अच्छी तरह चराया-(121)

कवि के अनुसार इस तरह की स्थितियाँ देश के नव निर्माण के लिए घातक है, इसलिए प्रयास यह रहे कि हम इससे बचते हुए अग्रसर हो जिसके लिए मानवीयता की भावना को बलशाली बनाने का प्रयास किया जाए।

आर्थिक समस्या

अर्थ जीवन जीने की अनिवार्यता है लेकिन वह सब कुछ नहीं है। धन साधन हो सकता है, साध्य नहीं, यह बात त्रिलोचन पर लागू होती है। अर्थभाव के भयंकर कष्ट को सहते हुए भी उन्होंने अनैतिक मार्ग का सहारा नहीं लिया। त्रिलोचन की काव्यदृष्टि निर्माण में उनकी गरीबी भी किसी न किसी रुप में सहायक सिद्ध होती है क्योंकि इसके द्वारा उन्होंने जीवन के सही मर्म को समझा। कवि के जीवन में अर्थ-संकट के संबंध में उनके उद्गार इस प्रकार है-

''आर्थिक बुनियाद की शर्त को एक कवि पूरा नहीं करता। इतनी कमाई कविता से भारत में नहीं है। जिस दिन कविता लिखकर उनकी कमाई से ठीक-ठाक घर चलेगा, उस दिन से कवि को पागल समझने की भूल नहीं करेंगे लोग। अभी बहुत लड़ाई लड़नी है कविता के लिए...।(122)

'मै कृतज्ञ हूँ' कविता में कवि व्यंग्य करता है कि जो कवि या समीक्षक त्रिलोचन की उपेक्षा करता है उसे वह स्वयं अपनाकर आगे बढ़ना चाहता है, वह उनके कंधे पर हाथ रखता है। जबकि कुछ रचनाकार ऐसे होते है जो चापलूसी करके आगे बढ़ते है। अर्थात आर्थिक स्थितियों के कारण कई बार रिश्तों में बदलाव आ जाता है।

ऐसे में
कोई यदि प्रिय कवि है
तों यह उस कवि के लिए अच्छा है
कविता से मिलता ही क्या कुछ है-(123)

यह कवि का व्यंग्य है कि कविता करने से रॉयल्टी के पैसे भी नहीं मिलते, माँगकर खा नहीं सकते, देनेवाले हाथ बढ़कर नहीं आते, ऐसे में जीविका को कैसे

चलाए? फिर भी कवि के सपनों को कोई अपना नहीं कहता-लोग उपेक्षा करते हैं, इसे लेकर त्रिलोचन को कोई दुःख नहीं है। क्योंकि कई बार व्यक्ति के लिए अपने आप में कुछ करना ही महत्वपूर्ण रहता है। कई बार हम स्पष्टीकरण नहीं दे पाते, सब कुछ शब्दों में समझाया नहीं जा सकता, यह अपेक्षा होती है कि मूक-मौन होकर अन्य लोग उसे समझे लेकिन यह मुश्किल होता है । ऐसे में हताश व्यक्ति करें तो क्या करें? जीवन है - इसलिए जीना पड़ता है, विनष्ट करना मनुष्य होकर संभव नहीं क्योंकि मानव रूप में जीवन मिलने के बाद मानवीयता की दृष्टि से वह अक्षम्य अपराध माना जाएगा। फिर भी व्याप्त परिस्थितियों को देखकर उद्विग्न होकर कवि कहता है-

आप्तकाल स्वदेश और जन को जैसा मिला है अभी
वैसा और कभी न था समय ने क्या-क्या दिखाया नहीं
सारा देश विवर्ण है, विकल है, अत्यंत उद्विग्न है
लांछा से हतदर्प है, व्यथित है, विक्षुब्ध है, श्रांत है-[124]

जब कवि इन परिस्थितियों की कारण मीमांसा करने लगता है तब उसे ज्ञात होता है कि विभिन्न योजनाओं के बावजूद भारतीय ग्रामीण जन-मानस में शिक्षा का जिस प्रकार से व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया। हम आज भी वैचारिक स्तर पर प्रगति नहीं कर पाए, ऐसे में सामान्य तौर पर एक अच्छे जीवन की परिकल्पना करना हमारे लिए कठिन हो जाता है। 'चम्पा' के द्वारा लेखनी शैली और उसके चमत्कारों से अनभिज्ञ अनपढ़ स्त्री की व्यथा को कवि व्यक्त करते हुए कहता है-

चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है
इन काले चिन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं-[125]

अगर शिक्षा को लेकर यह स्थिति है तो भला हम आर्थिक स्तर पर कैसे सक्षम हो सकते हैं? कवि को ज्ञात है कि जहाँ यह जमाना स्वार्थ, लपंटता, धोखेबाजी और चापलूसी का है- ऐसे में एक गरीब, लाचार व्यक्ति कैसे प्रतियोगिता में खड़ा रह सकता है? उसके लिए तो विवंचना ही विवंचना है।

'लाश' कविता में कवि अभाव, दुःख, हताशा, निराशा आदि के द्वारा आर्थिक विपन्नता को ही व्यंजित कर रहा है-

फिर सोचा इसका ऐसा क्यों अन्त हो गया?
क्या इसका अपना कोई भी कहीं नहीं था?
क्या इसकी अन्तिम शय्या का स्थान यही था?
फिर दुर्गन्धि और मन का सन्तुलन खो गया।
आँखों पर बुद्‌बुद्‌ फूटा, कनफटी धो गया।
तन था, मन था, पर मन, मन तो और कहीं था।(126)

त्रिलोचन की सामजिक दृष्टि के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने के पश्चात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि उनकी दृष्टि विशुद्ध रुप से मानवतावादी हैं।

वे सामाजिक जीवन में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए मानवतावादी विचारधारा को अधिक बलशाली मानते हैं। कई बार हम व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों में इतने उलझ जाते हैं कि बिलकुल ही भूल जाते हैं कि हम पहले पहल इंसान है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है लेकिन उसे विवेक बुद्‌धि प्राप्त हुई है इसलिए उसे इसका उपयोग सामाजिक कल्याण के हेतु करना चाहिए। तब ही यह संभव होगा कि अपने चारों ओर घिरे हुए समस्याओं के समाधान हेतु कोई सकारात्मक तत्व हम ढूँढ पाएंगे, अन्यथा हममें और अन्य प्राणियों में कोई अंतर नजर नहीं आएगा।

धारण बेकार बोझ ढोना ही नहीं है
आदमी बात से व्यवहार है
समझ ही आदमी को आदमी से जोड़ती है।(127)

इस तरह से कह सकते है कि जीवन के अभाव को अनुराग से भरा जा सकता है।

''धरती के गीत और उस जनपद का कवि हूँ पढ़-पढ़कर बार-बार लगता है कि त्रिलोचन जिसे प्राय: प्रकट कर देते हैं वह उनका 'अनुराग' ही है। लेकिन अनुराग में अनुराग के इस टुकडा-टुकडा शोध में बहुत सी वेदना दबी हुई है। यह भूख, अभाव, दारिद्र्य की वेदना है। त्रिलोचन प्राय: इस अभाव को अनुराग भाव से भरते हैं। भरते है यानी अनुराग से ही अभाव का बदला चुकाते हैं।''(128)

यह ध्यान देने योग्य बात है कि मानवता मानव की एक सहज कोमल संवेदना है, फिर भी आज हमें क्यों इसकी आवश्यकता महसूस हो रही है कि वह उत्प्रेरित हो इसलिए कविताओं के माध्यम से जागृत किया जाना जरुरी लग रहा है? क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी है। कवि का अनुभव देखिए-

हालाहाल की ज्वाला
भस्मसात कर रही पृथक्कृत संप्रदाय में

एकाधिक मानवता को अब पहलेवाला
निष्कलंक उल्लास नहीं है. शिशु के मुख पर
दूध की नहीं छाप रक्त की, शाप हुआ, वर-(129)

"ये उन कवियों में नहीं है जो एक खेमे में अपनी पहचान बनाने के लिए रुढ फार्मूलों और हथियाए हुए प्रतिमानों का उपयोग करते हैं- भुवनमोहिनी उनका भी वरण करे जिधर उचक-उचक कर 'नारद' अपनी कुर्सी यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ उठाते फिरते हैं। उनका काव्य संसार उस झुग्गी झोपड़ी का संसार है जहाँ मानवता के आँसू टपकते रहते हैं।"(130)

त्रिलोचन अपनी कविताओं में सामान्य जन का पक्ष लेते हुए खेद प्रकट करते हैं कि हम ऐसे बहुजन समाज को भूलते जा रहे हैं जिसे ममता, करुणा, सद्‌भावना की जरुरत हैं। पिछड़े हुए को और पिछड़ा न बनाते हुए उनके उद्‌धार के लिए हमें ही प्रयास करना चाहिए। इस बात को लेकर त्रिलोचन अधिक चिंतित है। उनके शब्दों के महल में ऐसे ही असहाय, कमजोर लोग बसेंगे जिन्हें संवेदनहीन स्वार्थी समाज ने पंगु बना दिया है।

मुक्तिबोध लिखते है- "कवि में नैतिक सचाई बहुत प्रबल होने के कारण ही वह सामाजिक लक्ष्य के प्रति उन्मुख है। इसी नैतिक भावना के कारण ही कवि अधिक मानवीय हो गया है। यह मानवीय गुण ही उसके समाजवादी ध्येय और तद्‌गत काव्य के उद्‌गम का मूल कारण है।"(131)

नैतिक मूल्यों में अधिक आस्था होने के कारण त्रिलोचन चिंतित हो उठते हैं कि बदले हुए परिवेश में मूल्यों में परिवर्तन दिखायी देता है। सफलता ही सार्थकता बन गयी है। अच्छा बुरा बन जाता है और बुरा अच्छा बन जाता है। कब, क्यों, कैसे, किसलिए की कारण मीमांसा करने बैठेंगे तो हाथ में कुछ नहीं आता, क्योंकि हम इस तरह के जीवन से अभ्यस्त हो गए हैं।

अच्छाई इन दिनों बुराई के घर पानी
भरती है। क्या ठाट बुराई ने बाँधे है
बड़े-बड़े अड़ियल भी हार गये, काँधे है
उसके जुए और चलते हैं। जो कुछ ठानी
वही कराया-(132)

कवि की सकारात्मक दृष्टि इस परिवेश को बदलने की आकांक्षी है। विशाल मानवीय दृष्टि अपनाने के लिए पहले अपने संकुचित दृष्टिकोण से बाहर निकलना होगा। कई बार हम मामूली संकीर्ण स्वार्थों को इतना महत्व देते हैं कि पता ही नहीं चलता

कि हम किस मृगमरीचिका की तलाश में है। किसके पीछे क्यों भाग रहे हैं- यह समझते-समझते काफी समय चला जाता है। इसलिए यदि हम सही मायने में शिक्षित है तो शिक्षा के महत्व को समझकर उसके अनुसार आचरण करें।

केवल भारत नहीं विश्व का मानव जागे
फूले, फले, बढ़े, अपने मन का सुख पाये,
निर्भय होकर मुक्त राग गाये, यों त्यागे
ईर्ष्या-द्वेष, नयन पथ पर जितने मुख पाये
सब पर आत्मीयता लिखा हो. यदि दुख पाये
तो उससे मार्गच्युत न हो न आपा छोड़े-(133)

इस तरह से ईर्ष्या, द्वेष, दंभ आदि दांभिक प्रवृत्तियों को तिलांजली देने के बाद हम आत्मीय भाव से रहने लगेंगे तो जीवन की बहुत सारी समस्याएँ अपने आप खत्म हो जाएंगी। कवि के अनुसार मानव के रुप में हम मनुष्यता के मूल्य को समझे और आत्मिक संतोष को बढ़ावा दें। हमें न राक्षस बनना है और न ही ईश्वर हमें तो मानव बनना है- सही अर्थों में - इसका हमें विस्मरण न हों। जीवन को सही ढंग से चालित करना है, इसका निर्वाह करते समय कटिबद्ध रहते हुए भले ही तकलीफें हो लेकिन हमें बाहर आना होगा।

अगर घुटन हो, प्राण छटपटाएँ तो घेर
तोड़ फोड़ दो, क्योंकि हुआ है नया सबेरा-(134)

'नहीं चाहता कभी तरस खाओ' कविता में कवि कहता है कि जब लाचारी है तो स्वतंत्रता की कामना-अभिलाषा भी उससे जुड़ी हुई है। इसमें आगे बढते समय शायद पराजय मिलें, स्वयं बंधनों में जकड़ना पड़े लेकिन जीवन को नए ढंग से परिभाषित किया जा सकता है। जहाँ बहुत कुछ बुरा होता रहता है, वहीं पर थोड़ा बहुत अच्छा भी होता रहता है। बस, हममें यह दृष्टि होनी चाहिए कि हम उसे देखे। आज के बिगड़े हुए परिवेश में लगता है कि मानवता से भरी हुई जिंदगी जीना वाकई में एक कसौटी है, परीक्षा का क्षण है लेकिन हमें विजयी होना है।

नाक दबी हो या उभरी हो, माथा नीचा
हो या उँचा, कोई लंबा हो या बौना

× × ×

दुनिया में मानव का छौना
कोई भाषा बोले अलग नहीं अंगों में-(135)

कवि सामाजिक प्रेम की भावना से विह्वल है। समाज से विछिन्न होकर वह जीवन की कल्पना नहीं करता। वह अपनी व्यक्तिगत घुटन एवं पीड़ा को समाज

के साथ तादात्म्य स्थापित कर भूल जाता है।

आगे एक है मनुष्य
फिर दूसरा मनुष्य
फिर तीसरा मनुष्य
इन्हें घेरे और बाँधे हुए
दुनिया के मनुष्य
इनको छोड़ मेरा कौन
स्वाभिमान सुनेगा-(136)

ज्योतिश जोशी लिखते हैं - ''हम त्रिलोचन में परंपरा और आधुनिकता की वह उर्जस्वित धारा देखते हैं जिसमें जीवन के अवसाद भी हैं तो उसकी अपरिमित संभावनाओं के सुख भी, थके-हारे व्यक्ति की पीड़ा का संसार है तो आक्रमक आवेगों से भरा संकल्प भी, दीन-हीन होकर टूटे हुए मनुष्य की करुणा है तो समाज की सड़ चुकी व्यवस्था को तोड़ने की चेतना भी। यानी त्रिलोचन में संपूर्ण भारतीय लोक मानस का रंग है, रुप है, अनुभव है और देसी माटी की ताकत भी जिससे वे निर्मित हुए हैं और जिसमें वे सृजनरत हैं।''(137)

उक्त कथन त्रिलोचन के जीवन की सही पहचान को संकेतित करता है। मुक्तिबोध के इस विचार से मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ-

''कविता समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनाने का संकल्प है।''(138)

५.५ त्रिलोचन की सांस्कृतिक दृष्टि

किसी भी रचनाकार की सांस्कृतिक दृष्टि उसके सामाजिक जीवन से उपजती हैं। समाज और संस्कृति अन्योन्याश्रित है। प्रस्तुत अध्याय के आरंभ में मैंने संस्कृति की अवधारणा, स्वरूप, तत्व आदि की संक्षिप्त चर्चा की है। संस्कृति को मुख्यत: आंतरिक और बाह्य-दो भेद करके विवेचित किया जाता है।

भारतीय जन-मानस सांस्कृतिक जीवन से अविछिन्न रुप से जुड़ा हुआ हैं। त्रिलोचन शास्त्री का ढ़र्रा भारतीय होने से वे जन-मानस और उसकी जीवन-प्रणाली को रुपायित करने के लिए ग्रामीण संस्कृति की ओर मुड़ते हैं। अत: 'त्रिलोचन की कविता की सांस्कृतिक दृष्टि' उप-शीर्षक के अंतर्गत प्रधानत: ग्रामीण जीवन और ग्राम्य-संस्कृति को ही अधोरेखित करने का प्रयास किया गया है, न कि सांस्कृतिक तत्वों के विभिन्न अंगों की छान-बिन करना मेरा मंतव्य रहा है।

भारत-वर्ष एक कृषि प्रधान देश हैं। किसान की पूंजी उसकी फसल है। अच्छी फसल देखकर वह मन ही मन प्रसन्न होता है और उसके तैयार हो जाने पर उत्सव का आयोजन भी करता है। त्रिलोचन ने 'चैती' फसल को देखकर किसान मन की प्रसन्नता को इस प्रकार व्यक्त किया है-

चैती अब पककर तैयार है
खेतों के रंग बदल गए है
मटर उखड़ रही है
गेहूँ जौ खड़े हैं
हवा में झूम रहे हैं।(139)

ग्रामीण जीवन में बीज बोने से लेकर, हल चलाने और फसल काटने तक के गीत हैं और इनसे जुड़े हुए कई उत्सव भी हैं।

"यह जनपद बनता है धूप में बैठ हरी मटर की घुँघनी खाने में, जाडे में गन्ने का रस ताजा पीने में, कोल्हाड़ों में जाने में और सर्वोपरि इन उन बातों से मन बहलाने, बनने का भाव न मन में आने देने में। [illegible] जनपद में ठाँव-ठाँव का जीवन है, कुछ नया अनोखा। कहीं सरल विश्वास है कहीं केवल धोखा।"(140)

ग्राम्य परिवेश के वर्णन में त्रिलोचन की सहजता अभिव्यक्त हुई है। स्वप्निल श्रीवास्तव का मानना है- "उनके यहाँ बहुत कुछ 'सोफिस्टीकेटेड' नहीं मिलेगा, जो कुछ है अनगढ़ होते हुए बहुत आत्मीय किस्म का है। उनके यहाँ कृत्रिमता नहीं है। उनकी कविता में 'नगई महरा', 'सनेही', 'निरधिन', 'भोरई' जैसे लोग हैं जो फसल उगाते हैं, दौरी करते हैं, कोल्हाड़ी चलाते हैं और चौपाल में बैठकर मौसम के बारे में बतकही करते हैं। उनकी एक अलग दुनिया है।"(141)

किसान जीवन का महत्वपूर्ण क्षण है 'लवनी' का। धान को संचित करते हुए किसान की आँखों की खुशी एक किसान ही बेहतर ढंग से जान सकता है। जैसे कि किसान जीवन की संस्कृति को प्रेमचंद ने बखूबी से होरी के माध्यम से व्यक्त किया है वैसे त्रिलोचन की कविताओं में भी इस संस्कृति की सफल एवं यथार्थ अभिव्यक्ति हुई हैं।

ऐसी क्या है बात कि सब के सब जुड़ जुड़ कर
लवनी में है लीन आज को भूले कल के
लिए संघ - उदयोग कर रहे हैं यह फल के
संचय का है पर्व अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर
बजे, उठा कुछ धूम, रंग आँखों में, आया-(142)

खेती से जुड़े गीत त्रिलोचन की ग्राम्य-संस्कृति की विशेषता को विशेष रूप से दर्शाते हैं। गीत कढाए हुए मजूरिन गाती हैं। बौराए हुए आम, कटहल की अरघान को अगर महसूस करना हो तो गाँवों की तरफ ही लौटना पड़ेगा।

त्रिलोचन के समान ही शहरी जीवन की उमस से परेशान होकर भारतीय प्राकृतिक दृश्यों के प्रति नागार्जुन का प्रेम मात्र आवेग नहीं लगता बल्कि आत्मानुभूति से सम्मिलित संवेदना लगती है। 'बहुत दिनों के बाद' में वे लिखते हैं-

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गन्ध-रुप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ साथ इस भू
पर
बहुत दिनों के बाद।(143)

नागार्जुन की भाँति त्रिलोचन की 'सरसों के फूल' कविता की पंक्तियाँ कई ऐन्द्रिक बिंबों को प्रकट करती है-

सरसों के फूल
बहुत नहीं रहते
अपने ही रुप में
अपने ही रंग में
अपनों के बीच हैं
अपनों के संग में
पीला बनाने के
लिए नहीं कहते-(144)

कई बार कविगण भारतीय अस्मिता का बखान करने के लिए विभिन्न प्राकृतिक प्रतिमानों को बड़े सुंदर ढंग से गढते है जिस कारणवश उसमें केवल मुग्धता-लुब्धता का भाव आ जाता है जो कि कई बार कला की सही पहचान नहीं करा सकती। जुगाली करती 'गाय' का चित्रण करते हुए त्रिलोचन सौन्दर्यशास्त्रीय अनुशीलन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन को उसकी वास्तविकता में उकेरते हैं। इसलिए कह सकते है कि त्रिलोचन की कविताओं में ग्रामीण परिवेश उसकी सुंदरता और विद्रुपताओं में झलककर सामने आया है।

चकत्तियाँ पाकर थोड़ी सी देर को अड़ी
हो, आगे ही बढ़ते चारों पैर, चँवर हो
पूँछ, डाँस, कुकुरौछी, माछी इधर उधर हो
तो, कौवा भी आता है उड़कर इसी घड़ी

पूँछ चलाती है गैया तो उसे बचाकर
वह शरीर से चिपके कीड़े चुन लेता है-(145)

शहर में रहकर उसकी चका-चौंध में अंधा हुआ व्यक्ति शायद इस प्रकार के चित्रण को पढ़कर मजा न ले पाए लेकिन जिस व्यक्ति ने इस परिवेश को अपनी जीवंतता में जिया है, वह शहर में बैठकर जब पढ़ेगा तब निश्चित रूप से गाँव की ओर लौटने के लिए लालायित हो उठेगा।

कवि जाड़े के दिनों का वर्णन करते हुए बस गाँव का ही होकर रह जाता है। जाड़े के दिनों की धूप, बिहान की बेला में मालिश करते लोग, आनंद में सरोबोर होकर बातचीत करते हुए लोग कवि को प्रिय लगते हैं।

त्रिलोचन लिखते है-

प्रिय लगती है बहुत घमौनी, घाम देखकर
लोग कहीं जमते हैं, गाएँ और बकरियाँ,
खड़ी धूप में मौज लिया करती हैं, सर्दी
इसी तरह जाती है, घर से मीन-मेख कर
आती है महिलाएँ, आती है सुंदरियाँ
कुत्ते करते रहते हैं आवारागर्दी (146)

शहर में रहते हुए काँक्रीट के जंगल, धुआ छोड़ते हुए वाहन, पर्यावरण का दूषित होना, भागती हुई जिंदगी, आत्मकेंद्रित छीना-झपटी से भरा हुआ स्वार्थ आदि की अपेक्षा त्रिलोचन अनुरागमयी कोमल संवेदनाओं को महत्व देते हैं। त्रिलोचन के व्यक्तित्व और काव्यत्व की यह एक अपनी अलग विशेषता है कि पाँचवे दशक के दौर में प्रयोग करने की अपेक्षा त्रिलोचन सामान्य व्यक्ति को उसकी सामान्यता में देखते हैं और क्लासिकल कविता की अपेक्षा जन-मानस की टोह लेते हैं।

''जन संस्कृति, जनतांत्रिक संस्कृति और लोक-संस्कृति के स्वस्थ सकारात्मक जीवंत और मार्मिक प्रसंगों तथा संदर्भो को अभिव्यक्त करनेवाली ऐसी ही सहज, साधारण किन्तु सर्जनात्मक और नैसर्गिक काव्य-भाषा तथा शैली के प्रतिनिधि कवियों में त्रिलोचन अपने ढंग के एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण कवि हैं।''(147)

प्रगतिवाद के अंतर्गत सरल भाषा और प्रयोगवाद के अंतर्गत भाषागत प्रयोग करनेवाले रचनाकारों के भीड़ में त्रिलोचन गाँव में बसनेवाले 75% (प्रतिशत) जनता की भावनाओं को वाणी देने के लिए 'अमोला' में ठेठ अवधी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग इसे कितना स्वीकार करेंगे- यह प्रश्न त्रिलोचन के लिए गौण था उनके लिए महत्वपूर्ण है किसान की जिन्दगी ।

बँधा अहें, जहाँ जे अहें अचेत
खेतवाही बिगरइ जउ अनचिन्ह खेत।(148)

त्रिलोचन सचेत-सतर्क होकर ही इस तरह के जोखिम उठाते हैं और सफलतापूर्वककरके भी दिखाते है क्योंकि वे बनी-बनायी लीक पर चलनेवाले रचनाकारों में से नहीं है।

हमें येह देखना होगा कि हिन्दी साहित्य में ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने लोक-जीवन और संस्कृति का चित्रण अपने काव्य के माध्यम से किया है। लेकिन त्रिलोचन को हम महत्वपूर्ण क्यों माने? यह भी प्रश्न उभरकर सामने आता है। मेरा मानना यह है कि प्रगतिवाद के अंतर्गत जहाँ अन्य कवि शोषण और शोषित वर्ग के चित्रण में तल्लीन थे वहाँ त्रिलोचन उनसे विजातीय होकर लोकभूमि को एक नयी भूमि प्रदान करते हैं। यह सही और सच्चे अर्थों में प्रगतिशिलता है।

राजेश जोशी लिखते हैं - ''त्रिलोचन की कविता की संरचना हिन्दी भाषी अंचल के लोक साहित्य, उसकी बात-चीत और भाषा से इतने घनिष्ठ रुप से जुड़ी है कि उसे उससे अलग करके रुढ़ साहित्यिक मानदंडों पर नहीं परखा जा सकता। जीवन की समग्रता और संघर्षों के वह केवल दर्शक नहीं, उसके हिस्सेदार भी हैं। यही कारण है कि उनकी कविता का अनुभव संसार और उनकी कविता का स्वरूप, हिन्दी के दर्शक-कवियों से अनेक स्तरों पर भिन्न नजर आता है।''(149)

त्रिलोचन के लिए नीम, बाँस, पीपल, लहटोरे के पत्तों एवं सरदी की धूप का महत्व अधिक है। उनकी अनुभूति प्रयोगवादियों की तरह- ''नहीं, साँझ, एक असभ्य आदमी की जम्हाई है।'' कतई नहीं है- उसमें शुष्कता नहीं है। त्रिलोचन की प्राकृतिक, ग्रामीण जीवन से जुड़ी कविताओं में संवेगों की एक प्रकार की उष्मा है, कोमलता है। इस संदर्भ में उदाहरण द्रष्टव्य है-

खुले हुए अंगों को सहलाकर
अपनी प्रभा से नव प्रकाश भर
बालिका-सी सरदी की धूप यह
तन-मन को ताजा कर देती है
नीम बाँस पीपल लहटोरे के
पेड़ हरे निर्मल पत्तों वाले(150)

त्रिलोचन की भाषा सरल हो लेकिन उसका भावपक्ष निश्चित रूप से अद्‌वितीय है। कवि बड़े ही सहज और सरल ढंग से तारकोल की सड़कों पर होनेवाली बरसात और मिट्‌टी के रास्तों पर बरसनेवाले जल से आनेवाली सौंधी महक को विलग करते हुए पावस का वर्णन करता है

कूला कूला जल जल होइ लहरान
देखि पिआसी धरती घन घहरान।[151]

यह है लोक भूमि, कवि के जनपद की प्रकृति। सामान्य व्यक्ति बरसात को जिस ढंग से देखता है, उसी ढंग से कवि भी देखता है। शायद त्रिलोचन की कवि के रुप में उपेक्षा होने के पीछे यह भी एक कारण रहा है कि तथाकथित प्रस्थापितों ने उनकी कविताओं में असीमित तत्वों को खोजना चाहा हो।

''त्रिलोचन ने बहुत सहज भाषा में सादगी के साथ लोक भूमि पर छोटे-छोटे गीत लिखे हैं जिनमें भावुकता का उफान कतई नहीं है, बल्कि ठोस संवेदनाओं की छोटी-छोटी दीप्तियाँ दिखती है।''[152]

''त्रिलोचन की बाहरी धजा देखकर यह समझना ठीक नहीं कि वे बारीक काम करने वाले सुनार नहीं बल्कि अनगढ़ लुहार हैं। लोक में भी सिर्फ लुहार ही नहीं होते। दस्तकारी के महीन काम करनेवाले कारीगर भी होते हैं। अक्सर मशीन से काम करनेवालों से बेहतर और कुशल। त्रिलोचन की लोक-जीवन-सम्भवना भाषा कभी-कभी ऐसी सूक्ष्म कारीगरी का करिष्मा भी दिखा जाती है।''[153]

जबकि नामवर सिंह त्रिलोचन की कवि के रुप में हुई उपेक्षा की मीमांसा करते है- ''त्रिलोचन ने कभी कविता की खोटी कसौटी की परवाह नहीं की। अपना ढर्रा अलग बनाए रखा। अपने मन, अनुभव, लोक जीवन और आज की मनुष्यता दृष्टि के अनुसार उन्होंने अपनी कविता के लिए 'नयी सभ्यता' के नए चरण में भी लोक-कविता का पथ चुना तो 'आधुनिकता के दरबार' की सजा तो होगी ही। यदि कोई कवि परिष्कृत धातुओं के युग में भी ढाक की पत्तल को थाली की मर्यादा देने का प्रयास करें तो उसे 'पिछड़ा' ही कहा जाएगा।''[154]

असल में यह दृष्टिकोण का भेद है। एक व्यक्ति की दृष्टि से जो सही है, वह दूसरे व्यक्ति के लिए गलत हो सकता है। आम सी बात है कि हम धारा-प्रवाह में बहने के अभ्यस्त हो जाते है। इसलिए 21 वी सदी की चौराहे पर खड़े या, पहुँचे हुए हम त्रिलोचन को पिछडा कहते हैं। फिर भी त्रिलोचन कहते हैं -

पसर चरावइँ चउआ लेइ चरवाह
आपन आपन खेत लखइँ लखवाह।[155]

मगर क्या यह आवश्यक नहीं है कि जड़ होते जा रहे आज के मानव को चरवाहा की संस्कृति थोड़ी सी स्निग्धता प्रदान कर सकती है- इसे हम पहचाने। एक कवि यदि बड़ी ही उत्कटता के साथ इसे महसूस करता है तो हम उसका आदर करें। कवि की विवशता देखिए

गाता अलबेला चरवाहा
चौपायों को साथ सँभाले
पार कर रहा है वह बाहा
गए साल तो ब्याह हुआ है
अभी अभी बस जुआ छुआ है
घर घरनी परिवार है आँखों के आगे-(156)

भारत के निम्न वर्ग के परिवारों की यह विवशता है कि उसे खेती-बाड़ी से अधिक धन नहीं मिलता। इसलिए शहर की तरफ मुड़ना पड़ता है। भले ही ग्रामीण जीवन में अभाव हो, सडाँध हो, बेबसी हो लेकिन जो संस्कारों में रच-बस गया हो उसे कोई भी व्यक्ति आसानी से भूला नहीं पाता। शहर में रहकर वह शहराती हो सकता है लेकिन फिर भी उसकी आँखे गाँव की तरफ ही लगी रहेगी।

फुटे गलारा मुनइ मूनत जाइ
खेतवाई में नारी निरखत जाइ।(157)

आर्थिक विवशता के कारण कवि को महसूस होता रहता है कि बहुत कुछ हाथों से छूट रहा है- जो छूट रहा है उसे दुबारा जिया नहीं जा सकता लेकिन कम से कम अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त तो किया जा सकता है।

मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, ''त्रिलोचन की कविता की दुनिया एकदम दूसरी है। उसमें गाँव की जिन्दगी की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ है, जनजीवन के चित्र हैं और गाँव की बोली-ढोली, लाग-लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, इंगित आदि हैं। किसान-जीवन और जातीय मन का यह काव्य नयी कविता के आधुनिकतावाद का प्रतिपक्षी और प्रतिरोधी है। नयी कविता के आधुनिकतावादी वातावरण में त्रिलोचन की कविता महानगर में बसे-बचे गाँव की तरह है। यह आपकी मानसिकता पर निर्भर है कि उसे आप पिछड़ेपन की निशानी मानें या रेगिस्तान में नखलिस्तान।''(158)

टक-टक करती घड़ी की सुईयों में सिमटी-सिसकी जिंदगी में पंखे की हवा या वातानुकूलित कमरे की ठंडक की अपेक्षा त्रिलोचन जैसे सादगीपूर्ण जीवन जीनेवाले व्यक्ति के लिए पुरवैया, हौले-हौले बहनेवाली स्वच्छ-ताजी हवा तरोताजा करती है। व्यक्ति की सारी थकान उड़न-छू हो जाती है।

दुपहर थी जेठ की हवा भी चल कर ठहरी
थी. नीम की छाँह-चलता कूआँ-मुड़े चले
हम तुम. प्यास कड़ी थी और थकान भी गहरी
घनी छाँह देखी, जा बैठे पेड़ के तले.
घमा गए थे हम. फिर नंगे पाँव भी जले

थे. मर गया पसीना, जी भर बैठ जुड़ाए.(159)

ध्यान देने योग्य बात यह है कि ग्रामीण जीवन से असंबद्ध होकर बेमन से जीवन-यापन करने के कारण कवि को पीड़ा तो होती है। लेकिन त्रिलोचन का कविता में जो एप्रोच या अभिव्यक्ति क्षमता है उसमें कुंठा, अतिरेक, घुटन, तनाव रंचमात्र भी नहीं है। एक गृहस्थ व्यक्ति जिस तरह से बड़े ही संयमित ढंग से जीवन-यापन करता है- (उससे यह पूछा जाना बेमानी है कि यह संयम कहाँ से आया? क्योंकि जीवन उसे बहुत कुछ स्वयं ही पढाता है)- उसी प्रकार से त्रिलोचन की अभिव्यक्ति में उद्वेलन की अतिशयता की अपेक्षा संयम अधिक है, जहाँ उद्देश्य केवल लोक-जीवन और संस्कृति को दर्शाना ही रहा है।

'कजरी' कविता के माध्यम से त्रिलोचन लोक-संस्कृति को अभिव्यंजित करते हैं। ग्रामीण परिवेश में विभिन्न त्योहारों, धान-कूटने तथा अन्य विभिन्न क्रिया कलापों के साथ-साथ बरसात के माहौल में भी गीत गाए जाते है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

कजरी
रात भर रोती रही
चाँद
ढिबरी के गाढ़े धुएँ जैसे
बादलों में था
प्रवाह
बादलों का आज खर था
चाँद लुकाछिपी खेलता सा
लगा - (160)

त्रिलोचन की विशेषता है कि ग्रामीण संस्कृति का चित्रण करते हुए जिन उपादानों को वे चुनते हैं वे ग्रामीण परिवेश के अनुरूप होते हैं इसलिए वह चित्रण मात्र आख्यान बनकर नहीं रहता बल्कि उसमें सहजता और स्वाभाविकता आती है।

'बाढ़ में दशाश्वमेघ घाट' कविता में गंगा के तट पर स्थित वातावरण को चित्रित करके त्रिलोचन लोक-संस्कृति को दर्शाते हैं।

रर्रे बैठे, काली सड़क दाहिने बायें,
जल को छूते तख्ते-तख्तों पर सैलानी
जमे हुए हैं, कहीं चल रही कथा-कहानी,
नौजवान आते हैं, आती हैं महिलाएँ,
विस्फारित लोचन विलोकने वे उपदाएँ

जो गंगा ने दी हैं, जो हैं आनी-जानी.(161)

शहरी संस्कृति में प्रकृति की मोहकता से हम मुँह मोड़ रहे है, अत: त्रिलोचन का ध्यान बबूल के फूलों की ओर जाता है।

फूल मुझे भाए बबूल के तूली जैसे
सारी राशि हँसते मानो आनंद मनाते
चेतन कण हों, हरित पीत वर्णच्छवि, ऐसे
भाव वर्ण की प्रीति कहाँ है।(162)

भारतीय जनता का ध्यान ग्रामीण प्रकृति की ओर खींचते हुए कवि कहता है-

ये दिन न भुला ऽऽऽऽ ना
ओ सेनेही
×   ×   ×
नीबू के फूले
बेला के फूले
कहीं किसी बारी
में भूले-भूले
विलम मत जा ऽऽऽऽऽ ना
ओ सनेही-(163)

त्रिलोचन स्वयं जिस प्रकार से नीबू, बेला के फूलों की ओर आकर्षित होते हैं, उसी तरह से वे यह चाहते हैं कि हम भी इसे न भूले। इसलिए अपने स्नेहियों को आह्वान देते हुए वे कहते हैं कि जरा भी देर न करते हुए हम उस विकास को, प्रकृति की विभिन्न छटाओं में होनेवाले परिवर्तनों का निरीक्षण करें। क्योंकि स्वयं को सराबोर किए बिना वह प्रकृति हममें रच-बस नहीं पाएगी। यह अनुभव नया नहीं लेकिन विलक्षण तो निश्चित रुप से है जो शहरी संस्कृति में प्राप्त नहीं होता।

''उनके पास देने के लिए नया कुछ नहीं है लेकिन नए से बचाने का प्रयास-शब्दों का ऐसा संयोजन कि वह लोक-जीवन और लोक-संस्कृति के अनुरूप गढे हुए लगते हैं । इसलिए उनकी कविता लोकानंद की कविता है। समीक्षकों के आनंद का विषय वह चाहे हो या न हो।''(164)

साँस ना लेने की बेला है
प्रलय पर्व का यह मेला है। (165)

गड़रियों के गीत हो, दिन-रात एक करके खेतों में गीत गानेवाला किसान हो- इसमें नयापन नहीं है लेकिन इस पुरानेपन को हम भूलते जा रहे हैं- यह भयंकर

पीड़ा है।

करइ किसानी जे फुर होइ किसान
रातिउ दिन पिरथिह कर धरइ धिआन। – 166

किसान अपने खेतों में जी-तोड़ मेहनत करके धूप-ताप को इसलिए सहता है ताकि बरसात की बुँदा-बूँदी के बाद खेत लहलहा उठे।

जीवन जड़ के उपर छा गया
जहाँ रंग न था रंग आ गया
बरसती धरती ने
साज सजे धानी-(167)

"अगर यह कहा जाए कि त्रिलोचन शब्द रुपी रंगों के माध्यम से लोक जीवन की पेंटिंग करते हैं, तो अत्युक्ति नहीं है। उनकी दृष्टि के दायरे में लोक-मानव अपने कर्म के साथ उपस्थित तो है ही- गाय, बकरी, कुत्ते, अमराई, नाव आदि भी जीवन--जगत में लोक-रंग भरते हैं।"(168)

ग्रामीण परिवेश और संस्कृति का चित्रण करते हुए त्रिलोचन काफी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते है जिस कारण वह वातावरण हमारे सामने मूर्त रुप में सामने आता है।

गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पहुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर-(169)

एक ओर जहाँ ग्रामीण प्रकृति को इंद्रधनुषी रंगों ने आबाद किया है वहीं दूसरी ओर इसमें समस्याओं की भरमार है। त्रिलोचन ग्रामीण जीवन की कुरुपता, विद्रुपता के अंतर्गत ऋण की प्रताड़ना की ओर इंगित करते हुए कहते हैं-

रिन लइ लइ जे भोगा किहेसि सवाद
दिहेसि महाजन के हाथे मर्जाद।(170)

अगर आजादी के बाद पंचवार्षिक योजनाओं का लाभ सही मायने में गाँव के लोगों को होता तो शायद ऋण लेकर उसे न चुका पाने के कारण शहर में आकर रोजगार ढूँढने की नौबत लोगों पर न आती।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार, "उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन के विविध आयाम हैं। गाँव के लोग धरती के लोग सारी अपनी कमजोरियों के बावजूद सहजता से चित्रित हुए हैं, शहर में रहते हुए भी त्रिलोचन शास्त्री ग्रामीण चेतना के कवि है।

उनकी कविताओं में ग्रामीण विरुपताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण हैं। ग्रामीण जीवन के प्रति रोमान्टिक एप्रोच नहीं है। उन्होंने गाँव के नरक को भी देखा है लेकिन सामाजिक जीवन को भी देखते हैं।''[171]

त्रिलोचन अभावमय जीवन के संदर्भ में लिखते हैं-

रिक्चारिक्ची अओशु बिगरइ बात
सुख से खावा जाइ न रीन्हा भात।[172]

त्रिलोचन जानते है कि केवल प्रकृति की सुंदरता को निहारकर ही भूखे का पेट भर नहीं सकता। वे काफी वास्तववादी होकर कहते हैं-

मुर्दे पड़े हुए के, मुँह नाक से बहा था
काला और पनीला रुधिर, गंध का लहरा
हल्का-हल्का उठता था पुत्र ने गहा था
हाथ पिता का, वेग आँसुओं का था गहरा
'बाबू' तुम्हें हो गया क्या, आशा में ठहरा
मैं डेरे पर रहा कि तुम जब आ जाओगे
तब हम गाँव चलेंगे। सारा मेला भहरा
कहाँ पुलिस ने अब रोने से क्या पाओगे।[173]

'मैला आँचल' उपन्यास में ग्राम्य जीवन की वीभिषिका के संदर्भ में फणीश्वरनाथ रेणु लिखते है कि इसमें फल भी है, शूल भी है, उसी प्रकार से त्रिलोचन भी ग्रामीण संस्कृति के तहत ग्राम्य लोगों की आपदाओं को चित्रित करते हैं।

ग्रामीण जीवन की विपदाओं में 'अधिया' के कारण खलबली मचती है। यहाँ पर भी धोखा-धड़ी और अनर्थ क्रियाएँ चलती रहती है। कवि का अनुभव देखिए-

कभी नहीं था, यहाँ आदमी हरदम नंगा
दिखलाई देता है, चोरी-सीनाजोरी
साथ-साथ मिलती है, निष्कलंकता गंगा

उठा-उठाकर दिखलाती जिह्वा झकझोरी
आस्था जीवन में विश्वास बढाता है जो
वही बटाई में जाता है खंड खंड हो-[174]

जिस प्रकार से 'पूस की रात' कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ऋण की समस्या को चित्रित करते है, उसी प्रकार से त्रिलोचन बटाई के कारण निर्धन होते किसान की त्रासद स्थिति के प्रति क्षोभ प्रकट करते हैं।

प्रेम दुबे लिखते है, ''उन्हें वही राह पसंद आती है जहाँ 'घनखर होने

से धरती धानी लहराती है।' अपनी धरती और अपने देश भारत के सम्मान की चिन्ता वे भारतेन्दु के समान ही करते हैं। उनका मानना है कि 'भारत का सम्मान हमारी जीवन भाषा है' और ''वैयक्तिक अभ्युत्थानों की अभिलाषा देशोत्थान के लिए ही होनी चाहिए। त्रिलोचन को इस बात का क्षोभ है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था उसी को उपर नहीं उठने देती जो मेहनत करता है।''(175)

भारतीय अस्मिता को दुबारा प्रस्फुटित करने के लिए साहित्यकारों को अतीत की ओर जाना पड़ा। इसलिए त्रिलोचन भी हमारे लिए स्वप्नवत होते गाँव की तरफ लौटते हैं। चंदन तस्करी के मामले में जुड़े हुए लोग तथा अन्य स्वयं केंद्रित लोग जो प्राकृतिक उपादानों, वन्य रक्षा की ओर गौर नहीं करते, वहाँ त्रिलोचन हमें बाँसो की झुटमुट में ले जाते हैं।

पवन
शाम बीतने पर
बँसवारी में
छिप कर आता है
रुक रुक कर
बाँसुरी बजाता है-(176)

सुल्तान अहमद का मत है- ''त्रिलोचन जी के यहाँ गावों का चित्रण आंचलिकतावादी ढंग से नहीं होता, जिसमें एक गाँव की 'विशिष्टता' और अद्वितीयता को उभारने के लिए उसे दूसरे गाँवो से इतना अलग कर दिया जाता है कि वह किसी 'नदी' का कोई 'दीप' नजर आने लगता है। इस दृष्टि से देखे तो त्रिलोचन जी के गाँव 'प्रतिनिधि' गाँव नजर आते हैं, लेकिन उनकी विशिष्टता भी कहीं खंडित नहीं होने पाती। त्रिलोचन जी गाँवों की जिन्दगी से अपना नजरिया बनाते हैं, न कि अपना नजरिया गाँव पर आरोपित करते हैं।''(177)

इसलिए कह सकते है कि यदि हमें भारतीय स्वाभाविक प्रकृति को देखना होगा तो त्रिलोचन की कविताओ में हम देख सकते हैं।

खानि खानि कइ मनइ, जइसन देस
तइसन चला, चलावा, तइसन भेस।(178)

जब कभी भौतिकता के आवरणों से आबद्ध जीवन प्रणाली के अंतर्गत भारतीय संस्कृति की बात की जाएगी तब सर्वप्रथम कृषि व्यवस्था को ही याद किया जाएगा। इसलिए त्रिलोचन मूलतः किसान को नहीं भूलते।

जब देखे तब तन पाए धुरिआन
चीन्हि जानि के खेतहा खेत कमान।(179)

वैसे देखा जाए तो हर देश में खेती-बाड़ी की जाती है, अनाज की आवश्यकता सभी को है लेकिन भारतीय संस्कृति में कृषि व्यवसाय-व्यवसाय कम और सांस्कृतिक धरोहर अधिक है क्योंकि उसके साथ लोक जीवन की लय जुड़ी है जिसे त्रिलोचन सफलता के साथ उकेरते हैं।

गाँव की जिंदगी में व्याप्त विषमता, रूढियाँ और पिछड़ापन और उसके सकारात्मक पहलू भी इस कविता में चित्रित हुए हैं। कवि ने अपनी तरफ से यथार्थ में न तो कुछ अतिशय जोड़ने की कोशिश की है और न ही अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है-की भावुकता का शिकार होकर उसने वहाँ की जिंदगी को आदर्शीकृत ही किया है। नगई महरा के चरित्र में जो अन्तविरोध है वह भारत के देहात के भीतर परंपरा भंजन की दुहरी प्रवृत्तियों का आधार बना है, जिस पर स्थिर होकर वह अपने वक्त को अतिक्रमित कर गया।[180]

नगई महरा, भोरई केवट, अवतरिया जैसे व्यक्तित्व हमारे जनपद के यथार्थ है। प्रेमचंद के घीसू-माधव, हलकू जैसे चरित्रों के समान वे अजरामर हैं जो आंचलिक जीवन की घोर त्रासदी बनकर हमारे सामने आते है क्योंकि उनका जीवन ही त्रासद है।

कब्बहु धरती कब्बहुँ लखे अकास
पएँड़ा पकरे जहाँ लागि चलवास
बदरन कइ अकास मँड लखे छछन्न
कब्बहुँ बाढ़इँ कब्बहुँ होइँ अछन्न।[181]

परमांनद श्रीवास्तव लिखते है ''त्रिलोचन के लिए गाँव एक पूरा समाज है, एक व्यापक लोक है जिसमें स्मृतियाँ, परंपरा के सजीव अंश ही नहीं है, मौजूदा समय का तीखा बदलाव या दंश भी है।.... त्रिलोचन ग्रामीण समाज के अन्तिविरोधों को भी एक तरह के समीक्षा-विवेक से देखना चाहते हैं। जहाँ वे प्रकृति के निसर्ग से सरल घुले मिले हैं वही जैसे अलग अजनबी भी। फैशन के अर्थ में नहीं। एक सामाजिकता के अपने दबाव से।''[182] 'चारों ओर घोर बाढ आई है' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है

पानी ही पानी है
खेतों की मेंड़ों पर दूब लहराती है
मेंढंक टरटों टरटों करते हैं
उनका स्वरयंत्र फूल आया है
बगले आ बैठे है जहाँ तहाँ

मछलियाँ चढ़ीं हैं खूब-[183]

त्रिलोचन का निरीक्षण है कि जरा पोढ़ होते ही केले के पत्ते फट जाते है लेकिन जब वे कोमल-कोमल पत्तिंयाँ निकल आती है तो हौले-हौले चलनेवाली हवा उन पत्तियों को दुलारती है, रिमझिम बरसात, धूप चाँद का खिलना आदि सुंदर प्राकृतिक दृश्यों में केले के पत्ते विकसित होते रहते हैं। मशीनीकरण के बावजूद वह गाँव की गोद में खोया है, कवि इसे स्वीकार करता है

अपने आसापास हूँ खोया हूँ अपने में
जैसे बहुत बिछोही मिल जाए सपने में-[184]

''त्रिलोचन की कविता गाँव से कस्बे तक फैलती है। महानगर उनकी कविता में एन्ट्री नहीं कर पाता। यह अद्‌भुत स्थानीयता है मानो कोई व्यक्ति तन मन से सिर्फ स्थानीय ही बना रहे और सहज स्वभाव से बना रहे। इतने इतने आधुनिक तूफानों-विकास के नारों, सड़को, संचारों के बावजूद, सूचना जंजाल के बावजूद त्रिलोचन किस तरह अपनी स्थानीयता में स्वायत्त रहते हैं यह हिन्दी में सचमुच अन्यत्र कही नहीं दीखता। ऐसा स्वायत्त मन, ऐसा आत्मस्थ चित्त, ऐसी स्थितप्रज्ञता दुर्लभ, यह जितनी दुर्लभ है उतनी ही सहज है यहाँ।''[185]

जो औरों के लिए अनपेक्षित, असंभव है वह त्रिलोचन के लिए सहज और स्वाभाविक हो सकता है क्योंकि उनका मन:पिंड ही कुछ ऐसा है। इसलिए काशी उनके लिए मानों गाँव ही है -

काशी मुझे गाँव सी लगती है, शहराती
हवा यहाँ कम-से-कम है। सब आसपास से
घुले-मिले रहते हैं। अपना रंग दिखाती
प्रकृति मनुष्यों में है, धरती से अकास से
सहज मुक्त संबंध बना है।-[186]

त्रिलोचन को काशी में रहकर एक साहित्यिक परिवेश प्राप्त हुआ, उनके जीवन की कई महत्वपूर्ण स्मृतियाँ काशी के साथ जुड़ी हुई है, नामवरजी का मानना है कि वे अवध के चिरानीपट्टी गाँव के लोक कवि नहीं बल्कि काशी के जनकवि है।

नामवर सिंह कहते हैं - काशी त्रिलोचन के लिए वैसी ही थी जैसे गांधीजी के लिए भारत का गाँव। गाँव की असलियत का पता था। गाँव की गन्दगी का, दरिद्रता का, बर्बरता का, छूआछूत और जातपाँत का जहालत का। फिर भी मन में एक गाँव बसा था। बसा ही नहीं था सपनों का रूप ले रहा था। यह सपनों का गाँव अक्सर वास्तविक गाँव में घुलमिल जाता था।''[187]

त्रिलोचन के गाँव में वातावरण अत्याधिक सुरूचिपूर्ण, सादगी से भरा हुआ है। सभी कलाएँ इस गाँव की संस्कृति में घुली-मिली है। यह गाँव दूसरे गाँव के इतना समीप है कि एक की सीमा पार करते ही दूसरे गाँव की संस्कृति रीति रिवाज, उस गाँव में रहनेवाले लोगों का व्यक्तित्व जानना त्रिलोचन के मुख से अनिवार्य हो जाता है। इस तरह गाँव की कड़ी कभी टूटती नहीं है।

चाहे वह चिरानीपट्‌टी हो या अवध का कोई भी अंचल हो जब त्रिलोचन गाँव का चित्रण करते है तब उसमें वह अंचल बड़े फलक में झलकता है, आंचलिकता के सीमित दायरे में नहीं। उनके लिए ग्राम जीवन मात्र ग्राम जीवन के लिए हैं।

जमकि जमकि के बरसेउ के उन छँहाइ
खेतवारी मँड खेतिहर रहइ नहाइ।(188)

'झापस' कविता में त्रिलोचन रिम-झिम बरसती बरसात का चित्रण करते हैं, वह टिप-टिप की ध्वनि कवि को प्रफुल्लित करती है। फूल खिलते हैं, हवा सरसराती है, चिड़िया पंख समेटकर अपनी नीड़ों में लौटते है, दिन सुरमई लगने लगता है पानी-किचड़ के कारण लोग घर से बाहर निकलना नहीं चाहते, लेकिन वे लोग आ जाते हैं जिनके पास कोई विकल्प नहीं रहता।

वर्षा सीकर भरी हवा, मेहंदी की मँह मँह
जी करता है मैं अञ्जलि भर भर पी जाऊँ
जैसे फुलसुँघनी गाती है वैसे गाऊँ-(189)

यह है गाँव गँवई की पगडंडी में होनेवाली बरसात। 'घर वापसी' कविता में रेल से सफर करते हुए तेजी के साथ दौड़ते खेत बाग कवि को अपने मे लगते है, मानो एक ऐसा वातावरण जो छूट रहा था जिसको अरसों के बाद वह अनुभव कर रहा हो। एक और अनुभव देखिए -

गाइ कँ पगहा भइँसि कँ लागइ छान
जेहिकर जेस बल तेहि कर तेस सनमान(190)

राम निहाल गुंजन का निरीक्षण है कि त्रिलोचन जी गाँव - गँवई परिवेश से आते हैं इसलिए उन्हें जब भी प्रकृति तथा जन जीवन का चित्रण करना होता है, वे गाँवो की ओर लौटते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हें गाँव की मिट्टी, किसान, मजदूर, बच्चे और औरतें अक्सर अपनी ओर खींचते है तथा वे सहजता के साथ उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होते हैं।

अत: कह सकते है कि त्रिलोचन की सांस्कृतिक दृष्टि ग्रामीण संस्कृति से आप्लावित हैं।

o-o-o-o-o

संदर्भ सूची - पंचम अध्याय

1. समाजशास्त्र के सिद्धांत : लेखक कुंवर सिंह तिलाश, पृ.1
2. Principle of Sociology : F. H. Giddings पृ.11
3. समाजशास्त्र के सिद्धांत : लेखक कुंवर सिंह तिलाश, एम. के. सरन, डॉ जीतांग, आर. के. अग्रवाल , पृ.2
4. वही, पृ.2
5. वही, पृ.2
6. वही, पृ.2
7. Human Society Chap Social Norms Kingsley Davis, पृ.24
8. वही, पृ.24
9. Self and Sociology , Chap what is social Psychology, John Hewitt
10. The Elements of Sociology F.H. Giddings पृ.6
11. वही, पृ.6
12. वही, पृ.6
13. वही, पृ.6
14. वही, पृ.6
15. वही, पृ.6
16. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, डी.पी. बरनवाल, पृ.35
17. वही, पृ.36
18. वही, पृ.3
19. साहित्य का परिवेश: संपादक सच्चिदानंद वात्स्यायन, पृ.41
20. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, जगदीशचंद्र पृ.15
21. वही
22. भारतीय संस्कृति, नरेंद्र मोहन, पृ.5
23. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ.11
24. वही , पृ.13
25. आलोचना, जनवरी-मार्च 75, वर्तमान सांस्कीतिक साहित्यिक स्थिति-रामवक्ष
26. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ.14
27. भारतीय संस्कृति, शिवदत्त ज्ञानी, पृ.16
28. समाज और संस्कृति, डॉ. सावित्रि चंद्र शोभा, पृ.94

29. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ.18
30. वही, पृ.15
31. आधुनिक हिन्दी काव्य और संस्कृति, डॉ. भक्तराज शास्त्री, पृ. 87
32. वही, पृ. 89
33. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संस्कृत तथा संस्कृति : बलदेव राज शर्मा, पृ.89
34. आजकल/ सितम्बर 1992, भाषा और संस्कृति, कुछ बिंदु, कुछ विचार : शंकर दयाल सिंह, पृ.4
35. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ.16
36. वही, पृ.17
37. वही, पृ.18
38. समाज शास्त्र के सिद्धांत, लेखक कुवर सिंह तलाश, एम.के. सरन, डॉ. जीतांग, आर. के. अग्रवाल, पृ.266
39. वही, पृ.266
40. वही, पृ.267
41. वही, पृ.266
42. आधुनिक हिन्दी काव्य और संस्कृति, डॉ. भक्तराज शास्त्री, पृ. 95
43. प्रगति और परंपरा डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.3
44. छायावाद- नामवर सिंह पृ.65
45. हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि, : राम मनोहर त्रिपाठी, पृ.49
46. कविता की मुक्ति, नंदकिशोर नवल, पृ. 10
47. साहित्य और सभ्यता : रवीन्द्रनाथ ठाकूर, पृ.110,111
48. नया साहित्य, नये प्रश्न : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.17
49. काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ. 7
50. समाज और संस्कृति : सावित्री चन्द्र शोभा, पृ.1
51. छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण : डॉ.प्रमोद सिन्हा
52. हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि : राममनोहर त्रिपाठी, पृ.91
53. साहित्यिक निबंध : डॉ. राजनाथ शर्मा, पृ.367
54. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध : महादेवी वर्मा, पृ.29
55. आधुनिक साहित्य : नंददुलारे वाजपेयी, पृ.47
56. वही, पृ.47
57. आधुनिक हिन्दी कविता का सामाजिक दर्शन : डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीश, पृ. 28-29

58. काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ. 5
59. विचार प्रवाह : डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.102
60. त्रिलोचन संकल्पिता, संपादक ध्रुव शुक्ल, पृ. 69
61. शब्द, जीवन की शराब, पृ.35
62. सापेक्ष, दिगन्त :लेख ललित विलोचन शर्मा, पृ.509
63. दिगन्त : ध्वनिग्राहक , पृ.22
64. सापेक्ष, महावीर अग्रवाल और त्रिलोचन की बातचीत, पृ.709
65. सापेक्ष, विश्वामित्र कवि त्रिलोचन, अमीर चन्द वैश्य, पृ.564
66. गुलाब और बुलबुल, पृ.35
67. सापेक्ष, जिन्दगी के साथ गुफ्तगू करती कवितायें : डॉ. गोरेलाल चंदेल, पृ.587
68. ताप के ताए हुए दिन, पृ.36
69. त्रिलोचन के बारे में, औसत भारतीयता का कवि, मलयज
70. त्रिलोचन के बारे में : संपादक - गोविन्द प्रसाद, पृ.52
71. ताप के ताए हुए दिन, पृ.61
72. शब्द, पृ.8
73. सापेक्ष, रेगीस्तान में नखलिस्तान का अहसास दिगन्त : देवीशंकर अवस्थी, पृ,513
74. ताप के ताए हुए दिन, मैं तुम, पृ.61
75. शब्द, पृ.68
76. दिगन्त, भौजी, पृ.29
77. सापेक्ष, कवि त्रिलोचन और उनका लोकमानस : जीवन सिंह, पृ.190
78. ताप के ताए हुए दिन, चित्रा चांबोरकर , पृ.77
79. दिगन्त (पश्यन्ती) , पृ.15
80. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीश पचौरी, पृ.170
81. वही, जिंदगी के साथ गुफ्तगू करती कविताये : डॉ. गोरलाल चंदेल, पृ.589
82. वही, ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, पृ.520
83. दिगन्त, पृ.19
84. सापेक्ष, कवि त्रिलोचन और उनका लोकमानस, जीवन सिंह, पृ.185
85. फूल नाम है एक, फेरू
86. चैती, पृ.52
87. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.87

88. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.36
89. धरती, 18
90. सापेक्ष, अपनी राह चला आँखों में रहे निराला : रेवती रमण, पृ.198
91. फूल नाम है एक, पृ.45
92. वही, पृ.57
93. ताप के ताए हुए दिन, पृ.52
94. फूल नाम है एक, पृ.99
95. गुलाब और बुलबुल, पृ.74
96. फूल नाम है एक, पृ.99
97. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीश पचौरी, पृ.161
98. वही, जनता के आस्था के कवि : ज्योतिष जोशी, पृ.612
99. उस जनपद का कवि हूँ पृ.52
100. सापेक्ष, त्रिलोचन -देसी संस्कार के बेबाक कवि, विश्वेश, पृ.213
101. त्रिलोचन के बारे में संपादक- गोविन्द प्रसाद, पृ.81
102. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.86
103. त्रिलोचन के बारे में : संपादक-गोविन्द प्रसाद, पृ.131
104. फूल नाम है एक पृ.25
105. वही, पृ.67
106. त्रिलोचन के बारे में : संपादक-गोविन्द प्रसाद, पृ.152
107. वही, पृ.152
108. फूल नाम है एक
109. उस जनपद का कवि हूँ पृ.3
110. दिगन्त, पृ.23
111. सापेक्ष, महावीर अग्रवाल और त्रिलोचन की बातचीत, पृ.705
112. धरती, पृ.21
113. सापेक्ष, स्वतंत्र भारत में 'महाकुंभ' का कवि त्रिलोचन और कथाकार परसाई का व्यंग्य : विष्णुचंद्र शर्मा, पृ.140
114. फूल नाम है एक, पृ.62
115. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.37
116. फूल नाम है एक, पृ.61
117. सबका अपना आकाश, पृ.16

118. त्रिलोचन के बारे में : संपादक-गोविन्द प्रसाद, पृ.138
119. अमोला पृ.18
120. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.66
121. फूल नाम है एक
122. ताप के ताए हुए दिन, पृ.48
123. सापेक्ष, वह रंगमंच नाटक और एक लिलस्म उर्फ त्रिलोचन जी के भाई, प्रकाश मनु, पृ.30
124. चैती, पृ.54
125. चैती, पृ.28
126. धरती , पृ.12
127. दिगन्त, लाश , पृ.45
128. सापेक्ष, त्रिलोचन देसी संस्कार के बेबाक कवि : विश्वेश, पृ.216
129. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीश पचौरी,पृ.159
130. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.49
131. सापेक्ष, कविवर त्रिलोचन , राममूर्ति त्रिपाठी, पृ.142
132. त्रिलोचन के बारे में, पृ.31
133. दिगन्त, पृ.36
134. दिगन्त, पृ.54
135. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.87
136. शब्द, पृ.52
137. ताप के ताए हुए दिन, पृ.26
138. सापेक्ष, जनता के आस्था के कवि : ज्योतिष जोशी, पृ.610
139. त्रिलोचन के बारे में, पृ.26
140. चैती, पृ. 48
141. सापेक्ष, इसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीरा पचौरी, पृ.166
142. त्रिलोचन के बारे में, पृ.222
143. शब्द,पृ.०60
144. नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ, पृ.124
145. ताप के ताए हुए दिन, पृ.23
146. तुम्हें सौंपता हूँ, पृ.59

147. शब्द, पृ.19
148. सापेक्ष, खेतिहर जिजीविषा के कवि त्रिलोचन : राजकुमार सैनी, पृ.152,153
149. अमोला, पृ.64
150. त्रिलोचन के बारे में, पृ.199
151. सापेक्ष, धरती : एक समीक्षा, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.500
152. अमोला, पृ.21
153. सापेक्ष, धरती के कवि त्रिलोचन, रामदरश मिश्र, पृ.146
154. त्रिलोचन के बारे में, पृ.85
155. सापेक्ष, कवि त्रिलोचन और उनका लोकमानस : जीवन सिंह, पृ.179
156. अमोला, पृ.24
157. सबका अपना आकाश, पृ.17
158. अमोला पृ.32
159. त्रिलोचन के बारे में, पृ.149
160. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.67
161. तुम्हें सौंपता हूँ, पृ.43
162. दिगन्त, पृ.49
163. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.65
164. ताप के ताए हुए दिन, पृ.33
165. तुम्हें सौपता हूँ, पृ. 29
166. सबका अपना आकाश, पृ.42
167. अमोला, पृ.33
168. ताप के ताए हुए दिन, पृ.35
169. सापेक्ष, शब्दों में भी हाड-माँस हैं, जीवन यदु, पृ.527
170. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.62
171. अमोला, पृ.38
172. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.241
173. अमोला, पृ.74
174. ताप के ताए हुए दिन, पृ.50
175. सापेक्ष, दोष बताओं मुझको...., प्रेम दुबे , पृ- ५९०
176. सापेक्ष, दोष बताओ मुझको मेरे सदा रहूँगा मैं आभारी : प्रेम दुबे, पृ.590
177. ताप के ताए हुए दिन, पृ.16

178. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.246

179. अमोला, पृ.90

180. वही, पृ.65

181. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताई, चंचल चौहान, पृ.436

182. अमोला, पृ.100

183. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.244

184. तुम्हें सौंपता हूँ, पृ.50

185. ताप के ताए हुए दिन, पृ.56

186. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीश पचौरी, पृ.169

187. त्रिलोचन के बारे में, पृ.83

188. वही

189. दिगंत पृ.५७

190. अमोला पृ.55

o-o-o-o-o

षष्ठ अध्याय

त्रिलोचन की प्रेम संबंधी दृष्टि

''प्रेम वह मनोवृत्ति है जो किसी को बहुत अच्छा समझकर हमेशा उसके साथ अथवा पास रहने के लिए प्रेरित करती है।''(1) कुछ विद्वानों ने इसे माया और लोभ का पर्यायवाची माना हैं। वास्तव में प्रिय का भाव ही प्रेम है।'प्रीञ', 'प्रीतौ' धातु से 'मनिन' का प्रत्यय लगाकर 'प्रेम' शब्द की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है प्रीतिकर या आनंददायी।(2)

प्रेम को अनुरक्ति, अनुराग, आशनाई, आसक्ति, चाहत, प्यार, प्रणय, अपनत्व, मित्रता, सौहार्द, दुलार, वात्सल्य, रोमांस, ममत्व आदि का पर्ययवाची माना गया है।

'संस्कृत हिन्दी कोश' में प्रेमन् (नपु.पु.) शब्द प्राप्त होता है जिसे ''प्रियस्य भावः इमनिच् प्रादेशः एकाच्कत्वात् न टिलोपः तारा'' के रूप में व्याख्यायित किया गया है।-(3)

'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में प्रेम को प्रीति, प्यार, मुहब्बत का पर्यायवाची माना गया है।-(4)

मानव के हृदय में अनेकानेक भावों का विलोड़न होता रहता है। उनमें प्रेम

एक प्रधान एवं कोमल अनुभूति है। वह एक रागात्मक अन्विति है। कई बार मरूस्थलमयी जीवन को नखलिस्तान बनाने का कार्य प्रेम करता है। यह अपरिमित आनंद, तन्मयता और रागात्मकता का पर्याय हो सकता है। प्रेम एक प्रकार की साधना है जिसमें पवित्र और बृहत्तम मनोदशा रहती है अत: इसमें सराबोर होकर सारे भेद-भाव विलुप्त हो जाते हैं। इस अनुभूति को समझने के लिए संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। कालिदास प्रेम की महत्ता को प्रकट करते हुए लिखते हैं

रम्यणिवीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
ययुत्सुको भवतियत सुखिनो पि जन्तु:।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व
भाव स्थिराणि जननान्तर साहृदानि।।-(5)

प्रेम मानव की सबसे बडी शक्ति भी है और कमजोरी भी। कभी-कभी व्यक्ति प्रेम भावना में सराबोर होकर प्रेम की अमिट ज्योति से जीवन को ज्योतित करता है तो कभी कभी यह प्रेम ही उसके जीवन को अंधारमय बनाता है। अर्थात यह अनुभूति जितनी कोमलतम है उतनी ही वह कठोर भी है। यह हर व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह प्रेम को किस दृष्टि से देखता है। परंतु यह अबाधित सत्य है कि व्यक्ति के मानस पर प्रेम का अमिट प्रभाव रहता है।

मानव प्रकृति की उत्पत्ति के साथ-साथ नैसर्गिक रूप से प्रेम जुड़ा हुआ है। मानवीय संसाधनो के अंतर्गत विज्ञान के अविष्कारों से भिन्न इसमें सम्मोहन की अबाध शक्ति है जो गुरूत्वाकर्षण शक्ति से भी अधिक बलशाली है।

लालसा, कामना, आकर्षण, मोह, ममता, स्नेह, भक्ति, श्रद्धा आदि प्रेम के अनेकानेक रूप हो सकते हैं। प्रेम के सात्विक रूप में किसी भी प्रकार की प्रत्याशा नहीं रहती। आत्म समर्पण के लिए आत्म-विस्मृत होना नितांत आवश्यक है, यह प्रेम की कसौटी है। प्रेम में आत्म समर्पण करनेवाला व्यक्ति महान होता है, उदात्तता का तत्व उसमें विद्यमान रहता है, वास्तव में यह कालातीत प्रेम है, इस प्रकार का प्रेम किसी मानदंड में तोला नहीं जा सकता, उसकी अनुभूति और प्रतीति संवेदनात्मक स्तर पर चलती रहती है। इस प्रेम को वीतराग कह सकते हैं, यह अत्युच्य कोटि का आध्यात्मिक सात्विक प्रेम है।

मानव जब प्रेम में विचरण करने लगता है, तब उसका जीवन स्वर्ग के समान बन जाता है; अन्यथा उसमें और किसी पशु में कोई अंतर नहीं है। मनुष्य को न ही देव बनना है और न ही राक्षस या दानव, उसे तो सही अर्थों में मानव बनना है और यह मानवता प्रेम का ही पर्याय है। जब व्यक्ति में प्रेम भावना होगी तब ही वह किसी व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में देख सकता है, उसकी सारी पाशविक वृत्तियों का विनाश

हो सकता है। मानव की सभ्यता और संस्कृति के आरंभिक चरण में ही प्रेम महत्वपूर्ण घटक रहा है। ह्रदय क इस स्निग्ध कोमल स्पर्श से रोम-रोम पुलकित हो उठता है और सृष्टि में मंगलकारी कामना का उद्‌बोधन नजर आता है। मनोवैज्ञानिक विचारकों ने प्रेम को मानव-जीवन की चिर-पिपासा के साथ जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रेम चाहे वह भौतिक हो या भावनिक, परंतु बिना प्रेम के हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं है। प्रेम ही आनंद है इसलिए इस आनंद की तलाश में हर व्यक्ति प्रेम तो करता ही है, ऐसा कोई नहीं जिसने प्रेम नहीं किया हो, उस प्रेम के रूप अलग-अलग हो करते हैं।

मुंशी प्रेमचंद के प्रेम संबंधी विचार इस प्रकार है - '' प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना से ही उसका पोषण होता है, भावना से ही वह जीवित रहता है और भावना से ही लुप्त हो जाता है।''(6)

प्रेम एक प्रकार की आत्मिक और वैयक्तिक अनुभूति है जिसे अनुभव किया जा सकता है जिसका प्रमुख उत्प्रेरक तत्व है आत्मा को तृप्त करना। प्रेम के साथ दया, क्षमा, करूणा आदि भाव भी जुड़े है। अत: सात्विक प्रेम में कल्याणकारी तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

रामेश्वर खंडेलवाल के अनुसार '' फूल सुन्दर है किंतु ममता की मुस्कान से अधिक नहीं, इन्द्र धनुष्य अभिराम है किन्तु प्रणय के सतरंगी स्वप्नों से अधिक नहीं, पूनम का उजाला शुभ्र शशि दिव्य है, अलौकिक है किन्तु श्रद्धा और विश्वास के पावन आलोक से अधिक नहीं। एक प्रेम भरे ह्रदय से अधिक कदाचित इस विश्व की सीमा रेखा में और कुछ भी अधिक सुन्दर नहीं। अत: प्रेम सुन्दर है, प्रेम स्वयं सौन्दर्य है।''(7)

प्रेम में उदात्तता के तत्व होने के कारण ही वह सत्यं, शिवं, सुंदरम् कहलाता है। समाज के कल्याण के लिए निरंतर रूप से प्रेम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । विध्वंसक और विनाशक, विघटनशील तत्व इसमें नहीं होते वरन् समन्वयात्मक, सुघटित, उदारतावादी दृष्टिकोण इसमें विद्यमान रहता हैं। कोमलतम और स्निग्ध अनुभूति के कारण यह प्रेम व्यापक स्तर पर जन समुदाय के साथ जुड़ा हुआ रहता है। डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा के अनुसार ''किसी वस्तु के प्रति विशिष्ट प्रकार का लगाव ही प्रेम है।''(8)

जिससे हम प्रेम करते है उस व्यक्ति की निकटता का एहसास जीवंतता प्रदान करता है।

डॉ. गोविन्द रजनीश लिखते हैं - '' समाज में स्त्री पुरूष का प्रेम ही प्रेम कहलाता है। दोनों के मध्य प्रेम की उत्कटता यौवन में होती है। अत: प्रेम यौवन की अभिव्यक्ति है। प्रेम कभी भी व्यक्तिपरकता में समाप्त नहीं होता क्योंकि इसका परिणाम ही सृष्टि का विकास है। लेकिन जब विकास के स्थान पर रहस्यात्मक तन्मयता में सांसारिक

जीवन की इति समझी जाती है तब प्रेम, भक्ति के ही प्रकारान्तर रूप में बदल जाता है।''(9)

प्रेम के विभिन्न रूपों में दया, क्षमा, शांति करूणा आदि उदात्त तत्व है, तो प्रेम के भौतिक रुप में 'काम' को महत्वपूर्ण माना गया है।

डॉ. मधूलिका पाठक लिखती है, ''मनुष्य को जो कुछ अच्छा जँचता है, उसकी ज्ञानेंद्रियों को, मन-बुद्धि को, जो विषय रुचते हैं, उनसे उसको प्रेम हो जाता है- वह उन्हें चाहने लगता है। उन वस्तुओं से उसे गहरा लगाव हो जाता है। अपनी-अपनी रुचि एवं स्वभाव के अनुसार मनुष्य नाना प्रकार की वस्तुओं, कार्यों और दृश्यों से प्रेम करते हैं।''(10)

प्रेम मानव जीवन की चिरंतन भावना है। मानव का संपूर्ण अस्तित्व प्रेम पर आधारित है। प्रत्येक के जीवन का मूलाधर प्रेम है। इसके कारण मानव जीवन को संबल प्राप्त होता है। साथ ही यह एक सकारात्मक मानवीय वृत्ति होने के कारण मानवीय जीवन को सुधारने एवं संवलित करने का कार्य यह प्रेम ही करता है। बिना प्रेम के हमारा अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। अर्थात वह मानव जीवन का प्राण है। हर एक में प्रेम के स्पंदन रहते हैं। यह जीवन की प्रेरक-प्रेरणादायिनी शक्ति है।

प्रेम के विविध रुप मिलते है जैसे वैयक्तिक, सामाजिक, वैश्विक, जातिय, आध्यात्मिक, प्रकृति, मानव, विश्व, देश, कला, ज्ञान, साहित्य के प्रति प्रेम आदि। वैसे मोटे तौर पर प्रेम को लौकिक प्रेम और अलौकिक प्रेम के रुप में जाना जाता है। प्रेम मानव-जीवन की प्रमुख भावना के साथ-साथ मूलभूत भावना है जिसका अत्याधिक प्रभाव मनुष्य के भावना जगत पर पड़ता रहता है ।

डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार, ''जीवन का समरस एवं स्वस्थ स्वरुप मानवजाति की प्रेम परंपरा एवं सौंदर्य बोध में ही अभिव्यक्त होता रहा है। जीवन से सम्बन्धित होने के कारण कवि कर्म की सम्पूर्ण साधना अपने जन्मकाल से ही प्रेम एवं सौन्दर्य का नूतन विधान करती रही है। यही कारण है कि काव्य में प्रधानत: प्रेम एवं सौन्दर्य की ही अनुगूँज रहती है। मानवीय चेतना के अधिक अनुरुप होने के कारण प्रेम-साधना सर्व भाव-व्यापार को आवृत्त कर लेती है किन्तु इसकी उत्प्रेरणा सौन्दर्यानुभूति पर निर्भर करती है।''(11)

मधुर साधना का केन्द्र प्रेम है। प्रेम से बड़ी कोई साधना नहीं है। प्रेम ईश्वर और मनुष्य को एक सूत्र में पिरोनेवाला तत्व है। प्रेम ध्रुव के समान ऊँचा, श्रेष्ठ और प्रकाशमान है। प्रेम की ज्वाला में जलकर जो निष्कलुष हो गये हैं, वे ही सच्चे साधक हैं। उन्हीं का जीवन सार्थक हैं। प्रेम की सच्ची परीक्षा तपने में है। ज्वलनशील आँच

में तपकर ही प्रेम निखरता है।

जायसी 'चित्ररेखा' में कहते हैं कि प्रेम में एकरस होने के बाद व्यावहारिक जीवन महत्वपूर्ण नहीं रहता।

प्रेम पियाला जेहि पिया, किया पेम चित बंध।
सांचा मारग चिन्ह लिया, तजि झूठा जगधंध।-(12)

आम तौर पर देखा जाए तो दुनियादारी के अंतर्गत इस प्रेम का कोई मूल्य नहीं है, लेकिन यदि व्यक्ति में संवेदनशीलता है, हृदय में कोमलता है तो वह व्यक्ति ऐसे प्रेम का मूल्य भली-भाँति समझ सकता है।

Human Development इस पुस्तक में लिखा गया है-

"Attachment is an active, affectionate, reciprocal, enduring relationship between two people whose interaction continues to strengthen their bond. It is what is often meant by love."(13)

'मां का निश्चल वात्सल्य, बहन का भोला स्नेह, प्रेमिका का सम्मोहन, भाई-भाई का प्यार, पिता पुत्र का स्नेह, मित्रों की प्रीति सभी कुछ तो 'प्रेम' शब्द के नन्हें घेरे में समा जाता है। यह घेरा ढाई अक्षरों का होने पर भी विशालतम है। बुद्‌ध की करुणा, ईसा का स्नेह और गांधी की अहिंसा सभी का मूलाधार प्रेम है। सच तो यह है कि मानव ने प्रेम करना सीखा तभी उसका विकास संभव हो सका। अन्यथा विश्व के उस विशाल चिड़ियाघर (पशु-वाटिका) में मानव भी एक विशेष पशु ही होता।''(14)

मानव के प्रेम की कोई सीमित परिधि नहीं है, उसे किसी साँचे में निबद्ध करना गलत होगा। व्यक्ति का दृष्टिकोण यदि सकारात्मक हो, तो प्रेममयी दृष्टिकोण के कारण उसे सर्वत्र प्रेम का संचार ही नजर आता है, अन्यथा उसे विद्रुपता नजर आने लगती है। अतः कह सकते है कि विश्व सुंदर इसलिए है क्योंकि व्यक्ति उस विश्व से प्रेम करता है। प्रेममयी विचारधारा के कारण व्यक्ति असंभव को संभव बना सकता है। पंत लिखते हैं -

इस धरती के रोम में भरी सहज सुंदरता
इसकी रज को छू प्रकाश, बन मधुर विनम्र निखरता
पीले पत्ते, टूटी टहनी, छिलके, कंकड़-पत्थर
कूडा-कर्कट सब कुछ भू पर लगता सार्थक सुन्दर-(15)

यह प्रेम का ही करिष्मा है जिस कारणवश कवि को असुंदर भी सुंदर और सुखकर लगने लगता है।

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत मैंने प्रेम की अवधारणा एवं उसके स्वरूपगत विकास

क्रम को रेखांकित किया है। यहां विविध युग के रचनाकारों के विचारों और उनकी रचनाओं के माध्यम से प्रेम के स्वरूप की चर्चा की गई है। इसी अध्याय में दूसरे शीर्षक के अंतर्गत मैंने विशुद्ध रुप से त्रिलोचन की कविताओं के माध्यम से उनकी प्रेम संबंधी दृष्टि को जाँचा और परखा है।

हिन्दी साहित्य में कबीरदास ने बाह्याडंबर का विरोध करते हुए ईश्वर को प्राप्त करने के लिए निर्मल प्रेम को महत्वपूर्ण माना है।

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अधर प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय।।[16]

हृदय में स्थित स्निग्धता ही उनके लिए आवश्यक थी। जायसी के अनुसार प्रेम मार्ग पर चलना कठिन होने पर भी वह आवश्यक है।

भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला।
दुख भीतर जो पेम-मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा।।[17]

इस कठिन दुहेले मार्ग पर चलने से ही व्यक्ति आवागमन से मुक्त होता है और शुचिता आ जाती है।

सूरदास प्रेम की उदात्तता को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटत।-[18]

सूरदास सख्य भाव की भक्ति के द्वारा रागानुरागा प्रेम से इस पृथ्वी को ही स्वर्गभूमि बनाना चाहते है।

मीरा के प्रेम में कृष्ण के प्रति समर्पित भाव दृष्टिगोचर होता है। वह क्षण भर के लिए भी कृष्ण के वियोग को बरदाश्त नहीं कर पाती।

जो मैं ऐसी जानती रे प्रीति कियां दुख होय।
नगर ढढोरा पीटती रे प्रीति करो मत कोय।।-[19]

मीरा इस तड़पने-छटपटाने की मिठास, मृदुता को जानती है, इस तरह से यह प्रेम अलौकिक स्तर पर पहुँच जाता है।

रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने नख-शिख वर्णन के अंतर्गत भौतिक प्रेम को अधिक महत्व दिया। उनका यह इस प्रकार का प्रेम असल में हृदय तक प्रविष्ट होने के लिए एक सरणि है, जबकि घनानंद के सुजान के प्रति प्रेम में उत्कटता, तन्मयता, गहराई अधिक नजर आती है। घनानंद की दृष्टि से प्रेम में निष्कलंकता होनी चाहिए। अत: वे कहते हैं-

अति सूधौ सनेह कौ मारग है, जहां नेकु सयापन बांक नहीं।
तहां सांचे चलें तजि आपनपौ, झझकै कपटी जे निसांक नहीं।।[20]

प्रेम एक स्वच्छ निर्मल मनोभूमि पर विचरण करनेवाला एक आंतरिक भाव है जिसका जतन किया जाता है, जतलाया नहीं जाता।

आधुनिक काल के रचनाकारों ने भी विविध रुपों में प्रेम के स्वरूप की चर्चा की है। रामनरेश त्रिपाठी प्रेम को जीवन का सर्वस्व मानते हैं-

गन्ध विहीन फूल है जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन॥
प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक॥-(21)

मनुष्य के लिए प्रेम प्रकृति प्रदत्त है। सांसारिक जीवन के ताप में प्रेम सुखद छाया का संवरण है। इसलिए जीवन के इस शाश्वत तत्व को प्राप्त करना सौभाग्य की बात है क्योंकि जीवन का महत्वपूर्ण आधार ही प्रेम है जिसकी सफल अभिव्यक्ति श्रीधर पाठक ने इस प्रकार की है-

सब धर्मन को धर्म तू, सब कर्मन को कर्म,
सब तत्वन को तत्व तू, सब मर्मन को मर्म।-(22)

तड़पना प्रेम की एक महत्वपूर्ण अवस्था है। अत्याधिक रुप से तड़पना अत्याधिक प्रेम का प्रतीक है। विभिन्न विद्वानों एवं कवियों ने श्रृंगार रस के अंतर्गत संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार का उल्लेख किया है। वियोग श्रृंगार के अंतर्गत होनेवाली छटपटाहट को बड़ी ही मार्मिकता से व्यंजित किया गया है। इस तड़पने में ही व्यक्ति के प्रेम की कसौटी निहित है। यह मानो प्रेम की परीक्षा है, स्वयं से परोक्ष रहकर किया गया प्रेम मानव को महान बना देता है।

प्रेम में समर्पण, बलिदान, त्याग की आवश्यकता है। प्रेम के सर्वोत्कृष्ट रुप के अंतर्गत इसी को रखा गया है।

छायावादी कविता की खास प्रवृत्ति वैयक्तिक प्रेम की रही है जिसे कि इस युग के रचनाकारों ने विविध रुपों में व्यक्त किया है। प्रारंभिक दौर की रचनाएँ रोमानी भाव एवं कालांतर में प्रकृति, मानव, राष्ट्र, परमात्मा आदि के प्रेम से जुड़ती गयी।

प्रेम की भाषा मूक-मौन होती है, इसका मार्ग-क्रमण हृदय से हृदय की ओर होता है। सामान्य स्तर पर ऐन्द्रिक आवरणों की आवश्यकता नहीं रहती। ऐंद्रिक संसाधन प्रेम तक पहुँचने का साधन हो सकता है, साध्य नहीं। प्रसाद प्रेम को प्रणय में परिवर्तित करते हुए अपने भावों को व्यक्त करते हैं-

युगल वय का साथ सनेह भी
निपट नीरवता संग था बढ़ा।

फिर यही वर बाल सनेह ही
प्रणय में परिवर्तित हो गया।।-[(23)]

निराला 'परिमल' काव्य-संग्रह में प्रेम को इस प्रकार से वर्णित करते हैं-

यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही नि:सीम भू पर
प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र ठाठ
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
तृण-सम बह जाते हैं।-[(24)]

छायावादी कविता में प्रणयानुभूति की क्लासिक भावभूमि को ज्ञात करने के उपरांत उसके सौंदर्यात्मक तत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यहाँ पर प्रेम सुंदरता का प्रतीक है। प्रेम के द्वारा उद्भुत नकारात्मक अनुभूतियों का संश्लेषण यहाँ प्राप्त नहीं होता बल्कि अत्युच्च भावना का विलोड़न ही दृष्टिगोचर होता है, वास्तव में यही प्रेमानुभूति का प्रमुख प्रतिपाद्य है। प्रेम की अनुभूति वर्णनातीत है। महादेवी वर्मा की पीड़ा में सुख पाने की प्रवृत्ति निश्चित रुप से व्यावहारिकता से परे है। अत: महादेवी वर्मा कहती है-

तुम मानस में बस जाओ
छिप दु:ख के अवगुंठन से
मैं तुम्हें ढूँढने के मिस
परिचित होलूं कण-कण से।-[(25)]

प्रेम का विस्तार कण-कण में, थल-थल में दृष्टिगोचर होता है। बिना प्रेम के मानव जीवन अधूरा है, इसे व्यक्त करते हुए नीरज लिखते हैं-

बिना प्यार के चले न कोई, आँधी हो या पानी हो
नई उमर की चुनरी हो या कमरी फटी पुरानी हो
तपे प्रेम के लिए धरित्री, जले प्रेम के लिए दिया
कौन हृदय है नहीं प्यार की जिसने की दरबानी हो।-[(26)]

प्रगतिवाद तक आते-आते प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रगतिवाद का प्रेम सामाजिकता से संवलित है। इस संदर्भ में डॉ. रणजीत लिखते है- ''वह एकान्तिक नहीं, सामाजिक संदर्भों से युक्त प्रेम है। शुक्ल जी की शब्दावली में कहा जाय तो वह लोकपक्ष से शून्य नहीं है।''[(27)]

जहाँ प्रेम का अभाव नजर आता है, वहीं पर प्रेम की महत्ता का महत्व भी ध्यान में आता है। अत: बाधाएँ प्रेम की परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। डॉ. राजकुमार

खण्डेलवाल के अनुसार, ''शत्रुता इसीलिए तो होती है क्योंकि हमारे प्रेमास्पद के बीच की बाधा बन जाता है चाहे वह प्रेमास्पद व्यक्ति विशेष हो या वस्तु विशेष। बैर तभी उगता है जब हृदय का इच्छित चोट खा जाता है। करूणा तभी जागती है जब पहले हम प्रेम की दीक्षा ले चुकते हैं। श्रद्धा एवं विश्वास का बल तभी प्राप्त होता है जब हम पहले प्रेम के नाम पर आत्म-समर्पण कर चुकते हैं। इसी प्रकार उत्साह, भय, क्रोध आदि सभी भाव प्रेम के क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरुप ही उत्पन्न होते हैं। अत: प्रेम मानव हृदय की प्रमुखतम भावना ही नहीं वह निस्संदेह मूल भावना भी है जिसके इंगित पर मानव का भावना जगत सोता जागता है, हंसता रोता है, जीता मरता है।''(28)

निष्कर्ष रुप में कह सकते है विज्ञान और भौतिकता से ग्रस्त समाज में भी प्रेम से भरी हृदय की अनुगूँज हमेशा महत्वपूर्ण मानी जाएगी। इस अनुभूति का कोई उपराम नहीं है।

6.2 त्रिलोचन के काव्य में प्रकृति प्रेम

मानव और प्रकृति के अटूट संबंध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में सदियों से होती आ रही है जिसे कि साहित्य के माध्यम से सशक्त एवं वैविध्यमयी रुप प्रदान किया गया। संस्कृत एवं मध्यकाल के कवियों की प्रेरणा स्त्रोत प्रकृति रही है। छायावाद तक की कविताओं में प्रकृति के जिस स्वरूप की चर्चा हुई है, आगे चलकर उसमें बदलाव आया। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन की कविताओं में लोकजीवन की प्रकृति अपनी सहजता में व्यक्त हुई है। इसमें किसी प्रकार का रहस्यमयी आवरण नहीं है। हवा का सरसराना, कोयल का बोलना, पानी का बहाव, सरसों के फूल, आम के बौर, आदि संस्कृति के विविध चित्र मौलिक रुप में आए है। अन्य प्रगतिशील कवियों की भांति त्रिलोचन ने भी प्रकृति के आलंबन और उद्दिपन रुप को व्यंजित किया है। उन्होंने प्रकृति को जीवन और विशेषत: ग्रामीण जीवन और लोक संस्कृति के साथ जोड़ने का कार्य किया है।

त्रिलोचन की कविताओं में प्रकृति वैशिष्ट्य के संबंध में कृष्ण बिहारी मिश्र का मानना है - ''उनकी कविता पढते ही दूर तक हरे खेतों में फैली हुई पछुआ की लहरों में हिलती सरसों की कतारे आँखों में तैरने लगती हैं। बस वह पोखर पर नहाने का आनंद, जेठ की धूप में और लू में पैदल चलते यात्री जो नीम की छाह में लोटा डोर-फाँसकर ठंडा पानी पीते और जुड़ाते हैं। दोनों ओर रस्सी पकड़े खेत सींचते किसान दम्पति, खेत काटने के बाद विश्राम करती युवतियाँ।''(29)

'बरसाती रात' कविता में कवि के अतीत जीवन की ठंडी-ठंडी हवा की

स्मृतियाँ तरोताजा हो उठती है।

ऐसे में कानों से सुनता था
मंद स्वर
जिन्हें कई साल हुए
ऐसी ही रात को सुना था
ठंडे बातास से या
सुधि की लहरों से -(30)

ममता कालिया के अनुसार, ''गाँव में वे टूरिस्ट की तरह नहीं आते जबकि वे गाँव के मुकम्मल रहनेवाले बाशिन्दे है।'' (31)

ग्रामीण परिवेश के द्वारा वे प्रकृति का चित्रण करते हैं

बारिस रुप रितु रितु धइ करई सिङार
जवन रूचइ तओनइ लहि लहइ बिहार।-(32)

प्रात:काल, दोपहर, सांयकाल और रात तक परिवर्तित होनेवाली प्रकृति के बहुवर्णी रुप का उन्होंने यथावत चित्रण किया है।

सन्धा ने मेघों के कितने चित्र बनाये
हाथी, घोड़े, पेड़, आदमी जंगल क्या क्या
नहीं रच दिया और कभी रंगों से क्रिड़ा
की, आकृतियाँ नहीं बनायी।-(33)

कवि जहाँ सायंकाल आसमान में बने बादलों के हाथी, घोड़े, पेड़, आदमी, जंगल आदि चित्र को देखकर मनमोहित होता है वहीं पर प्रात:काल में विकसित होती कलियों को हौले-हौले हाथों से उतार लेना चाहता है।

देख, लोढ़ लाना न कहीं निरी कलियाँ
खुल-खुल पड़ने को हों ऐसी कलियाँ
जाकर देखना, लेना उतार
हौले-हौले हाथों से लेना उतार।-(34)

कवि 'हौले-हौले' के द्वारा पुष्प चुनने की प्रक्रिया में प्रकृति से संवेदनात्मक अनुभूति एवं संप्रेषण स्थापित करता है। साथ ही वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि उसमें कलात्मक सहजता आ जाए। छायावादी कविता की तरह इसमें लाक्षणिक प्रयोग या दुरुहता नजर नहीं आती बल्कि सरलता झलकती है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह के अनुसार, ''त्रिलोचन का रचना संसार प्रकृति के पाँच तत्वों- रूप, रस, गंध स्पर्श, और शब्द का भौतिक संसार है जिनमें कमोबेश रुप से 'संवेदना' का हलका-गहरा संस्पर्श है। इनमें रुप, रंग, गंध, स्पर्श, बोध के रुप इस तरह प्राप्त होते हैं कि इनके द्वारा कवि

प्रकृति के भिन्न रुपों को, प्रकृति घटनाओं और वस्तुओं को अपनी संवेदना का हिस्सा बनाकर प्रकृति को एक मानवीय सरोकार के दर्जे तक ले जाते हैं। लगता है कि प्रकृति से संसर्ग का अनुभव त्रिलोचन मानो अपने सारे शरीर से करते हैं।''(35)

वर्डसवर्थ की तरह जब त्रिलोचन के जीवन में सूनापन छा जाता है, तो वे प्रकृति की ओर मुड़ते है। प्रकृति का चाहे कोई भी रंग हो, वह कवि को भाता है, कवि उससे मोहित हो उठता है।

फूलों की चाँदनी नीम में जो आयी है
खींच रही है सुरभि डोर से मेरे मन को
बरबस अपनी ओर, भला कैसे इस जन को
कृपापात्र कर दिया सुछवि ने जो छायी है
टहनी टहनी पर।-(36)

कवि का स्वभावगत संयम और स्थिरता प्राकृतिक उपादानों के चित्रण में भी झलकता है। 'अरघान' काव्य संग्रह में 'आँधी' नामक कविता में 'डरे चौपाए भी चकित नयनों से निरखते' कहनेवाले त्रिलोचन जहाँ आँधी की भयावहता को उसकी भयंकरता में चित्रित करते हैं वही आगे वे कहते हैं-

उखाड़ा पेड़ों को पटककर आगे बढ़ चली
कुटीर को थामे अलख कर से दूर पटका
जलों को भी छेड़ा मथकर उन्हें और तट से-(37)

तो वह मूर्तिमत्ता स्खलित न होते हुए स्थिरता का रुप धारण करती है। उनके यहाँ प्रकृति चित्रण में स्वाभाविकता, सार्थकता (जस का तस चित्रण करने की प्रवृत्ति) नजर आती है। 'मधुमालती' कविता में प्रेयसी के समान प्रकृति भी उन्हें आकर्षित करती है।

झिझकती आँखों से
मैं ने तुम्हें परसा है
मधुमालती के फूल,
कहीं यह परस
तुम्हें खल न जाय-(38)

प्रकृति का मानवीकरण करने की अपेक्षा प्रकृति ही मानो जैविक संसाधन है- यह मानकर त्रिलोचन मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

वर्डसवर्थ की कविताओं की तरह त्रिलोचन की कविताओं में संवेगों का उतार-चढ़ाव नजर आता है।

यह स्वाभाविक है कि रचनाकार की जब जिस प्रकार की मानसिक स्थिति रहती है उसी के अनुरुप वह प्रकृति को रुपायित करता है।

हवा डोली
घास बोली
आज मैंने
गाँठ खोली
फूल, तुम खिल
कर झरोगे।-(39)

राजकुमार सैनी के अनुसार, ''महानगरीय मध्यवर्गीय मानसिक ऐयाशों के लिए त्रिलोचन की कविता में कोई 'स्पार्क' नहीं, कोई 'फ्लेश' नहीं क्योंकि यह कविता दूब वाली धरती पर, खेतों और खलिहानों पर पड़नेवाली धूप की तरह है जो सतरंगी होकर भी एक रंग में ही दिखाई देती है।''-(40)

जिस प्रकार से एक ग्रामीण व्यक्ति सादगी को पसंद करता है, उसी प्रकार त्रिलोचन बिना किसी बाह्य आडंबर के प्रकृति की सुखद छाया में चले जाते हैं।

वे काफी भोलेपन और निश्चलता के साथ प्रकृति की ओर देखते हैं। त्रिलोचन की स्वभावगत सरलता और सादगी प्रकृति वर्णन में भी झलकती है।

'पुनः शरद ऋतु आई है' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

पुनः शरद ऋतु आई है, शोभा छाई है
चारों ओर, रंग कण-कण का बदल गया है
वर्षा में चल थकी हवा कुछ अलसाई है
नहीं नृत्य की द्रुत तरंग है. सकल नया है।-(41)

जो व्यक्ति स्वयं अपनी अनुभूतियों एवं विचारों को लेकर स्पष्ट हो वह व्यक्ति भला अपनी रचनाओं में गूढ़ कैसे हो सकता है? इसलिए उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं को पढ़ते समय कहीं भी दुरुहता नजर नहीं आती।

राजकुमार सैनी लिखते हैं, ''उसके और प्रकृति के बीच कोई छाया अथवा रहस्य नहीं रहता। कोई संकेत मुखर नहीं होता। निसर्ग से यह सीधा साक्षात्कार है। प्रकृति के बहाने प्रकृति का ही चित्रण है, चित्रण कलात्मक है लेकिन कला मुखर नहीं होती; विनीत और संयत होकर लगभग अनुपस्थित हो जैसे।''(42)

अत: अपने भावों को बड़े ही सहज ढंग से कवि व्यक्त करता है-

चमचमाती
चाँदनी की रात
शांत बिलकुल शांत
चर-अचर सब
मौन कितनी रात
स्तब्ध नीरव रात।-(43)

कवि का बचपन प्रकृति की सुखद गोद में बीता है, साथ ही उसके द्वारा पोषित भी हुआ है। यही कारण है कि प्रकृति भी उनके जीवन की सहजता की भांति कविता में प्रविष्ट हुई है।

गोपालशरण तिवारी का मानना है, ''अंचल की समस्त प्राकृतिक शोभा त्रिलोचन के हृदय में रची हुई है। गेहूँ, जौ, सरसों, मटर के खेत, पछुआ, पुरवैया सभी उनके अन्तर के अंग है। एक ओर वे महिमामंडित सुमन शिरोमणी शिरीष के गीत गाते हैं तो दूसरी ओर नीम की पुलकभरी मादक माया से आक्रान्त हैं तथा उपेक्षित एवं विनिर्दिष्ट एकाकी बबूल की सुषमा का जो हृदयहारी, अर्थगर्भित एवं काव्यात्मक चित्रण किया है वह उन्हें आचार्य शुक्ल के मानदण्ड से प्रकृति का सच्चा प्रेमी प्रमाणित कर देता है।''(44)

कवि त्रिलोचन 'बादल चले गये रे' कविता में प्रकृति के माध्यम से मानव को धीरज बंधाते हैं। अक्सर मनुष्य सुख-दुख के झंझावात में पड़कर यह महसूस करने लगता है कि जीवन में केवल दु:खों की ही अधिकता है। इससे उबरने के बजाए वह व्यक्ति और अधिक व्यथित होता रहता है। ऐसे व्यक्ति को कवि प्रकृति के माध्यम से आश्वस्त कराते हुए कहता है-

आसमान अब
नीला नीला
एक रंग रस श्याम सजीला
धरती पीली
हरी रसीली
शिशिर-प्रभात समुज्ज्वल गीला
बादल चले गये वे(45)

हम दार्शनिकता के तत्व को भी त्रिलोचन की प्रकृति संबंधी कविताओं में देख सकते हैं-

हमने देखा कि फूल हँसते थे
डाल पर झूल झूल हँसते थे
पूछा, कल की भी कुछ खबर है क्या
बात सब भूल भूल हँसते थे-(46)

जीवन में परिवर्तन होता रहता है। बीज अंकुरित होते हैं और अंततः विनाश होना ही नियति है लेकिन प्रकृति में आने के बाद वे चिंता न करते हुए खिलखिलाते ही रहते हैं, यही जीवन का दर्शन है। प्रकृति के माध्यम से कवि अपने सकारात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। इसलिए उनकी अधिकांश कविताएँ जो प्रकृति से संबंधित हैं, उसमें प्रकृति के सुखद लम्हें ही है जिससे हम आशान्वित हो सकें। 'प्रकाश के रंग' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रकाशों की धारा दिवस रजनी नित्य बहती
सभी की आँखों में अदिख छवि लाई मचल के
सधे आवर्तों में घिर कर कई प्राण बहके
इन्हीं में रंगों की लहर उमड़ी व्योम सरि-सी.(47)

स्वस्थ, उत्साहपूर्ण, पवित्र प्रकृति प्रेम को रुपायित करना प्रगतिवादी कविता की विशेषता रही है जिसका निर्वाह त्रिलोचन करते हैं।

नव जात उजेला दौड़ा
कन कन बन गया रूपहला
मधु गीत पवन ने गाया
संगीत हुई यह धरती (48)

प्रकृति के द्वारा नव जीवन का स्फुरण देते हुए त्रिलोचन लिखते हैं -

छाती पर चढ़ा हुआ अंधकार का पहाड़ उतर गया
और प्रभात हुआ
कंचन बरसाता हुआ सुन्दर प्रभात हुआ
हल्का हल्का स्पर्श वायु का मिला
जैसे परदेसी आत्मीय का
सीमा में आने का प्रियतर संदेश मिला।(49)

उनके यहाँ प्रकृति मात्र प्रेम का द्योतक ही नहीं है, उसमें क्रियाशीलता भी है। त्रिलोचन प्रकृति को अपनी चेतना में बसाते हैं। आधुनिक काल में रचनाकार होने के बावजूद तथाकथित आधुनिक प्राकृतिक उपादानों का चित्रण करनेवाले कवियों का क्षण बोध त्रिलोचन के यहाँ नहीं है। एकान्तिक स्थिति में प्रकृति में विचरण करने के बावजूद त्रिलोचन के यहाँ समष्टि बोध प्रधान है। धरती को उद्‌बोधित करनेवाली प्रस्तुत

कविता वास्तव में मानव समाज को उद्वेलित करती है।

धरती खुशी मना तू बरसात आ गई है
जो बात कल नहीं थी वह बात आ गई है
तप ताप और कितना भू का अटल रहेगा
आषाढ की मनोहर बारात आ गई है-(50)

अत: त्रिलोचन स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति जीवन से विलुप्त हो नहीं सकती, इसमें जीवन का विस्तार समाहित है।

परमानंद श्रीवास्तव का मानना है, ''प्रकृति-चित्रों में जीवन अभिप्राय त्रिलोचन के यहाँ इतने सटीक है कि वे प्राय: सूक्ति बनकर निकलते हैं। वस्तुनिरूपण करते हुए सूक्ति जैसे दार्शनिक अभिप्राय तक पहुँचना यह भारतीय किसान का परिचित ढंग है जो त्रिलोचन में प्राय: दिखायी देता है।''(51) उनके प्राकृतिक उपादानों में जीवन का जुड़ाव देखकर हम कह सकते हैं कि उनकी इस प्रकार की कविता सही मायने में स्वदेशी और परंपरा से जुड़ी हुई है। त्रिलोचन अंचल की प्रकृति में रचे बसे है। उनके यहाँ प्रकृति का ठोस रूप प्राप्त होता है। प्रतीकात्मकता अतिशयता की सीमा में नहीं पहुँचती। उन्होंने काव्यशास्त्रीय मानदंडों को ज्ञात किया है लेकिन त्रिलोचन की कविताओं का मूल्यांकन करने के पश्चात हम पातें है कि उनमें कहीं भी सौंदर्यशास्त्रीय मानदंडों का आरोपण नहीं है। उन कविताओं का ढाँचा- ढर्रा अलग है, आरोपण की कोई गुंजाइश ही नहीं है। उनमें प्रकृति का रूप और प्रभाव दोनों का चित्रण प्राप्त होता है। साथ ही किसान जीवन की शालीनता को भी आँका जा सकता है।

खुले हुए अंगो को सहलाकर
अपनी प्रभा से नव प्रकाश भर
बालिका सी सरदी की धूप यह
तन-मन को ताजा कर देती है
नीम बाँस पीपल लहटोरे के
पेड़ हरे निर्मल पत्तों वाले
खड़े-खड़े बरसों का प्यार भरे
मुझको अविराम चँवर करते है-(52)

कमोबेश उसी प्रकार का अनुभव गिरिजाकुमार माथुर की 'धूप का ऊन' कविता में देखिए-

सर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहने
वह मुंडेरों पर ठहर कर

झांकती है झांझरियों से
रात के धोए हुए उन आंगनो में -(53)

त्रिलोचन के यहाँ प्रकृति का जैव और अजैव रूप दिखायी देता है। एक ओर कवि एकांत में प्रकृति को अपना सखा मानकर उससे वार्तालाप करता है तो कहीं-कहीं प्रकृति के सानिध्य (निकट) में रहकर वह अपने प्रियजनों को याद करता है।

प्रात:काल का वर्णन करते हुए त्रिलोचन आम व्यक्ति जिस ढंस से प्रकृति को निहारता है उसी तरह से निहारते हैं ।

जागता है समीर जब भोर
बदल जाता है चारों ओर
दृश्य जग का पहला श्रृंगार
नया संसार सुरभि संचार
कुतूहल कर जाता है दान-(54)

भोर होने के उपरांत पक्षियों का उन्मुक्त रूप से विचरण करना, सूर्य के किरणों की आभा, प्रमोद, चैतन्यमयी पौधे - उनकी कविताओं में उसी प्रकार से आते हैं जिस प्रकार से एक आम आदमी महसूस करता है और उसे अभिव्यक्ति देता है। अत: उनका प्रकृति चित्रण आज की अधिकांश कविताओं के समान कुंठित, दमित नहीं है।

मुक्तिबोध कहते है '' प्रकृति के प्रति उसका दु:ख आत्मरण निबिड़ भावनाओं का न रहकर अधिक स्वस्थ और आसक्तिपूर्ण हो गया है, जिसके कारण आत्मानुराग के अभिशापों का स्वर नहीं, प्रत्युत अधिक व्यापक मानवीयता का वरद कर उसे प्राप्त है। इस वस्तुन्मुख, बाह्यापेक्षी, आत्मोत्सर्गमयी प्रवृत्ति के कारण उसकी भावनाएँ उदार और भव्य हो गयी है।''- ५५

'खिला यह दिन का कमल' कविता में कवि मूल्यों में आस्था रखनेवाले सामान्य नागरिक के समान (जो अधिक रूप से मूल्यों के निर्वाह में जागरुक रहता है) मानवतावादी विचारों और विश्वासों को बल प्रदान करता है, उदाहरण द्रष्टव्य है।

लहर लहर परचित पराग पूर्ण
दृश्य दृश्य अनुरंजित ज्योति पूर्ण
निशा देश धवल नवा - (56)

प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करते हुए त्रिलोचन मानो अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं क्योंकि संवेदनशील व्यक्ति केवल मानव से ही नहीं बल्कि सृष्टि के कण कण से अनुराग की भावना रखता है। 'शरद का यह नीला आकाश' कविता में कवि प्राकृतिक उपादानों के प्रति अनुरक्त होकर मानव से भरी धरती को स्वर्गभूमि बनाना चाहता है।

भरी है पारिजात की डाल
नई कलियों से मालामाल
कर रही बेला को संकेत
जगत में जीवन हास हुलास -(57)

चाहे वह पौधों-डालियों का सरसराना हो या खेतों का लहलहाना प्रगतिवादी कवि स्वस्थ रूप से इसका चित्रांकन करता है। पन्तजी की 'ग्राम श्री' और निराला की 'देवी सरस्वती' इस प्रकार की कविताओं में महत्वपूर्ण है। ग्राम्य जीवन, संस्कृति और प्रकृति का बहुत ही गहरा संबंध है। प्राकृतिक विपदाओं के कारण कई बार किसान का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। इसे ध्यान में रखते हुए मैनेजर पाण्डेय त्रिलोचन की कविताओं की विशेषता को रेखांकित करते हुए कहते हैं - ''त्रिलोचन का किसान मन प्रकृति में खूब रमता है। उनके यहाँ प्रकृति किसान -जीवन के अंग के रूप में है और उससे स्वतंत्र भी, उसका आकर्षक सौन्दर्य है और विस्मयकारी रूप भी, सावन की बरसात का संगीत है और भादों का प्रचंड मेघ गर्जन भी, प्रकृति से सहज आत्मीयता है और कठिन संघर्ष भी।''(58)

उजले पाख की चांदनी रात, ढाक-जामुन, पीपल के पेड़, कटहल के फूलों की महक, आमों का आस्वाद लेते हुए प्रेम की बातें, कोयल गोरैया, बिल्ली के बच्चे, नदी कामधेनू आदि सभी त्रिलोचन के लोक जीवन के अभिन्न अंग है। कई बार उनके प्रकृति दृश्य कालिदास का स्मरण कराते हैं। कालिदास के समान त्रिलोचन के यहाँ बादलों के कई रूप मिलते हैं। जैसे सलेटी रंग के कपोताभ, बूँदा-बाँदी, कभी बादल के उपर बादल तिरे हैं, तो कभी चारों ओर फैले हुए बादल।

चांदनी रात, शरत ऋतु का सुहावना मौसम, अंधेरे के कारण कालिमा से भरी रात के द्वार पर खड़े नव प्रकाश का संकेत, ग्रीष्म के ताप से हलकान हुआ इंसान, आषाढ का स्वागत करती प्रकृति, सूरज की किरणों से बादलों में लगी आग, प्रभात के कारण पेड़, पौधे शाखा आदि का ज्वालामयी होना आदि सारे प्राकृतिक परिदृश्य हमें त्रिलोचन की कविताओं में प्राप्त होते हैं।

सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति त्रिलोचन की कविता को पठनीय बनाती है। 'तमिस्त्र' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है

ओढ़ तारा चूनरी को रात आई
मिल रही है साँस से कहकर अवाई
पार पाए हम न यह तम विजय हासी-(59)

त्रिलोचन के प्राकृतिक उपादान नकली नहीं है। वे असली इसलिए लगते है क्योंकि कवि प्रकृति का मात्र वर्णन नहीं करता बल्कि चित्रण करता है। कवि जानता

है कि बनावटी चींज पाठकों के सामने लंबे समय तक टिक नहीं सकती।

भरी रात भादों की ... पथ... लपका वह कौंधा
दीप्ती भर उठी आँखों में इतनी फिर हम तुम
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौधा
तड़ तड़ तड़त्तड़ाड़् धाड़्धा धाड़् धुड़् धू हुम -(60)

त्रिलोचन की प्रकृति के प्रति काफी गहरी संवेदनाएँ कविताओं में झलकती है

पीपल के पत्ते ने ज्यो मुँह खोला खोला
त्यो चटाक से लगा तमाचा आ कर लू का
झेल गया वह भी आखिर बच्चा था भू का
लेकिन जिस ने देखा उसका धीरज डोला,
बैठ कलेजा गया। तड़प कर कोकिल बोला।-(61)

पीपल के पत्ते मानो नवजात शिशु है, धूप के कारण त्रस्त होते देखकर कोकिल उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट करता है। प्रकृति को सजीव मानकर कोमल उद्वेगों को प्रस्फुटित करने का त्रिलोचन का प्रयास सराहनीय है।

प्रकृति का वर्णन केवल प्रकृति के लिए नहीं होना चाहिए। प्रकृति का जीवन के साथ जो जुड़ाव है उसे अभिव्यक्त करने के दायत्वि का निर्वाह करना अवश्यंभावी है। त्रिलोचन की कविताओं में प्रकृति जीवन को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनकर आती है। प्रकृति की ओर देखने का उनका दृष्टिकोण रूमानी नहीं है, उसमें नवजीवन का संचरण है। जीवन की गतिशीलता है। पत्ते पतझड़ आने पर झड जाते हैं - कहनेवाले त्रिलोचन नियतिवादी या भाग्यवादी नहीं हैं, वे प्राकृतिक परिवेश का मात्र यर्थाथ प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति उन्हें अकर्मण्यता की अपेक्षा कर्मशील, क्रियाशील बनने के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं। चाहे वह प्रकृति हो या जीवन उसे ठीक तरह से समझने के लिए दृष्टि चाहिए। एक तर्कसंगत, विवेकपूर्ण दृष्टि से ही हम तथ्यों की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं अन्यथा बेतुका, निरर्थक क्रिया कलाप ही हाथ में आएगा। सतर्क होकर जब हम अपने परिवेश को देखेंगे तब ही संभव है कि एक ठोस सृजन कार्य का निर्माण होगा।

'अनुबंध' कविता के माध्यम से त्रिलोचन कहते है -

उषा आज जैसी है
कल से कही मधुर है
और आज से कल की ऊषा
मोहक और मनोहर होगी

लेकिन यह तब
जब हम अपनी आँखों से
उसको देखेंगे।-(62)

यदि व्यक्ति में संवेदनशीलता, कल्पना प्रवणता, सौंदर्यानुभूति विद्यमान नहीं है तो कविता में स्थित प्राकृतिक विवरण से पाठक अभिभूत नहीं हो सकता। आसमान में उमड़-घुमड़कर आनेवाले काले-काले बादलों के साथ यदि कोई तादात्म स्थापित करता है तो ही उसका मन बिना बरसात के ही भीग जाएगा। कवि का अनुभव देखिए-

स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे है
कहीं जरा सा रंध्र नहीं है, जब तब बूंदा-
बांदी हो जाती है फैल फैल कर मूँदा.
बदली ने नभ-नील नयन को उधर तिरे हैं
बादल के ऊपर बादल, चहुँ ओर फिरे है
नाना रूपों रेखाओं में; जैसे खूँदा
खूँदी बँधे अश्व करते है सुंदर फूँदा
किरणों का निकला, जिससे घन सांध्य चिरे है.(63)

प्राय: प्रकृति चित्रण के अंतर्गत छायावादी या अधिकांश प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति के मनोरम दृश्यों को चित्रित किया है। कविता में भी स्वयं को सामान्य नागरिक माननेवाले त्रिलोचन चित्रांकन के समय भी आम व्यक्ति की अनुभूतियों के समान प्रकृति को देखते हैं। वह वर्ण विषय कविता का माध्यम बनने जा रहा है इसलिए त्रिलोचन उसे अकल्पनीय, महद रूप में व्याख्यायित नहीं करते। दोपहर का चित्रण करते समय श्रान्त पथिक की तरह सुस्ताये हुए मानसिक स्थिति को ही रूपायित करते है।

दोपहरी है कूज रहे है उधर कपोती
और कपोत अधीर चोंच से चोंच मिलाते
चुग्गा ले कर सानुरोध चुपचाप खिलाते
एक दूसरे को, न कभी थकान कुछ होती
है उनको उपहार वृत्ति प्राणों में बोती है
जीवन के बीज सटाते पंख हिलाते
बढ़ते है इस ओर और उस ओर जिलाते
है जगती के स्वप्न स्वप्न है मन के मोती.-(64)

प्रेमशंकर का मानना है ''प्रकृति और मनुष्य की सम्मिलित उपस्थिति की इतनी कविताएँ अन्यत्र कठिनाई से मिलेंगी। उन्होंने प्रगतिशीलता को एक अर्थ दीप्ति दी, उसे विस्तार दिया। त्रिलोचन की कविता में ग्राम दृश्यों को रचना की वस्तु बनाने

का प्रयत्न किया है और यहाँ वे एक अर्थ में प्रेमचंद के समीपी हैं। अब यदि कोई अतिरिक्त आधुनिकतावादी इसे पुराने स्वर के रूप में देखे तो फिर क्या कहा जाए। यही कि हम यह भूल जाते हैं कि रचना अपनी भूमि पर उपजती और विकास पाती है। दृष्टि आकाश में, पर पैर पृथ्वी पर।''(65)

त्रिलोचन की प्रकृति संबंधी दृष्टि अपने पूर्ववर्ती कवियों से कई मायनों में अलग है। इन्होंने प्रकृति के यथावत स्वरूप का चित्रण उसकी मौलिकता के रूपमें किया है। इसके साथ ही इसमें लोक जीवन की प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन मिलता है।

6.3 त्रिलोचन के काव्य में वैयक्तिक प्रेम

स्निग्ध तरल रागात्मक अनुभुति ही प्रेम है जिसे कि प्रगतिवादी कवि छायावादी एवं फ्राइडवादी दृष्टि से नहीं देखता। भारतीय साहित्य में प्रेम कें विविध रूपों की व्यापक एवं गहन चर्चा हुई है। वैयक्तिक प्रेम के अन्तर्गत रचनाकार के निजी प्रेमसंबंधी भावों की अभिव्यक्ति मिलती है जिसे वह कभी प्रकृति और कभी परमात्मा के माध्यम से व्यक्त करता है। छायावाद तक यह प्रवृत्ति विशेष रूप से चर्चित रही है। १९३६ के बाद हिन्दी कविता में प्रेम अभिव्यक्ति के स्वरूप में बदलाव आया, वैसे आगे चलकर अज्ञेय एवं अन्य समकालीन रचनाकारों में छायावादी प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। जहाँ तक त्रिलोचन की कविता में प्रेम का स्वरूप है, वह अपने ढंग का अनूठा है। इनकी कविताओं में भी प्रेम की अनुभूति को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है लेकिन बिना किसी रहस्यमयता के।

प्रगतिशील दृष्टिकोण रखनेवाले त्रिलोचन के प्रेम वर्णन में कुंठित दमित वासना का संचार नहीं हो पाता। वह प्रिया का सामीप्य तो चाहता है लेकिन साथ ही प्रिया के अस्तित्व की महत्ता को ज्ञात करके वह नत-मस्तक हो जाता है।

आठो पहर दिन रात, गान मेरे होता है
मुसकानो का स्पर्श वही लौ मुझे लगी है
और उसी के बीच बोध मेरा बोता है
वही सहज मुसकान प्राण में नित्य पगी है।-(66)

यह ध्यान देने योग्य है कि त्रिलोचन के प्रेम में ज्वलनशील उद्वेलित करनेवाले आवेग नहीं है, वरन् वियोग की निगूढ़ और विराट व्यथा झलकती है। यह प्रेम भावात्मक अशरीर और स्वस्थ है। अत: प्रेम की वैयक्तिक अनुभूति को समष्टिगत पहुँचाते हुए इसमें सामाजिक पहलू भी आ जाते हैं।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''उनकी कविताओं में अज्ञेय जैसा एकान्तिक

प्रेम नहीं है। रामचंद्र शुक्ल ने कहा था जितना लंबा साहचर्य होता है उतना ही प्रगाढ़ प्रेम होता है। त्रिलोचन शास्त्री ने प्रेम के इस रूप को चित्रित किया है। उनकी कविताओं का प्रेम जीवन में राग पैदा करता है। उन्होंने जिस प्रेम को जिया है उसी प्रेम को चित्रित किया है।''(67)

त्रिलोचन की प्रिया मानो उनके अंत्तर्मन में बैठ गयी है।

तुमको भी केवल घर के अंदर पाता हूँ
बाहर जाता हूँ तो मन के भीतर रख कर-(68)

केदारनाथ सिंह लिखते है ''इनके मूल्य कहीं बाहर नहीं इन्हीं के भीतर हैं। जैसे लोहे की धार लोहे के भीतर होती है।''

जब जिस छन में हारा-हारा-हारा
मैंने तुम्हे पुकारा-(69)

कवि की प्रेमिका-पत्नी उसकी कविता की प्रेरणादायिनी है, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखने में सहायक, समय-समय पर संबल प्रदान करनेवाली प्रेमिका को वे विस्मृत नहीं कर सकते।

जब त्रिलोचन प्रकृति की ओर देखते हैं तो उसमें मनुष्य का साहचर्य सन्निहित है। प्रकृति के द्वारा अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम मानकर अनेकानेक प्रतीकों एवं बिंबों के सहयोग से अपने को एकाकार की स्थिति में व्यंजित किया है।

बातों के टुकड़े जोड़े
संझा की बेला है यह
चुन-चुनकर तिनके तोड़े
चिन्ताओं के। समय फले।
आधा आकाश सामने
क्षितिज से यहाँ तक आभा
नारंगी की। सभी बने।
ऐसे ही दिन सहज ढले-(70)

डॉ. वीरेन्द्र सिंह के अनुसार, ''त्रिलोचन के प्रेम राग के चित्रों में संबंधों की सघनता है, स्मृति और कल्पना का संसार है तथा जीवन के कटुतिक्त यथार्थ का स्पंदन है। कवि की रोमानियत परिवर्तित कालबोध की रोमानियत है, वह छायावादी तथा नयी कविता की रोमानियत से भिन्न है। इसमें समूह का, 'तुम' का सन्निवेश है और यथार्थ का त्रासद रुप भी अर्थवत्ता प्राप्त करता है।''(71)

'धरती' काव्यसंग्रह में 'तुम' की स्त्री गृहस्थन है, जो कवि के मन पर राज करती है। कवि को अपने जीवन में प्रेरणा देनेवाली, संबल प्रदान करनेवाली, किसान

बाला, धान रोपनेवाली श्रमजीवी, अभावमय जीवन में सहारा देनेवाली स्त्री कवि के लिए मानो एक आधार स्तंभ है। अतः कह सकते है कि उनकी कविता में स्वकीया प्रेम मुखर हुआ है। उनके प्रेम वर्णन में स्वस्थ सामाजिक रुप को देखा जा सकता है। प्रेमिका का साहचर्य कवि को स्वयं ही प्रमोदित कर देता है। प्रकृति की सुखद गोद और प्रेमिका का साथ इसका सुंदर समन्वय कवि को गीतात्मक बना देता है-

अनिल धन्य था, जैसे संजीवनी लहर हो
नील गगन में प्राणवायु से रिलीमिली-सी
प्राणोत्सव का जैसे पावन सजग प्रहर हो
फूल, तुम्हारी सत्ता से ही मेरा जीवन
पोषित है, विकसित है, मुक्तिरुप है बन्धन।-(72)

वे प्रेम चित्रण में परकीया या नागरी नारी को अधिकांशतः नहीं उकेरते। वहाँ दाम्पत्य प्रेम का स्वस्थ रुप है। भौतिक जीवन जीते हुए गंभीर आर्थिक समस्याओं से जुझते हुए उनका प्रेम वायवीय नहीं हो पाता बल्कि एक-दूसरे को समझने की प्रवृत्ति के कारण उसमें पूरकता आयी है। इसलिए त्रिलोचन के प्रेम चित्रण में न तो स्थिर प्रेमालाप प्राप्त होगा न ही रुमानियत उड़ान। बल्कि इसमें गृहस्थ जीवन का निश्चित संबंध है जिसमें मानसिक लगाव अधिक है।

मलयज के अनुसार - ''उसके प्रेम के क्षणों में तन का नहीं, मन का विनिमय होता है, उनमें चंचल उफान या घोष नहीं, बल्कि एक ऐसा गहन मौन राग है जिसकी धारा पृथ्वी और सौर मण्डलों तक को आप्लावित करती हुई प्राणों में चुपचाप बहती हो।''(73)

आधुनिक विचारधारा के अंतर्गत मानवीय प्रवृत्तियों को विभाजित एवं रेखांकित करने के लिए अनिश्चितता, अजनबीपन आदि विदेशी तत्वों को प्रधानता दी गयी लेकिन त्रिलोचन के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है। उनकी दृष्टि से प्रेम की परिभाषा अलग ही है, वे कहते हैं-

बिना बुलाये जो आता है प्यार वही है।
प्राणों की धारा उसमें चुपचाप बहीं है-(74)

त्रिलोचन की दृष्टि से जिसके होने से या स्मरण से मन सिक्त और स्निग्ध होता है, वही प्रेम है।

नरेश चंद्रकर लिखते है,- ''औदार्यता वह निधि है जिसके बिना सामाजिक रिश्तों की नमी, उसका ताप और उसके आत्मीय सुख को अनुभूत नहीं किया जा सकता। त्रिलोचन का अन्तःस्थल इन मानवीय गुणों से भरा पड़ा है। वे हृदय की भाषा में सोचने

और उसी भाषा की लय में बोलनेवाले कवि हैं।''(75)

कवि का प्रेम मूक-मौन होकर भी बहुत कुछ कहता है, समझनेवाले को चाहिए कि वे इसे महसूस करें।

यदि मैं तुम्हें बुलाऊँ तो तुम भले न आओ
मेरे पास, परन्तु मुझे इतना तो बल दो
समझ सकूँ यह, कहीं अकेले दो ही पल को
मुझको जब-तब लख लेती हो। नीरव गाओ-(76)

त्रिलोचन के यहाँ परिचय, मिलन, विरह, स्मृति, समर्पण, त्याग, अनुराग, संवेदनशीलता आदि संवेगों को अधिक प्रधानता दी गयी है। साथ ही उनका प्रेम वैयक्तिक भले ही हो परंतु एकान्तिक नहीं है, क्योंकि इसमें सामाजिक संदर्भ कहीं विलुप्त नहीं हो पाता। जीवन-यापन के लिए शहर गए त्रिलोचन के लिए उनकी पत्नी का सहारा, बल अवश्यंभावी था, उसका वर्णन करते हुए त्रिलोचन कहते हैं-

सहधर्मिणी सहचरी और न जाने क्या-क्या
तुम हो। मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुमने अपनी सुधि। मेरे दुख की मारी
तुम भी हो, मुरझाई हो, मैंने पहचाना
है तुमको। हो अष्टधातु की ऋतंभरा है
सखी, तुम्हारी धृति को देखा कहीं न हारी।(77)

मध्यवर्ग के व्यक्ति के साथ जुड़ी नारी यानी उसकी पत्नी है- यह बहुतायात में पाया जानेवाला सामाजिक सत्य त्रिलोचन के यहाँ विद्‌यमान है, इसलिए शून्य की, अन्यमनस्कता की स्थिति में कवि केवल अपनी सहधर्मिणी को याद करता है। हम कह सकते हैं कि उनके प्रेम में सापेक्षता है। आंतरिक स्तर पर आत्यंतिक रुप से पत्नी को चाहने के बावजूद कहीं भी त्रिलोचन अपनी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करते। जब यह भावना कविता के माध्यम से प्रकट होती है तो भी उसमें मिथ्याडंबर नहीं आ पाता। वे अपनी प्रेमानुभूति को बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करते हैं-

ऐसा मत समझो तुमको मैं नहीं चाहता
तुम्हें चाहता हूँ अपने प्राणों से बढ़कर
यह अत्युक्ति नहीं है लेकिन मैं कराहता
कभी नहीं, नित रङ्गमंञ्च पर ऊँचे चढ़कर-(78)

फिर भी विभिन्न प्रकार की आर्थिक समस्याओं से जुझने के कारण पत्नी के वियोग को सहन करके 'आरर डाल' नौकरी करके कवि बरदाश्त करते हुए कहता है-

हम तुम दोनों आज दूर है चाहे भी तो
पास नहीं आ सकते हैं वैसे कहने को
कुछ भी कह लें, मन समझा लें, पर रहने को
साथ, अजी छोड़ो भी अपने मन की भी तो
सुननी ही पड़ती है, फिर बाधाएँ भी तो
एक एक से बढ़ कर हैं-(79)

प्रेम में डूबने के कारण कवि आत्म-विस्मृत हो जाता है। साथ ही लिखते समय प्रेम के उपादान मन में रच-बस जाने के कारण वह स्वयंस्फूर्त होकर लिखने बैठता है।

तुम्हें याद है रात अंजोरिया? हम तुम दोनों
नहीं सो सके, रहे घूमते नदी किनारे
मुग्ध देखते प्यार भरी आँखो से प्यारे
भूमि गगन के रुप रंग को।(80)

अंजोरिया रात में एकाकी स्थिति में बिताए क्षणों को याद करके कवि यह महसूस करता है कि प्रिया के साथ ही स्मृतियाँ उसके अंतस में गहरे स्तर पर जुड़ी है। 'हृदय की लिपि' कविता में कवि कहता है -

यह रहस्य कढ़ा किस ओर से
हृदय की लिपि वायु-तरंग में
लिख उठी छवि की अरधान सी
नयन देख जिसे चुप हो गए-(81)

त्रिलोचन को यह मूक-मौन प्रेम ही प्रिय है जिसमें अकुलाहट, ललक, तड़प, व्याकुलता, छटपटाहट होने के कारण प्रियतमा के प्रेम की गूँज त्रिलोचन के अंतर्मन में रच-बस गयी है। उसके उर में प्रेमिका ने एक नयी धार पैदा की है। 'परिचय की गाँठ' में कवि कहता है-

जड़ता है जीवन की पीड़ा
निस्तरंग पाषाणी क्रीड़ा
तुमने अनजानी वह पीड़ा
छवि के शर से दूर भगा दी-(82)

कवि जड़ नहीं है इसलिए प्रियतमा का मूर्तिमान होने का मूल्य वह जानता है।

कवि प्रेम के विभिन्न भाव-मुद्राओं को व्यंजित करता है। प्रेम का एक रुप कोमल है तो वही दूसरी ओर वह प्रेम कवि को अन्यमनस्क भी करता है। 'असमंजस'

कविता में कवि असमंजस मन:स्थिति में मूक-मौन प्रेम को वाणी देता है। कई बार भावनाओं को व्यक्त कर पाना कठिन लगता है, फिर भी कभी-कभी अपनी भावानुभूति को व्यक्त करना बहुत जरूरी होता है। कवि कहता है-

कह डालो
कहने से जी हलका होता है
मन भी खुल जाता है
हमदर्दी मिलती है
फिर भी वह मौन रहा-(83)

त्रिलोचन के यहाँ उच्च मध्यवर्ग का फैशनेबल प्रेम नहीं मिलेगा, इसमें अभावग्रस्त दाम्पत्य जीवन में सहधर्मिणी की इच्छा पूरी कर न सकने की हताशा है। इसलिए यह प्रेम काफी सुसंस्कृत, मानवीय लगता है। निराशा और कुंठा के क्षणों में भी कवि आस्थावान है-

ये बातें, हँसना
उठना, चलना और बैठना
कहीं अकेले धँसना चिन्ताओं की गहराई में
बैठकर चिट्ठी लिखना
छूट न जाय कहीं कुछ, रखना ध्यान बराबर-(84)

प्रेम की ओर देखने का दृष्टिकोण काफी संतुलित होने के कारण (प्रेम में) वायवीयता या रुमानियत नहीं है, केवल उस प्रेम को गहराई के साथ महसूस करना आवश्यक हो जाता है। यह प्रेम का उदात्त और गौरवशाली पक्ष है जिसमें दूरी भी निकटता में बदल जाती है। कवि कहता है -

स्वर भी गान तुम्हारे जुड़-जुड़ कर गाता है
पास तुम्हारे हीम न उड़-उड़ कर जाता है-(85)

मन के उड़ान भरने से तात्पर्य वायवीयता से नहीं है, रागात्मक अन्विति से है। इनके प्रेम में किसी प्रकार का भौतिक स्वार्थ नहीं है अत: वह काफी पवित्र है।

प्रेम में चुपचाप बहते जाना ही त्रिलोचन के लिए महत्वपूर्ण है। अत: हम कह सकते हैं कि उनका प्रेम न तो आदर्शवादी-प्लेटोनिक प्रेम है और न ही फ्राइडवादी मांसल प्रेम है, यह दाम्पत्य-ग्राहस्थ्य जीवन का प्रेम है।

पहले पहल तुम्हें जब मैंने देखा
सोचा था इससे पहले ही

सबसे पहले क्यों न तुम्हीं को देखा-(86)

दाम्पत्य जीवन के सूत्र में बँधने के बाद उस रिश्ते की प्रतिबद्धता का निर्वाह करने की प्रेरणा त्रिलोचन में प्राप्त होती है।

मलयज के अनुसार, ''उसके प्रेम के क्षणों में तन का नहीं, मन का विनिमय होता है, उनमें चंचल उफान या घोष नहीं, बल्कि एक ऐसा गहन मौन राग है, जिसकी धारा पृथ्वी और सौर मंडलों तक को आप्लावित करती हुई, प्राणों में चुपचाप बहती है।''(87)

मुझे तुम्हारा हृदय निरंतर बल देता है
जगज्जलधि में जीवन की नौका खेता है-(88)

त्रिलोचन के लिए प्रेम एकांगी नहीं है बल्कि जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनके लिए प्रेम मानो जीवन की लय में मुक्ति का राग है।

प्राय: मोटे तौर पर प्रेम को तीन रुपों में विभाजित किया जाता है- स्नेह, प्रेम और श्रद्धा। शिशुओं के प्रति दर्शाया गया स्नेह प्रेम का ही एक रुप है।

'चित्रा जांबोरकर' कविता के माध्यम से कवि ने शिशु प्रेम की भावना को व्यक्त किया है। बच्ची की निष्कलंकता कवि को मोहित करती है।

आनन्द कभी कभी
मन पर छा जाता है
मन को कुछ ऐसा
उभार दे जाता है
जो नया होता है, कमनीय होता है
हँसी खेल के हैं दिन
चित्रा के लिए अभी
इसी हँसी खेल में
उसकी पहचान
दिनों-दिन बढ़ रही है।(89)

नागार्जुन की 'वह दन्तुरित मुस्कान' कविता में भी शिशु-प्रेम झलकता है-

देखते तुम इधर कनखी मार
और होती जबकि आंखे चार
तब तुम्हारी दंतुरित मुस्कान
मुझे लगती बड़ी ही छविमान-(90)

त्रिलोचन नन्हें बच्चों को देखकर काफी हलका महसूस करते है। 'जीवन का रस' कविता में कवि कहता है-

बच्चे की मुसकान
और उसकी किलकारी
तब जी को रस देती है
जब सिर से चिंता का
बोझ उतार कहीं रख दें।(91)

इसके अलावा त्रिलोचन अपनी कविताओं में प्राणियों के प्रति प्रेम भाव दर्शाकर मानवीयता के पक्ष को बलशाली बनाते हैं।

'बिल्ली के बच्चे' कविता में कवि बिल्ली के बच्चों को दुलारता है। क्योंकि त्रिलोचन की दृष्टि से प्रेम लुटाने से और बढ़ता है। उदा. द्रष्टव्य है-

मन का स्नेह जुटाने से दुना बढ़ता है।
यह हिसाब की बात नहीं है, इस जीवन का
मूक सत्य है। इसीलिए जो भी कञ्चन का
करते हैं सम्मान उन्हीं के सिर चढ़ता है-(62)

आर्थिक अभावों को झेलनेवाले कवि त्रिलोचन जानते हैं कि जीवन-यापन की दृष्टि से पैसों की आवश्यकता होती है। लेकिन त्रिलोचन की व्यवस्था में अर्थ की प्रधानता उतनी ज्यादा नहीं है। स्वार्थ की आपा-धापी में लगे रहना-यह जहाँ सामाजिक सत्य मुखर रुप से हमारे सामने आता है-तब ऐसे विपरीत वातावरण में ही कवि प्रेम, अनुराग की महत्ता को हमें समझाने का प्रयास करता हैं। कवि का जीवन तो अभाव में ही भावमय हो जाता है। इसलिए अनेक कटु अनुभवों से गुजरने के कारण कवि काफी उत्कटता के साथ अनुभव करता है कि प्रेम की उष्मा का होना अत्यावश्यक है।

मुझे भरोसा रहा तुम्हारा, सदा रहेगा
किससे और कहूँगा अपने मन की बातें
होती ही रहती हैं उजली काली रातें
मन अपने अनुमान सुना कर किसे कहेगा-(93)

आखिर व्यक्ति को आवश्यकता होती है कि किसी से अपने भावों को व्यक्त करें। इस साधारणीकरण के लिए प्रेम की उत्कटता की प्रधानता चाहिए।

मैनेजर पांडेय के अनुसार, ''प्रेम के बारे में उनका दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट है, 'प्यार करो तो प्यार करो, क्या आगा-पीछा' या 'चाहे जो समझे यह दुनिया, मैंने तुमको प्यार किया है।' कोई दुविधा नहीं, किसी की परवाह नहीं। इस दृष्टिकोण में रोमान्टिक कवियों जैसी मुक्ति-चेतना है, लेकिन प्रेम कल्पना में नहीं, यथार्थ के धरातल पर विकसित होता है। यह प्रेम जीवन-जगत से दूर एकान्त में नहीं ले जाता। वह जीवन

की लय पैदा करता है, जगत-जीवन का प्रेमी बनाता है। यहाँ प्रेम शौक नहीं है, वह जीवन की अनिवार्यता है।''-(94)

त्रिलोचन की कविता में प्रेम का सघन और तरल रुप नजर आता है। 'इच्छा' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

सर दर्द क्या है
मुझे इच्छा थी
तुम्हारे इन हाथों का स्पर्श
कुछ और मिले-(95)

इन हाथों का स्पर्श कवि को जीवन जीने के लिए संबल प्रदान करता है। चिरानीपट्टी से दूर रहकर भी कवि बिछोह में जीवन-यापन करने के लिए तैयार रहता है।

यहाँ वहाँ के दृश्य आज भी हरे भरे हैं।
        यहाँ-वहाँ बैठे, विश्रम्भालाप हमारा
हुआ, बचाकर-बचकर कई मुलाकातें की
आज? आज वे सारी बातें बहुत परे है
        तीर नदी के नये, रह गया सिन्धु किनारा-(96)

क्योंकि कवि को अब सामान्य धरातल पर नैकट्य की आवश्यकता महसूस नहीं होती । उसके श्वास-श्वास में, कण-कण में केवल प्रियतमा का संचरण रहता है, यह है प्रेम की उत्कटता और विश्वास।

श्वास श्वास में गान भर दिया
गान गान में इस जीवन का
हर्ष शोकमय ध्यान भर दिया-(97)

रिश्तों को निभाने के लिए पूरकता का होना अवश्यंभावी है। यदि पूरकता न हो तो रिश्तों में दरार पड़ जाती है। कवि ने साहित्यिक परिवेश में रहकर भौतिक स्तर पर अधिक उपार्जन नहीं किया लेकिन पत्नी के कारण जीवन की नैया पार लग गयी इसलिए वह उसके प्रति आदर भी रखता है।

सुधीरा पचौरी के अनुसार, - ''त्रिलोचन अखंड प्रेमानुरागी है। यहाँ विरह नहीं है। प्रिय का अभाव है भी लेकिन ऐसा विलाप नहीं है कि पढ़ते हुए रो दें, आप विचित्र! त्रिलोचन अपने वियोग में किसी को हिस्सा नहीं देते। बहुत निजी बेहद निजी, इतना निजी कि आप उनकी प्रेयसी को छू नहीं सकते जबकि वह बार-बार और 'धरती' के जमाने से बड़े ठोस रुप रंग में प्रकट होती है।''(98)

'फूल देखा विजन में' कविता में कवि कहता है कि प्रमोदित करनेवाले वातावरण में अकसर उसे अपनी प्रिया की याद आती है। उसका स्मरण करके अपनी उत्कटता को व्यक्त करने के लिए कवि कहता है कि आँखों ने मानो आरती उतारी हो। 'याद तुम्हारी आयी है' में कवि कहता है-

मन का ऐसा कुछ खोया है,
अब की मैंने, जैसा कभी नहीं खोया है
एकाकीपन बुरा नहीं, झेलते हैं सभी
अपना अंतस्तल टोया क्या वहाँ नहीं है
साहचर्य ही देश काल में छिपा कहीं है-(99)

डॉ. रणजीत के अनुसार, ''छायावादी और छायावादोत्तर रुमानी कवियों की तरह उसमें वास्तविक जीवन से कटे हुए प्रेमी-प्रेमिका का नहीं, वास्तविक सामाजिक-पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि पर खड़े, उसके साथ चलते हुए और उसके विरुद्ध संघर्ष करते हुए प्रेमी-प्रेमिका का बिम्ब उभरता है। इसलिये प्रगतिशील कविता में प्रेम के सत्य को जीवन के अन्य सत्यों के साथ जोड़ कर प्रस्तुत किया गया है।''(100)

धीरज धरो, आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर कुछ कर पाऊँगा-(101)

ग्रामीण जीवन की सच्चाई यह है कि पत्नी साल भर प्रतीक्षा करती है कि एक महीने के लिए पति मिलने के लिए आएंगे और पत्र में भी पति अपनी पत्नी को आश्वस्त करता रहता है। यह चित्र आज भी हमारे भारतीय ग्रामीण परिवेश में दिखायी देता है। कवि पत्र लिखता है-

जैसे, खग-शावक उड़ता है, मन यह न्यारी
गति ले कर उड़ान भरने लगता है वैसे ही
सोते जगते दूर-दूर तुम सदा दूर हो,
क्षितिज जिस दृश्यमान था, है ऐसे ही
बना रहेगा, स्वप्न योग ही यदा कदा हो।(102)

त्रिलोचन के यहाँ प्रेम में समर्पित भाव होने के कारण पति-पत्नी जीवन के कटु वास्तविकताओं को स्वीकार कर लेते हैं।

रामेश्वर शर्मा ने कहा है- ''प्रेम का यह अभिनव स्वरूप जहां एक ओर वासना, शारीरिक भूख और निरी रुपलिप्सा पर आधारित न होकर एन्द्रिय परायणता से दूर है, वहीं वह एक गहरे साहचर्य से उदित सम्बन्ध भावना से परिपोषित तथा पारस्परिक सहयोग के रागात्मक रुप से दीप्त होता है। उसकी रागजन्यता एक विराट सामाजिक

ध्येय की भावना से अनुप्राणित होती है।''(103)

'आज मैं तुम्हारा हूँ' कविता में कवि कहता है -

कल मेरे प्राणों में कोई रो रहा था। बाहर सब
शांत था। भीतर-भीतर भारी व्यथा भर गयी थी।
जी बड़ा उदास था। कौन सी हवा थी वह जो अपनी
लहरों से घेर-घेर कर मुझको बाँध गयी।'-(104)

प्रेम की धनीभूत पीड़ा को बड़ी ही सरल भाषा में बड़ी उत्कटता के साथ प्रस्तुत किया गया है। मूक मौन होकर किए गए प्रेम में स्पष्टीकरण की गुंजाइश नहीं रहती। जहाँ निराकरण प्रस्तुत किया जाता है, वह रिश्ता स्थिर नहीं होता।

'हम दोनो हैं दु:खी' कविता में त्रिलोचन की यही विचारभूमि स्पष्ट होती है-

गाढे दुख में कभी कभी भाषा छलती है
संजीवनी भावमाला नीरव चलती है-(105)

'मेघदूत' में कालिदास ने जिस प्रकार से यक्ष और यक्षिणी की विरह वेदना को मेघों के द्वारा चित्रित किया है उसमें व्यावहारिकता कम और भावुकता अधिक है, यही भावुकता त्रिलोचन की प्रेम संबंधी कविता में विद्यमान है। 'चांदनी रात है' कविता में कवि की भावोत्कटता नजर आती है। चांदनी रात, गंगा का तट, तारे, रजनीगंधा का सुगंध, शीतल बयार आदि प्राकृतिक परिवेश में कवि को रिक्तता का अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में मन चाहता है कि प्रियतमा का सानिध्य प्राप्त हो, लेकिन व्यावहारिक सत्य तो कुछ और ही है।

यह दूरी, केवल स्थान की नहीं मन की है,
विह्वल अधीरता क्षण क्षण की कण कण की है-(106)

इस व्यावहारिक सत्य के कारण काफी उत्कटता के बावजूद कवि स्वयं को तसल्ली(धैर्य) दे देता है। यही संयम है जो प्रगतिवादी कविता की प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन्हीं भावों से ओत-प्रोत केदारनाथ अग्रवाल की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है।

गुलाबी गालों वाली नारि
न बैठो पलभर मेरे पास
कि मुझको ड़र है तुझ से आज
हृदय का तोड़ोगी विश्वास
बसन्ती बाहोंवाली नारि

न ड़ालो फूलों का गलहार
कि मुझको ड़र है तुझ से आज
हृदय को कर दोगी लाचार-(107)

अंत में मैं त्रिलोचन के वैयक्तिक प्रेम को उन्हीं की पंक्तियों द्वारा व्यक्त करना समीचीन समझती हूँ।

अमृतस्यंदी बोल प्राण में रम जाते हैं,
नयनों मे वह रुप तरंगे ले कर आता,
है यों ही दिन-रात हृदय में बस जाता है
पूरा पूरा शांत और रस थम जाते हैं
रक्त हृदय का और और चंचल हो जाता
है, मन का अभिमान मान दे कर गाता है-(108)

जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है कि इनकी प्रेम संबंधी विचारधारा रोमानी एवं रहस्यवादी नहीं है बल्कि सात्विक भारतीय मर्यादा से मंडित है।

6.5 त्रिलोचन के काव्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रेम

त्रिलोचन ने समाज में स्थित गरीबी, लाचारी, अभाव, पीड़ा, बेरोजगारी, नेताशाही, तानाशाही आदि विभिन्न समस्याओं का चित्रण करके सामाजिक दायित्व का निर्वाह किया है जिसकी पर्याप्त चर्चा पाँचवे अध्याय में मैं कर चुकी हूँ। अत: यहाँ पर राष्ट्रीय प्रेम के द्वारा सामाजिक संचेतना को रुपायित किया गया है। त्रिलोचन वैश्विक चेतना की महत्ता को दर्शाते हुए लिखते है-

महाकाव्य है विश्व, किसी ने रचना की है
मनोयोग से, रात और दिन के रंगों से
भूषित करके पृष्ठ काल के, किस ढंगों से
वर्ण-वर्ण से भरे हाशिए, उपमा दी है
किसी की किस से, नई कल्पना भाषा ली है-(109)

कवि की दृष्टि से भारत राष्ट्र को यदि सुजलाम्, सुफलाम बनाना है तो उसके लिए यह आवश्यक होगा कि हम राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाले धार्मिक मतवादों को छोड़ने के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संबंधों की दृढता पर बल दें।

'जो उठाई है ध्वजा' में कवि कहता है कि निरंतर रुप से हमें एकजूट होकर आगे बढना होगा, तब ही जाकर भारत देश अखंड रह पाएगा।

जो उठाई है ध्वजा झुकने न देना

देस और विदेस से ध्वनि पास आती है
जग गई जनता, भरी है राह, गाती है
विजय का उल्लास
गूँजता आकास
जो जगाई शक्ति है लुकने न देना-(110)

जिस प्रकार से आजादी के आंदोलन के समय भारतीय लोगों ने एकता का परिचय दिया, उसी प्रकार से आगे भी हमें एकत्रित होकर लड़ना होगा।

'फ्रांस' कविता में त्रिलोचन फ्रांस की राज्यक्रांति का स्मरण करके प्रकारांतर से भारतीय जन-मानस को क्रांति के लिए प्रेरित करते हैं।

फ्रांस गिरा था किसी दिन,
धूल झाड़कर खड़ा हो गया।-(111)

त्रिलोचन की दृष्टि से अगर सामूहिक एकता विश्व में विकसित हो जाए तो वैश्विक स्तर पर किसी भी प्रकार की कोई समस्या नहीं रहेगी। अत: हमें चाहिए कि हम संकुचित दृष्टि को त्यागकर विभिन्न देशी-विदेशी विचारधाराओं को अपनाकर स्वयं को पुष्ट करें। 'माओ-त्से-तुंग' में कवि माओ का चित्रण करके यही दर्शाता है-

तुम थे माओ, जीवन के सौ अंकुर फूटे,
बन्धन टूटे, दलितों ने गौरव-गान लूटे-(112)

वर्तमान भारत देश की विभिन्न समस्याओं का हम कोई निष्कर्षात्मक रुप से समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम न होने के कारण कवि को महात्मा गांधी का स्मरण होता है और इसी अवसर पर बापू को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए वह कहता है-

बापू, तुम होते तो कितना अच्छा होता,
बिना तुम्हारे सूना सूना सा लगता है-(113)

त्रिलोचन राष्ट्रीय प्रेम और अनुराग के कारण ही आपत्काल की स्थिति पर क्षोभ प्रकट करते हैं। उन्हें दु:ख होता है कि अंतत: हमने आजादी से क्या पाया? त्रिलोचन 'कवि शमशेर से' कविता में शमशेर के जन्मदिन पर भी देश के प्रति चिंतित है-

आपत्काल स्वदेश और जन को जैसा मिला है अभी
वैसा और कभी न था, समय ने क्या-क्या दिखाया नही
सारा देश विवर्ण है, विकल है, अत्यंत उद्विग्न है,
लांछा से हतदर्प है, व्यथित है, विक्षुब्ध है, श्रांत है-(114)

त्रिलोचन भारत में हो रहे नैतिक पतन से विक्षुब्ध है, इससे हमारी भारतीय अस्मिता का उज्वल प्रवाह स्खलित होता हुआ नजर आता है। परंतु पतनशील क्रिया

में विनाश की तरफ मुड़ते हम भारतवासी वास्तव में कलंकित है। इस स्थिति से उबरने के लिए कवि थके हुए जग को आशान्वित करना चाहता है। 'अट्टहास कर' कविता में कवि कहता है-

आँसू ? आँसू से तो विश्व डूब सकता है
तू अपने आँसू कम कर दे, यह भी तेरा
आत्मदान है और हास तो वरदानों में
सर्वोत्तम वरदान रहा, जग कब थकता है
मधुर हास से, दु:खों का दुरतिक्रम घेरा
अट्टहास ही तोड़ सका है अभियानों में-(115)

देश में दिन ब दिन बढ रहे आतंकवाद, हत्याकांड, बम-विस्फोट, रेल-मंदिरों में हो रहे अनाचार को रोकने के लिए सामूहिक एकता ही अवश्यंभावी है।

कवि की यह विचारधारा है कि वैश्विक स्तर पर स्वयं की अपनी कोई अस्मिता बनाए रखने के लिए भारतीयता की भावना, देश-प्रेम हर व्यक्ति में होना चाहिए। यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर हो सकती है।

पं. जवाहरलाल नेहरु के अनुसार, ''संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय है।''-(116) आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'चिंतामणी' निबंध संग्रह में लिखते हैं- ''जन्म भूमि का प्रेम, स्वदेश प्रेम, यदि वास्तव में अन्त:करण का कोई भाव है, तो स्थान के लोभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस लोभ के लक्षणों से शून्य देश-प्रेम कोरी बकवास या फैशन के लिए गढ़ा हुआ शब्द है। यदि किसी को अपने देश से प्रेम है, तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत नदी, निर्झर, सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सब की सुध करके वह विदेश में आँसू बहायेगा।''(117)

'चेतन की डोर' कविता में कवि कहता है-

आज विश्व की भक्ति अनाश्रित भटक रही है
भूत काल की और भविष्य काल की जानी
अनजानी आवाज, प्राण के पट की छानी,
उस को नित्य पुकार रही है खटक रही है
यह अजीब सी बात, द्विधा से लटक रही है,
वह चेतन की डोर पकड़ कर किस ने तानी
किस ने ऐसा काम किया, कर्ता वह ज्ञानी
है अथवा नातान-प्रश्न ये पटक रही है-(118)

हर युग में व्यक्ति समस्याओं से जूझा है, फिरभी स्वयं को स्थापित करने

का, स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया जाता रहा, आजादी के आंदोलन में व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों से परे हटकर लोगों ने देश के लिए प्राणाहुति दी। लेकिन बदली हुई स्थितियों में हमने देखा कि लोग व्यक्तिगत स्वार्थों को इतना महत्व दे रहे है कि देशाभिमान की भावना धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। ऐसे में दुबारा 'वसुधैव कुटुंबकम्' को पोषित करने की आवश्यकता महसूस होने लगी है। कवि के अनुसार, यदि सभी राष्ट्र किसी एक बलशाली प्रेम की छाया के तले आ जाए, वह प्रेम जो विश्व प्रेम से अभिभूत हो- तब ही जाकर किसी सकारात्मक परिवर्तन की संभावना की जा सकती है। कवि कहता है-

अमेरीका इंग्लैंड, रुस जो आज बड़े हैं
हेतु यही हैं, आज विशाल बूट की छाया
के नीचे संसार समेटे है, मूड़ जाएँ
हम भी लख कर मोड़, अन्यथा व्यर्थ खड़े हैं
धरा-विरोपित दंड सरीखे, क्या कुछ पाया-(119)

इसलिए हमे चाहिए कि हम अन्यमनस्कता की स्थिति को छोड़कर सद्भावना को बढावा दें। 'विश्व बन्धुत्व' कविता में त्रिलोचन कहते हैं-

हम अपना एकांत भी बचा नहीं सकेंगे
अलग-अलग पहचान सभी देशों की अपनी
अगर नहीं है, कौन हमारे साथ रहेंगे
और रखेंगे कौन विरोध-नीति ही अपनी।(120)

कवि की यह स्पष्ट भूमिका है कि जहाँ वैश्विक स्तर पर सामूहिक एकता महत्वपूर्ण है, वही भारत की रक्षा के लिए स्वयं की अपनी एक अलग पहचान, अस्मिता का होना अनिवार्य है।

'वे घर आ रहे है' कविता में कवि आंतरिक घात-प्रतिघातों से विछिन्न हो रहे भारतवासी को क्रांति के लिए उत्प्रेरित करता हैं।

मिट गये कितने अनोखे लाल तेरे कौन बूझे
रक्त कितनी पी गयी प्यासी धरा से कौन पूछे
किन्तु अब आजाद होने लग गये हैं देश सारे
मर गये जो, जी गये जो, कौन है उनको न पूछे
आज आजादी कि जिनके प्राण लेकर जी रही है
ये बहादुर पुत्र तेरे देश ये घर आ रहे है
आज वे संगीन कन्धों पर रखे घर आ रहे हैं-(121)

यह क्रांति केवल विघटनशील तत्वों के विनाश के लिए है। संगीन उठाकर चलनेवाले क्रांतिकारी है, आतंकवादी नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कवि मात्र हिंसा का पक्षधर है, किसी विशिष्ट स्थितियों में विरोध आवश्यक हो जाता है और तब कहीं समाज में सुख-शांति फैलती है। वेदों में कहा गया है-

''सर्वेत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्चन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात।।

कवि तानाशाही को खत्म करने के लिए संगीन उठाने के लिए विवश है फिर भी वह भातृत्ववाद का समर्थक है। भातृत्ववाद से संबंधित शमशेर बहादुर सिंह की कविता द्रष्टव्य है-

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैच्यू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गिय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए-[122]

उसी प्रकार 'शैतान और इन्सान' नाट्य-काव्य में कवि देश-भक्ति की भावना को बल देते हुए कहता है-

अजर अमर है देश हमारा
जिसने सबका मार्ग बनाया
जीवन का कर्तव्य सिखाया
युग-युग की बहु बाधाओं में
जिसने अपना लक्ष्य बनाया
जिसने पथ पर बढ़ते-बढ़ते
महाकाल तक को ललकारा
अजर-अमर है देश हमारा [123]

o-o-o-o-o

संदर्भ सूची - षष्ठ अध्याय

1. नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृ.922
2. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आपटे, पृ.696
3. वही
4. प्रामाणिक हिन्दी कोश : संपादक, आचार्य रामचंद्र वर्मा, पृ.553
5. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तल
6. मुंशी प्रेमचंद : रंगभूमि, पृ.492
7. हिन्दी काव्य में प्रेमभावना : रामेश्वर खंडेलवाल, पृ.25
8. शिवमंगल सिंह सुमन की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.302
9. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : डॉ.गोविंद रजनीश, पृ.120,121
10. यशपाल के कथा साहित्य में काम, प्रेम और परिवार : डॉ.मधूलिका पाठक, पृ.3
11. सूफी कवि जायसी का प्रेम-निरूपण : निजामुद्दीन अंसारी, पृ.77
12. चित्ररेखा, पृ.74
13. Human Development : Diane E. Papalia, पृ.159
14. भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में प्रेमभावना, पृ.18
15. सुमित्रानंदन पंत, प्रतिनिधि रचनाएँ
16. कबीर साखी संग्रह : कबीरदास
17. जायसी ग्रंथावली
18. सूरसागर, सूरदास, पद 4664
19. मीरा की पदावली
20. रीतिकाव्य संग्रह
21. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत,
22. वही
23. प्रेम पथिक, जयशंकर प्रसा
24. परिमल, निराल, पृ.238,239
25. याना : महादेवी वर्मा, पृ.77
26. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत, पृ.210
27. वही, पृ.213
28. भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में प्रेम भावना, पृ. 18
29. सापेक्ष : त्रिलोचन समग्र सिंहावलोकन : डॉ.कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ.220
30. ताप के ताए हुए दिन, पृ.18

31. सापेक्ष, परिसंवाद (ममता कालिया), पृ.256
32. अमोला, पृ.46
33. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताएँ : चंचल चौहान, पृ. 434
34. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.37
35. सापेक्ष, काव्य संवेदना का आंतरिक पक्ष : डॉ. वीरेंद्र सिंह, पृ.178
36. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताई, चंचल चौहान, पृ.433
37. सापेक्ष, शब्दों का अन्तर्निहित प्रकाश, अरुण कमल, पृ.541
38. चैती, मधुमालती, पृ.27
39. ताप के ताए हुए दिन, पृ.28
40. सापेक्ष, खेतिहार जिजीविषा के कवि : राजकुमार सैनी, पृ.157
41. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.59
42. सापेक्ष, खेतिहर जिजीविषा के कवि : राजकुमार सैनी, पृ. 154
43. धरती, पृ.87
44. सापेक्ष, उस जनपद का कवि हूँ : गोपालशरण तिवारी, पृ.531
45. धरती, बादल चले गये वे : प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.83
46. गुलाब और बुलबुल, नींद आयी तो कहा जा तू जा
47. चैती, प्रकाश के रंग, पृ.43
48. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत
49. धरती, पृ.94
50. गुलाब और बुलबुल, पृ. 116
51. त्रिलोचन के बारे में : संपादक, गोविन्द प्रसाद, पृ. 212
52. वही, पृ.38
53. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत, पृ. 251
54. सबका अपना आकाश, पृ. 18
55. त्रिलोचन के बारे में : संपादक, गोविन्द प्रसाद, पृ.38
56. धरती, पृ.17
57. सबका अपना आकाश, पृ.15
58. त्रिलोचन के बारे में : गोविंद प्रसाद, पृ.153
59. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.31
60. दिगन्त, यादों की रात, पृ.13
61. फूल नाम है एक, पृ.39

62. तुम्हें सौंपता हूँ, पृ.107
63. शब्द, पृ.27
64. शब्द, पृ.113
65. सापेक्ष
66. त्रिलोचन संचयिता, संपादक, ध्रुव शुक्ल, पृ. 184
67. सापेक्ष, परिसंवाद पृ.282
68. त्रिलोचन के बारे में : संपादक-गोविंद प्रसाद, पृ. 169
69. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.283
70. ताप के ताए हुए दिन, दिन सहज ढले
71. सापेक्ष - त्रिलोचनजी से शिवकुमार मिश्र की बातचीत, पृ.173
72. सापेक्ष 'अपनी राह चला आँखों में रहे निराला' : रेवती रमण पृ.206
73. त्रिलोचन के बारे में : संपादक- गोविन्द प्रसाद, पृ.50-51
74. दिगन्त, प्यार
75. सापेक्ष- हम जीवन की हरी डाल पर झूल रहे हैं: नरेश चंदरकर, पृ.560
76. दिगन्त, इतना तो बल दो
77. त्रिलोचन के बारे में : संपादक- गोविन्द प्रसाद, पृ.176
78. दिगन्त, तुम्हें चाहता हूँ
79. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.74
80. दिगन्त, वह अंजोरिया रात, पृ.21
81. चैती, हृदय की लिपि, पृ.32
82. तुम्हें सौपता हूँ, परिचय की गाँठ
83. चैती, असमंजस, पृ.11,12
84. सापेक्ष - अपनी राह चला आँखों में रहे निराला : रेवती रमण, पृ.205
85. वही
86. तुम्हें सौपता हूँ, तुम्हें जब मैंने देखा
87. सापेक्ष -त्रिलोचन की कविता, मलयज, पृ.387
88. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.13
89. ताप के ताए हुए दिन : चित्रा जांबोरकर, पृ.77
90. सतरंगे पंखोवाली, नागार्जुन
91. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.106
92. दिगना, बिल्ली के बच्चे
93. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.27

94. त्रिलोचन के बारे में : संपादक- गोविन्द प्रसाद, पृ.156
95. चैती, इच्छा, पृ.15
96. दिगन्त, विदा के समय, पृ.34
97. सबका अपना आकाश, पृ.22
98. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक साल उजाला दिपता है, सुधीश पचौरी
99. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.20
100. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत, पृ.213
101. ताप के ताए हुए दिन, आरर डाल, पृ.54
102. उस जनपद का कवि हूँ, गीतमयी हो तुम
103. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ.54
104. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.65
105. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.40
106. वही, पृ.47
107. केदारनाथ अग्रवाल आशंका कवि अप्रैल 57
108. शब्द, पृ.58
109. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.106
110. सबका अपना आकाश, पृ.37
111. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.118
112. दिगन्त, पृ.60
113. उस जनपद का कवि हूँ, पृ.77
114. चैती, पृ.28
115. दिगन्त, पृ.37
116. संस्कृति के चार अध्याय, पं.जवाहरलाल नेहरू, दिनकर प्रस्तावना, पृ.11
117. चिंतामणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोभ और प्रीति पृ.57
118. शब्द, पृ.62
119. वही
120. तुम्हे सौंपता हूँ, पृ.68
121. वही, पृ.117
122. प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ. रणजीत, पृ.228
123. तुम्हें सौपता हूँ, पृ.149

o-o-o-o-o

सप्तम अध्याय

त्रिलोचन की शिल्प संबंधी दृष्टि

शिल्प का अर्थ हैं 'शैली', कार्य पद्धति, विशेष उपाय, मंत्र चातुर्य। साहित्य के क्षेत्र में इसका अर्थ है- ''जो किसी भी साहित्यिक कृति को विशिष्ट आकार देता है।''(1) प्रामाणिक हिन्दी कोश में शिल्प को हाथ से चीजें बनाकर तैयार करने की कला, दस्तकारी के रूप में व्याख्यायित किया गया है।(2)

कोशगत अर्थ के अनुसार शिल्प दस्तकारी, कारीगरी, कला संबंधी व्यवसाय का पर्यायवाची माना गया है। 'संस्कृत हिन्दी कोश' में 'शिल्पम्' शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ है कला, ललित-कला, कुशलता, कारीगरी, विदग्धता, पटुता, कारखाना, निर्माणी, शिल्पविद्यालय, कला विषय पर लिखा गया ग्रंथ, शिल्पविज्ञान आदि।(3)

शिल्प को कला के अंतर्गत रखते हुए रमेश दिविक लिखते है - 'कला में अंततोगत्वा रूप या रूप प्रकार सफल कला का कला के अंदर सफल कलाकार

का व्यक्तित्व ही है।[4] बी. एस. आपटे के मतानुसार, शिल्प शब्द का प्रयोग - एन आर्ट ए फाईल ऑफ मेकेनिकल आर्ट, स्किल, क्राफ्ट आदि के रूप में हाता है।[5]

डॉ. हरदयाला के अनुसार, आज हमे 'काव्य' को कला मानने में किसी प्रकार की कोई आपत्ति का अनुभव नहीं होता है इसलिए काव्य का भी शिल्प होता है [6]

आगे जाकर 'शिल्प' शब्द का प्रयोग कम होता गया और उसके स्थान पर 'कला' शब्द व्यवहृत किया जाने लगा। आधुनिक काल में 'शिल्प' का प्रयोग अंग्रेजी के 'क्राफ्ट' के रूप में किया जाने लगा है।

'काव्य प्रकाश' में रचना की सफल उत्पत्ति के लिए अभ्यास को महत्वपूर्ण माना गया है, अर्थात् शिल्पकार तभी अच्छे शिल्प का निर्माण कर सकता है जब उसे उसका अभ्यास हो।

कवित्वं जायते शक्तेर्वर्धतेऽ भ्यासयोगतः।
अस्य चारूत्वनिष्णतौ व्युत्पत्तिस्तु गरीयसी।।[7]

आधुनिक काल के कवियों में 'शिल्प' की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए रूप, कला, रूप-प्रकार, टेकनीक, शैली, क्राफ्ट आदि शब्दों का सहज रूप से प्रयोग किया है।

काव्य के दो तत्व है- अनुभूति और अभिव्यक्ति। कुछ विद्वानों ने अभिव्यक्ति के अंतर्गत शिल्प को समायोजित किया है।

''अभिव्यंजना के प्रकार को शैली संज्ञा प्रदान की जाती है। काव्य-साहित्य के विभिन्न रूप नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता ये सब भावाभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियाँ है। वस्तुतः शैली अपने रूप या प्रकार में व्यक्ति - वैशिष्ट्य गुण से समन्वित होती है। 'शैली' शब्द से वस्तु तथा विषय के रूप का बोध होता है। रूप वस्तुतः किसी वस्तु या विषय का बिम्ब ही होता है। जो वस्तु या विषय हमारे मानव-जगत में विद्यमान है, उसी का जब भाषा या किसी अन्य वस्तु के आश्रय से प्रत्यक्षीकरण होता है, तब वह प्रत्यक्षीकरण का प्रकार ही रुप कहलाता है।''[8] 'शिल्प' के संबंध में कोशगत अर्थ के पश्चात मैं विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों के मतों का उल्लेख कर देना उचित समझती हूँ। 'स्टाइल' शब्द लैटिन के 'स्टाइलस' (कलम) शब्द से निकला है।

किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किये जाते है, वही उस कला की शिल्पविधि है।

स्टैन्डल - ''किसी प्रस्तुत विचार में उस पूर्ण प्रभाव को उत्पन्न कर देनेवाली सब परिस्थितियों के योग को 'शैली' कहते हैं, जो उस विचार द्वारा प्रस्तुत होना

चाहिए।

जेम्स रीब्स ने तकनीक शब्द को एक भद्दा शब्द मानते हुए भी इस शब्द की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए कहा- ''तकनीक एक भद्दा शब्द है। इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो कविता लिखना हस्तलाघव और चातुर्य मात्र है। लेकिन काम भी इसी शब्द से चलता है।''(9)

जेम्स रीबस - ''तकनीक वह योग्यता है जो कविता के रुप और भाषा तथा कवि के सम्प्रेष्य विचार और मूड़ के मध्य अनुकूलता स्थापित करती है।''(10) उनके अनुसार कविता 'टेकनीक' हो सकती है लेकिन 'टेकनीक' कविता नहीं। शिल्प के अंतर्गत अभिव्यक्ति के उपकरणों के अंतर्गत कविता के संदर्भ में निम्नलिखित तत्वों का संयोजन रहता है-

1) काव्य-भाषा 2)काव्यरूप और शैली 3) बिम्ब 4) प्रतीक 5) अलंकार 6) छन्द और लय।

डॉ. कमलकिशोर गोयनका - ''अभिव्यंजना' में व्यंजना की ध्वनि है और 'शिल्प' शब्द का सही पर्याय नहीं है। 'अभिव्यक्ति' शब्द 'शिल्प' के लिए ठीक प्रतीत होता है, लेकिन अभिव्यक्ति नियोजित-अनियोजित गणित-अगणित, सफल-असफल सभी प्रकार की हो सकती है परन्तु 'शिल्प' शब्द से केवल 'कौशल्यपूर्ण अभिव्यक्ति' का ही अर्थबोध होता है।''(11)

विभिन्न विद्वानों ने शिल्प को 'टेकनिक' के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

जैनेंद्र - ''शिल्प अनावश्यक नहीं है। कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज नहीं समझा जा सकता। लेकिन उससे किनारे बनते हैं। नदी का पानी नहीं बनता।'' आगे वे लिखते हैं

''टेकनिक उस ढाँचे के नियमों का नाम है। पर ढांचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आये। वैसे ही 'टेकनीक' साहित्य सृजन में योग देने के लिए है। शरीरशास्त्र विद्ध हुए बिना भी जैसे प्रेम के बल से माता-पिता बनकर शिशु सृष्टि की जा सकती है, वैसे ही बिना टेकनिक की मदद के साहित्य सिरजा जा सकता है।''(12)

काव्य लेखन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तत्व है 'अंगी करोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृति' ।(13)

आचार्यों ने 'कारयित्री' और 'भावयित्री' प्रतिभा के रूप में उसका विभाजन किया है। कारयित्री प्रतिभा के अंतर्गत अभ्यास महत्वपूर्ण है। अभ्यास कवि का अर्जित गुण है। 'शिल्प' इसी अर्जित गुण से संबंधित है।

''शब्द केवल अपने कोषगत अर्थ को ही लेकर नहीं चलता वरन् उसके

साथ पर्यायवाची एवं विलोमार्थी शब्दों का वातावरण भी रहता है। शब्दों का केवल अर्थ ही नहीं होता, वरन् वह शब्दों के अर्थों का आह्वान सा करते हैं- जिन शब्दों को आह्वान के रुप में अभिनिर्मंत्रित किया जाता है वे ध्वनि के माध्यम से, अथवा तद्गत अर्थ के माध्यम से अथवा उससे निकले हुए शब्दों के अर्थ के माध्यम से मूल शब्दों से जुड़े रहते हैं।''(14)

प्रत्येक रचनाकार अपने परिवेश के साथ जुड़ा रहता है, वह परिवेश जिस रूप से उसे प्रभावित करता है उसी के अनुरूप वह प्रेरित होता रहता है और उसकी मानसिकता एवं संस्कारों के अनुरूप वह विषय-वस्तु एवं शिल्प-भाषा का चुनाव करता है। अत: भाव-बोध एवं प्रस्फुटन की क्रिया शनै: शनै: परिचालित होती रहती है।

अज्ञेय ने 'शिल्प' को अभ्यास के साथ जोड़ते हुए कहा है- ''शिल्प तन्त्र या टेकनीक के बारे में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। इन नामों की इतनी चर्चा पहले नहीं होती थी। ...यों 'साधना' की चर्चा होती थी और साधना अभ्यास और मार्जन का ही दूसरा नाम था।(15)

रचनाकार स्वयं सर्वज्ञ नहीं हो सकता। अपनी बौद्धिक क्षमताओं के अनुरूप जिस अनुपात में उसकी भाषा पुष्ट हुई होती है उसी को समायोजित कर तराशकर वह प्रस्तुत करता है। अत: कह सकते हैं कि शिल्प के निर्माण में अभ्यास महत्वपूर्ण है लेकिन प्राय: ग्रहणशीलता प्रतिभा पर निर्भर करती है।

डॉ. हरदयाल के अनुसार, ''किसी भी उत्कृष्ट रचना में भावों का गांभीर्य, विचारों की गरिमा एवं शैली का उत्कर्ष तो पाया ही जाता है, किन्तु साथ ही जब समग्र रुप से उस रचना का मूल्यांकन करते हैं तो इन सब तत्वों की निजी अवस्थिति एवं इनके विकास का अध्ययन भी करते हैं और साथ ही इन सभी तत्वों की पारस्परिक संबद्ध-समरस योजना एवं निर्वाह का विवेचन भी करते हैं। यह योजना एवं निर्वाह कलाकार की कला-विषयक निपुणता या दक्षता पर निर्भर करता है। इसे ही इस कला का शिल्प कहते हैं।''(16)

'कविता क्या है' शीर्षक अपने प्रसिद्ध निबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, ''हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रुपों और व्यापारों को भावना के सामने लाकर कविता बाह्यप्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त:प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावनात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है। यदि अपने भावों को समेट कर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि से किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी?''(17)

जब भावात्मक स्तर पर प्रक्रिया पूरी होती है तो दूसरे स्तर पर भाषा के चुनाव का प्रश्न सामने उपस्थित होता है। कुंतक का मानना है- ''अपने पर्यायों

के रहने पर कवि अपनी अभिप्राय की विवक्षा के लिए ऐसे उपयुक्त शब्द का चुनाव करता है, जो विवक्षित अर्थ का वाचक होता है।''

शब्दो विवक्षितार्थकवाचकोऽ न्येषु सत्स्वापि
अर्थ : सहृदयाह्लदिकारी- स्वस्पन्दः सुन्दरः। (18)
वक्रोक्ति जीवितम्

टी.एस. इलियट के अनुसार '' काव्य का अर्थ उसके लेखक के सचेत प्रयोजन से अधिक व्यापक भी हो सकता है और उसके मूल स्त्रोत से दूर भी हो सकता है। विभिन्न पाठकों के लिए तुक ही कविता का अलग-अलग अर्थ हो सकता है। वह उस अर्थ से भिन्न भी हो सकता है जो कवि के मन में था और भिन्न होते हुए भी वह संगत हो सकता है तथा कवि के अर्थ से बेहतर भी हो सकता है।

शिल्प के अंतर्गत रचनाकार दस्तकारी या अपनी कारीगरीता दिखाकर रचना को एक निश्चित रुपाकार दे तो देता है लेकिन पाठकों तक पहुँचते-पहुँचते वह रचनाकार की रचना न रहकर मात्र रचना बन जाती है, कई बार पढ़नेवाले उसका अलग ही अर्थ निकालते हैं, उसे अलग ढंग से व्याख्यायित करते हैं जिसके बारे में स्वयं रचनाकार कभी-कभी अनभिज्ञ रहता है। कई बार भाषिक संरचना के कारण इस प्रकार के चमत्कार होते रहते हैं। शब्दों की बनावट को भाषा में (रचना के अंतर्गत) बनते हुए वह बनावटी न लगे इसका ध्यान रचनाकार को रखना अवश्यंभावी है। किसी आभूषण में मूल्यवान मणि या रत्न जुड़े हुए हो, तो वह उस आभूषण की शोभा बढ़ाता है लेकिन उन रत्नों को निकालकर उसके स्थान पर अन्य रत्न या काँच गढ़ने से उसकी शोभा तिरोहित हो जाएगी, उसी प्रकार भाषा में शब्दों के चुनाव का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। रचना-प्रक्रिया की रहस्य-कथा के संदर्भ में रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता को उद्धृत करते हुए प्रो. निशांत केतु लिखते है-

''आभार अर्थ तोमार तत्व बले दाओ मोरे अथि।
आमि किगो विनायंत्र तोमार व्यथाय पीड़िया हृदयेर
मूर्च्छना भरे गीत झंकार ध्वनिछ मर्म माझे।
आमार माझार करिछ रचना असीम विरह अपार।
किसेर लागिया विश्व-वेदना मोर वेदनाथ बाजे।''(19)

अपार मानवीय अनुराग, संवेदनाशीलता, भावोत्कटता, वैचारिकता से मंडित होकर अर्थपूर्ण ढंग से जब कविता प्रस्फुटित होती है, तब वह रचना महत्वपूर्ण कहलाती है। अर्थात विषय-वस्तु और शिल्प दोनों अन्योन्याश्रित है, किसी एक तत्व के कमजोर पड़ने से रचना कमजोर हो सकती है। विश्वनाथप्रसाद तिवारी रचनाकार की रचनाधर्मिता

को स्पष्ट करते हुए कहते है-

"वह(रचनाकर) क्यों बार-बार लिखता है? इसलिए कि हमेशा उसे कुछ अधूरा महसूस होता है जिसे वह बार-बार पूरा करने का प्रयास करता है। उसे लगता है कुछ छूट रहा है, जिसे भाषा देना जरूरी है। हर रचना में कई बार उसे शब्दों को इधर-उधर करना पड़ता है। उन्हें हटाना और उपयुक्त शब्दों को रखना पड़ता है। यह भाषा और अनुभव का द्वंद्व है।"[20]

रचना की आंतरिक सूक्ष्म क्रिया के संदर्भ में विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं-

"रचना में चेतन-अवचेतन, इच्छा और संज्ञान, प्रवृत्ति और चेतना, कल्पना और विचार आदि परस्पर विरोधी युग्मों का द्वंद्व और संगति हम प्रतिक्षण महसूसते रहते हैं और यह अन्तःश्चेतना के स्तर पर गूढ़ मनोविज्ञान के धरातल पर होता है और उस धरातल पर रचाव, कभी-कभी सांयोगिक या अकस्मात होता है अतएव रचना-प्रक्रिया रहस्य के रूप में होती है।"[21]

मैंने यहाँ 'शिल्प' का कोशगत अर्थ और उसकी अवधारणा को विभिन्न विद्वानों के कथनों के माध्यम से व्यक्त किया है। यहाँ इसका उद्देश्य मात्र त्रिलोचन की भाषा दृष्टि को समझना है। वैसे आज 'शिल्प' का रूढ़ अर्थ मात्र कला पक्ष के रुप में न लेकर संपूर्ण कविता के संदर्भ में किया जा रहा है। वस्तुतः कविता की संपूर्ण रचना-प्रक्रिया में अनुभूति और अभिव्यक्ति को अलग करके उसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

चेतन स्तर पर होनेवाले विभिन्न घात-प्रतिघातों के भी कई सोपान होते हैं। परत-दर-परत उसमें विचरण होता रहता है। लेकिन इस चेतन स्तर के पीछे भी एक बहुत अलग किस्म की दूसरी दुनिया है जिसके अंदर बहुत विपयन होता रहता है, इस आंतरिक भाव-लोक को साँचे में ढालने की क्षमता शिल्प की परिपक्वता या कमजोरी को दर्शाती है।

अतः कह सकते हैं कि शिल्प या कला अनुभव की आकृति है और रचनाकार के अनुभव का युगीन चेतना के साथ घनिष्ठ संबंध रहता है।

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य 'शिल्प' के सैद्धांतिक पक्ष का विवेचन मात्र नहीं अपितु त्रिलोचन की भाषा दृष्टि को समझना है।

7.2 त्रिलोचन की काव्य-भाषा

"कविता की भाषा शब्द विशेष के संपूर्ण और चरम अर्थ के स्थान पर उसके इच्छित तत्व को ही ग्रहण करके चलती है, जैसे अनिवार्य रुप से अमूर्तन की प्रक्रिया काव्य में शब्द के संपूर्ण अर्थ से हटकर विशिष्ट संकेत पर आश्रित होती है।

इस प्रकार जो भावचित्र बनते हैं, वही काव्य-भाषा है।''(22)

समस्त भाषा रूपों का मूलाधार सामान्य भाषा है जो मानक भाषा से शास्त्र-भाषा या साहित्य या काव्य भाषा में परिवर्तित और परिवर्धित होती रहती है। 'भाषाओं के गहन समुद्रों का अवगाहन मैंने किया' कहनेवाले त्रिलोचन शाब्दिक योजना के साथ-साथ अनुभूति पक्ष की एकाकारता को भी महत्व देते हैं।

कसे कसाये भाव अनूठे
ऐसे आयें जैसे किला आगरें में जो नग है,
दिखलाता है पूरे ताजमहल को -(23)

त्रिलोचन की दृष्टि में अनुभूति और अभिव्यक्ति के तत्वों का उचित समायोजन ही काव्य है। त्रिलोचन के अनुसार ''कविता केवल वाक्य रचना नहीं है। व्यापक और गहरे अनुभवों की जटिलता का अनोखा संसार है-काव्यबोध। वैयक्तिक अनुभव और सामाजिक अनुभव की समृद्धि में जब शिल्प का लालित्य समा जाता है तब कविता लिखी जाती है। कविता वस्तु और शिल्प दोनों का संतुलन है।''(24)

सिद्ध कवि शब्दों की साधना में निरत रहता है। उसका विश्व इतना बहु आयामी रहता है कि उसे जान-बूझकर चयन करने की आवश्यकता नहीं होती, उसका मानसिक लोक अनायास ही शब्दों के माध्यम से अवतरित होता है।

लड़ता हुआ समाज नई आशा-अभिलाषा।
नये चित्र के साथ, नई देता हूँ भाषा।।(25)

समाजानुकूल भाव बोध में परिवर्तन आता रहता है, तथापि नयी भाषा प्रणाली अनायास ही कविता में झलकने लगती है। लेकिन त्रिलोचन नए रचाव को जबरदस्ती अड़ीग होकर शब्द-बद्ध करने के पक्ष में नहीं है।

ममता कालिया लिखते हैं, ''त्रिलोचन जी की कविता पढ़ते हुए पहली बार मुझे लगा कि ऊबड़-खाबड़ धरती अपनी भाषा के साथ मौजूद है। वे खुद कहते हैं, बोली, मुहावरें, कहावतों से मेरी काव्य भाषा बनती है।''(26)

शब्दों के लचीले प्रयोग के कारण वह भाषा आम जीवन से जुड़ी भाषा लगती है, उसमें सरलता आ जाती है।

''शब्दकार इन शब्दों में जीवन होता है ये भी चलते फिरते और बात करते है।''(27)

निश्चित रूप से यह लोक-भाषा यानी ग्राम-भाषा ही है। प्रेमशंकर के अनुसार ''उन्होंने ग्राम नगर द्वंद्व को नयी कविता से उभारा है। उसे सही भारतीयता दी है और शब्द की पहचान पर उनका आग्रह सर्वाधिक है। ध्यान दें कि त्रिलोचन

जी की कविता में शब्द की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है जैसे वे अर्थ की पुनर्स्थापना के कवि हैं।''(28)

वर्ण-वर्ण से वर्णित बीज-मंत्र बोने की
विश्वनाथ ने स्वयं साधना की है
देवाराधन अक्षर-ब्रह्म का किया
अपनी जैवाकांक्षा तप से साधी
मानस-मल धोने की।
चेष्टा संतत तप से की।(29)

स्वयं स्फूर्त रुप से शब्द और अर्थ की व्यंजना कर उसे सफल रुप से प्रयुक्त करने में त्रिलोचन प्रयत्नरत है।

जब लहर आई तो मैने गाया
जी का व्यवसाय बस यही पाया
शब्द और अर्थ ये जगत के ही
भाव अपने उन्हीं में भर लाया।-(30)

''त्रिलोचन के यहाँ 'शब्द' की सत्ता पूरी तरह जागतिक है, लोकमय है। शब्दकार ने शब्द या अक्षर की आराधना देवाराधना की तरह की है। इस देवाराधना में, शब्द को बीज-मंत्र हो जाने की सीमा तक साधते हुए, सिद्धि प्राप्त करने के प्रयास भर नहीं है अपितु भौतिक संसार की जैवाकांक्षा भी है, मानस की गंदगी को धोने का प्रयास भी है; इस शब्द यात्रा ने त्रिलोचन को ऐसी रचना प्रदान की, जो जीवन-जगत से कटती नहीं है।''(31)

इसलिए उनकी भाषा में गंभीरता और दृढ़ता विद्यमान है । उन्होंने जीवन बोध की सघनता और सूक्ष्मता के अनुरूप ही भाषा और शैली का चुनाव किया है। प्रत्येक शब्द उनकी कविता में फिट होता है, वह जहाँ है वहीं होना चाहिए। उसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द हो ही नहीं सकता। वे भाषा को अपनी पद्धति से इस प्रकार से मोड़ते है कि वह कहीं भी कृत्रिम नहीं लगता।

त्रिलोचन की दृष्टि से कविता में गेयता का होना अनिवार्य है। क्योंकि इसमें आसान शब्दावालियाँ रहती है जिस कारणवश जो बात कहीं जाती है वह जल्दी से समझ में आती है।

जाने हुए शब्द भी मैं प्राय: चुनता हूँ अपने,
अंतर्गत अर्थों में,
अभिप्रेत ध्वनि वर्ण-तरंगों में लहराती है।

कानों की संवेदना विदित है मुख को।
पर सुनता हूँ असम्बद्ध उत्तर
कैसी हो गयी है अवनि
क्या भाषा की चाह नहीं है संध्यानों की।(32)

त्रिलोचन प्रोफेसर जैदी के साथ की गयी बातचीत में कहते हैं, ''शुद्ध कविता के बारे में कहूँगा यानि बोलचाल की भाषा बोलचाल की भाषा जो है वह तात्कालिक भाषा होती है और उसकी बोलचाल की भाषा में ही गीतात्मकता होती है। तो सवाल यह है कि यह लयात्मक कविता की पहचान भी है और उसकी जहाँ तक संभव हो आर्टिफिशियल से बचे।''(33)

त्रिलोचन लिखते हैं

मैं निर्भय संघर्ष निरत हो
बदल रहा संसार तुम्हारा।-(34)

क्योंकि त्रिलोचन की दृष्टि में यदि भाषा सम्प्रेषित होगी, तो भाव भी अनायास ही सम्प्रेषित होगा।

रामदरश मिश्र का मानना है- ''त्रिलोचन ने बहुत सहज भाषा में सादगी के साथ लोक-भूमि पर छोटे-छोटे गीत लिखे हैं जिनमें भावुकता का उफान कतई नहीं है, बल्कि ठोस संवेदनाओं की छोटी छोटी दीप्तियाँ दीखती हैं।''(35)

लोक-जीवन, लोक संस्कृति को दशनि के लिए वे ग्रामीण परिवेश के शब्दों को उठाते हैं। उनके यहाँ 'सुकना', 'बिराने', 'धुरियाई', 'देह', 'खेह', 'दियना', 'कढ़ा दो', 'बाह' इस तरह के देशज शब्दों का समायोजन प्राप्त होता है।

'जननांतर', 'चंडाशु', 'पर्यत्सुक' आदि अप्रचलित संस्कृत के शब्दों का प्रयाग भी उनकी कविताओं में दिखायी देता है।

'शेखर' शब्द का प्रयोग 'शिखर' के लिए तथा 'शरद की राका' का प्रयोग 'शारदा' के रुप में करकर वे भाषा संशोधन एवं परिष्करण का कार्य भी अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं।

मुझे बुलाता है पहाड़ मैं तो जाऊंगा
निर्मल जल के वे झरने कल
बैठे जहाँ अविपालों के दल
देते काट दुपहरी के पल
वहीं उन्हीं के सुख-दुख में घुल-मिल जाऊंगा।(36)

लेटिन भाषा में 'भेड़' के लिए 'EWE'(इवि) शब्द का प्रयोग किया जाता

है, इस 'अवि' के साथ 'पाल' जोड़कर 'गड़रिया' के लिए 'भेड़ों को पालनेवाले' के लिए 'अविपाल' शब्द का प्रयोग किया है। 'शब्दकोश' के निर्माण में सक्रिय रुप से संलग्न होने के कारण त्रिलोचन कविताओं में भाषागत प्रयोग कर गए है, वे बहुभाषाविद् थे।

त्रिलोचन का बाल्यकाल उस भू-भाग में बीता जहाँ कि ठेठ अवधी बोली जाती थी। 'अमोला' काव्य संग्रह में अवधी भाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। इसमें अवधी भाषा के द्वारा अवध की संस्कृति एवं ग्रामीण परिवेश को मूर्तिमत्ता दी गयी है।

फरूहा भाँजे हाथ बहुत कल्लार
एक दिन दुइ दिन, फिनि आदति बनि जाइ।(37)

राजेश जोशी लिखते हैं- "जीवन की भाषा से उनके संबंध इतने घनिष्ठ है कि किसी प्रकार का चेतन प्रयास उनके यहाँ नहीं दिखता। वह किसी अनुभवी कुम्हार की तरह उसका इस्तेमाल मिट्टी की तरह कर लेते हैं। अवध अंचल के दर्जनों शब्द उनकी कविता में आते हैं। ये शब्द उनकी भाषा में ऐसे घुले-मिले और पैठे हुए हैं कि उन्हें अलगाकर दूसरे शब्द उनकी जगह नहीं रखे जा सकते, क्योंकि ये शब्द पूरे जीवन-संदर्भ के साथ उनकी भाषा में शामिल हुए हैं, चौकाने के लिए जड़े नहीं गये हैं।"(38)

लाक्षणिक आलंकारिक प्रयोग एवं अंग्रेजी बहुल शब्दों के बीच ठेठ अवधी भाषा में काव्य लिखना जोखिम का काम था, सराहनीयता की दृष्टि से एक प्रश्नचिह्न था लेकिन त्रिलोचन ऐसे मामले में काफी तटस्थ जान पड़ते हैं।

त्रिलोचन के कविता के क्रमिक विकास में उनकी भाषा दृष्टि को उनके निम्न कथन के द्वारा जाना जा सकता है-

भाषा केवल उपरी आवरण नहीं है, वह रग-रग में रहती है। भाषा विषय का चमड़ा है, यह आपको जब मिला आप ड़ेढ फूट के थे और अब साढे पाँच फुट के हैं। तिल-तिल बढ़ते हैं। भाषा भी बढ़ती रही पर कितनी? यह आपको जानना है। भाषा में डंडे का जोर नहीं चलेगा। धीरे-धीरे सीखना होगा, समझना होगा।"(39)

भाषा को धीरे-धीरे समझकर समयानुकूल एवं समाजानुकूल उसके प्रयोग के त्रिलोचन पक्षधर है। लेकिन फिर भी सबसे ज्यादा जरूरी है सम्प्रेषण।

कोई समझ न पाए अगर तुम्हारी बोली
तो उस बोली का मतलब क्या, मौन भला है
जीभ खुले तो बात खुले आदमी छला है

युग युग का भाषा का इस जीवन से चोली
दामन का साथ है- (40)

इसलिए अवध के निवासी यदि अवधी भाषा में बातचीत करते हैं तो त्रिलोचन अवधी में ही लिखेंगे।

'रूपोदयान प्रफुल्ल प्राय: कलिका राकेन्दु बिम्बानना' के रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के समान त्रिलोचन भी कहीं-कहीं अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करते हैं परंतु उसी रचना में वे साथ-साथ देशज शब्दों का चुनाव भी करते हैं। अत: यह कह सकते हैं कि उनकी कविताओं में तत्सम और तद्भव शब्दों का उचित समायोजन प्राप्त होता है।

'शब्द' काव्य संग्रह का उदाहरण द्रष्टव्य है-

सुविकसिततौतर्भावि- निपीतवारि- वनराजी
सुदलच्छाय-प्रफुल्ल-लता-वीस्य-तरू-ललिता
श्रावण-धारासार-पोषिता-ईरण-चलिता
बहनी वर्णाकार -प्रसून-शोभिता भ्राजी
मेघश्याम-दिगन्त-वलय में। बहुधा गाजी

× × × × ×

शिथिलबंध निरूपाय पड़ी है विहग गान हैं
जल के तल पर और विटप सब झूम रहे हैं।(41)

कुछ एक कविताओं में केवल इस प्रकार की पदावलियाँ प्राप्त होती है अन्यथा वे सरल शब्द-विधान को ही पसंद करते हैं। जैसे-

मेमने कुदकते हैं
जाड़े की धूप को जीवन के खेल से
आँक आँक देते हैं-(42)

प्रस्तुत कविता में वाच्यार्थ को बड़ी आसानी के साथ समझा जा सकता है क्योंकि इसमें अभिधा शक्ति कार्य करती है।

विश्वनाथ त्रिपाठी उनकी कविताओं की सहजता को रूपायित करते हुए लिखते हैं- ''वे औदात्य के लिए संध्यक्षरोंवाली तत्सम पदावली का उपयोग नहीं करते। सहजता ही मानो औदात्य में द्रुति के माध्यम से पर्यवसित हो जाती है।''(43)

त्रिलोचन की भाषा पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे सरल शब्दों का इस्तेमाल करते-करते कठिन शब्द जोड़ते हैं जिस वजह से उक्ति में विचित्रता झलकने लगती है।

जबकि डॉ. भगवान सिंह का मानना है - ''त्रिलोचन उन थोड़े से वाक्-सिद्ध कवियों में से है जो शब्दों का प्रयोग मिट्टी और खाद की तरह कर पाते हैं। वे इनके प्रति अतिरिक्त सचेष्ट नहीं दिखाई देते क्योंकि इनकी गन्ध और रंगत की उन्हें बहुत अच्छी पहचान है।''(44)

'भादों की रात' कविता में शब्दों का उचित संयोजन एवं प्रभावोत्पादकता प्राप्त होती है।

रिमझिम रिमझिम - छक् छक् छक् छक् सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक - धमाक घन के, उत्सव निशि भर।(45)

चाहे वह भाव पक्ष हो या शिल्प पक्ष त्रिलोचन का स्वर संयमित ही रहा है। अपने भावों को, विचारशीलता को प्रकट करने के लिए वे अतिरेकवादी शब्दों का चयन नहीं करते। धारा में रहकर अपनी एक अलग इयत्ता स्थापित करना उतना आसान नहीं है। समकालीन रचनाकार जहाँ असंगति, विडंबना को स्पष्ट करने के लिए भाषागत प्रयोगों में लीन थे वही त्रिलोचन स्वयं की स्वतंत्र दिशा का निर्माण करते हैं।

राममूर्ति त्रिपाठी का मानना है ''त्रिलोचन का काव्यप्रस्थान एक ऐसा स्वनिर्मित प्रस्थान है जों अपने समशीलों के खेमे का होकर खेमेबाजी की झलक से सर्वथा शून्य है। भाषा और छंद निर्वाह के प्रति बेहद सजग होने पर भी अनपेक्षित वाग्भंगिमा से मुक्त है- फिर भी सटीक प्रयोग और समर्थ भाषाबद्ध है।''(46)

रामविलास शर्मा जैसे आलोचक येन-केन-प्रकारेण भले ही उन्हें प्रगतिवादी कविता की लिस्ट में न रखे लेकिन फिर त्रिलोचन ने इसकी परवाह न करते हुए अपने मनोनुकूल शब्द-विधान को ही अपनाया, उसमें परिवर्तन नहीं किया।

बड़े-बड़े शब्दों में बड़ी-बड़ी बातों को
कहने की आदत औरों में हैं पर मेरा
ढर्रा अलग गया है। ढाकों के पातों को
थाली की मर्यादा देकर पहना घेरा
तोड़ दिया।(47)

आधुनिक जीवन प्रणाली के अनुसार जहाँ कविता में महानगरीय परिवेश के कारण अंग्रेजी भाषा की बहुलता बढ़ गयी थी, वहाँ त्रिलोचन जन-भाषा, लोक-भाषा के अंतर्गत सामान्य जनता को ध्यान में रखकर हिन्दी का समर्थन करते हैं।

नरेन्द्र पुण्डरीक के अनुसार, ''त्रिलोचन की कविताओं की भाषा, अपनी भाषा नहीं बल्कि जन की अनुभवसिक्त भाषा है जिसे उन्होंने जन के बीच रम कर

पायी है। वे शब्दों के माँजने पर एवं उनके मँजे हुए रुपों पर विश्वास नहीं करते हैं। इनके शब्द नवजात शिशु से लगते हैं जो अपनी स्निग्धता से सबको बाँध लेते हैं।''(48)

'नगई महरा' कविता में 'गोहन लुगई' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। ग्रामीण जनपद में इसका अर्थ है धोती या साड़ी का वह भाग जो पुरूष या स्त्री की पिंडलियों से सटा होता है। कविता में प्रभावान्विति को बनाए रखने के लिए त्रिलोचन किसी शहराती शब्द को प्रयुक्त करने के बजाए 'गोहन लुगई' का प्रयोग करते है ताकि वह ग्रामीण परिवेश के चित्रण में स्वाभाविक लगें।

भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है।
ध्यनि में क्रिया भरी है औरै क्रिया में बल है।(49)

त्रिलोचन की भाषा में जीवंतता है क्योंकि वह कविता जीवन से जुड़ी कविता है, वह समाज से अस्पृक्त नहीं हो सकती।

ममता कालिया के अनुसार, ''त्रिलोचन की भाषा एक ठेठ भाषा है, खाँटी भाषा है। वह ऐसी भाषा है जो कच्ची जमीन से जुड़े कलाकार ही लिख सकते हैं।''(50)

आम जनता की पीड़ा को जनता की भाषा में व्यंजित करते हुए त्रिलोचन लिखते है-

अजी बंबई का पानी लगता है, कोई
इस से बचे तो करे कुछ। जा जा कर लौटे
कितने जन। तकदीर बड़ी है, यही संभाले-(51)

डॉ. शिवकुमार सिंह का मानना है ''त्रिलोचन की भाषा उस स्तर पर चलती है जहाँ कविता की लय और गद्य की लय परस्पर घुल-मिल जाती है।''(52)

एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

लाचारी है, स्वतंत्रता है, अभिलाषा है,
और पराजय है, बंधन है, परिभाषा है-(53)

'एक हजार स्वामीजी की डकार' में भाषा के स्तर पर समाज का वास्तविक चित्र उभरकर आता है। इसकी योजना के कारण कविता में एक प्रकार की क्रियाशीलता नजर आती है। उपर्युक्त व्यंग्यात्मक कविता में उक्ति वैचित्र्य की अपेक्षा जीवन के स्वाभाविक क्रिया-कलापों के द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण से कला को आकार प्रदान किया है।

मैनेजर पाण्डेय का मानना है- ''सुविधाजीवी कवियों के शब्द अघाये आदमी की डकार होते हैं, लेकिन त्रिलोचन की कविता में शब्द आँखों से टपकने वाले लहू की बूँदे हैं।''(54)

फणीश्वरनाथ रेणु त्रिलोचन को 'शब्दयोगी', केदारनाथ अग्रवाल 'शब्द-साधक', कान्तिकुमार जैन 'शब्द शास्त्री', 'शब्द-सहचर' कहकर संबोधित करते हैं। शमशेर बहादुर सिंह उनके काव्य में प्राप्त होनेवाली सहजता की प्रशंसा करते हैं। त्रिलोचन के यहाँ ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान एक साथ चलने के कारण शब्द के चुनाव के कारण उनमें दुविधा नहीं रहती।

डॉ. शिवकुमार मिश्रजी को लगता है "भाषा का संस्कार. अभिव्यक्ति, चुस्ती, शब्दों का प्रयोग, वाक्य रचना, लाक्षणिकता आदि को त्रिलोचन ने तुलसीदास से लिया है।"(55)

उनकी भाषा पर कबीरदास, निराला, के प्रभाव के कारण भी संस्कार हुए है। त्रिलोचन लिखते हैं-

राम नाम का सुआ शून्य के महल में रहा,
पन्थ पन्थ को देखा सम्यक ध्यान के लिए
गुरू की महिमा गायी, वचन विचारकर कहा
साँई की दी चादर ज्यों-की-त्यों धर दीनी
इड़ा-पिंगला-सुखमन के तारों की बानी।(56)

प्रकृति संबंधी कविताओं में भाषागत विवेचन में संस्कृत के कवि कालिदास की रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। फिर भी वे मात्र अनुकरण नहीं करते बल्कि शब्द चयन में अभ्यास एवं भाषागत प्रभुता का परिचय देते हैं।

डॉ.कान्तिकुमार जैन लिखते हैं- "त्रिलोचन जी को कोई शब्द न तो छोटा लगता है, न ही निस्सार या मूल्यहीन। शब्द वास्तव में त्रिलोचन जी के लिए उस समाज की जीवित सत्ता है जिसमें वह प्रचलित है। शब्द उनके लिए जन है। जैसे कोई जन उनके लिए न तो हेय है, न तुच्छ या अपांक्तेय वैसे ही वे शब्द के माध्यम से जन का जीवित स्पंदित जन का दिक्काल में साक्षात्कार करते हैं।"(57) शब्दों की प्राण शक्ति को रूपायित करते हुए त्रिलोचन कहते हैं-

शब्दों से ही वर्ण गंध का काम लिया है
मैंने शब्दों को असहाय नहीं पाया है
कभी किसी क्षण। — ५८

आधुनिकता और परंपरा के बीच सेतु बनाते हुए भी त्रिलोचन ने कविता की वाचिक बनावट को जिलाए रखा है जिसके कारण वे सहज संप्रेष्य और जन सामान्य की रुचि के नजदीक आ जाते हैं।

'नगई महरा' 'भौजी' जैसी कविताओं में वे एक ओर पारंपारिक जीवन

को दर्शाने के लिए जहाँ 'देशज' शब्दों का चुनाव करते हैं वही उन्हीं कविताओं में भावबोध सम्प्रेष्य हो इसलिए खड़ी बोली हिन्दी को भी प्रयुक्त करते हैं।

बोले मुझसे शब्द यहाँ से वहाँ, वहाँ से
और वहाँ तक मौन तरंगित हम चलते है
यह अपार आकाश हमारा अपना घर है
हम जीवन के शूल फूला सब कहाँ कहाँ से
कहाँ कहाँ चुपचाप डालते है जलते हैं
तभी अदम्य प्रकाश विश्व जीवन का वर है।(59)

अत: स्पष्ट है कि कवि के लिए अपने अभिप्रेत अर्थ को अभिव्यंजित करना महत्वपूर्ण हो जाता है इसके लिए वे सस्ते समझौते नहीं करता। राजेन्द्र आहुति कथ्य और शैली की एकरुपता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -''वाक्यों को टुकड़े में कैसे तोड़ा जाय और लय न टूटे, संगीत न टूटे। पूजन में जिस तरह से फूल को सजाकर चढ़ाते हैं भगवान को, उसी तरह से शब्दों को सजाकर कविता का अर्पण करना चाहिए। उर्दू के प्रति वे (त्रिलोचन) नतमस्तक हैं। वे कहते हैं कि 'उर्दू मेरी नसों में खून बनकर समाई हुई है।''(60)

उर्दू भाषा का सम्यक ज्ञान होने के कारण उन्होंने गज़लों का निर्माण किया। उदा. द्रष्टव्य है।

गालिब गैर नहीं है, अपनों से अपने हैं।
गालिब की बोली ही आज हमारी बोली है।
नवीन आँखों में जो नवीन सपने हैं
वे गालिब के सपने हैं।(61)

नामवर सिंह लिखते हैं - ''त्रिलोचन की शब्द साधना यह है कि उन्होंने अपनी कविता के लिए नयी भाषा गढ़ी नहीं बल्कि पहले से मौजूद जीवित भाषा को उसकी जीवन्तता में ग्रहण किया- उस भाषा में उन लोगों को अपने आप बोलने दिया जिन्हें अभी तक बोलने का मौका नहीं मिला था।''(62)

भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन
मैंने किया मुझे मानव-जीवन की माया
सदा मुग्ध करती है, अहोरात्र आवाहन
सुन-सुनकर धाया-धूपा मन में भर लाया
ध्यान एक से एक अनोखे सब कुछ पाया
शब्दों में, देखा सब कुछ ध्वनि-रूप हो गया-(63)

सहजता उनकी कविता का प्राण रहा है, इसलिए शायद हो सकता है कि उन्हें उचित समय पर समझा और परखा नहीं गया। आलोचकों की दृष्टि से वह उनकी सीमा रही हैं।

मलयज का दृष्टिकोण है कि इस कविता की भाषा के पीछे, जो रक्त बजता है, उसे सुनने के लिए आपको उसकी धमनी पर कुछ देर तक हाथ रखना होगा। यह भाषा तनाव जर्जर, तनिक-से स्पर्श से बिखर पड़ने वाली भाषा नहीं है। इस भाषा में अस्पष्ट कुछ नहीं है, सब कुछ क्रिस्टल के समान है अनेक पहलुओं वाला, पर साफ। अर्थ और अर्थ के बीच किसी तीसरे अर्थ का अन्तराल इस भाषा के शब्दों में नहीं है। यह कवि की अनुभूतियों की तरह ही एक सरल भाषा है (सपाट नहीं)।''[64]

अपने समय में मिली उपेक्षा के कारण कई अवसरों पर त्रिलोचन निराश हो गए होंगे इसलिए भाषाओं के अगम गहराईयों में डुबनेवाले त्रिलोचन यह भी कह उठते हैं-

शब्दों से कभी-कभी काम नहीं चलता
जीवन को देखा है
यहाँ कुछ और
वहाँ कुछ और
इसी तरह यहाँ वहाँ
हरदम कुछ और
कोई एक ढंग सदा काम नहीं करता
अपना भी मनचाहा रुप नहीं बनता।[65]

कई मूक-मौन क्षणों में अनकहनी भी कुछ कहनी होती है इसमें विश्वास रखनेवाले त्रिलोचन आस्थावादी दृष्टिकोण के कारण अपनी रचना-विधान को तिलांजलि नही देते हैं, पुनः उसे क्रियान्वित ही करते हैं।

त्रिलोचन लिखते हैं-

भाषा ले लो सजी सजाई बनी बनाई
मत बेवक्त बजाओ कोशों की शहनाई -[66]

इस बनी बनाई और सजी सजाई भाषा से तात्पर्य अन्यों के द्वारा चुरायी या व्यवहृत भाषा, वैज्ञानिक प्रणाली से नहीं है बल्कि स्वाभाविक, सरल एवं स्वयंस्फूर्तता से हैं। इस सरलता के कारण कई बार उनकी कविताओं में गद्यात्मकता का पुट आ जाता है। प्रायः त्रिलोचन की कविताओं पर गद्यात्मकता का आरोप लगाया जाता है।

डॉ. गोरेलाल चंदेल के अनुसार, ''उसमें लय का ऐसा कलात्मक रुप दिखायी देता है कि उनकी गद्यात्मकता काव्यात्मकता में रुपांतरित हो जाती है और काव्य की उत्कृष्ट भावभूमि तैयार हो जाती है।''(67)

कई विचारकों ने उनकी कविताओं को गद्य कविता कहकर भी संबोधित किया। नामवर सिंह का मानना है कि काव्य में गद्यात्मकता त्रिलोचन के काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

उसी प्रकार से गोविन्द प्रसाद 'सरलता का आकाश' इस लेख में लिखते है - ''त्रिलोचन की ज्यादातर कविताओं की मूल प्रकृति बातचीत करने जैसी है। अपने-आप से संवाद करने जैसी। इस संवाद में ऐसी लय है मानो कवि किसी धुन में अपने ही से बातें कर रहा है। स्वगत संलाप की एक से । स्वगत संलाप की यही लय उनकी कविताओं को यदा कदा नाटकीय भंगिमा के करीब ले जाती है। वे बोलचाल के बीच शब्दों की लय और उसमें निहित प्रवाह को एक खास रिद्म में पकड़ते हुए उनका उपयोग इस ढंग से करते हैं कि शब्द स्पंदित होकर एक कलात्मक उत्कर्ष को छूने लगते हैं।''(68)

उनके शब्द विन्यास में तनाव या उद्वेग प्राप्त नहीं होता। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के समान-'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।'- वाली झकझोरकर रख देने की प्रवृत्ति त्रिलोचन में प्राप्त नहीं होती। बस वे रचना को तराशकर ऐसे पेश करते हैं कि वह मूर्तमान हो उठती है।

ध्वनि, शब्द, अर्थ, अर्थ का उचित संयोजन यादृच्छिक भाषा में प्राप्त होता है। उसी भाषा का संबंध जब इंद्रियबोध से होता है तब उसमें बिंबात्मकता का तत्व समाविष्ट हो जाता है।

बिंब वस्तुगत के क्रिया कलापों को अपनी वर्धमान उँगलियों से छुकर उन्हें ग्रहण करने का पर्याय है। बिंब में चित्रात्मकता रहती है इसलिए वर्ण-विषय पूरी जीवंतता के साथ सामने उभरकर आता है।

त्रिलोचन की कविताओं में स्पर्श, ध्वनि, दृश्य, गन्ध आदि बिंब प्राप्त होते है जो निम्नलिखित है-

स्पर्श :- स्पर्श संवेदना के आधार पर जिनका बोध होता है उसे स्पर्श कहते हैं।

मुझे इच्छा थी
तुम्हारे इन हाथों का स्पर्श
कुछ और मिले-(69)

त्रिलोचन की कविताओं में प्राकृतिक उपादान एवं प्रेम के वर्णन में इस बिंब का प्रयोग प्राप्त होता है। बिंबो के द्वारा कवि वस्तु घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकार पदार्थों और मानस-क्रियाओं को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियग्राह्य बनाता है।

ध्वनि :- इस बिंब का संबंध श्रवणेंद्रियों से है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

वर्षा
फुहार, कभी झीसी, कभी झिर्री, कभी
रिमझिम
और कभी झर झर झर झर[70]

इसमें झीसी, रिमझिम, झर-झर आदि से चित्र खड़ा किया गया है।

त्रिलोचन के 'रोटी' (दिगन्त) 'देख रहा हूँ गंगा के उस पार' (शब्द), 'झाँय झाँय करती दुपहरिया' (उस जनपद का कवि हूँ) 'दूब गर्मियों में देख भूरी भूरी थी' (उस जनपद का कवि हूँ) 'सहस्त्रशीर्ष पुरूष' (अरघान), 'मुझे तुम्हारी बातों का' (फूलनाम है एक) आदि कविताओं में ध्वनि बिंब विद्यमान हैं।

दृश्य :- इसमें रूप रंग के वर्णन की प्रधानता रहती है।

पुनः शरद ऋतु आयी है, शोभा छाई है
चारों ओर, रंग कण कण का बदल गया है
वर्षा में चल थकी हवा कुछ असलाई है
नहीं नृत्य की द्रुत तरंग है. सकल नया है-[71]

त्रिलोचन के 'आज का दिन बादलों में खो गया था' (धरती), 'बादल चले गये वे' (धरती) 'संगी रहे आज तारे सारी रात' (धरती), 'प्राणों का गान' (दिगन्त), 'मेंहदी और चांदनी' (दिगन्त) 'सारनाथ' (चैती) आदि में दृश्य बिंब मौजूद हैं।

गन्ध - इसके अंतर्गत घ्राणेन्द्रियों के माध्यम से पूरा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया जाता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

तुम इन्हें चाहो न चाहो
बात मन की कौन, क्या हो
ये सुरभिमय वायु बनकर

चल रहे जग की कथा हो-(72)

डॉ. हरदयाल के अनुसार, ''प्रगतिवादी कविता के सबसे अधिक महत्वपूर्ण बिंब लोक जीवन का अंकन करनेवाले वस्तुबिंब है। जन जीवन का अंकन करनेवाले बिंबों में यथार्थ पर आधारित भदेस, बीभत्स और भयानक की संख्या शिष्ट जनोचित सौंदर्य बिंबों से कम नहीं है।''(73)

त्रिलोचन प्रगतिवादी रचनाकार होने के कारण छायावाद के समान बिंब-विधान के अंतर्गत केवल सौंदर्यानुभूति को विश्लेषित करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है।

उनकी 'इतना तो बल दो' (दिगन्त) कविता में गन्ध बिंब प्राप्त होता है। कविता में बिंब के कारण प्रभावोत्पादकता आती है, इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. नन्दकिशोर कहते हैं- ''दर्शन तथा विज्ञान की भाषा धारणाओं से निर्मित होती है, जबकि कविता की भाषा बिंबों से। धारणाएँ अस्पष्ट और खंडित होती हैं, जबकि बिंब स्पष्ट और पूर्ण होते हैं। बिंबों के माध्यम से कविता यथार्थ से जुड़ती है।''(74)

त्रिलोचन द्वारा लिखित बिंबात्मक कविताओं का मूल्यांकन करने के पश्चात ज्ञात होता है कि बिंब उनके लिए साधन मात्र हैं, साध्य नहीं।

''बिंब विधान कला का वह मूर्त पक्ष है, जिससे कलाकर की भावनयन (एब्स्ट्रेक्शन) से श्लिष्ट सौंदर्यानुभूति को वस्तु सत्य का संस्पर्श या तद्गत सम्पृक्त आधार के साथ सादृश्याभास (सेम्ब्लेन्स) मिल जाता है।''(75)

त्रिलोचन इसका निर्वाह करते हुए दुरूहता की अपेक्षा स्पष्टता या साफ-सुधरेपन पर ही बल देते हैं। जिस प्रकार से पास्तरनाक की कविताओं को पढ़ने के बाद पाठक का अपना गला साफ हो जाता है, उसी प्रकार त्रिलोचन पूरे-पूरे वाक्यों में साफ-सुथरी बात कहने के आग्रही है। वे अपनी कविताओं के द्वारा पूरा का पूरा बिंब हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं, उनके बिंब-विधान में कलात्मकता की अपेक्षा यथार्थ अधिक है। चन्द्रबली सिंह कहते है, ''त्रिलोचन के बिम्ब, उनकी आस्था की ही भाँति, उन्नत शिर और उन्नत बाहु हैं। जीवन की छोटी सी छोटी स्थिति को भी नाटकीय आकस्मिकता से स्वप्नलोक का विस्तार और भव्यता देने की जो शैली हम निराला में पाते हैं उसे त्रिलोचन के सॉनेटों में भी देख सकते हैं।''(76)

दर्शन हुए, पुन: दर्शन, फिर मिलकर बोले
खोला मन का मौन, गान प्राणों का गाया,
एक दूसरे की स्वतंत्र लहरों को पाया

अपनी अपनी सत्ता में जैसे पर तोले
दो कपोत दाँये-बाँये-स्थित उड़ते उड़ते
चले जा रहे दूर क्षितिज के पार हवा पर
उसी तरह हम प्राणों के प्रवाह पर स्वर भर
लिख देते अपनी कांक्षाएँ। (77)

अतः कहा जा सकता है कि त्रिलोचन के बिंब विधान में कोरी भावुकता की अपेक्षा सजग कलाकर की झलक प्राप्त होती है। 'भाषा अपने ठेठपन के कारण ही उपरी तौर पर इतनी सपाट लगती है, लेकिन उसे जीवन के गहरे संघर्षों से उन्होंने पाया है और जैसा केदारनाथ सिंह ने लिखा है उसमें जगह-जगह 'अपनी सम्पन्न स्मृति से छनी गूँजी का सांकेतिक इस्तेमाल है। यह सही है कि उधार की पाउड़र-लाली वह इस्तेमाल नहीं करते।''(78)

त्रिलोचन सादगी को पसंद करते हैं इसलिए भाषा के बनावटीपन के वे घोर विरोधी है।

चंचल चौहान के अनुसार, ''त्रिलोचन यथार्थ को प्रायः 'प्रकृतिवादी ढंग' से और अपने पूरे भोलेपन से पेश करने के अभ्यस्त हैं। इस संदर्भ में वे केदारनाथ सिंह के शब्दों में कहते हैं 'त्रिलोचन के शिल्प की एक खास बात यह है कि वे किसी भी वस्तु का प्रतीकवत प्रयोग नहीं करते। अपनी कविता में, वे अपनी सारी काव्यात्मक जिम्मेदारी के साथ उसे 'वस्तु ही बने रहने देते हैं।''(79) इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

अपना? अपना? तू क्या देख रहा है सपना,
अपना कोई नहीं। अगर कोई कह जाए.
तो नासमझ न हो अवसर ऐसे कुछ आए
जिस में वह परास्त हो जाता। फिर तो तपना
जीवन भर पड़ता। बिलकुल एकाकी खपना-(80)

त्रिलोचन सामान्य शब्दों का रचाव इस प्रकार से करते हैं कि वह कविता में आने के बाद असामान्य बन जाता है। उनकी भाषागत सरलता और स्पष्टता कई बार आलोचकों को सपाट लगी है। लेकिन त्रिलोचन की दृष्टि में वे आम जनता के जीवन को अभिव्यक्त करते हैं तो भाषा कलात्मक अलंकरण की अपेक्षा आम व्यक्ति के बोल-चाल की, उनसे संप्रेषण स्थापित करनेवाली भाषा ही होगी। फिर भी इसके प्रयोग में वे काफी सजग और तत्पर रहते हैं। डॉ. सियाराम तिवारी के अनुसार, ''बोलचाल की भाषा किसी भाषा का सर्वाधिक विकसित रूप होता है, क्योंकि इसका

संबंध जनसाधारण से होता है जो व्याकरण के बंधन में जकड़ा नहीं रहता है। जन साधारण से ही संपर्क के कारण यह अनलंकृत अर्थात सहज स्वाभाविक और फलस्वरूप सरल होती है।''(81)

विभिन्न प्रकार के आरोप-प्रत्यारोपों के बावजूद त्रिलोचन की काव्य-भाषा के संदर्भ में यही कहना संयुक्तिक होगा कि उसका रुपाकार संयमित एवं सहज है।

7.3 त्रिलोचन के काव्य के विविध रूप

काव्य के रुप के अंतर्गत दृश्य और श्रव्य के द्वारा उसे विभाजित किया जाता है। दृश्य काव्य के अंतर्गत नाटक का समायोजन किया गया है तथा श्रव्य में पद्य के अंतर्गत प्रबंध काव्य, मुक्तक, गीति-काव्य, खंडकाव्य तथा गद्य के अंतर्गत कहानी, निबंध, नाटक, उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र-साहित्य, रिपोर्ताज आदि आते हैं।

त्रिलोचन काव्य के विविधांगी रूपों के चयन के लिए विख्यात रहे हैं। गजल, सॉनेट, गीत, मुक्तक, लंबी कविता, छोटी कविता आदि विभिन्न काव्य-रूपों का चयन करके त्रिलोचन ने अपनी कविता का संवर्धन किया है।

त्रिलोचन सॉनेट-लेखन की दृष्टि से बहुत ही लोकप्रिय रहे हैं। उनके 'सॉनेट' के 'रचना-रचाव' को देखने से पूर्व इस पाश्चात्य रूप-विधान के ऐतिहासिक पक्ष को अवगत करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

पाश्चात्य साहित्य में सॉनेट का प्रयोग वैयक्तिक प्रेम की अनुभूति को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए किया गया। शेक्सपियर ने अपने मित्र के प्रति, दान्ते ने अपनी प्रेमिका विएट्रिस तथा पेट्रार्क ने अपनी विवाहित प्रिया लारा के प्रति गहन अन्त:श्चेतना में स्थित प्रेमानुभूति को प्रकट करने के लिए सॉनेट का प्रयोग किया। अपनी उद्गम की स्थिति में सॉनेट और प्रेम-गीत को पर्याय माना जाने लगा। इसमें प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक एवं अलौकिक धरालत पर हुई। विश्व-युद्ध के वातावरण में आगे जाकर सॉनेट की विषय-वस्तु में वैविध्य दिखायी देने लगा।

जहाँ दान्ते की प्रेमानुभूति में आध्यात्मिकता की झलक प्राप्त होती है वहीं पर पेट्रार्क के सॉनेटों में मानवीयता की अनुरागमयी अनुभूति को प्रकट किया गया है।

सॉनेट रूप विधान को पेट्रार्क और दांते के बाद मिल्टन ने अपनाया। इसके उपरांत बड़े लंबे समय के पश्चात अंग्रेजी के कवि वर्डस्वर्थ और कीटस ने इसे पुनर्जीवित किया। मूलत: प्रेमानुभूति का प्रतिपादक सॉनेट वर्डस्वर्थ की कविताओं में आध्यात्मिकता

का पुट प्राप्त करता है।

फ्रांस को छोड़कर प्राय: सभी पश्चिमी देशों में सॉनेट की रचना 'आयाम्बिक पेण्टामीटर' में होती है। फ्रांस में 'आयम्बिक हेक्सामीटर' में सॉनेट लिखा जाता रहा है। आगे जाकर सॉनेट रूप-विधान अंग्रेजी के साहित्य में अत्याधिक रुप से विकसित एवं पुष्ट हो गया।

पेट्रार्क की सॉनेट कला

सॉनेट का इतिहास छह सौ साल से भी पुराना है। 13 वीं शताब्दी में टसकेन कवि Guittone d'Arezzo (गेटोन द रेजो), Dante (दाँते), Guido Guinizelli (ग्वदो ग्वीनित्सेली), Cavalcanti (कवालकांती), d' Pistoia (द पिस्तोआ) आदि ने सॉनेट लिखे परंतु 1304-1375 के दरम्यान इतालवी कवि पेट्रार्क ने सॉनेट के कला-विधान को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया अत: विभाजन करते हुए पेट्रार्क की सॉनेट कला को ऐतिहासिक महत्व प्रदान किया गया।

पेट्रार्कन सॉनेट में चौदह पंक्तियाँ होती है, इन्हें दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम भाग को अष्टक कहा जाता है क्योंकि इसमें आठ पंक्तियाँ होती है। दूसरे भाग को षष्ठक कहा जाता है क्योंकि इसमें छ: पंक्तियाँ होती है। प्रत्येक पंक्ति में दस अक्षरों का होना अनिवार्य है। एक अष्टक में दो चतुष्पदी रहती है और षष्ठक में दो त्रिपदी। अष्टक और षष्ठक में तुकबंदी पायी जाती है लेकिन दोनों के तुक परस्पर भिन्न होते हैं।

अष्टक की पहली, चौथी, पाँचवी, आठवी पंक्तियों में एक ही प्रकार की तुक योजना होती है तथा दूसरी, तीसरी, छठी, सातवी पंक्तियों में दूसरे प्रकार की तुकबंदी होती है।

पेट्रार्कन सॉनेट का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

I find no peace and all my war is done

I fear and hope, I burn and freeze like ice

I fly above the wind, yet can I not arise

And naught I have and all the world I seize[82]

षष्ठक में नवीं, दसवीं, बारहवीं, तेरहवीं पंक्तियों में एक ही प्रकार की तुक योजना रहती हैं जबकि ग्यारहवी एवं चौदहवी पंक्तियों में दूसरे प्रकार की तुक योजना रहती है।

पेट्रार्कन सॉनेटों मे षष्ठक का तुक विधान अनिश्चित रहता है। इसका तुकबंध स र प, स र प के अतिरिक्त स र स, स र स अथवा स र प, प र स भी हो सकता हैं। सामान्य तौर पर तुक-विधान निम्नलिखित ढंग से होता है-

1 2 3 4   5 6 7 8

ग म म ग   ग म म ग (अष्टक)

9 10 11   12 13 14

स र प   स र प (षष्टक)

पेट्रार्कन सॉनेट के भावों को भी दो भागों विभाजित किया जाता है, दोनों भागों में परस्पर विरोधी भावों की योजना रहती है, अर्थात यदि पहले भाग में वसंत का चित्रण हो तो दूसरे भाग में पतझर का चित्रण किया जाता है।

जैसा कि मैंने पहले ही स्पष्ट किया कि अपने प्रारंभिक चरण में सॉनेट प्रेमानुभूति को प्रकट करने का एक प्रभावशाली माध्यम रहा। पेट्रार्क ने अपनी प्रेयसी लारा के प्रति स्वयं के अनुराग को प्रकट करने के लिए इस विधान का उपयोग किया। प्राय: इनमें कथाक्रम एक सा है। सुकोमल, अति सुंदर, देवीतुल्य प्रेमिका को पाने के लिए कवि निरंतर अनुनय-विनय करता है लेकिन वह प्रेमिका उसके प्रेम का स्वीकार नहीं करती। विषय वस्तु एक जैसी होने के बावजूद भावाभिव्यक्ति की उत्कटता के कारण उसमें रसात्मकता आ जाती है। कई बार यह अनुभूतियाँ अलौकिक-आध्यात्मिकता की उँचाई पर पहुँच जाती है। पेट्रार्क के सॉनेटों का अनुवाद करने का कार्य वैट ने किया। साथ ही पेट्रार्कन सॉनेट से प्रभाव ग्रहण करते हुए नवीन छंद-योजना, लयबद्धता से सॉनेटों की मौलिक उद्भावना की। वैट के समकालीन रचनाकार सरे ने सॉनेट की कला को अपनाते हुए उसमें कुछ परिवर्तन किए। उसने चतुर्दशपंक्तियों को बारह और दो पंक्तियों में विभाजित किया, साथ ही पहली बार पंक्तियों को तीन चतुष्पदियों में विभक्त किया साथ ही तुक योजना में भी परिवर्तन किया। परंतु अनुभूति प्रतिपादन में कोई रूपांतरण या परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता।

मूलत: पेटार्क की परंपरा में आनेवाले अन्य सॉनेट रचनाकारों ने पेट्रार्क के समान व्यक्तिगत अनुभूतियों की तीव्रता को प्रतिपादित न करते हुए केवल ऊपरी स्तर पर वर्णन करने के कारण आगे जाकर अठारहवीं शताब्दी में इस पेट्रार्कन सॉनेट विधा का ऱ्हास होता नजर आता है।

इसप्रकार 13 वीं से 18 वीं शती के बीच उक्त कवियों ने अपने साहित्य में सॉनेट का प्रयोग किया।

शेक्सपियर की सॉनेट कला

शेक्सपियर के सॉनेटों में भी चतुर्दशपंक्तियों का समायोजन किया जाता है। वे दस अक्षरों की पाँच चरणों में विभाजित एवं पाँच बलाघातों से युक्त रहते हैं। इसको निम्नलिखित ढंग से लिखा जाता है-

ग म ग म   सर सर   पध पध   न न

शेक्सपियर की पद्धति के अनुसार लिखे गये सॉनेट का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

Let me not to the marriage of true mind

Admit impediments. Love is not love

which alters when it alteration finds,

Or bends with the remover to remove. (83)

अर्थात प्रथम चतुष्पदी, द्वितीय चतुष्पदी, तृतीय चतुष्पदी, अन्तिम द्विपदी प्राप्त होती है। इसकी प्रकृति इटालियन पेट्रार्कन सॉनेटों की अपेक्षा भिन्न है। इटालियन भाषा में तुक योजना के अनुकूल अनेक शब्द और संगीतात्मकता पायी जाती है। इस दृष्टि से अंग्रेजी में तुक योजना प्राप्त करना संभव नहीं था, अतः इस प्रकार का परिवर्तन स्वाभाविक था।

शेक्सपियर के सॉनेटों में विषय वैविध्य प्राप्त होता है। वे पेट्रार्कन सॉनेटों के समान एकरस नहीं होते। इनके प्रणय निवेदन में मधुरता, दार्शनिक गंभीरता, मौलिकता, सहजता, चुहलबाजी आदि अनेकानेक मिश्रित तत्व विद्यमान है। शेक्सपियर ने सॉनेट कला को निखारने के साथ-साथ उसे कला के रूप में एक नया मोड़ दिया।

1552-1599 के कालक्रम में स्पेंसर ने लगभग सतहत्तर (77) सॉनेट लिखे। उनकी तुकयोजना निम्नलिखित हैं

गम गम मसमस सरसर पप

इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

Ond day I wrote her name upon the strand

But came the waves and washed it way

Agayne I wrote it with a second hand

But came the tyde, and made my paynes his pray[84]

भाव योजना और तुक-योजना की दृष्टि से सिड़नी के सॉनेट पेट्रार्कन है।

मिल्टन के सॉनेट का तुकविधान पेट्रार्कन है, जिसमें अष्टक और षष्ठक के बीच विराम नहीं रहता । मिल्टन का सॉनेट देखिए

When I consider how my light is spent

Eve half my days, in this dark world and wide

And that one talent which is death to hide

Lodg'd with me useless, though my soul more bent[85]

वर्डसवर्थ के सॉनेट पेट्रार्की है, उसने अष्टक के तुकविधान में काफी परिवर्तन किए हैं।

डॉ. किरण सिंह ने त्रिलोचन के सॉनेट की काव्य-भाषा के गहन अध्ययन से प्राप्त बारीकियों को उजागर किया है। इन्होंने कहा कि त्रिलोचन के सॉनेट की काव्य-भाषा में समतामूलक और विरोधमूलक-दोनों प्रकार की समानांतरता प्राप्त होती है। डॉ. नीरजा टंडन लिखित 'शैलीविज्ञान' पुस्तक के आधार पर ध्वनि स्तर पर किए गए विभाजन को प्रधानता देते हुए त्रिलोचन के सॉनेटों को भाषा वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित किया गया है।

(अ) **ध्वनि स्तर पर समानांतरता**- इसे अनुप्रास भी कहा जाता है। इसमें किसी एक ध्वनि पर बार-बार बल दिया जाता है।

कण कण अन्वेषण कर मैंने तुम को पाया,
क्षण क्षण गीतों में तुम आई मैं ने गाया.[86]

प्रस्तुत सॉनेट में प्रथम पंक्ति में 'कण-कण' तथा द्वितीय पंक्ति में 'क्षण-क्षण' की आवृत्ति हुई हैं।

(आ) **शब्द स्तर पर समांतरता**- शब्द विशेष की आवृत्ति के कारण सॉनेट को प्रभावशाली बनाया जाता है। अर्थात इसमें किसी एक शब्द की पुनः आवृत्ति होती है।

उफन उफन कर कण कण को चिर कांक्षित वैभव
लूट रहा था जन सामान्य देखनेवाला
नहीं समझ पाला था यह कैसे है संभव.

जीवन का मधु पात्र पात्र में जैसे ढाला (87)

प्रस्तुत उदाहरण में प्रथम पंक्ति में उफन एवं कण शब्द की आवृत्ति हुई है तथा अंतिम पंक्ति में पात्र शब्द को दुहराया गया है।

शब्द स्तर पर होनेवाली समांतरता को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) **सामान्यावृत्तिमूलक समांतरता** - जब सामान्य स्तर पर शब्दों की आवृत्ति होती है, तो उसे सामान्यावृत्तिमूलक समांतरता कहा जाता है।

दुख, जब जब जब तुम आए तब मैंने स्वागत
किया तुम्हारा, नहीं निहारा मुड़ कर सुख को
छूट गया था जो पीछे उस के ही रूख को
नहीं ताकने बैठ गया था हे अभ्यागत-(88)

प्रस्तुत उदाहरण में 'जब' शब्द की आवृत्ति तीन बार हुई है।

(2) **आद्यावृत्तिमूलक समांतरता** - यदि वाक्यांश या वाक्य के आरंभ में शब्द की आवृत्ति हो, तो उसे आद्यावृत्तिमूलक समांतरता कहा जाता है। जैसे-

प्रभा लोक में हिलने लगता है. समझाया
तुम ने मुझे मर्म जीवन का- मैंने पाया
तुम जल हो मैं निहित बिंब हूँ, उड़ते धन के
प्रतिबिंब पर सुस्थिर तार दृश्य के खनके-(89)

उपर्युक्त उदाहरण में दूसरी एवं तीसरी पंक्ति में प्रारंभ में ही 'तुम' शब्द की आवृत्ति प्राप्त होती है।

(3) **मध्याद्यावृत्तिमूलक समांतरता** - इसमें किसी एक वाक्य या वाक्यांश के आदि या मध्य में जो शब्द प्रयुक्त होता है वही शब्द उसके तुरंत बाद दूसरे वाक्य या वाक्यांश के आरंभ में प्रयुक्त होता है। जैसे-

मर्यादा इस पुण्य-भूमि की, जिन लोगों ने
कहा कि रोटी ही सब कुछ है, यदि यह रोटी
सब कुछ होती, मुनि त्रिकालदर्शी यह छोटी
बात कहीं कह जाते ! आज नये ढोंगों ने-(90)

प्रस्तुत उदाहरण में दूसरी पंक्ति में उद्धृत 'सब कुछ' यह शब्द तीसरी पंक्ति के प्रारंभ में व्यवहृत किया गया है।

(4) **आद्यांतावृत्तिमूलक समांतरता** - किसी एक वाक्य या वाक्यांश के आदि या मध्य में जो शब्द प्रयुक्त किया जाता है वही उस वाक्य के अंत या उसके तुरंत बाद के वाक्य के अंत में प्रयुक्त होता है, जैसे-

संवत पर संवत बीते, वह कहीं न टिहरा,
पाँवों में चक्कर था, द्रवित देखनेवाले
थे, परास्त हो यहाँ से हटा, वहाँ से हटा,(91)

इसमें तीसरी पंक्ति में मध्य में आया हुआ 'हटा' यह शब्द दुबारा अंत में प्रयुक्त हुआ है।

(5) **अंताद्यावृत्तिमूलक समांतरता** - इसमें एक वाक्य या वाक्यांश के अंत में जो शब्द प्रयुक्त किया जाता है वही शब्द उसके तुरंत बाद के दूसरे वाक्य या वाक्यांश के अंत में प्रयुक्त किया जाए, तो वह अंताद्यावृत्तिमूलक समांतरता है। उदाहरण द्रष्ट्यव्य है-

जब से देखा तुम्हे, तुम्ही को पाना चाहा
मरूस्थल मन का सींचा -(92)

यहाँ 'तुम्हे' शब्द की आवृत्ति दो बार हुई है।

(6) **आंतिक आवृत्तिमूलक समांतरता** - जब वाक्य के अंत में एक ही ध्वनि या शब्द की आवृत्ति होती है, तब उसे आंतिक आवृत्तिमूलक समांतरता कहा जाता है। जैसे-

पुरखों ने जो करना था, कर दिया और क्या
शेष रह गया शास्त्र दे गए. उर को बाँचो
उस के मर्यादित गंभीर ताल पर नाचो
वही आम है जो सौरभ से भरा बौर था-(93)

प्रस्तुत उदाहरण में दूसरी पंक्ति के अंत में 'बाँचो' और तीसरी पंक्ति के अंत में 'नाचो' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें 'च' की ध्वनि में समांतरता प्राप्त होती है।

(इ) रूप स्तर पर समांतरता - इसके अंतर्गत दो प्रकार की समांतरता पायी जाती है- (1)समतामूलक समांतरता एवं (2) विरोधमूलक समांतरता

(1)**समतामूलक समांतरता** - जब किसी रुपिम का समान रूप में आवर्तन होता है तो उसे समतामूलक समांतरता कहा जाता है।

वही त्रिलोचन है, वह-जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं कपड़े भी कैसे- फटे लटे हैं-(94)

(2) **विरोधमूलक समांतरता** - जहाँ एक वचन, बहुवचन, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, भूतकाल-वर्तमानकाल आदि के विरोधी रुपों के संयोजन सॉनेटों में प्राप्त होते हैं, वहाँ विरोधमूलक समांतरता कही जाती है।

पता किसे है, नामहीन किस जगह पडा है?
आया फूल गया, पौधा निर्वाक खड़ा है
पथ का वह रजकण हूँ जिसपर छाप पगों की -[95]

(उ) अर्थ स्तर पर समांतरता- जब सॉनेटों के वाक्यांश किसी न किसी स्तर पर एक या समान अर्थ रखते हैं, उसे अर्थ स्तर पर समांतरता कहा जाता है।

लेकिन देर हुई थी
हम दोनों के आने में
सब पहले आए
और नहा कर चले गए थे।[96]

(ऊ) पदबंधीय समांतरता - यदि प्रथम पद में प्राप्त वाक्य या वाक्यांश दूसरे पद में दुबारा प्रयुक्त किए जाए, तो उसे पदबंधीय समांतरता कहा जाता है।

तुमसे सुदूर जब जाकर रहना पड़ता है
रहना पड़ता है जब ये वे बाते हंसना उठना[97]

हिन्दी साहित्य में सॉनेट लिखने की परंपरा आधुनिक काल में प्राप्त होती है। हरिऔध और जयशंकर प्रसाद इस दिशा में अग्रसर हुए लेकिन त्रिलोचन को इस पाश्चात्य काव्य-विधा के लेखन में अधिक ख्याति प्राप्त हुई। त्रिलोचन ने करीब-करीब 1000 सॉनेट लिखे, अंग्रेजी में वर्डस्वर्थ के पाँच सौ तीस सॉनेट है, इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य क्षेत्र में त्रिलोचन ने सॉनेट विधा के अंतर्गत बढ़िया कार्य किया है।

त्रिलोचन द्वारा लिखित काव्यों को काल-क्रमानुसार देखे तो 'दिगन्त', 'शब्द', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'फूल नाम है एक' आदि संग्रहों में सॉनेटों की रचना प्राप्त होती है। उनका लोकप्रिय काव्य-संग्रह 'ताप के ताए हुए दिन' में भी कुछ सॉनेट लिखे गये है।

सॉनेट लेखन के संदर्भ में त्रिलोचन की विशेषता यह रही है कि भलें ही उन्होंने विदेशी रूप-विधान का चयन किया लेकिन उसे देसी आयाम देकर पाठकों के बीच इस नयी विधा को विकसित एवं लोकप्रिय बनाया। हिन्दी साहित्य जगत में त्रिलोचन और सॉनेट मानो एक दूसरे के पर्यायवाची माने जाते हैं।

त्रिलोचन बहुभाषाविद है। किसी विदेशी काव्य-रूप को देसी ढंग से रचने के लिए पहले-पहल रचनाकार को भाषाओं एवं प्रयुक्त काल में रचे गए रचनाओं का सम्यक ज्ञान एवं अध्ययन की आवश्यकता होती है। त्रिलोचन में पांडित्य होने के कारण वे यह कार्य आसानी के साथ कर सकें।

शमशेर बहादुर सिंह का मानना रहा है कि सॉनेट और त्रिलोचन की काठी

है एक। त्रिलोचन ने पेट्रार्कन एवं शेक्सपियर की कला के सॉनेटों की रचना की। त्रिलोचन का प्रेयसी के प्रति अनुराग पेट्रार्क के काफी निकट प्रतीत होता है। सॉनेटों में प्राप्त होने वाली तुकबंदी को उन्होंने हिन्दी के कलेवर के अनुरूप परिवर्तित भी किया। त्रिलोचन सॉनेट-लेखन की ओर प्रवृत्त होने के संदर्भ में कहते हैं-

इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सानेट सानेट सानेट सानेट क्या कर ड़ाला
यह उसने भी अजब तमाशा।(98)

सॉनेट लेखन के प्रभाव को परिलक्षित करते हुए वे आगे कहते हैं

इस सानेट का रास्ता चौड़ा
अधिक नहीं है। कसे कसाये भाव अनूठे
गेय रहे, एकान्विति हो।(99)

उनके सॉनेट में वस्तु और रूप की एकाकार की स्थिति स्पष्ट रूप से झलकती है। त्रिलोचन के सॉनेटों का संगीत बाँसुरी या जल-तरंग का संगीत नहीं बल्कि वीणा का है, जिसके माधुर्य में भी ओज भरी टंकार है जिसमें स्वरो की गूँजे एक दूसरे से टकराकर फिर एक होकर वितान सी तन जाती है।

सॉनेट रूप विधान को अत्याधिक रूप से महत्व देने के कारण त्रिलोचन रूपवादी नहीं बन जाते, उनके यहाँ कथावस्तु के अंतर्गत जीवन-दर्शन कहीं भी विलुप्त नहीं होता।

मैनेजर पाण्डेय के अनुसार ''उनके सॉनेट की संरचना इतनी सुघटित होती है, पूरे वाक्यों के साथ लय और द्वन्द का विन्यास इतना आवयविक होता है कि किसी एक अंश से अलग करना उसके साथ ज्यादती लगती है।''(100)

कभी त्रिलोचन के हाथों में पैसा धेला
टिका नहीं कैसे वह चाय और पानी का
करता बन्दोबस्त-रहा ठूंठ सा अकेला.
मित्र बनाये नहीं. भला इस नादानी का
कुफल भोगता कौन. यहाँ तो जिसने जिसका
खाया उसने उसका गाया जड़ मृदंग भी-(101)

4,4,4,2 में विभाजित 'आलोचक' नामक सॉनेट में दूसरे पद में 'टिका नहीं' के उपरांत पूर्ण विराम होने के कारण उतना ही लिखे तो वह वाक्य कहलाएगा, भाव-बोध स्पष्ट नहीं होगा, सॉनेट को हमेशा उसकी पूर्णता में ही पढ़ा जाता है।

सॉनेट लिखने में एक लाभ यह है कि कविता की लंबाई-चौड़ाई निश्चित

रहती है, इसमें भाव विस्तार का नियंत्रण रहता है। त्रिलोचन सॉनेट-लेखन की नियमबद्धता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

चौदह चरण में मैंने चौदह भुवन को
यथाशक्ति नापा है. यह केवल बातूनी
की बकवास नहीं है, समझ के लिए दूनी
शक्ति चाहिए, दौं दौं गिरते हुए घनों को
क्या मालूम निहाई में कितनी दृढ़ता है-(102)

श्री चंद्रबली सिंह का मतव्य है- ''छायावादियों से लेकर आज तक अनेक हिन्दी कवियों ने सॉनेट और रोला छंद को लेकर प्रयोग किए हैं लेकिन यह कहना शायद अत्युक्तिपूर्ण या अनुचित नहीं कि त्रिलोचन ने हिंदी में उनकी शक्ति का उद्घाटन करके अन्य कवियों से कहीं ज्यादा उन्हें हिन्दी कविता में स्थापित कर दिया है।''(103)

त्रिलोचन ने हिन्दी कविता में पाश्चात्य काव्य-रूप को अपनी पूरी गरिमा के साथ स्थापित किया। इन्होंने सॉनेट को वैयक्तिक प्रेम भावना से न जोड़कर जन-जीवन की व्यथा-कथा से जोड़ा।

आह न भर। मत हाथ लगाए रह। चुप हो जा।
ऐसे मैं निकालता हूँ कि दर्द तो भाई
अलग, तुझे मालूम भी न होगा, कब आई
और मोचनी खींच ले गई । चाहे खो जा-(104)

त्रिलोचन के कतिपय सॉनेट लोक-जीवन की गँवई संस्कृति को व्यक्त करते हैं जिसमें हम बिना गाँव को देखे ही वहाँ की मेंडों पर भ्रमण कर सकते हैं। त्रिलोचन के सॉनेट लेखन के संदर्भ में आश्चर्य प्रकट करते हुए हाल ही में दिवंगत हुए कविवर शिवमंगल सिंह 'सुमन' का मानना रहा- ''त्रिलोचन की प्रकृति रचनागत मानसिकता और सोच के अनुरूप 'सानेट' उपयुक्त छन्द नहीं है। एक पूरमपूर देहातीपन, बनारस के बनारसीपन में आपाद मस्तक डूबा त्रिलोचन का मन, अपनी भूमि में धँसी उसकी सर्जनात्मक जड़े अपनी समृद्ध छान्दिक परंपरा को लगभग नकारती हुई त्रिलोचन की सर्जनात्मक प्रतिभा 'सानेट' की ओर क्यों और कैसे आकृष्ट हुई इसकी पूंछताछ उनसे अवश्य करनी चाहिए। पूछना चाहिए कि त्रिलोचन कभी बनारस के जनपद का लोक-छन्द 'कहरवा' डूबकर गाया करता था। उससे क्यों विमुख हुआ? क्यों उन्होंने लोक छन्दों की संभावना नहीं खँगाला?''(105)

वैसे देखा जाए तो विषय-वस्तु के अनुरूप रूप-विधान का चयन करने की स्वतंत्रता हर रचनाकार को होती है जोकि पूरी तरह से रचनाकार के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है।

सॉनेट से मजाक भी उसने खूब किया है
जहाँ तहाँ कुछ रंग व्यंग्य का छिड़क दिया है-(106)

विश्वनाथ त्रिपाठी त्रिलोचन के सॉनेट लेखन के संदर्भ में नागार्जुन के विचार प्रकट करते हुए कहते हैं-

''मुझे उनके सॉनेटों को छोड़कर सब कविताएँ पसंद हैं और उनके सॉनेट ऐसे हैं जैसे सादतपुर से लेकर इण्डिया गेट तक एक रस्सी बाँध दी जायें और उस रस्सी में एक गाँठ एक फुट पर लगी हो, एक गाँठ एक किलोमीटर पर लगी हो।(107)

परंतु अपने व्यक्तिगत जीवन में उच्च मानवीय मूल्य, नैतिकता के द्वारा संयमित गृहस्थ जीवन का पालन करनेवाले त्रिलोचन कविता में 'सॉनेट' के नियमबद्ध संयम का पालन करते हैं। इसके लिए उन्हें शब्दों की उधेड़-बुन नहीं करनी पड़ती। त्रिलोचन ने रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए अपने अनुभव को सॉनेट के रूप में बड़ी सजीवता के साथ व्यक्त किया है-

सफर रेलगाड़ी का-अपने आप झूलना
तन का, मन का चेहरे-चेहरे, आना-जाना,
कहना-सुनना, याद दिलाना और भूलना
मिलकर खिल जाना खिलकर तुरन्त मुरझाना-(108)

झूलना, जाना, भूलना, मुरझाना की तुकबंदी का पैरामीटर खींच-तान कर अपनाया हुआ नहीं लगता बल्कि स्वाभाविक लगता है।

सुधीश पचौरी त्रिलोचन के सॉनेट लेखन की स्वाभाविकता का जिक्र करते हुए लिखते है- ''सॉनेट अचानक त्रिलोचन का अपना फार्म इसलिए बन जाता है क्योंकि वे बिंबों में नहीं सरल वाक्यों में सोचनेवाले कवि हैं और शायद अपने ढंग के एक मात्र अकेले निपट अकेले कवि हैं जो सिर्फ वाक्यों में सोचते हैं और पूर्ण वाक्य में ही कहते हैं। सॉनेट उन्हें वाक्यों के अन्वय से खेलने का मौका देते हैं क्योंकि छंद के बंधन के बावजूद, उसमें वे खेलने का अवकाश निकाल सकते हैं।''(109)

त्रिलोचन के सॉनेटों में क्रिया और गति का अन्वयन देखने योग्य है। इस संदर्भ में उदाहरण द्रष्टव्य है-

भरी रात भादों की...पथ... लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आँखों में इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौंधा
तड़ तड़ तड़त्त डाड़ धाड़ धा धाड़ धुड़ धू धुम-(110)

केदारनाथ अग्रवाल त्रिलोचन के सॉनेट लेखन के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते

हुए कहते है। ''विदेशी सॉनेट विदेशी नहीं रह गया। यहाँ त्रिलोचन की भाषा देखते ही बनती है। जैसे महाराज भगीरथ ने कभी गंगा प्रवाहित की थी वैसे ही त्रिलोचन ने यहाँ भाषा की गंगा (उसी ठाट से-श्रम से- साहस से- और सबकी मनोभूमि को हरा-भरा करने के लिए) अब इस युग में प्रवाहित की है। यह बल और पौरूष की विवेक और आस्था की सिद्‌ध सधी, सर्वजनहिताय भाषा है। इसकी चाल में आत्मविश्वास है। इसके प्रवाह में निश्छलता है। इसकी ध्वनि में मृदंग की ध्वनि है। पढते-पढते ऐसा लगता है कि जैसे हरेक सॉनेट एक विशाल वटवृक्ष होकर छा गया है और मैं उसकी छाया में शीतल और स्वस्थ हो गया हूँ।''(111)

विदेशी फार्म को देसी बनाकर प्रस्तुत करना त्रिलोचन की अध्ययनशील वृत्ति का ही परिचायक है। उनके लिए वह एक चुनौती थी। उन्होंने किराए की इस चीज को रोला छंद में डालकर देसी बनाया।

अतः कह सकते हैं कि त्रिलोचन अंग्रेजी भाषा के ही जानकार नहीं है बल्कि हिन्दी की समर्थ शब्दावलियों का ज्ञान होने के कारण तुकबंदी के लिए उनके यहाँ शब्दों का टोटा नजर नहीं आता। गोविन्द प्रसाद के अनुसार, ''त्रिलोचन के सॉनेटों में जिस तरह के वर्ण्य-विषय हैं वे एक साथ वर्णन, विश्लेषण और यहाँ तक कि चित्रण और रेखांकन की माँग एक साथ करते हैं। अतः अपने सॉनेटों में वे एक साथ भाषा की वर्णन शक्ति, विश्लेषण-क्षमता और पेंटरों जैसी रेखांकन पद्‌धति अथवा चित्रात्मक शैली में बातचीत करते नजर आते हैं। त्रिलोचन के ज्यादातर सॉनेटों में विभिन्न मनोदशाओं और मनोवेगों को वहन करनेवाली सधी हुई और संभावित भाषा का उपयोग मिलता है।''(112)

त्रिलोचन की तुकान्त रचनाओं में भी अंग्रेजी की अनुकान्त काव्य की संगीतात्मकता प्राप्त होती है। 'नया वर्ष' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

नया वर्ष आया है, माथे पर होली की
भस्म लगाये, अंगों में बहार रंगों की
छाई है. अमराई में नूतन ढंगों की
सिन्दूरी केसरिया मंजरियाँ टोली की-(113)

त्रिलोचन मानते हैं कि उन्होंने सॉनेट नहीं बल्कि सॉनेट के भावों को प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में वे कहते हैं - ''हमने 'सॉनेट' इसलिए लिया क्योंकि काव्य के साथ इसमें अनुशासन बराबर बना रहता है और यदि कोई वस्तु अच्छी है तो वह कहीं की भी हो, उसके इस्तेमाल में मैं कोई बुराई नहीं समझता।''(114)

यह निर्विवाद है कि त्रिलोचन ने न केवल विदेशी रूप-विधान को अपनाया

अपितु उसमें सफलता भी अर्जित की। मुक्तिबोध का मानना था ''सॉनेट तो बहुतों ने लिखे मगर यदि सॉनेट लिखना हो तो त्रिलोचन से सीखो। पहले त्रिलोचन को पढ़ो और फिर सॉनेट लिखो।''(115)

त्रिलोचन ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान की एकान्विति को सॉनेटों के माध्यम से कलात्मक ढंग से रूपायित करने में सिद्ध थे।

त्रिलोचन द्वारा लिखित निम्नलिखित सॉनेट शेक्सपियर की कला के हैं- 'मूर्तिकार हो दक्ष', 'यह दुनिया है जहाँ धूल उड़ती हो', 'क्या वह भी साहित्यकार है', 'जीवन की राह बताऊँ क्या', 'दु:ख में आँखे भर आएँ', 'चिंताओं के सागर में' आदि।

'दिगन्त' काव्य संग्रह में प्राप्त हानेवाले निम्नलिखित सॉनेट पेट्रार्कन है- 'शारदा और निर्झर', 'मूर्ति-पूजा', 'विदा के समय', 'विचार', 'दिनों की फेरी', 'अट्टाहास कर', 'नया वर्ष', 'काकली', 'लंबे सड़क', 'जगदीश जी का कुत्ता', 'रात में', 'चिन्ता', 'हास्य', 'बटोही और बाट', 'लाश', 'आया है वह', 'मेहंदी और चांदनी', 'अपघात', 'बाढ में दशाश्वमेघ घाट', 'पौराणिक प्रसंग' आदि।

'बटोही और बाट', 'लाश', 'अपघात' आदि में मिल्टन की सॉनेट कला प्राप्त होती है।

'दिगन्त', 'अनकहनी भी कुछ कहनी है', 'तुम्हें सौंपता हूँ', आदि संग्रहों में संग्रहीत त्रिलोचन के सॉनेट शेक्सपियर की पद्धति के है तथा शेष काव्य संग्रहों में पेट्रार्कन पद्धतिवाले सॉनेट प्राप्त होते हैं।

गज़ल

गजल का उद्भव एवं विकास अरबी, फारसी, एवं उर्दू भाषाओं से हुआ। हिन्दी साहित्य में इसका बीजारोपण अमीर खुसरों ने (1253 ई. से 1325 ई.)किया। इसके अलावा सूफी दार्शनिक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने भी फारसी तथा हिन्दी में गजलों की रचना की। कहीं-कहीं कबीर के पदों में भी गजलों का लहजा प्राप्त होता है। ऐतिहासिक संदर्भो से यह विदित होता है कि मुगल काल में शाहजहाँ के शासन काल में गजल का पर्याप्त रूप से विकास हुआ। गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुबशाह स्वयं एक अच्छे शायर थे। आगे चलकर दाग, गालिब, मीर, जफ़र जैसे अनेकानेक दिग्गज शायरों की परंपरा चली आयी।

आधुनिक काल के प्रारंभिक युग में बद्रीनारायण 'प्रेमघन', लाला भगवान

दीन, केशव प्रसाद मिश्र, तथा भगवान नारायण भार्गव आदि कवियों ने गजल लिखे। द्विवेदी युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी के अलावा नाथूराम शंकर, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद, 'पूर्ण' ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

इसके अलावा छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद एवं निराला के काव्य में कमोबेश इस विधा का प्रादुर्भाव हुआ। भारतेंदु से लेकर छायावादी युग तक जो थोड़े-बहुत ग़ज़ल रचनाकार प्राप्त होते हैं, उसमें उन कवियों का उद्देश्य केवल रचना में विविधता लाना रहा होगा। क्योंकि इन युग-विशेषों में उर्दू की इस विधा को हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप ढालने का सफल प्रयास प्राप्त नहीं होता। आगे जाकर शमशेर बहादुर सिंह, दुष्यंत कुमार आदि ने हिन्दी गजल-विधा को पल्लवित करने का प्रयास किया। इनके अलावा त्रिलोचन शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हरिकृष्ण प्रेमी, नरेन्द्र शर्मा, जानकी वल्लभ शास्त्री, गोपालदास 'नीरज' आदियों ने गजल विधा को पुष्ट किया है।

साठोत्तरी कविता के अंतर्गत डॉ. कुँअर बेचैन, जहीर कुरैशी, सूर्यभान गुप्त, शिवओम 'अम्बर', चन्द्रसेन 'विराट' ओंकर 'गुलशन', बालस्वरूप 'राही', श्याम 'बेबस', माहेश्वर तिवारी, शेरजंग गर्ग, रामकुमार 'कृषक' श्याम 'निर्मम' आदि गजलकारों का नाम लिया जा सकता है।

'ग़ज़ल' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कातना या बुनना। ग़ज़ल को फारसी में 'बाज़नान गुफ्तगु करदैन' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'औरतों से बातचीत'। जैसा कि यह सर्व ख्यात है कि प्रायः बातचीत निरंतर रूप से खंड-खंड रुप में चलती है उसी की भाँति ग़ज़ल होता है। कुछ जगहों पर 'जवानी के हाल का बयान करना' यानी ग़ज़ल, यह कहा गया है। 'ग़ज़ल' का एक अन्य अर्थ ग़ज़ाला (हरिण) से निकाला जाता है। परंतु इसमें कोई साधर्म्य नहीं है। हो सकता है कि हरिण की चपलता के कारण सुंदर स्त्री की चपलता या कटाक्ष से इसे जोड़ा गया हो जिसका वर्णन ग़ज़ल में किया जाता है।

ग़ज़ल के आकार के संबंध में कहा जाता है कि उसमें कम से कम पाँच शेर अवश्य होने चाहिए, ग़ज़ल के शेरों की संख्या विषम 5,7,9,11,13,15 होनी चाहिए।

साथ ही इसमें मतलअ, मक़तअ, रदीफ़, काफ़िया, बहर, तग़ज्जुल और तख़ल्लुस आदि का समायोजन रहता है।

इन्हें निम्नलिखित ढंग से परिभाषित किया जा सकता है-

(1) शेर (द्विपदिका) - ग़ज़ल का शेर दो पंक्तियों (मिसरों) का समूह होता है। इसलिए इसे द्विपदिका कहा जाता है। इन दो पदों में ही उसे अपने संपूर्ण

अर्थ को समाविष्ट करना होता है।

(2) मतलअ (उदयिका) -ग़ज़ल के सबसे पहले शेर को मतलअ कहते हैं। पहली पंक्ति को 'मिस्र-ए-अब्बल' और दूसरी पंक्ति को 'मिस्र-ए-खाजी' कहते हैं।

(3) मक़तअ (अन्तिका) -ग़ज़ल का अंतिम शेर 'मकतअ' कहा जाता है।

(4) रदीफ़ (पद समानान्तता) - प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे (पंक्ति) में एक या एक से अधिक शब्द दुहराये जाए तो उन्हें रदीफ कहा जाता है।

(5)क़ाफ़िया (ध्वनि समानान्तता) इसे हिन्दी में 'तुक' कहा जाता है। यदि शब्द समान ध्वनि उत्पन्न करते हैं तो 'काफ़िया' कहा जाता है। रदीफ के समान इसमें सम्पूर्ण शब्द की आवृत्ति नहीं होती केवल वे शब्द होते है जो तुकान्त होते हैं। एक काफ़िये के शब्दों में से प्रत्येक शब्द का अन्तिम एक अक्षर अथवा दो या तीन अक्षर वही होते हैं।

(6) बहर (छन्द) - इसे हिन्दी और संस्कृत में बहर कहते हैं। बहर में वर्ण, मात्रा, गति, यति, लय आदि तत्व रहते हैं।

(7) तग़ज्जुल (लहजा या ढंग)- तग़ज्जुल का अर्थ है कहने का लहजा या ढंग। अर्थात अपने मंतव्य को विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, वीरगाथात्मक या श्रृंगारिक तथा अन्य ढंग से कहा गया है-यह जानने की रीति।

(8) तख़ल्लुस (उपनाम) इसका उपयोग रचना की अंतिम पंक्ति में किया जाता है। तख़ल्लुस को हिन्दी में उपनाम कहा जाता है। इसके द्वारा यह पता चलता है कि रचना का रचनाकार कौन है?

सूर्यप्रकाश शर्मा के अनुसार, ''अर्थ की दृष्टि से ग़ज़ल का हर शेर अपनी जगह स्वतंत्र होता है। ग़ज़ल में प्राय: करूणा, प्रेम और समर्पण के भाव ही प्रदर्शित किए जाते रहे हैं। गजलों में चूंकि एक ही शेर में पूरी बात कह देनी होती है इसलिए उसमें प्रतीकात्मकता का सहारा अधिक लिया जाता है। चूंकि ग़ज़ल का मिजाज मूलत: समर्पणवादी होता है, इसलिए उसमें कोमलकांत पदावली का ही प्रयोग अच्छा समझा जाता है।''(116)

प्रारंभ में ग़ज़ल को सौंदर्य, नारी-श्रृंगार तक सीमित किया गया था, वहाँ पर आगे जाकर रचनाकारों ने जीवन की विभिन्न समस्याओं के चित्रण के द्वारा ग़ज़ल का दायरा विस्तृत किया।

'ग़ज़ले मुसलसल' के अंतर्गत प्राचीन काल में एक ही विषय पर परस्पर

संबद्ध शेरों का समायोजन रहता था।

प्राय: लोगों में यह धारणा रहती है कि उर्दू की ग़ज़ल विशुद्ध रुप-उर्दू की है परंतु वास्तविकता यह है कि उसमें अरबी-फारसी के शब्द मिले रहते हैं।

उर्दू में समास के स्थान पर 'इजाफत' का प्रयोग पाया जाता है। यदि 'इजाफत' का पहला शब्द आकारांत है तो उसमें आ की मात्रा हटाकर 'ए' जोड़ देते हैं जैसे वादा-ए-करम। साथ ही इसमें शब्द की रचना बहरों के आधार पर होती है। उसके काव्य रूपों का निर्माण फारसी छंद शास्त्र के आधार पर किया गया है।

हिन्दी-उर्दू के शब्दों का उचित समायोजन करके भावोत्कटता के द्वारा उसे सफल बनाया है-

लोग कच्चा तुम्हें बतलायेंगे खुश होकर
गैर के आगे गिला अपनों का गाया न करो।
क्या हुए लोग जो हँसते हैं उन्हें हँसने दो
प्रेम की पीर में आँसू तो बहाया न करो।(117)

उर्दू ग़ज़लों के समान त्रिलोचन ने उच्चारण की सुविधा के लिए ह्रस्व की जगह दीर्घ और दीर्घ की जगह ह्रस्व का प्रयोग किया है।

केदारनाथ अग्रवाल त्रिलोचन के ग़ज़ल लेखन के संदर्भ में कहते है- ''उर्दू की ग़ज़ल हिन्दी में आयी मगर हिन्दी के उस रंग में रंगकर आयी जो रंग हिन्दी को जन-जीवन में पैठ कर मिला।''(118)

त्रिलोचन की ग़ज़लें उँचे स्तर पर चली नहीं लेकिन आम आदमी का चित्रण तो इसके माध्यम से किया गया। इसका रचनात्मक महत्व यही है, यही उसकी सार्थकता भी कहलाएगी।

प्राय: लोगों को ग़ज़लों के जरिए उर्दू की नफासत को देखने की आदत होने के कारण त्रिलोचन की हिन्दीवाली ग़ज़ले पसंद नहीं आयी।

रोग रह जाय कहीं रोगी ही न छुट्टी ले
वैद्य मानवता के, बस कर अधिक उपचार न कर-(119)

यहाँ पर त्रिलोचन रोग के लिए बीमारी, रोगी के लिए बीमार, वैद्य के लिए हाकिम शब्द का इस्तेमाल नहीं करते इसलिए उनकी ग़ज़ले ग़ज़ले कम और कविता अधिक लगती है।

तु हताश न हो त्रिलोचन स्वर ग़ज़ल का खूब है
सब के हृदयों में बसा है सब के जी को भा चुका।(120)

त्रिलोचन की अधिकांश कविताओं में गीतितत्व की प्रधानता रही है इसलिए

पहले-पहल संक्षेप में मैं गीति तत्व पर प्रकाश ड़ालना चाहूँगी।

गीतकाव्य या गीतिकाव्य को हम गेय मुक्तक कहते हैं। इसके लिए अंग्रेजी में 'लिरिक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका हिन्दी में अनुवाद 'वैणिक' के रूप में किया गया है। वस्तुतः वैणिक का संबंध वीणा से है जबकि गेय पदों में आत्माभिव्यक्ति एवं भावोत्कटता की प्रधानता रहती है। स्वयं स्फूर्ति इसका प्रधान गुण है। भावातिरेक को दर्शाने के लिए बहाव की आवश्यकता होती है, वह साधारण पदों में संभव नहीं हो पाता। परंतु गीति-काव्य में संगीतात्मकता के द्वारा उसे प्रस्फुटित किया जा सकता है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार, ''गीत द्वारा हर्ष के विस्तार और आत्मा के उल्लास के लिए पंख-से मिल जाते हैं और भावों को एक विशेष प्रवाहमानता प्राप्त हो जाती है।''(121)

अतः कह सकते हैं कि गीत व्यक्तिगत अनुभूतियों को समष्टि तक पहुँचाने के लिए एक साधन के रूप में कार्य करता है जिसकी ध्वन्यात्मकता में गेयता होती है।

महादेवी वर्मा गीत की परिभाषा देते हुए लिखती है- ''सुख-दुःख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण करना ही गीत की परिभाषा है।''(122)

गीतात्मकता का तत्व त्रिलोचन की कविताओं में प्राप्त होता है

बरस रहे रस बरस रहे रस
गरज गरज घन ये
धरामयी धरा हो आयी
रंग रंग की ले सुघराई
आयी सुन्दरता अब आयी
नवल बने सब
नवल बने सब
वन-उपवन
जन
ये।-(123)

प्रस्तुत गीत में त्रिलोचन ने बरसात के कारण प्रकृति में हो रहे परिवर्तन को अपने गीत के माध्यम से व्यक्त किया है।

त्रिलोचन के 'धरती', 'ताप के ताए हुए दिन', 'तुम्हें सौंपता हूँ', 'सबका

अपना आकाश', 'चैती' आदि संग्रहों में गीतात्मकता के तत्व विद्यमान है।

त्रिलोचन अपनी कविताओं के माध्यम से पाठकों के साथ सीधा सम्प्रेषण स्थापित करते हैं। यह संवाद हृदय से हृदय का संवाद है। कई बार जब छोटी कविताओं के द्वारा यह संवाद स्थापित करने में अवरोध नजर आया तब वहाँ त्रिलोचन ने 'नगई महरा', 'मैं तुम', 'चित्रा जांबोरकर' जैसी लंबी कविताओं का चुनाव किया। सम्प्रेषण की दृष्टि से वे कहीं-कहीं बातचीत के ढंग का चुनाव करते हैं। राजेश जोशी का मानना है- ''बातचीत के अन्दाज ही नहीं, बातचीतवाली भाषा का भी कलात्मक उपयोग त्रिलोचन ने किया है। उनकी कविता में एक ओर किसानों-सा बातूनीपन है तो दूसरे छोर पर बहुत सारी बात को कुछ शब्दों में, एक चुस्त-से वाक्य में या एक सूक्ति में समेट लेने की मितव्ययिता भी।''(124)

इस संदर्भ में 'नगई महरा' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

रमायन बाँच लेते हो
हां अटक अटक कर
सुन कर हँसा नगई खुल कर बोला
बाँचना अटक अटक कर
और इसे बूझना बूझने की बात है-(125)

'तुम्हें सौपता हूँ' काव्य संग्रह में 'भूखे-भेड़िए' 'शैतान और इंसान' नामक काव्य-नाटक की रुपयोजना प्राप्त होती है। आगे जाकर अन्य विद्वानों ने 'नगई महरा' कविता की लोकप्रियता को देखते हुए उसका भी नाट्य-रूपांतरण किया।

त्रिलोचन ने गज़ल और गीत के अतिरिक्त अधिकांश छोटी-छोटी कविताएँ लिखी है। जिनमें उनकी पूरी संवेदना अभिव्यक्त हुई है। इस संदर्भ में अरूण कमल लिखते है - ''मुख्यतः छोटे-छोटे पदों के जरिए उन्होंने जीवन की जटिलता को व्यक्त किया है। उन्हीं के एक बिंब लेकर कहें तो जिस तरह आगरे के लाल किले का नग पूरे ताजमहल को दिखलाता है, उसी तरह उनकी एक छोटी सी कविता समग्र जीवन का आकलन करने का प्रयास करती है।''(126)

त्रिलोचन द्वारा लिखित 'चैती' तथा 'अरघान' काव्य संग्रह में ऋचाओं की तरह छोटी कविता का समायोजन प्राप्त होता है। 'ताप के ताए हुए दिन' काव्य संग्रह के पहले खंड में जो छोटी कविताएँ सम्मिलित की गयी है, उसमें सांकेतिकता एवं प्रतीकात्मकता है।

'प्रकाश के रंग' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रकाशों की धारा दिवस रजनी नित्य बहती
सभी की आँखों में अदिख छवि लाई मचल के
सधे आवर्तों में घिर कर कई प्राण बहके
इन्हीं में रंगों की लहर उमड़ी व्योम-सरि सी.(127)

त्रिलोचन द्वारा की गयी विभिन्न काव्य-रूपों की योजना के कारण काशीनाथ सिंह प्रश्न करते हैं कि वे सॉनेट, बरवै, गज़ल जैसे छोटे-छोटे छंदों में क्यों चले गए?

जैसाकि मैंने पहले भी कहा कि रचनाकार प्रतिपाद्य को प्रकट करने के लिए जिस रूप-विधान का चुनाव करता है, यह पूर्णतः रचनाकार की प्रकृति पर निर्भर करता है।

इसे पुष्ट करते हुए मैं अजय तिवारी का मंतव्य प्रस्तुत कर रही हूँ- ''कोई भी कवि अपने संवेदनात्मक ज्ञान को संवेदनात्मक उद्देश्य से सम्पृक्त किये बिना सृजन नहीं करता। इसलिए किसी भी साहित्य का दृश्यफलक और उसकी करूणा का जनाधार उसके रूपगत प्रयोगों को बहुत गहराई से प्रभावित करता है।''(128)

रचनाकार काव्य-रूप के माध्यम से अपनी अनुभूति को एक आकार प्रदान करता है। इसके लिए कुछ भी पूर्व निर्धारित नहीं होता है कि वह अपनी बात किस ढंग से कहेगा। विषय का दबाव ही अनुभूति के आकार का निर्धारण करता है- ऐसा त्रिलोचन का मानना है। इस संदर्भ में वे स्वयं लिखते हैं - ''असल में लिखते समय विषय का जो दबाव रहता है, आकार वही तय करता है। लिखनेवाला इसे तय करेगा तो कृत्रिमता आएगी और उसका निबाह न होगा। यह बात भूलने की नहीं है कि कविता तो वही रचना होगी, जो चाहे गद्य में या पद्य में, लेकिन वह फालतू न आए और न्यून न हो।''(129)

काव्य के रूप का निर्माण जब रचना की अंतर्वस्तु के साथ एकाकार होकर अपनी स्वाभाविकता में रूप ले लेता है तो वह रचना जीवंत हो उठती है। अन्यथा काव्य की प्रवाहमयता में स्खलन आ जाता है। त्रिलोचन इस दृष्टि से काफी जागरूक लगते हैं।

नन्दकिशोर नवल का कथन है - ''काव्यरूप की स्थिरता और सारतत्व की गतिशीलता के द्वंद्व से वे कविता में ऐसे वेग और शक्ति की सृष्टि करते हैं जिनकी मिसाल हिन्दी कविता में केवल निराला में सुलभ है। क्लासकीय अनुशासन और आधुनिक स्वच्छंदता त्रिलोचन की अपनी पहचान है।''(130)

अतः कह सकते है कि साहित्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम में जहाँ प्रयोगवादी कवियों में भाषा के रचाव और रूप-वैविध्य पर जोर दिया वहाँ त्रिलोचन प्रगतिवादी

दौर में एक कदम आगे बढ़कर विभिन्न काव्य रूपों को अपनाकर अभिनव प्रयोग करते हैं।

७.५ त्रिलोचन की काव्य शैली

वस्तु के अभिव्यक्ति के साधन को शैली की संज्ञा दी जाती है। शैली का संबंध वस्तु के बाह्य कलेवर से है। शैलीगत सौंदर्य के कारण भाव-सौंदर्य में निखार आ जाता है। आंतरिक भावनाओं का फलीभूत कार्य शैली है।

व्याकरणिक दृष्टि से 'शैली' शब्द 'शील' में 'ष्यञ्' और 'ङीप्' प्रत्यय के योग से उत्पन्न हुआ है।

आजकल 'शैली' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द के समानार्थक रुप में होने लगा है। 'स्टाइल' शब्द ग्रीक भाषा के स्टाइलोस और लैटिन भाषा के स्टाइल्स से निकला है जिसका अर्थ - लौह-लेखनी होता है।[131]

यह कह सकते हैं कि प्रस्तुतिकरण की पद्धति 'शैली' है। हर रचनाकार अपनी मानसिक-बौद्धिक क्षमता, परिवेश-समाज के अनुरूप सृजन-कार्य के लिए शैली का चुनाव करता है। इसलिए कई बार एकही विषय-वस्तु पर निर्मित हुई रचना मूलत: एक नया कार्य या निर्माण हो सकता है। क्योंकि भाषागत वाक्य-विन्यास, शब्द-चयन, भाषा-प्रयोग के कारण उसमें विशिष्टता आ जाती है। अत: सर्जक की विचारशीलता, चिंतन-पद्धति, गहनता, वाक्-पटुता आदि को जांचने -परखने का माध्यम ही शैली है।

डॉ. नीरजा टंडन 'शैलीविज्ञान' की अद्यतन विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए लिखती है- ''भाषाविज्ञान से आविर्भूत और साहित्य क्षेत्र में सक्रिय रुप से साहित्य के मार्मिक कथ्य का विश्लेषक यह सिद्धांत रचना को केंद्रबिंदु बनाकर उसमें निहित आभ्यंतर सौंदर्य को भाषिक सौंदर्य के माध्यम से उजागर करनेवाला वह विज्ञान है जिसकी दृष्टि तो भाषावादी है लेकिन चिन्तन वस्तुवादी।''[132]

प्रकार के अंतर्गत (1)समास शैली (2) व्यास शैली दो प्रधान रूप से पाए जाते हैं।

'समास शैली' में बड़े से बड़े भावों को कवि थोड़े से शब्दों में कहता है। 'व्यास शैली' में छोटी सी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इसके दो भेद पाए जाते हैं- 'आगमन' और 'निगमन' । 'आगमन शैली' में उदाहरण और दृष्टान्त के बाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया जाता है जबकि निगमन-

शैली में ठीक इसके विपरीत होता है।

कई बार शैली और शिल्प समानधर्मी लगते है परंतु उनमें सूक्ष्म अंतर है इस संदर्भ में डॉ. सूर्यप्रकाश मिश्र लिखते है - ''शैली का अधिकांश भाग सूक्ष्म रुप से शिल्प की समाष्टि में समाया रहता है। शिल्प का निर्माण किसी न किसी शैली के आधार पर होता है। यदि शैली शिल्प का निर्माण करती है तो शिल्प रूप का संयोजन।''(133)

शैली का मूल आधार भाषा है और भाषा की लघुत्तम इकाई शब्द है। इस दृष्टि से शैली और शब्द-संयोजन का गहरा संबंध है। सार्थक शब्दों के सामूहिक रुप के द्वारा भाषा का निर्माण होता है। डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी के अनुसार, ''जो वस्तु हमारे मानस जगत में उपस्थित रहती है उसी का जब भाषा के माध्यम से प्रत्यक्षीकरण होता है, तब प्रत्यक्षीकरण का वह प्रकार विशेष ही रुप या आकार कहलाता है।''(134)

कथन-भंगिमा या प्रतिपादन के ढंग को शैली कह सकते हैं, रचनाकार के व्यक्तित्व के अनुसार वह स्वयं के अनुरूप किसी विशिष्ट शैली का निर्धारण करता है।

प्रस्तुत अध्याय में त्रिलोचन के काव्य में प्राप्त शैलियों की चर्चा अपेक्षित है। उन्होंने काव्य-लेखन के दौरान मुखरता से निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है-

(1) आत्मकथात्मक शैली
(2) कथात्मक शैली
(3) वर्णनप्रधान इतिवृत्तात्मक शैली
(4) विवरणात्मक शैली
(5) संवादात्मक शैली
(6) लोक-गीतात्मक शैली
(7) व्यंग्यात्मक शैली
(8) प्रतीकात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली - त्रिलोचन की अधिकांश रचनाएँ प्रस्तुत शै में लिखी गयी है। मुख्य रुप से 'धरती', 'गुलाब और बुलबुल', 'उस जनपद कवि हूँ' काव्य संग्रहों में उक्त शैली प्राप्त होती है। इस संदर्भ में एक उदाहरण है-

सुख त्रिलोचन तुझे मिले तो किसी तरह आखिर,
अपनी चिंता का तुझे दान भी करना होगा।(135)

'गुलाब और बुलबुल' काव्य संग्रह की प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने निजी जीवन की अनुभूतियों को प्रकट किया है।

त्रिलोचन की इस शैली के संबंध में चंचल-चौहान का मत है - ''निराला की तरह त्रिलोचन ने भी 'मैं' शैली अपनायी है और वर्डस्वर्थ की तरह आत्मचरित्रात्मक लंबी कविताएँ लिखी है जिनमें 'जगई महरा' विशेष महत्व की कविता है। वर्डस्वर्थ ने जिस तरह अपनी 'माइकल' शीर्षक कविता में इंग्लैंड के देहाती जीवन और उसके बदलते परिवेश को चित्रित किया है उसी तरह त्रिलोचन ने 'नगई महरा' में भारत के देहात का एक अद्‌भुत चित्र पेश किया है।''(136)

अत: उनकी कविताओं के आत्म-कथन के दो बिंदु प्राप्त होते हैं। एक बिंदु वह है जहाँ कवि व्यक्तिगत अनुभूतियों को स्वयम् विश्लेषित करता है तो दूसरी ओर वह किसी विशेष चरित्र के द्‌वारा उसकी आप-बीती को व्याख्यायित करता है।

त्रिलोचन की कविताएँ आत्म-परक होकर भी असंबद्ध नहीं है, यह आत्मपरकता विगलित करनेवाली नहीं है अपितु सक्षम, उत्प्रेरक एवं समर्थ है। कवि का अनुभव देखिए-

अपनी कहूँ तो क्या कहूँ, अच्छा हो छोड़ दो,
धक्का ही था खाने को जो खाया यहाँ वहाँ।(137)

उनकी कविता में प्राप्त होनेवाला आत्म-कथन स्व की परिधि में सीमित न रहकर उसका सामाजिकीकरण किया गया है। अर्थात आत्मा का यह कथन बृहद आयाम धारण करते हुए सामाजिक बन जाता है। त्रिलोचन के 'आज मैं अकेला हूँ' (धरती) 'जीवन का एक लघु प्रसंग'(धरती), 'भोरई केवट के घर' (धरती), 'खीझ'(दिगन्त), 'विचार' (दिगन्त), 'मैंने जो सोचा था' (ताप के ताए हुए दिन), 'आरर डाल' (ताप के ताए हुए दिन), 'तुम्हें याद है' (उस जनपद का कवि हूँ) 'उनका हो जाता हूँ'(अरधान) 'अपना अपना सन्धान'(अरघान) 'और क्या होना है' (तुम्हें सौंपता हूँ) 'ललक' (तुम्हें सौंपता हूँ) 'मेरे दुख की आँच'(फूल नाम है एक) 'आज मैं कहीं और तुम कहीं' (फूल नाम है एक), 'नहीं चाहिए',(फूल ना है एक) आदि के अलावा 'गुलाब और बुलबुल' के गजलों में आत्मकथात्मक शै का प्रयोग किया गया है।

कथात्मक शैली - जहाँ रचनाकार वर्ण-विषय को स्पष्ट करने के कविता को कथाक्रम से जोड़कर कहानी के समान प्रस्तुत करता है, उसे कथा

शैली कहते हैं। कथात्मकता के बीज हमारी लोक-संस्कृति में विद्यमान है। त्रिलोचन के काव्य में कथात्मक शैली प्राप्त होती है। उनके काव्य में कौतुहल वृद्धि करनेवाला कथातत्व है। कथा-क्रम के द्वारा कविता में वर्णित विषय वस्तु कहीं गहरे स्तर पर हमारे अंतस में पैठ जाते हैं।

रामनिहाल गुंजन का मानना है, ''त्रिलोचन जी की कविताओं में कथात्मक का एकादेश उनकी रचनाप्रक्रिया के एक जरूरी तत्व के रूप में लक्षित होता है। इससे उनकी कविताओं में वर्णनात्मकता का भी प्रवेश सहज ही हो जाता है। बहुत संभव है, इसके पीछे त्रिलोचन जी का उद्देश्य कविता में 'जीवन-प्रसंगों का डिटेल्स प्रस्तुत करना रहा हो।''(138)

कथा प्रसंग को जीवन के साथ जोड़ते हुए त्रिलोचन लिखते हैं-

छोटू अभी छोटी है
यहीं दो बरस की
दो बरस का समय
बड़ा कहाँ होता है
माता पिता ने उसे
एक नाम दे दिया-(139)

केदारनाथ सिंह के अनुसार, ''त्रिलोचन के शिल्प की एक खास बात यह है कि वे किसी भी वस्तु का प्रतीकवत प्रयोग नहीं करते। अपनी कविता में अपनी सारी काव्यात्मक जिम्मेदारी के साथ उसे 'वस्तु' ही बने रहने देते हैं। 'नगई महरा' में त्रिलोचन ने कविता के सारे प्रलोभनों को एक तरफ रखकर और पूरी तरह अकाव्यात्मक हो जाने का खतरा उठाते हुए भी इस पद्धति का अत्यंत सधा हुआ इस्तेमाल किया है। वे गाँव-गवई के अपढ़ कथावाचक की तरह एक-एक दृश्य और घटना को सामने लाते जाते हैं और एक अद्भुत धैर्य के साथ मानो इस बात का इंतजार करते हैं कि तथ्यात्मक तफसीलों से भरा और ऊपर से तनावयुक्त दिखनेवाला यह सारा वर्णन धीरे-धीरे परस्पर गुम्फित होकर एक अर्थपूर्ण रुपक में बदल जाए।'' (140)

त्रिलोचन द्वारा लिखित 'नगई महरा' (ताप के ताए हुए दिन), 'चित्रा जांबोरकर' (ताप के ताए हुए दिन) आदि कविताओं में कथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

वर्णनप्रधान इतिवृत्तात्मक शैली - इस शैली के अंतर्गत प्रारंभ से लेकर अंत तक तत्वों एवं तथ्यों का वर्णन करना अपेक्षित हैं। त्रिलोचन की कविताओं में वर्णनप्रधान इतिवृत्तात्मक शैली प्राप्त होती है। इस संदर्भ में केदारनाथ सिंह लिखते

है- ''एक ऐसे युग में जब कला अपने सिकुड़ते हुए पाठक वर्ग की रुचि के अनुरूप निरंतर सूक्ष्म और विशेषीकृत होता जा रही है, त्रिलोचन जैसे कवि का वर्णनात्मकता की सामान्य और लोकपरक पद्धति को अपनी काव्यकला का बुनियादी साँचा बनाना एक जोखिम का काम है और कवि को लंबे समय तक समकालीन कविता की पृष्ठभूमि में रहकर उनकी कीमत भी चुकानी पड़ी।''(141)

कई बार त्रिलोचन द्वारा प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली के कारण कलात्मकता की कसौटी पर आलोचकों ने उसे नहीं तराशा लेकिन कुछ आलोचकों ने टिकाओं का खंडन भी किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी का मानना है कि त्रिलोचन उतना ही कहते हैं जितना कहना अनिवार्य है।

त्रिलोचन की वर्णनप्रधान शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है-

सरदी के ठिठुरे शरीर के
अंग अंग को छू कर
सूरज की किरणों ने
बंधी मुट्ठियों को खोला
फिर अंग अंग की सिकुड़न हर कर
और रक्त का संचालन कर
स्वस्थ बनाया -(142)

'एक पहर दिन आया होगा' (धरती), 'स्पष्टीकरण' (दिगन्त), 'ध्वनिग्राहक'(दिगन्त), 'रेलगाडी में' (दिगन्त), 'रात में' (दिगन्त), 'सन्धा ने मेघों के कितने चित्र बनाये' (उस जनपद का कवि हूँ) 'झाँय झाँय करती दुपहरिया' (उस जन पद का कवि हूँ) 'चारों ओर घोर बाढ आई है' (तुम्हें सौंपता हूँ) 'रैन बसेरा' (तुम्हें सौपता हूँ), 'कर्म की भाषा'(चैती) में वर्णनप्रधान और इतिवृत्तात्मक शैलियाँ प्राप्त होती हैं।

उद्‌बोधनात्मक शैली - पाठकों को उद्‌बोधित, प्रेरित करनेवाले, आह्‌वान दिलानेवाले शब्द-विन्यासों का प्रयोग इसके अंतर्गत पाया जाता है। त्रिलोचन ने सामाजिक भावभूमि को तैयार करने के लिए जनता को उद्‌बोधित करनेवाले गीत लिखे हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण देखिए-

गाओ गाओ गान
क्षितिज कोर पर आई आई
उषा नई छवि से मुसकाई
विहग सुनाने लगे जाग कर
अपने अपने गान।(143)

विवरणात्मक शैली - इसके अंतर्गत रचनाकार विषय-प्रतिपादन के अवसर पर वर्ण्य-विषय पर विवरण प्रस्तुत करता है।

'झापस' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

गंगा तट सूना है
गिने चुने स्नानार्थी वहीं आते हैं
जो यहाँ सदा आते हैं
फूलवाले, पटरी के दुकानदार, भाजी वाले
आज अनुपस्थित है (144)

'आजकल लड़ाई का जमाना है' (धरती), 'सिपाही और तमाशबीन' (दिगन्त), 'कस्मै देवाय' (दिगन्त), 'लाश'(दिगन्त), 'स्त्री के लिए जान दे दी' (उस जनपद का कवि हूँ), 'पर्वत की दुहिता'(अरधान), 'सभी बुरे हो गए' (फूल नाम है एक) में विवरणात्मक शैली है।

संवादात्मक शैली - त्रिलोचन ने कविता को सम्प्रेषित करने के लिए संवादात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'नन्हें' कविता में नन्हें हवाई जहाज के लिए हठ करता है और कहता है-

पापा, हवाई जहाज
जाओ, अभी ला दो
हम उसे उडाएंगे-(145)

'छुट्टा बंधुआ' (दिगन्त), 'खीझ' (दिगन्त), 'मूर्तिपूजा'(दिगन्त), 'द्वारपाल हो', 'जाकर कहो' (फूल नाम है एक), 'हो तुम भी घोंचू ही' (फूल नाम है एक) 'दुनियादार ने कहा' (फूल नाम है एक), 'रात अंधेरे में' (फूल नाम है एक) 'बात क्या है' (चैती) में संवादात्मक शैली है।

लोक-गीतात्मक शैली - लोक-जीवन, लोक-संस्कृति से जुड़े हुए शब्द लोक-गीतात्मक शैली के अंतर्गत आते हैं। लोक-जीवन को दर्शानेवाले त्रिलोचन के गीत लोक-गीतात्मक शैली के हैं।

रामनरेश त्रिपाठी लोकगीतों के विषय में लिखते हैं- ''ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार है, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है, छन्द नहीं, केवल लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।''(146)

मानव हृदय के अन्त:स्थल से निकली ग्रामीण परिवेश की कविता ही उनकी दृष्टि से लोकगीत है जिसमें कृत्रिमता का अभाव रहता है। त्रिलोचन की कविताओं में लोक-जीवन की सरलता, सादगी प्राप्त होती है। 'माली के छोकरे' कविता का

उदाहरण द्रष्टव्य है-

माली के छोकरे, माली के छोकरे
फूल मुझे ला दे बेले के
बेले की कलियों के गजरे बनाऊंगी
पाँच-पाँच लड़ियों के गजरे बनाऊंगी
हाथों में कंगन गले बीच हार
बालों में होगी लहरिया बहार-(147)

'कोइलिया न बोली' (तुम्हें सौंपता हूँ), 'फूल मुझे ला दे बेले के' (तुम्हें सौंपता हूँ), 'कजरी' (तुम्हें सौंपता हूँ) आदि कविताएँ लोक-गीतात्मक शैली में लिखी गयी है।

आधुनिक काल के अंतर्गत समकालीन रचना-विधान के तहत यथार्थवादी, व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक शैली की रुपयोजना प्राप्त होती है जिसकी चर्चा मैं कर रही हूँ।

यथार्थवादी शैली - यथार्थवादी शैली के अंतर्गत रचनाकार के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह समस्याओं का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करें न कि वायवीय या काल्पनिक उड़ानें भरें। हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी अवधारणा के साथ ही इस शैली की शुरूवात हुई। इसे हम छायावादी कवियों में मुख्यतः निराला, प्रसाद और पंतजी की बाद की कविताओं में देख सकते हैं। कथा साहित्य में प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया गया है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि प्रगतिशील रचनाकारों की रचनाओं में इसका विकास हुआ। त्रिलोचन ने यथार्थवादी शैली के अंतर्गत वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन का यथार्थवादी ढंग से अंकन किया है। त्रिलोचन साहित्यकार के जीवन का वास्तविक चित्र उकेरते हुए कहते हैं कि आज के आधुनिक जीवन में यदि साहित्यकार के पास दुनियादारी, व्यावहारिकता नहीं है तो उसे भूखों रहना पड़ सकता है।

ऐसा हो राष्ट्रपति कि जीमे,
फिर डकार ले दुर्घटना से
मुझे दुःख है, यह सकार ले -(148)

त्रिलोचन ने 'धरती', 'दिगन्त', 'ताप के ताए हुए दिन', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'तुम्हें सौंपता हूँ', 'फूल नाम है एक' आदि काव्य संग्रहों में सामाजिक जीवन का यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया है।

व्यंग्यात्मक शैली - व्यंग्यात्मक शैली के अंतर्गत रचनाकार व्यंजना-

विडंबना का प्रयोग करके अपने प्रतिपाद्य को अभिव्यंजित करता है।

त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

'मूर्तिपूजा' (दिगन्त) 'जगदीशजी का कुत्ता' (दिगन्त), 'गद्य-पद्य कुछ लिखा करो' (उस जनपद का कवि हूँ) 'प्रगतिशील कवियों की नयी लिस्ट निकली है' (उस जनपद का कवि हूँ), 'कैसा युग है' (फूल नाम है एक) 'देसी और विदेसी लादी' (फूल नाम है एक), 'कौर छीन कर औरों का' (फूल नाम है एक) 'कीर्तन ने इन दिनों' (फूल नाम है एक) 'ऐसा ही था' (चैती) में व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति को अपनाया है। प्रगतिवादी दौर के रचनाकारों में नागार्जुन को व्यंग्य का कवि कहा जाता है। स्वयं त्रिलोचन नागार्जुन के व्यंग्य की पैनी धार को उद्धृत करते हुए कहते है-

अत्याचार अनय पर नागार्जुन का कोड़ा
चूका कभी नहीं। कोड़ा है वह कविता का
कहीं किसी ने जानबूझ कर अनभल ताका
अगर किसी का तो कवि ने कब उस को छोड़ा[149]

प्रस्तुत कविता में कवि ने नागार्जुन के व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति का विवेचन प्रस्तुत किया है। कबीर के पैने व्यंग्य से भी त्रिलोचन अत्याधिक प्रभावित रहे। त्रिलोचन निराला से अत्याधिक रूप से प्रभावित थे, अत: निराला के समान उनकी कविताओं में भी व्यंग्य की प्रवृत्ति नजर आती है। परंतु इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि निराला और नागार्जुन के व्यंग्य की नुकीली धार की अपेक्षा त्रिलोचन का व्यंग्य मर्यादित है।

प्रतीकात्मक शैली - प्रतीकात्मक शैली के अंतर्गत रचनाकार प्रतीकों का प्रयोग करके वर्ण्य-विषय को व्याख्यायित करता है।

त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में सामाजिक एवं प्राकृतिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया है। त्रिलोचन लिखते है-

कालिमा आज और ज्यादा है,
अभी चिंता कर इसे धोने की,[150]

इसमें कालिमा अंधकार, विनाश का प्रतीक है। उनकी कविताओं में 'लाल सेना', 'लपटा' क्रांति का प्रतीक है तथा 'धरती' सामाजिक भावभूमि को प्रस्तुत करती है।

त्रिलोचन के द्वारा लिखित 'उजले बादल आकाश में' (धरती), 'शारदा और निर्झर' (दिगन्त), 'इधर घनों के खेल' (फूल नाम है एक), 'प्रकाश के रंग'

(चैती), आदि कविताओं में प्रतीकात्मकता दिखायी देती है।

जीवन सिंह के अनुसार, ''उनकी कविता में जीवन-क्रियाओं, उससे संबद्ध चेतना तथा भाषा का एक ऐसा संश्लिष्ट रुप बनता है जो एक संवेदनशील ईमानदार एवं जागरूक पाठक को प्रभावित किये हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी सफलता इस बात में है कि वे जिस जीवन-वस्तु में चुनते हैं वही से उसकी खाद भी ग्रहण करते हैं। जीवन वास्तव और उसकी अभिव्यक्ति का द्वैत वहाँ नहीं रहता। इसके बावजूद भी उनकी भाषा कविता की भाषा बनी रहती है।''(151)

वस्तुत: त्रिलोचन के जीवनानुभव और लेखन का फलक इतना विस्तृत और गहन रहा है कि इनकी कविताओं में कई शैलियों का समावेश हुआ हैं। काल से होड़ लेते हुए इनके विचार अपनी सहजता में जिस तरह फूटे वही इनकी शैली बन गई। काव्य रुप का निर्धारण करने से जैसे कविता की मौलिकता समाप्त हो जाती है। मेरी समझ से शैली पर भी यह बात लागू होती है।

''विचारों की बुनावट में एक ऐसी गझिन अन्विति और क्रमबद्धता कि बीच में से विचार का कोई धागा निकाल दें तो वह हिलने लगेगी। अर्थात कविताओं में एक 'स्ट्रेक्चर' का सा स्थापत्य, एक बिल्ड-अप करने का भाव। एक स्ट्रोक के बाद दूसरा इस तरह कि अनुभव स्पष्ट आकार की ओर बढ़ता हुआ सा जान पड़ता है। वस्तुत: उनकी कविताओं में शास्त्रीय राग का आकार समाया हुआ है, किसी व्यवस्थित बंदिश की तरह आदि और अन्त लिए।''(152)

अनुभूति संवेदन और वैचारिक स्तर पर उनका प्रक्षेपण समान अनुपात में होने के कारण त्रिलोचन की भावों, विचारों और शिल्प की बनावट एवं बुनावट में एक विशेष प्रकार की अन्विति नजर आती है।

अंत में मैं सुरेश गौतम द्वारा उद्धृत विवेचन से त्रिलोचन की शिल्प संबंधी विशेषताओं को रेखांकित कर रही हूँ।

शिल्प की दृष्टि से कवि में सरल सहज एवं गत्यात्मक अभिधात्मक भाषा का ही प्रयोग दृष्टिगत होता है। सरल और प्रांजल शैली में समाया हुआ गीतित्व नवीन आकर्षण लिए हुए है। परंपरागत शैली में रचित कविताओं को भी कवि की अद्भुत मौलिकता ने सजीव रूप दे दिया है। पंक्तियाँ छोटे-छोटे शब्द-खंडों में टूटकर भी भावों को भरपूर सामर्थ्य के साथ उजागर करने में सक्षम हैं।''(153)

-x-x-x-

संदर्भ सूची - सप्तम अध्याय

1. नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृ.1344
2. प्रामाणिक हिन्दी कोश : आचार्य रामचंद्र वर्मा, पृ.791
3. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आपटे, पृ.1019
4. नये कवियो के कव्य शिल्प सिद्धांत, रमेश दिवक, पृ. 4
5. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, डॉ. हरदयाल, पृ. 4
6. वही, पृ. 4
7. काव्यप्रकाश श्रीराजाजकमम्मटाचार्य प्रणीत, पृ.13
8. उपन्यास तत्व एवं रूप विधान, श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ. 184
9. नये कवियों के काव्य शिल्पसिद्धांत, रमेश दिविक, पृ. 9
10. वही, पृ. 9
11. प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान : डॉ कमल किशोर गोयनका, पृ.15
12. साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेंद्र, पृ.355
13. काव्य शास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 6
14. उपन्यास तत्व एवं रूप विधान, श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ 191
15. तीसरा सप्तक : संपादक - अज्ञेय, पृ.10-11
16. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प : डॉ. हरदयाल, पृ.5
17. चिंतामणि, कविता क्या है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.118
18. शैली-विज्ञान : डॉ. नीरजा टंडन, पृ.137
19. काव्य रचना प्रक्रिया तथा शब्दानुबंध, लेख - प्रो. निशांत केतु, पुस्तक-काव्य रचना प्रक्रिया, पृ.240
20. वही, पृ.16
21. 'रचना प्रक्रिया' : विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ.9
22. वही, काव्यभाषा और रचना प्रक्रिया : डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, पृ.172
23. दिगन्त
24. सापेक्ष, महावीर अग्रवाल और त्रिलोचन की बातचीत, पृ.704
25. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, पृ. 27
26. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.244
27. त्रिलोचन संचयिता, संपादक ध्रुव शुक्ल, पृ. 71

28. सापेक्ष - प्रेमशंकर और गोविंद द्विवेदी से बातचीत, पृ.125
29. सापेक्ष, शब्दों में भी हाड-मांस है, जीवन यदु, पृ.523
30. गुलाब और बुलबुल, पृ. 28
31. सापेक्ष - शब्दों में भी हाड मांस है, जीवन यदु, पृ.523
32. वही, पृ.524
33. सापेक्ष, त्रिलोचन शास्त्री से प्रोफेसर जैदी की बातचीत, पृ.75
34. त्रिलोचन संचयिता, संपादक ध्रुव शुक्ल, पृ. 15
35. सापेक्ष, धरती के कवि त्रिलोचन, रामदरश मिश्र, पृ.146
36. सापेक्ष, सबका अपना आकाश और त्रिलोचन : डॉ. उषा, भटनागर, पृ.569
37. अमोला, पृ.158
38. जब देखा तब जीवन देखा, राजेश जोशी, आलोचना-1989
39. सापेक्ष-महावीर अग्रवाल के साथ त्रिलोचन की बातचीत, पृ.697
40. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.78
41. शब्द, पृ.69
42. त्रिलोचन- प्रतिनिधि कविताएँ, अरधान, जीवन का खेल
43. सहज सुंदर का अर्थ, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.
44. त्रिलोचन : एक कवि, एक प्रश्नचिह्न : डॉ. भगवान सिंह, पृ.131
45. दिगन्त, भादों की रात, पृ.28
46. सापेक्ष, कविवर त्रिलोचन, राममूर्ति त्रिपाठी, पृ.144
47. सापेक्ष, कवि त्रिलोचन और उनका लोकमानस, पृ. 180
48. सापेक्ष देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने : नरेंद्र पुण्डरीक, पृ.224
49. साधारण का असाधारण कवि : डॉ नामवर सिंह, पृ. 33
50. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.259-260
51. फूल नाम है एक, पृ.44
52. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ.
53. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.43
54. जीवन की लय में मुक्ति का राग : मैनेजर पाण्डेय आलोचना-1987
55. सापेक्ष, त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक, डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ.251
56. दिगन्त, काशी का जुलहा
57. सापेक्ष, त्रिलोचन : हरदम अलाव के पास : डॉ.कान्तिकुमार जैन, पृ.39
58. शब्द, पृ.41

59. शब्द पृ. 28
60. सापेक्ष, प्लेटफार्म तीन पर खडा है त्रिलोचन : राजेंद्र आहुति, पृ.297
61. दिगन्त, पृ.58
62. त्रिलोचन के बारे में, ''त्रिलोचन : आधुनिकता और परंपरा बोध'' : रामविलास शर्मा, पृ.79
63. दिगन्त, भाषा की लहरें
64. औसत भारतीयता का कवि -मलयज कविता से साक्षात्कार, 1979
65. ताप के ताए हुए दिन, पृ.43
66. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.78
67. सापेक्ष, जिन्दगी के साथ गुफ्तगू करती कवितायें : डॉ. गोरेलाल चंदेल, पृ.587
68. त्रिलोचन के बारे में, 'सरलता का आकाश' भूमिका, पृ.21
69. चैती, पृ.15
70. चैती, पृ.20
71. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.59
72. सबका अपना आकाश, पृ.24
73. आधुनिक हिन्दी कविता : डॉ. हरदयाल, पृ.132
74. कविता की मुक्ति : डॉ. नंदकिशोर नवल, पृ.35
75. सौंदर्य शास्त्र के तत्व : डॉ. कुमार विमल, पृ.218
76. सापेक्ष, कवि त्रिलोचन शास्त्री : चंद्रबली सिंह,पृ.429
77. दिगन्त, प्राणों का गान, पृ.12
78. त्रिलोचन : एक कवि, एक प्रश्नचिह्न : डॉ. भगवान सिंह
79. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताई : चंचल चौहान, पृ.435
80. फूल नाम है एक, पृ.49
81. काव्यभाषा, डॉ. सियाराम तिवारी, पृ.83
82. I find no peace- David Green
83. The new Shakspeare by John Dover Wilson, पृ. 60
84. Elizxbethan Lyrical Poets, edited by Patricia Thomson, पृ.32
85. The Penguin Book of English Verse, Edited by John Hayward, पृ.147
86. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.11
87. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.49
88. वही, पृ.42

89. शब्द, पृ.21
90. दिगन्त, पृ.19
91. ताप के ताए हुए दिन, पृ.47
92. भाषा जनवरी-फरवरी 2000, प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन और उनका सॉनेट, डॉ. किरण सिंह
93. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.58
94. ताप के ताए हुए दिन,पृ.11
95. दिगन्त, पृ.11
96. भाषा जनवरी-फरवरी 2000, प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन और उनका सॉनेट, डॉ. किरण सिंह
97. वही
98. दिगन्त ,पृ.19
99. दिगन्त ,पृ.35
100. रूपतरंग, पृ.288
101. ताप के ताए हुए दिन, पृ.48
102. अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ.100
103. त्रिलोचन के बारे में, कवि त्रिलोचन शास्त्री, चंद्रबली सिंह, पृ.70
104. फूल नाम है एक, पृ.13
105. सापेक्ष, शिवमंगल सिंह सुमन से प्रमोद त्रिवेदी की बातचीत, पृ.106
106. दिगन्त, पृ.7
107. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.254-255
108. दिगन्त, पृ.31
109. सापेक्ष, उसका स्वाभाविक सरल उजाला दिपता है : सुधीश पचौरी, पृ.164
110. दिगन्त, पृ.28
111. सापेक्ष, कविताएँ : त्रिलोचन की तब और अब के संदर्भ में, केदारनाथ अग्रवाल , पृ.382
112. त्रिलोचन के बारे में, सरलता का आकाश-भूमिका, पृ.21
113. दिगन्त, पृ.38
114. सापेक्ष, महावीर अग्रवाल और त्रिलोचन का वार्तालाप, पृ.690
115. वही, पृ.692
116. गजल एक यात्रा, सूर्यप्रकाश शर्मा, पृ.88

117. गुलाब और बुलबुल, पृ.18
118. सापेक्ष, कविताएँ त्रिलोचन की तब और अब के संदर्भ में : केदारनाथ अग्रवाल, पृ.379
119. गुलाब और बुलबुल, पृ.40
120. वही, पृ.62
121. काव्य के रुप, बाबू गुलाबराय, पृ.109
122. हिन्दी साहित्य का इतिहास, शिवकुमार शर्मा
123. तुम्हें सौंपता हूँ, पृ.16
124. जब देखा तब जीवन देखा : राजेश जोशी, आलोचना-1987
125. ताप के ताए हुए दिन, पृ.69
126. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ, संपादक राजीव सक्सेना, पृ.207
127. चैती, पृ.43
128. प्रगतिशील कविता के सौंदर्य मूल्य, अजय तिवारी, पृ.288
129. त्रिलोचन के बारे में, जनपद का कवि, त्रिलोचन से मंगलेश डबराल की बातचीत, पृ. 241
130. कविता की मुक्ति, नंदकिशोर नवल , पृ. 37
131. शैली विज्ञान, डॉ. नीरजा टंडन, पृ.48
132. वही, पृ.42
133. रीति और शैली, पृ.75
134. प्रेमचंद कथा साहित्यः समीक्षा और मूल्यांकन, पृ. 236
135. गुलाब और बुलबुल, पृ.119
136. सापेक्ष, त्रिलोचन की कविताई, चंचल चौहान, पृ.435
137. गुलाब और बुलबुल, पृ.54
138. सापेक्ष, परिसंवाद, पृ.247
139. ताप के ताए हुए दिन, पृ.82
140. त्रिलोचन के बारे में, 'ताप के ताए हुए : त्रिलोचन' : केदारनाथ सिंह,
141. वही
142. धरती, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.83
143. सबका अपना आकाश, पृ.20
144. दिगन्त (झापस)
145. चैती, पृ.17

146. आधुनिक हिन्दी कविता में गीतितत्व : डॉ. सच्चिदानंद तिवारी, पृ.156
147. तुम्हें सौपता हूँ., पृ.37
148. त्रिलोचन संचयिता, संपादक ध्रुव शुक्ल, पृ. 220
149. फूल नाम है एक, पृ.65
150. गुलाब और बुलबुल, पृ.41
151. त्रिलोचन की कविता का अर्थ : जीवन सिंह, पृ.133,134
152. 'त्रिलोचन के बारे में', भूमिका, पृ.26
153. प्रगतिवादी गीतिधारा, सुरेश गौतम, पृ.147

o-o-o-o--o

उपसंहार

व्यक्ति की संवेदनशीलता और प्रतिबद्धता का दूसरा नाम है त्रिलोचन शास्त्री। उक्त स्वभावगत प्रकृति के अनुरूप ही उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण हुआ है। समाज में स्थित तथाकथित रुढ मान्यताओं को नकारते हुए विरोधी परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व एवं अस्मिता को बनाए रखना सरल नहीं है। जो इस भयंकर स्थितियों से जुझते हैं वे ही जानते हैं कि इसकी दाहकता क्या होती है? त्रिलोचन के व्यक्तित्व का निर्माण इन्हीं परिवेश में हुआ।बुजूर्ग रचनाकारों में वे एक ऐसे रचनाकार है जिन्हें संघर्षो ने और जुझारू बनाया, अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध रखा, टस से मस होने नहीं दिया। आज के साहित्यिक परिवेश में जहाँ कसमसाहट और गुटबाजी भरी पड़ी है वहाँ त्रिलोचन हमारे लिए एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। त्रिलोचन उत्तर आधुनिकता, बाजारवाद, भूमंडलीकरण आदि के प्रभाव से अलिप्त होकर काव्य-सर्जना के क्षेत्र में अपनी ही धुन में मस्त है।

मैंने त्रिलोचन की काव्यदृष्टि को परखने के लिए उनके प्रारंभिक जीवन परिवेश के अंतर्गत कुल-परिवार, स्वभाव-संस्कार, अध्ययन और अध्यापन का जिक्र किया है। किसी भी रचनाकार के दृष्टि निर्माण की यह पहली पाठशाला होती है, जहाँ से कि उसके संस्कार ग्रहण करने की प्रक्रिया शुरू होती है। किंवदन्ती पुरूष त्रिलोचन के जीवन के परिदृश्य मानो किस्सा-कहानियों के असामान्य पात्र लगते हैं। प्राय: सामान्य

स्थितियों में व्यक्ति के लिए जो असंभव है, वहीं त्रिलोचन उसे संभव कर दिखाते है। अर्थाभाव उनके जीवन की महत्वपूर्ण समस्या थी। सामान्यत: व्यक्ति विविध समस्याओं से जुझने के कारण उसमें सर्जनात्मक गुण होकर भी वह सर्जनात्मक-रचनात्मक कार्य नहीं कर पाता- उसके ठूँठ बनने की संभावना अत्याधिक रहती है लेकिन हिन्दी जगत में तुलसी, निराला और त्रिलोचन बिरले ही है।

त्रिलोचन आस्था-विश्वास और मानवीयता के गायक हैं। 'धरती'(1945) से लेकर 'मेरा घर' (2002) तक की रचनाओं में उनका मानवतावादी स्वर मुखर रहा है। धरती के कवि त्रिलोचन में अपनी जड़ों के प्रति लगाव है। यह लगाव रुढिग्रस्तता की ओर नहीं बढता बल्कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता-परंपरा को बनाए रखने के पक्ष में उजागर हुआ है। उनके द्‌वारा लिखित विभिन्न काव्य-संग्रहों में से विशेष रुप से 'धरती'(1945) 'ताप के ताए हुए दिन' (1980) 'उस जनपद का कवि हूँ'(1981) 'अनकहनी भी कुछ कहनी है'(1986) आदि में मानव लोक जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है। त्रिलोचन के काव्य विकास क्रम के साथ देश में कई परिवेशगत परिवर्तन हुए। स्वातंत्र्योत्तर काल का दौर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इस दौर में विभाजन, रक्त-पात, मानवीय मूल्यों का विघटन, त्रासदी, विडंबना, भाई-भतीजावाद, कुंठा आदि को चित्रित करने में जहाँ साहित्यिक महर्षी निरत थे वहीं पर त्रिलोचन जनपद-अवाम को संबोधित करके मानव के अनुरागमयी जीवन को विश्लेषित करने में अपनी सार्थकता मान रहे थे। त्रिलोचन एक ऐसे रचनाकार है जो प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, समकालीन कविता के विभिन्न झंझावातों को देख चुके हैं और वे देख रहे हैं फिर भी वे इसके बीच में रहकर भी उसके थपेड़ों से वंचित है। जैसा कि मैंने प्रारंभ में कहा था कि वे निर्भीक है और उनकी दृष्टि में तटस्थता है। उन्हें अपने जीवन ने ही इतना तटस्थ बनाया।

उपलब्धियाँ और सीमाएँ साथ-साथ चलती है। कई बार त्रासद परिस्थितियाँ व्यक्ति के व्यक्तिगत अभ्युत्थान में रोड़े ड़ालती है तो वे ही स्थितियाँ व्यक्ति को प्रेरित करके कर्मठ भी बनाती है। अत: आवश्यकता है कि सकारात्मक रुप से व्यक्ति उन उपलब्धियों एवं सीमाओं को जानकर मार्गक्रमण करें फिर कोई किंतु-परंतु नहीं रह पाता। त्रिलोचन ने इसे भली-भाँति जान लिया था, केवल जाना ही नहीं उसे अपने जीवन में उतार भी लिया था, इसलिए वे प्रगतिगामी हो सकें।

त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि में पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, भारत देश का उद्‌धार, परिवर्तनशील-विकासगामी दृष्टि, प्रताडित-लांछित जनता को अपने स्तर से ऊपर उठाने के लिए जन-मानस के मन

स्थितियों में व्यक्ति के लिए जो असंभव है, वहीं त्रिलोचन उसे संभव कर दिखाते है। अर्थाभाव उनके जीवन की महत्वपूर्ण समस्या थी। सामान्यत: व्यक्ति विविध समस्याओं से जुझने के कारण उसमें सर्जनात्मक गुण होकर भी वह सर्जनात्मक-रचनात्मक कार्य नहीं कर पाता- उसके ठूँठ बनने की संभावना अत्याधिक रहती है लेकिन हिन्दी जगत में तुलसी, निराला और त्रिलोचन बिरले ही है।

त्रिलोचन आस्था-विश्वास और मानवीयता के गायक हैं। 'धरती'(1945) से लेकर 'मेरा घर' (2002) तक की रचनाओं में उनका मानवतावादी स्वर मुखर रहा है। धरती के कवि त्रिलोचन में अपनी जड़ों के प्रति लगाव है। यह लगाव रुढिग्रस्तता की ओर नहीं बढता बल्कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता-परंपरा को बनाए रखने के पक्ष में उजागर हुआ है। उनके द्‌वारा लिखित विभिन्न काव्य-संग्रहों में से विशेष रुप से 'धरती'(1945) 'ताप के ताए हुए दिन' (1980) 'उस जनपद का कवि हूँ'(1981) 'अनकहनी भी कुछ कहनी है'(1986) आदि में मानव लोक जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है। त्रिलोचन के काव्य विकास क्रम के साथ देश में कई परिवेशगत परिवर्तन हुए। स्वातंत्र्योत्तर काल का दौर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इस दौर में विभाजन, रक्त-पात, मानवीय मूल्यों का विघटन, त्रासदी, विडंबना, भाई-भतीजावाद, कुंठा आदि को चित्रित करने में जहाँ साहित्यिक महर्षी निरत थे वहीं पर त्रिलोचन जनपद-अवाम को संबोधित करके मानव के अनुरागमयी जीवन को विश्लेषित करने में अपनी सार्थकता मान रहे थे। त्रिलोचन एक ऐसे रचनाकार है जो प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, समकालीन कविता के विभिन्न झंझावातों को देख चुके हैं और वे देख रहे हैं फिर भी वे इसके बीच में रहकर भी उसके थपेड़ों से वंचित है। जैसा कि मैंने प्रारंभ में कहा था कि वे निर्भीक है और उनकी दृष्टि में तटस्थता है। उन्हें अपने जीवन ने ही इतना तटस्थ बनाया।

उपलब्धियाँ और सीमाएँ साथ-साथ चलती है। कई बार त्रासद परिस्थितियाँ व्यक्ति के व्यक्तिगत अभ्युत्थान में रोड़े ड़ालती है तो वे ही स्थितियाँ व्यक्ति को प्रेरित करके कर्मठ भी बनाती है। अत: आवश्यकता है कि सकारात्मक रुप से व्यक्ति उन उपलब्धियों एवं सीमाओं को जानकर मार्गक्रमण करें फिर कोई किंतु-परंतु नहीं रह पाता। त्रिलोचन ने इसे भली-भाँति जान लिया था, केवल जाना ही नहीं उसे अपने जीवन में उतार भी लिया था, इसलिए वे प्रगतिगामी हो सकें।

त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि में पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, भारत देश का उद्‌धार, परिवर्तनशील-विकासगामी दृष्टि, प्रताडित-लांछित जनता को अपने स्तर से ऊपर उठाने के लिए जन-मानस के मन

में मानवता से भरी हुई संवेदनशील दृष्टि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। त्रिलोचन की प्रगतिशील दृष्टि तथाकथित प्रगतिवादी कवियों के समान नारेबाजी नहीं करती। वर्ग-विहीन समाज की कामना करते हुए उच्च वर्ग का विनाश और निम्न-वर्ग (सर्वहारा) की पक्षधरता की बात करके त्रिलोचन चुप्पी नहीं साधते। वे क्रियाशील होकर सर्वहारा वर्ग के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करने के पक्ष में हैं। इसलिए गरीबों को देखकर वे उनके दु:खों को बाँटने के लिए कविता के माध्यम से उनके बीच जाते हैं, शब्दों का महल खड़ा करके उसमें वे सभी को रचाने-बसाने की बात करते हैं। जब कि आज की व्यावहारिक बुद्धि के अनुरूप इस प्रकार का वक्तव्य अशोभनीय माना जाता है। लेकिन त्रिलोचन व्यक्तिगत 'स्व' की परिधि से हटकर लोगों में मानवीयता से सिक्त होकर व्यापक-विशाल भावभूमि को तैयार करना चाहते है। अत: कह सकते है कि त्रिलोचन की प्रगतिशीलता में भी संवेदनशीलता है। वे संवेदना और भावनाओं में जीते हैं और इस प्रकार की विचारधारा के कारण जो मूल्य चुकाने पड़ते हैं, उसे चुकाते भी है। फिर भी उनकी कविताओं को कोई यदि अपनी कविता नहीं कहता तो भी उन्हें इस बात का कोई मलाल नहीं है। उनकी दृष्टि में यही महत्वपूर्ण है कि वे समाज से जुड़े हुए हैं।

त्रिलोचन के समाज में नगई महरा, चित्रा जांबोरकर, भोरई, अवतरिया, काका, चम्पा, भौजी जैसे सामान्य लोग हैं जो जीवन को सुचारू ढंग से परिचालित करने के लिए व्याकुल हैं लेकिन कर नहीं पाते। इस प्रकार के चरित्रों के चित्रण के द्वारा कहीं न कहीं त्रिलोचन का व्यक्तिगत जीवन का दृष्टिकोण झलकता है। बाल्यस्मृति में 'काका' की मौत, भौजी के साथ होली खेलना हो या 'नगई महरा' का भोज खिलाना हो- सारी स्थितियाँ विगत जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं। कई बार जब ऐसा लगने लगता है कि बहुत कुछ हाथ से छूट रहा है तब व्यक्ति सायास उसे पकडने की, उसके साथ जकडने की कोशिश करता रहता है- विशेषत: ऐसे अवसरों पर जब व्यक्ति उन छुटे हुए, छूट रहे लह्मों को महसूस कर रहा हो। इसलिए त्रिलोचन सामाजिक जीवन का चित्रण करते हुए गाँव की ओर बढ़ते हैं। उनकी संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है। उनकी कविताओं में चित्रित देहात केवल उसके सुखद पक्ष को ही रेखांकित नहीं करता बल्कि हम उनकी कविताओं में ग्राम्य जीवन की वास्तविकता को देखते हैं। सुमित्रानंदन पंत के काव्य विकास में दूसरे चरण की रचनाओं में 'ग्राम्या' में गाँव की संस्कृति जीवंत हो उठी है। यहाँ आकर पंत के प्रति हमारी एक अलग दृष्टि बनती है जोकि हमें कहीं न कहीं त्रिलोचन से जोड़ती है।

त्रिलोचन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण के तहत एक ओर जहाँ पति-पत्नी मिलकर खेत में पानी देते हैं वहीं दूसरी ओर गाय पर भिनभिनाती मक्खियाँ

भी दिखायी देती है। आज का नया कवि और प्रकारांतर से नया साहित्यकार जहाँ पारिवारिक संबंध-विच्छेद की चर्चा करने में स्वयं को आधुनिक कहलाता है वहाँ त्रिलोचन की नायिका अमोला बढ गया है, गाय का वर्णन करके अपने पति को पत्र के द्वारा जो इंगित करती है, वही है हमारी भारतीय संस्कृति, उसमें संकोच है। यहाँ पर त्रिलोचन की विचारधारा की विशिष्टता निश्चित रुप से नजर आती है।

त्रिलोचन की प्रेम और प्रकृति संबंधी दृष्टि में आधुनिक काल की बीभत्सता या मांसलता नहीं है अपितु सात्विक प्रेम की झलक है जो कि हमें अपनी परंपरा से जोड़ती है। कहीं-कहीं उनके काव्य में प्रकृति-चित्रण मात्र प्रकृति के लिए है तो कहीं-कहीं प्रकृति को मानव-जीवन से जोड़कर देखा गया है- 'नदी कामधेनु' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। त्रिलोचन के प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में प्रेम, अनुराग, ममत्व, दया, करूणा, त्याग की भावना अत्याधिक है। उनका प्रेम मानसिक है।

त्रिलोचन अपने प्रतिपाद्य को प्रतिपादित करने के लिए जिस शिल्प का निर्माण करते हैं वह सम्प्रेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कविता यदि आम जनता से नहीं जुड़ती तो उसका अपना कोई महत्व नहीं है। वे अपनी रचनाओं को आलोचकों की प्रशंसा का विषय नहीं बनाते। जिस प्रकार से वे विषय-वस्तु के चुनाव में तथाकथित मान्यताओं को नकारते हैं उसी प्रकार से प्रयोगवाद और नयी कविता की भीड़ भी उन्हें आकर्षित नहीं कर पाती। निश्चित रुप से सॉनेट, ग़ज़ल, गीत, चतुष्पदियाँ, कुंडलियाँ लिखनेवाले त्रिलोचन शिल्प की दृष्टि से नए-नए प्रयोग करते हैं लेकिन उनमें वह प्रयोगशीलता-प्रयोगधर्मिता के अंतर्गत है, प्रयोगवादिता के तहत नहीं।

हिन्दी काव्य जगत में त्रिलोचन को सॉनेट का पर्याय माना जाता है। 'उस जनपद का कवि हूँ', 'दिगन्त', 'ताप के ताए हुए दिन' आदि काव्य-संग्रहों में उनके सॉनेट काव्यरूप की सफल अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः सॉनेट का प्रारंभिक स्वरूप उदात्त प्रेमानुभूति को प्रकट करने का एक सफल माध्यम था। कालांतर में शेक्सपियर एवं मिल्टन ने इसे आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया। त्रिलोचन की खास बात यह है कि इन्होंने इसे अपनी लोकधरती से जोड़कर एक नया आयाम प्रदान किया।

यह सही है कि त्रिलोचन की कविता लोगों का कंठहार नहीं बनी और उसकी जमीन सदैव अद्भुत मिसाल कायम करती है।

1945 से लेकर 2002 तक हिन्दी साहित्य जगत में अपने ढंग के अनूठे कवि के रुप में विख्यात बुजुर्ग कवि त्रिलोचन के काव्यगत दृष्टिकोण के विभिन्न पडावों कों देखने पर यह मैं कह सकती हूँ कि परिस्थितियों के कारण व्यक्ति में परिवर्तन आता रहता है, परिस्थितियाँ कभी उसके दृष्टिकोण को पुष्ट करती है तो कभी गलित करती है- मानव प्रकृति के अनुसार यह स्वाभाविक ही है। जैसा कि मैंने प्रारंभ में

कहा कि अपनी संवेदनशीलता के कारण त्रिलोचन मानवीयता को अधिक महत्व देते हैं। इसलिए आस्था और विश्वास का गान गाते हुए 2002 में भी 'कविताएँ हाथ है, पाँव है' कविता में वे कविताएँ रहेगी तो सपने भी रहेंगे की भावना-प्रधान वक्तव्य देते हैं वहीं त्रिलोचन नगरी मानवीय संवेदना की शून्यता से निराश होकर मनुष्यता के विकास की गाथा को इस रुप में व्यक्त करते हैं-

आदमी को आदमी की गन्ध बुरी लगती है,
इतना ही विकास, मनुष्यता का अब हुआ है।

मराठी के लोकप्रिय कवि भा. रा. तांबे कहते है-

जन पळभर म्हणतील हाय ! हाय!
तु जाता राहिल काय काय!

उसी तरह से 'मेरा घर' में त्रिलोचन कहते है कि 'शब्दों से मेरा संबंध छूट जाएगा' तब गुरूजन दुखी होंगे, परिजन धीरज खोकर रोएंगे, इस दुनिया में कोई अक्षयवट नहीं है जो आया है, उसे जाना है।

मुझे अपने मरने का
थोड़ा भी दु:ख नहीं
मेरे मर जाने पर
शब्दों से
मेरा सम्बन्ध
छूट जाएगा।

अंत में मैं यह कहना चाहूँगी कि त्रिलोचन हिन्दी काव्यांदोलनों के विभिन्न सोपानों को पार करते हुए आज एक ऐसे मोड़ पर आ चुके है जहाँ पर कि वे जीवन से दूर होती कविता के प्रति मोह व्यक्त करते हैं।

अदम्य जिजीविषा के कवि त्रिलोचन की काव्यदृष्टि का यह बदलाव अखरता है। यह उम्र का तकाजा हो सकता है या फिर पुन: व्यक्तिगत संत्रास। जो भी हो त्रिलोचन के लिए यह क्षणिक हो क्योंकि भले ही कवि का शब्दों के साथ संबंध छूट जाए लेकिन हिन्दी साहित्य-जगत में सॉनेट के पर्याय के रूप में त्रिलोचन को निश्चित रुप से याद किया जाएगा- इस रुप में उनका संबंध बना ही रहेगा। प्रगतिशील विचारधारा के त्रयी कवियों में इनकी काव्यदृष्टि विशुद्ध मार्क्सवादी नहीं है अपितु कहीं न कहीं अपनी परंपरा में भी जुड़ती है। वैसे इनकी कविताओं से गुजरते हुए देखा जाए तो वे मूलत: धरती के गायक जनवादी दृष्टि के रचनाकार है इसमें कोई दो राय नर्ह हो सकती।

त्रिलोचन की कविता में बडी सादगी है और हर कविता में धरती की सों

गंध मिलती है। कविताएँ आकार में छोटी और प्रभाव में तीव्र होती है। त्रिलोचन ने संघर्ष किया है इसलिए इनकी कविताओं में दैन्य, अभाव और संघर्षों का सही चित्र प्राप्त होता है तथा संघर्ष जन्य अटूट विजय-भाव तथा शक्ति से इनकी कविताएँ ओत-प्रोत होती है। त्रिलोचन ने सदैव मनुष्य की रागात्मक पर ध्यान रखा है । इनकी कविताओं में न व्यर्थ की अभिव्यक्ति है और न सस्ता उद्‌बोधन । कहीं-कहीं ये बौद्धिकता के आधिक्य या संवेदना की क्षीणता के कारण रुखी और वेगहीन अवश्य हो गयी है।

विजयबहादुर सिंह 'नये कवि का दृष्टिकोण' लेख में लिखते है नये कवि का दृष्टिकोण भावुक नहीं है। तात्कालिकता से वह उतना संबद्ध नहीं है जितना एक समग्र ऐतिहासिकता से। इसलिए वह समसामायिक कही सें कही अधिक आधुनिक है। आधुनिक होना कोई फैशनवाली बात नहीं रह गयी है। बल्कि वह यह तो उसकी आंतरिक विवशता है।

त्रिलोचन की आधुनिकता फैशनेबल नहीं है लेकिन सभ्य निश्चितरूप से है शायद इसलिए वह लोगों को बाजारवाद की आपा-धापी में आकर्षित नहीं कर पायी।

मराठी साहित्य में दलित साहित्य चेतना बहुत पहले ही मुखर हुई थी लेकिन हिन्दी में आज उसे महत्व दिया जा रहा है। लेकिन त्रिलोचन के पात्र तो पच्चीस साल पहले ही अपनी पीड़ा की अकुलाहट से संतप्त थे। दलित साहित्य के संदर्भ में शिवकुमार मिश्र लिखते है।

शिवकुमार मिश्र 'नया पक्ष' में 'दलित साहित्य का आंदोलन और हिन्दी क्षेत्र' में लिखते है भारत की अपनी संरचना में वर्ण की जो अहमियत है, एक व्यापक विश्व दृष्टि के आलोक में साधारण जन की मुक्ति का लक्ष्य लेकर अविर्भूत होनेवाले प्रगतिशील आंदोलन में वर्ण के स्थान पर वर्ग दृष्टि को अहमियत मिली, दलित जिसके दायरे में आते हुए भी अलग से रेखांकित नहीं हुए, शोषित मनुष्यता के एक हिस्से के रुप में ही जाने पहचाने लगे।

समकालीन कविता पर विचार करते हुए 'ज्ञानोदय' पत्रिका में प्रभात कुमार त्रिपाठी लिखते है- ''महत्वपूर्ण यह नहीं है कि क्या लिखा जा रहा है, महत्वपूर्ण यह है कि जो लिखा जा रहा है वह किस हद तक रचना है।

इस दृष्टि से भले ही हम त्रिलोचन को महान न माने लेकिन उनके महत्व को स्वीकार करना ही होगा।

o-o-o-o-o

जीवनवृत्त और सृजन यात्रा

नाम	:	त्रिलोचन (शास्त्री उपाधी) त्रिलोचन नाम गाँव के संस्कृत गुरू श्री देवदत्त ने पहले ही दिन दे दिया। गुरू श्री देवदत्त अपनी जाति तिवारी नहीं लिखते थे। उन्होंने निर्देश दिया कि 'त्रिलोचन' के साथ 'सिंह' कभी भी मत जोड़ना।
मूलनाम	:	वासुदेव सिंह
जन्म	:	विक्रम संवत् 1974 के अधिक भाद्र शुक्ल, तृतीय सोमवर-तदनुसार-20 अगस्त1917
स्थान	:	चिरानीपट्टी, कटघरापट्टी, जिला-सुल्तानपुर (उ.प्र.)
शिक्षा	:	चिरानीपट्टी, दोस्तपुर और बनारस में, साहित्यरत्न, एम.ए. (प्रथम वर्ष) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ।
दादी	:	श्रीमती रजासी (राज्यश्री)
पिता	:	श्री गरदेव सिंह
माता	:	श्रीमती मनबरता देवी
विशेष	:	पिता की लम्बाई सात फिट तीन इंच और माँ छोटे कद की।
गुरू	:	श्री दामोदर लाल शास्त्री, काशी
पत्नी	:	श्रीमती जयमूर्ति देवी (निधन- 'सागर' में 19 दिसम्बर 1988)
विवाह	:	त्रिलोचन की उम्र उस समय 11 वर्ष, पत्नी 4-5 साल बड़ी थी।
बहनें	:	त्रिलोचन से दो बड़ी- मर्यादा, नन्हका, एक छोटी- उरेहा।
भाई	:	दो बड़े भाई रामसरन सिंह (निधन 12 वर्ष) और रामफेर सिंह (निधन-8 वर्ष की आयु में), एक छोटे भाई भगवती सहाय वर्मा (जन्म 1923, निधन 9 अप्रैल 1992)
दो पुत्र	:	1. डां. जयप्रकाश सिंह/ पुत्र वधू -ऊषा (जोरहट आसाम)। गायत्री सिंह (पौत्री), रिपुजय सिंह (पौत्र), मृगांका सिंह (पौत्री) 2. श्री अमित प्रकाश सिंह/ पुत्र वधू (ज्वालापुर-हरिद्वार) अद्रीश (पौत्र), पंखुडी (पौत्री)
पुरस्कार	:	1. 1981- साहित्य अकादमी पुरस्कार (कृति-ताप के ताए हुए दिन) 2. 1983-84 उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मान पुरस्कार ('दिगन्त' तथा 'गुलाब और बुलबुल' कृतियों पर)
सम्मान	:	1. 9 फरवरी1990 -हिन्दी कविता के लिए म.प्र. का 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' 2. 1989-90- हिन्दी अकादमी, दिल्ली का शलाका सम्मान (मार्च 1992 में प्रदत्त)

प्रकाशित कृतियाँ

धरती : (1945) दूसरा संस्करण -1977- नीलाम प्रकाशन - इलाहाबाद
गुलाब और बुलबुल : (1956) दूसरा संस्करण -वाणी प्रकाशन -नई दिल्ली
दिगन्त : (जनवरी 1957) प्रकाशक-जगत शंखधर, वाराणसी
ताप के ताए हुए दिन : (1980) संभावना प्रकाशन हापुड़
शब्द : (1980) वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
उस जनपद का कवि हूँ : (1981) राधाकृष्ण प्रकाशन - नई दिल्ली
अरघान : (1983) यात्री प्रकाशन - दिल्ली
अनकहनी भी कुछ कहती है : (1985) राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली
तुम्हें सौंपता हूँ :(1985) राधाकृष्ण प्रकाशन - नई दिल्ली
फूल नाम है एक : (1985) राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली
प्रतिनिधि कविताएँ (त्रिलोचन) : (1985) संपादक - केदारनाथ सिंह - राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली
देशकाल (कहानी संग्रह) : (1986) राधाकृष्ण प्रकाशन - नई दिल्ली
सबका अपना आकाा : (1987)
चैती : (1987) वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
अमोला : (1990) वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
रोजनामचा (डायरी) : (1993) वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली
मेरा घर : राजकमल प्रकाशन, पटना (2002)

कार्य / व्यवसाय

1930 से 35 - प्राइवेट शिक्षक, पत्रकार ।
1939 से 41- 'कहानी मासिक' बनारस में
1943 से 50 - 'हंस' तथा चित्ररेखा मासिक में
तथा ज्ञानमंडल काशी के वृहत हिन्दी कोश में।
1952-52 - गणेशराय इंटर कालेज डोमी, जीनपुर में अंग्रेजी शिक्षक।
1953-54 - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के 'हिन्दी अंग्रेजी मानक कोश' में ।
1954 से जून 1959 हिन्दी शब्द सागर, संशोधित परिवर्द्धित संस्करण में।
1959 राँची के राष्ट्रीय प्रेस में प्रबंधक।
1960 से 1967 'हिन्दी शब्द सागर' में कार्य।
1968 से 1972 - विदेशी छात्रों को हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं का अध्यापन ।

1972 से 1975 दैनिक 'जनवार्ता' बनारस में सहायक संपादक।

1975 से 1978 हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल में भाषा संपादक।

मई 1978 से मार्च 1984 उर्दू हिन्दी द्वैभाषिक को परियोजना।

उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

28 मार्च 1984 से 28 जुलाई 1990 तक- अध्यक्ष, मुक्तिबोध सृजनपीठ।

डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

11 नवम्बर 92 से 31 मई 1992 तक -विजिटिंग प्रोफेसर हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

1992 से अगस्त 1995 तक - दिल्ली विश्वविद्यालय, उर्दू विभाग द्वारा निर्माणाधीन 'फारसी-हिन्दी' काषा में कार्यरत रहे।

28 दिसम्बर 1995 से पुनः 'अध्यक्ष' मुक्तिबोध सृजनपीठ, डा. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

o-o-o-o-o

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धरती : नीलाभ प्रकाशन - इलाहाबाद, (1945) दूसरा संस्करण -1977-
2. गुलाब और बुलबुल : वाणी प्रकाशन -नई दिल्ली, (1956) दूसरा संस्करण
3. दिगन्त : प्रकाशक-जगत शंखधर, वाराणसी, (जनवरी 1957)
4. ताप के ताए हुए दिन : संभावना प्रकाशन- हापुड़, (1980)
5. शब्द : वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, (1980)
6. उस जनपद का कवि हूँ : राधाकृष्ण प्रकाशन -नई दिल्ली, (1981)
7. अरघान : यात्री प्रकाशन - दिल्ली, (1983)
8. अनकहनी भी कुछ कहती है : राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली, (1985)
9. तुम्हें सौंपता हूँ : राधाकृष्ण प्रकाशन-नई दिल्ली, (1985)
10. फूल नाम है एक : राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली, (1985)
11. प्रतिनिधि कविताएँ (त्रिलोचन) : संपादक- केदारनाथ सिंह - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (1985)
12. देशकाल (कहानी संग्रह) : राधाकृष्ण प्रकाशन - नई दिल्ली, (1986)
13. सबका अपना आकाश : (1987)
14. चैती : वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, (1987)
15. अमोला : वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, (1990)
16. रोजनामचा (डायरी) : वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, (1993)
17. मेरा घर : राजकमल प्रकाशन, पटना. (2002)
18. अभिज्ञान शाकुंतल : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, दिल्ली, 1995
19. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प : डॉ. हरदयाल नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली, 1997
20. आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्व : डॉ. सच्चिदानंद तिवारी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र.सं. 1964
21. आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन : डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीश, बाफना प्रकाशन जयपुर.
22. आखिर रचना क्यों? : गजानन माधव मुक्तिबोध, वाणी प्रकाशन, 1982

23. आधुनिक साहित्य : नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, इलाहाबाद तृ.सं.2018 वि.

24. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका : शंभुनाथ पांडे, विनोद पुस्तक मंदिर, आग्रा 1964

25. आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना : सुधाकर कलवाडे, पुस्तक संस्थान कानपुर, 1973

26. आधुनिक हिन्दी कविता सृजनात्मक संदर्भ : सुधाकर कलवाडे, पुस्तक संस्थान, कानपुर 1973

27. आधुनिक कविता का मूल्यांकन : इंद्रनाथ मदान, हिंदी भवन, जालंधर, 1962

28. आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएँ : डॉ, उर्मिला जैन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, दिल्ली,1970

29. आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व : वीरेंद्रनाथ द्विवेदी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 1991

30. आज की दुनिया और लेनिन : रामविलास शर्मा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली,1992

31. आधुनिक हिन्दी काव्य और संस्कृति : डॉ.भक्तराज शास्त्री, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर,1996

32. उपन्यास तत्व एवं रूप विधान : श्री नारायण अग्निहोत्री, साधना सदन प्रकाशन कानपुर, प्र.सं.1962

33. कविता का थल और काल : अरविंदाक्षन, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं.2001

34. कविता और कविता : सं. इंद्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, पटना,1967

35. कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य : मत्स्येंद्र शुक्ल, आचार्य प्रकाशन, अलाहाबाद,1989

36. कविता की लोक-प्रकृति : जीवन सिंह. अनामिका प्रकाशन, अलाहाबाद, 1992

37. कविता का जनपद : अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली 1992

38. कविता के नए प्रतिमान : प्रो. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

39. कार्ल मार्क्स, कला और साहित्य चिंतन, : सं. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1991

40. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, दशम संस्करण, सं.2015 वि.

41. काव्यप्रकाश : श्रीराजाकमम्मटाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, दिल्ली, प्र.सं.1993
42. काव्य रचना प्रक्रिया : सं. डॉ.कुमार विमल, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी
43. काव्यशास्त्र : डॉ.भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1980 ई.
44. कविता की मुक्ति : डॉ. नंदकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996
45. काव्यभाषा : डॉ. सियाराम तिवारी, दि मैकलिमलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड के लिए प्रकाशित तथा प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स दिल्ली में मुद्रित प्र.सं. 1976
46. काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1989
47. चिंतामणी : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग, 1961
48. छायावादी काव्य मे सामाजिक चेतना, : डी.पी. बरनवाल, जानकी प्रकाशन प्र.सं.1988
49. छायावादोत्तर हिन्दी कविता : रमाकांत शर्मा, साहित्यसदन, देहरादून 1970
50. तीसरा सप्तक : सं. अज्ञेय भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी प्र.सं. 1956
51. त्रिलोचन के बारे में : सं. गोविंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1994
52. त्रिलोचन संचयिता : सं. ध्रुव शुक्ल वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002
53. दर्शन, साहित्य और समाज : शिवकुमार मिश्र, अरूणोदय प्रकाशन, 1992
54. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 1982
55. दिनकर काव्य में युगचेतना : डॉ. पुष्पा ठक्कर, अरविंद प्रकाशन, मुंबई मार्च, 1986
56. दृष्टिकोण : विनयमोहन शर्मा, नंदकिशोर एन्ड ब्रदर्स, बनारस 1950
57. नयी कविता की भूमिका : प्रेमशंकर, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1988
58. नया काव्य : नये मूल्य : ललित शुक्ल स्टैंडर्ड पब्लिशर्स, दिल्ली,1999

59. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धांत	:	दिविक रमेश, पराग प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1991
60. निराला रचनावली	:	सं. नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, 1983
61. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना	:	जगदीशचंद्र, अभिनव प्रकाशन प्र.सं.1979
62. नयी कविता : नया मूल्यांकन	:	डॉ. प्रेमशंकर,अयन प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1988
63. नयी कविता के बाद	:	ओमप्रकाश अवस्थी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1974
64. नयी कविता	:	कांतिकुमार, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, मध्य प्रदेश, 1972
65. नयी कविता का सामाजिक पक्ष	:	ललित सक्सेना, विवेक पब्लिशिंग हाऊस जयपुर
66. नयी कविता का सामाजिक पक्ष	:	लालताप्रसाद सक्सेना, विवेक पब्लिशिंग कंपनी, जयपुर.
67. प्रगतिशील कविता के सौंदर्य मूल्य	:	अजय तिवारी, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद. प्र.सं. 1984
68. प्रगतिशील हिन्दी कविता	:	डॉ. रणजीत साहित्य रत्नाकर, कानपुर,1997
69. प्रगतिवादी कविता में वस्तु और रुप	:	रवि रंजन, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद,1995
70. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ	:	डॉ. रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, द्वि. सं. 1957
71. प्रगतियेदर काव्य	:	उमेश मिश्र, रामबाग- कानपुर, 1966
72. प्रगतिशील हिन्दी कविता	:	दुर्गाप्रसाद झाला, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, 1967
73. प्रगतिवादी कविता में सौंदर्य चिंतन	:	तनुजा तिवारी, भारतीय भाषापीठ, नयी दिल्ली, 1987
74. प्रगतिशील कविता के सौंदर्य मूल्य	:	अजय तिवारी, परिमल प्रकाशन, अलाहाबाद, 1984
75. प्रगतिवादी काव्य साहित्य	:	कृष्णलाल हंस, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1971
76. प्रगतिवादी काव्य उद्भव और विकास	:	डॉ. अजित सिंह, साहित्यालोक, कानपुर, 1984

77. प्रेमचंद कथा साहित्य: समीक्षा और मूल्यांकन : डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली 1992

78. बदलते परिप्रेक्ष्य : नेमिचंद्र जैन, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं.1968

79. बच्चन : सं.चंद्रगुप्त विद्यालंकार, राजपाल प्रकाशन 1995

80. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन : मुदूगल

81. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन : डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह

82. भारतीय संस्कृति : शिवदत्त सानी, राजकमल प्रकाशन, प्र. सं.1944

83. भारतीय संस्कृति : नरेंद्र मोहन, प्रभात प्रकाशन, 1999

84. भक्तिकाव्य और मानव मूल्या : वीरेंद्र मोहन, प्रकाशन संस्थान, दरीयागंज, प्र.सं. 1986

85. भाषा, युगबोध और कविता : रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,1981

86. भारत में अंग्रेजी राज और : राजकमल प्रकाशन, आगरा, प्र.सं.1982

87. प्रतिनिधी कविताएँ : सं. डॉ. विजयबहादुर सिंह. राजपाल प्रकाशन, प्र.सं. 1999

88. महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्पविधि : डॉ. शंकर वसंत मुदगल, चंद्रलोक प्रकाशन 1994

89. मेरी रचना प्रक्रिया : सं. डॉ. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर प्र.सं.1991

90. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : श्याममनोहर पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन द्वि.सं. 1982

91. मार्क्सवाद और कविता : थॉमसन जॉर्ज चित्रलेखा प्रकाशन, अलाहाबाद, 1985

92. मूल्यांकन : पुनर्मूल्यांकन : डॉ. सुरेश गौतम जीवन ज्योति प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1985

93. मार्क्सवाद और आधुनिक हिन्दी कविता : जगदीश्वर चतुर्वेदी, राधा पब्लिकेशन नयी दिल्ली, 1994

94. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका : रोहिताश्व, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1991

95. यशपाल के कथा साहित्य में काम, प्रेम और परिवार : डॉ. मधूलिका पाठक, अरविन्द प्रकाशन प्र.सं.1992

96. रचना प्रक्रिया और रचनाकार : देवेश ठाकुर, संकल्प प्रकाशन, मेरठ प्र.सं.1986

97. रुपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि : रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990
98. रीति और शैली : डॉ. सूर्यप्रकाश मिश्र, अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं. 1988
99. रामचरितमानस : मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल
100. विवेक के रंग : देवीशंकर अवस्थी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995
101. विचार और विवेचन : डॉ. नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
102. विचार और अनुभूति : डॉ.नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1991
103. विचार और विश्लेषण : डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1961
104. विचार प्रवाह : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर मुंबई 1959
105. शैली विज्ञान : डॉ. नीरजा टंडन, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली प्र.सं. 1996
106. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन : डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, साहित्य रत्नाकर, कानपुर, 1990
107. सापेक्ष : त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक : सं.महावीर अग्रवाल, आदर्श नगर, मध्यप्रदेश, 1996
108. विमल : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना प्र.सं. 1967
109. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता : डॉ. गोविन्द 'रजनीश' मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं.1976
110. सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण : निजामुद्दीन अंसारी, पुस्तक संस्थान, कानपुर प्र.सं.1976
111. साहित्य का परिवेश : सं. सच्चिदानंद वात्स्यायन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र. सं. 1985
112. समाज शास्त्र के सिद्धांत : कुवर सिंह तिलारा, एम.के. सरन, डॉ.जीतांग, आर. के. अग्रवाल, प्रकाशन केंद्र , लखनऊ प्र. सं. 1990
113. साहित्य का परिवेश : सं. सच्चिदानंद वात्स्यायन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र.सं. 1985

114. साहित्य कला : डॉ. रामानंद तिवारी, भारती नंदन, भारती प्रकाशन, प्र.सं. 1970

115. समाज और संस्कृति : सावित्री चन्द्र शोभा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं. 1976

116. साहित्यानुशीलन : शिवदानसिंह चौहान, आत्माराम अॅन्ड सन्स दिल्ली, 1955

117. साहित्य विचार : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सं. भारत यायावर वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1995

118. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1956

119. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : डॉ. देवराज, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश प्र. सं. 1957

120. साहित्यमुखी : रामधारीसिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1987

121. साहित्य की सामाजिक भूमिका, : देवेश ठाकुर, संकल्प प्रकाशन मेरठ, प्र.सं. 1986

122. साहित्य स्थायी मूल्य और मूल्यांकन : रामविलास शर्मा, अक्षर प्रकाशन, प्र.सं. 1968

123. सहचिंतन : अमृतराय, सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967

124. साहित्य का प्रेय और श्रेय : जैनेंद्र, पूर्वोदय प्रकाशन द्वि सं. 1961

125. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य : डॉ. बचन, राजकुमार प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं.1967

126. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : गोविंद रजनीश, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1976

127. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता : मनोज, सोनकर प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 1994

128. समाजोन्मुख यथार्थवादी काव्य : रमाकांत शर्मा, वाणी प्रकाशन, 1984

129. समकालीन काव्य में प्रगतिवादी चेतना, : एम. रंगय्या, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनउ, 1985

130. साहित्य सहचर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेद्य निकेतन, वाराणसी 1965

131. समकालीन साहित्य और समीक्षा : डॉ. बेचन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1976

132. सन सत्तावन की राज्यक्रांति : रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन

और मार्क्सवाद — द्वि. सं.1990

133. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना : डॉ. सोफिया मैथ्यू, सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1962

134. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध : महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1962

135. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ : सं. राजीव सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. सं. 1986

136. हिन्दी की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन : डॉ. जगदीश गुप्त, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1977

137. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : प्रो. वासुदेव सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, द्वि. सं. 1993

138. हिन्दी कविता में गजल संवेदना और शिल्प : जे. पी. गंगवार, प्रकाश बुक डेपो, भरेली, 1991

139. हिन्दी कविता- संवेदना और दृष्टि : राममनोहर त्रिपाठी, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्र. सं. 1986

140. हिन्दू सभ्यता : राधाकुमुद मुखर्जी, राजकमल प्रकाशन, 7 वा संशोधित संस्करण 1990

141. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदामसिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1954

142. हिन्दी साहित्य 20 वीं शताब्दी : नंददुलारे वाजपेयी, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1962

143. हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य : सच्चिदानंद वात्स्यायन, राधाकृष्ण प्रकाशन 1967

144. हिन्दी में प्रगतिवाद : विजयशंकर मल्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस

145. हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद : रामकुमार खंडेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र.सं. 1959

146. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम : रामरश मिश्र, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1978

147. हिन्दी की मार्क्सवादी कविता : संपत ठाकुर, प्रगति प्रकाशन, आगरा,1978

148. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका : सं. प्रभाकर श्रोत्रेय, मैकमिलन कंपनी प्र.सं.1978

149. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : जयकिशन खंडेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर बाहरवा संस्करण, 1985

150. हजार-हजार बाहोंवाली : नागार्जुन राधाकृष्ण प्रकाशन, 1981

त्रिलोचन शास्त्री से संबंधित पत्रिकाओं की सूची

151. त्रिलोचन और शंभू बादल की बातचीत : साक्षात्कार - जून-जुलाई, 1984
152. अनकहनी भी कुछ कहनी है : डॉ. हरदयाल, प्रकर, अक्तूबर 1986
153. मेरे मन में एक और मन है : अपूर्वानंद, अक्तूबर- दिसंबर, 1986
154. एक नया काव्यशास्त्र : सं. आलोचना जुलाई-सितंबर 87
155. त्रिलोचन से बातचीत : केदारनाथ सिंह, आलोचना जुलाई-सितंबर87
156. त्रिलोचन की कविता जिसका प्राण सहजता है : गोविंद प्रसाद , आलोचना जुलाई- सितंबर 1988
157. त्रिलोचन का जनपद : एक नक्शा : आलोचना अक्तूबर-दिसंबर 1987
158. जीवन की लय में मुक्ति का राग : मैनेजर पाण्डेय, आलोचना, जुलाई - सितम्बर, 1987
159. जीवन के प्रवाह में कविता : स्वप्निल श्रीवास्तव, आलोचना, जुलाई - सितम्बर
160. जन-कवि होने के नाते : विश्वनाथ त्रिपाठी, आलोचना- जुलाई- सितम्बर, 1987
161. कविता मनुष्य के लिए होती है, मनुष्य कविता के लिए नहीं है : जनसंचार 1994
162. उस जनपद का कवि हूँ : प्रकर 'आश्विन' 20
163. तुम्हें सौपता हूँ : डॉ. हरदयाल, प्रकर अप्रैल, 1987
164. अंतरीप : त्रिलोचन पर डायरी, नवंबर-1994
165. फूल नाम है एक : डॉ. केदार मिश्र, प्रकट वैशाख, 2045
166. प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन और उनका सॉनेट : डॉ. किरण सिंह, भाषा- जनवरी-फरवरी 2002
167. त्रिलोचन शास्त्री धरती का कवि : डॉ, भक्तराम शर्मा, आजकल- अगस्त,1990
168. सबका अपना आकाश : अरूण कमल, समीक्षा- जनवरी-मार्च 1988
169. शब्दो में जीवन : परमानंद श्रीवास्तव, आलोचना, जुलाई - सितंबर 87

170. प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन और उनका सॉनेट : डॉ. किरण सिंह, भाषा, जनवरी-फरवरी 2000
171. पकड से छूट-छूट जाते त्रिलोचन : हंस - नवंबर, 2002

o-o-o-o-o

पत्र पत्रिकाओं की संदर्भ सूची

1. आलोचना - अप्रैल 1957 कवि और सामाजिक दायित्व, मालार विन्दम चतुर्वेदी
2. आलोचना - जुलाई 1957 मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन- डॉ. रामविलास शर्मा.
3. आलोचना - अप्रैल 1959, मार्क्सवाद की काव्य विषयक प्रतिपत्तियाँ, राजेंद्र प्रसाद सिंह
4. आलोचना - जून 1965 हिन्दी कविता, प्रगतिशील, डॉ. शिवकुमार मिश्र
5. आलोचना - अप्रैल-जून 68 पुनर्जीवन में महानता कार्ल मार्क्स, 150 वीं वर्षगाठ, मोहित सेन
6. आलोचना - अप्रैल जून 69 समकालीन कविता एक दृश्यालेख, अशोक वाजपेयी
7. आलोचना - अप्रैल-जून 1973 साहित्य और आस्था, निर्मल वर्मा
8. आलोचना - जनवरी -मार्च 74 आज की सामाजिक स्थिति और लेखक की सत्ता, गंगाप्रसाद विमल
9. आलोचना - अप्रैल-जून 74 प्रगतिशीलता का अर्थ, सर्वहारा से भावात्मक तादात्म्य, विश्वनाथ त्रिपाठी
10. आलोचना - जनवरी-मार्च 75 वर्तमान सांस्कृतिक साहित्यिक स्थिति, रामवक्ष, पृ.76
11. आलोचना - जनवरी मार्ज 78 मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र कुछ विचार, रामवक्ष
12. आलोचना - जुलाई-सितंबर 78 समकालीन हिंदी कविता में विद्रोह
13. आलोचना - अप्रैल-जून 79 आचार्य द्विवेदी और प्रगतिवाद नंदकिशोर नवल
14. आलोचना - जुलाई-सितंबर 81 मार्क्स और सामाजिक विकास, डॉ.रामविलास शर्मा
15. आलोचना - अप्रैल-जून 87 महान कविता क्या है? रघुपतिसहाय 'फिराक'
16. आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर 87 समकालीन कविता और काव्यमूल्य- परमानंद श्रीवास्तव
17. आलोचना - अंक 10 प्रगतिशील चिंतन और साहित्य : राजेंद्रप्रसाद सिंह
18. आजकल - जून 1987 कविता की प्रेरणा, डॉ. सुधेरा
19. आजकल - जनवरी 1991 नवे दशक की कविता, कविता को हथियार बनाने की मानसिकता, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

20. आजकल - अप्रैल 1991 लोकशक्ति की कविता, दलित कविता, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
21. आजकल - सितम्बर 1992 भाषा और संस्कृति, कुछ बिंदु, कुछ विचार, शंकर दयाल सिंह
22. आजकल -सितम्बर 2001 अशोक वाजपेयी से संजय श्रीवास्तव की बातचीत
23. इन्द्रप्रस्थ भारती - अप्रैल मई- जून 1991 समसामायिक कविता और सर्जनात्मक आलोचना के नये आयाम, कृष्णदव पालीवाल
24. कथादेश - दिसम्बर 2000 साहित्य स्वत्व का संकट और अंतकरण की आवाज, देवेंद्र इस्सर
25. कथन - अप्रैल जून 2001 समाजवाद का नया यूटोपिया, पूरनचंद्र जोशी
26. ज्ञानोदय - नवंबर 1969 कविता की लोकप्रियता का प्रश्न, आज का संदर्भ, कृष्णबिहारी मिश्र
27. नया पथ - जुलाई-सितंबर 1997 दलित साहित्य का आंदोलन और हिन्दी क्षेत्र, शिवकुमार मिश्र
28. नागरी प्रचारिणी पत्रिका संस्कृत तथा-संस्कृति वर्ष 75 संवत 2027
29. समीक्षा - जुलाई-सितंबर 1988, आधुनिक हिंदी कविता, सर्जनात्मक संदर्भ, चंद्रप्रकाश अमिताभ
30. संचेतना - जून 1978, मनुष्य की मुक्ति और कविता की मुक्ति
31. संचेतना - मई 1979 सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की भूमिका, डॉ. गोपाल राय
32. संचेतना - मार्च 2001, प्रकाशित जून 2001 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता तेवर और कलेवर, डॉ. सुनीता जैन.

o-o-o-o-o

शब्दकोश सूची

1. नालन्दा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो
2. प्रामाणिक हिन्दी कोश, संपादक आचार्य रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1996
3 संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आपटे, ओरियन्टल बुक सेंटर, 1997
4. हिन्दी पर्यायवाची कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1990

o-o-o-o-o

अंग्रेजी पुस्तक सूची

1. An Advance History of India, R. C., Majumdar, H.C. Raychaudhuri, Kalikinkar Datta (Macmillan) First edition -1946

2. An outline History of the Indian People, H. R. Ghosal, India Govt Publication, New Delhi, 1962

3 Discovery of India, Pandit nehru, Oxford University Press, first publication, 1946

4. Elizabethan Lyrical Poets, edited by Patricia Thomson, Powtledge and Kegan Paul limited, 1967

5. English Literature of the Twentieth Century, A. S. Collins, Second edition , 1954

6. Human Development, Diane E. Papalia, Sally Wendkos olds, seventh edition, Tata MagXaw, Hill Publishing company ltd. New Delhi, 1992

7. Landmarks in work History, M. D. David, Himalaya Publishing house, Mumbai, 1993

8. Struggle for Freedom, Bharatiya Vidya Bhavan's History and culture of the India people, Volume II, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai 1965

9. The Modern Age, Edited by Boris Ford, Penguin, First Edition 1961,

10 The Penguin Book of English Verse, Edited by John Hayward, First Publication, 1956

11. The New Shakspear - by John Dover Wilson, Cambridge, At the university press , 1969

12. Twentieth Century Prose A. C. ward, The English Language Book Society, Longman group Ltd., 1962

o-o-o-o-o